हमें ख़ुदा कैसे मिला ?

संकलन

अब्दुल ग़नी फ़ारूक़

अनुवाद

रईस अहमद फ़लाही

पुनरीक्षण

मुहम्मद इलियास हुसैन

शमशाद ख़ान

मुहम्मद शुएब

निसार अहमद ख़ान

मधुर सन्देश संगम

नई दिल्ली–110025

HAMAIN KHUDA KAISE MILA? (HINDI)
मधुर सन्देश संगम (ट्रस्ट रजि०) प्रकाशन

नाम मूल किताब (उर्दू) : हमें ख़ुदा कैसे मिला ?

प्रकाशक : **मधुर सन्देश संगम**
E-20, अबुल फ़ज़्ल इन्क्लेव
जामिआ नगर, नई दिल्ली–110025
फ़ोन : 26953327 फ़ैक्स : 23276741
E-mail : madhursandeshsangam@yahoo.co.in

मिलने का अन्य पता : **एम. एम. आई. पब्लिशर्स**
D-307, दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्क्लेव
जामिआ नगर, नई दिल्ली–110025
फ़ोन : 26971652, 26954341

संस्करण : 2008 ई०

पृष्ठ संख्या : 464

मूल्य : 100.00

कम्पोज़िंग : नाज़ इंटरप्राइजेज़, दिल्ली–32
मुद्रक : एच. एस. आफ़सेट, नई दिल्ली–2

विषय-सूची

क्र.स.	क्या		कहाँ
●	दो शब्द		7
1.	श्रीमती आमिना	(अमेरिका)	9
2.	आयत हरीरी	(अमेरिका)	23
3.	श्रीमती असमा	(स्वीडन)	28
4.	सुश्री अमल-अस्साएग़		30
5.	सिस्टर अमीना	(अमेरिका)	36
6.	अमीना थॉमस	(भारत)	48
7.	अमीना एनी स्पीगेट	(इंग्लैण्ड)	57
8.	डॉक्टर अमीना कॉकसन	(इंग्लैण्ड)	62
9.	बेगम अमीना लाखानी	(अमेरिका)	68
10.	लेडी बार्न्स	(इंग्लैण्ड)	72
11.	बर्रह इस्लाम	(न्यूबर्टिन अमेरिका)	76
12.	बेकी हॉप्किंस	(अमेरिका)	80
13.	बेगम मौलाना उज़ैर गुल	(इंग्लैण्ड)	82
14.	श्रीमती सुरैया	(अमेरिका)	87
15.	डॉक्टर कमला सुरैया	(केरल भारत)	94
16.	जे० गिलक्रीज़	(अमेरिका)	101
17.	दो जापानी बहनें	(जापान)	109
18.	अमीरा	(अमेरिका)	113
19.	जमीला करार	(आस्ट्रिया)	118
20.	सुश्री ख़ालिदा हेमिलटन	(इंग्लैण्ड)	124
21.	सुश्री ख़दीजा	(ऑस्ट्रेलिया)	129
22.	सुश्री ख़दीजा अब्दुल्लाह	(मराकश)	135
23.	श्रीमती ख़दीजा फ़िज़ूई	(इंग्लैण्ड)	143
24.	सिस्टर ख़ौला लुकाता	(जापान)	147
25.	मोमिना तबस्सुम, अब्दुल करीम	(भारत)	161

26.	श्रीमती रहीमा ग्रिफ़्फ़थ्स	(इंग्लैण्ड)	166
27.	रुक़ैया राशिद	(जर्मनी)	174
28.	श्रीमती रोज़ा गॉर्डन अमीन	(इंग्लैण्ड)	179
29.	ज़ैनब तोरह	(नाइजीरिया)	183
30.	श्रीमती ज़ैनब कारेन	(जर्मनी)	188
31.	लेडी ज़ैनब कोब्बोल्ड	(इंग्लैण्ड)	193
32.	श्रीमती सारा जोज़फ़	(इंग्लैण्ड)	196
33.	श्रीमती सईदा नामियर	(रूस)	200
34.	श्रीमती सकीना	(जर्मनी)	203
35.	सुमैया बार्टिन केली	(अमेरिका)	208
36.	श्रीमती सना	(मिस्र)	212
37.	सुहैर अलबाहिली	(मिस्र)	219
38.	प्रोफ़ेसर शाहीन गुलफ़ाम	(हॉलैण्ड)	226
39.	शहनाज़ ख़ान	(नार्वे)	237
40.	सबीहा ख़ान	(उत्तरी अफ़्रीक़ा)	242
41.	डॉक्टर प्रोफ़ेसर सूफ़िया	(स्वीडन)	247
42.	श्रीमती आसिमा	(नार्वे)	253
43.	श्रीमती आलिया स्टर्लिंग	(अमेरिका)	259
44.	श्रीमती आइशा	(जर्मनी)	264
45.	श्रीमती आइशा ब्रिजेट हनी	(इंग्लैण्ड)	267
46.	आइशा भट्ठ	(इंग्लैण्ड)	274
47.	आइशा डिकरसन	(अमेरिका)	280
48.	आइशा अब्द	(ऑस्ट्रेलिया)	284
49.	डॉक्टर आइशा अब्दुल्लाह	(भारत)	289
50.	आइशा अदविया	(अमेरिका)	293
51.	आइशा किम	(दक्षिण कोरिया)	297
52.	फ़ातिमा तूते	(फ़िलिपाइन)	303
53.	फ़ातिमा–काला हीरा	(अमेरिका)	307
54.	फ़ातिमा ग्रीम	(जर्मनी)	318

55.	मैडम फ़ातिमा मिक डेविडसन	(त्रिनिदाद)	330
56.	फ्रांसिस सिट्रीन	(हॉलैण्ड)	334
57.	करीमा बर्निस	(अमेरिका)	341
58.	जॉर्जिना न्यूरी	(इंग्लैण्ड)	346
59.	मैडम लावरे	(फ्रांस)	348
60.	लैला रमज़ी	(अमेरिका)	354
61.	मीर यूला लैला ज़ीसनी	(पोलैण्ड)	359
62.	लीना विनफ़रे सैयद	(अमेरिका)	363
63.	श्रीमती डॉ० मारिया	(अमेरिका)	366
64.	श्रीमती महमूदा कानोली	(आस्ट्रेलिया)	369
65.	श्रीमती मरयम	(इंग्लैण्ड)	372
66.	मरयम अहमद	(ऑस्ट्रेलिया)	376
67.	श्रीमती मरयम जमीला	(अमेरिका)	379
68.	मरयम मुतवक्किला	(कनाडा)	390
69.	मोना अब्दुल्लाह मेकलॉसकी	(जर्मनी)	395
70.	मेडोना जॉनसन	(अमेरिका)	399
71.	श्रीमती मैरी ओलिवर	(इंग्लैण्ड)	404
72.	मैरी अली	(अमेरिका)	409
73.	मैरी कैण्डी	(अमेरिका)	413
74.	मेविस बी जोली	(इंग्लैण्ड)	418
75.	वर्जीना हाजरा मीर	(अमेरिका)	426
76.	वॉनी रिडले	(इंग्लैण्ड)	429
77.	हुदा डोज	(अमेरिका)	437
78.	हुदा ख़त्ताब	(इंग्लैण्ड)	443
79.	श्रीमती हीथर ओ० बेनन	(अमेरिका)	448
80.	यासमीन	(फ्रांस)	456

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।

''ईश्वर के नाम से जो अत्यन्त कृपाशील, बड़ा ही दयावान है।''

दो शब्द

आधुनिक युग की सबसे बड़ी सच्चाई यह है कि यूरोप में इस्लाम बड़ी तेज़ी से फैल रहा है और कुछ वर्षों पूर्व से इस्लाम के प्रति लोगों का रुझान काफ़ी बढ़ गया है; इस्लाम के प्रति लोगों की जिज्ञासा बढ़ती जा रही है और लोग इस्लाम का परिचय प्राप्त कर रहे हैं, और बड़ी संख्या में लोग इस्लाम की शरण में आ रहे हैं।

यूरोप में हर प्रकार की आज़ादी है। सुखी एवं सम्पन्न जीवन व्यतीत करने के बावजूद लोगों की आत्मा सुखी नहीं है। लोगों के मन में एक प्रकार का शून्य मौजूद है जिसकी पूर्ति एवं समाप्ति के लिए वे बड़ा प्रयास करते दिखाई दे रहे हैं।

यह ईश-कृपा और इस्लाम के सत्य और प्राकृतिक धर्म होने को दर्शाता है कि घोर विरोध और ग़लत प्रोपगंडे के बावजूद इसने अपने फैलाव तथा प्रचार-प्रसार की राह खोज ली और अब तो विरोधी भी स्वीकार करते हैं कि यूरोप और अमेरिका में इस्लाम के फैलाव का अनुपात बड़ा आश्चर्यजनक है। इससे भी आगे की बात यह है कि इस्लाम की शीतल छाया में आनेवालों में पुरुषों की तुलना में महिलाओं की भागीदारी कई गुना अधिक है, जबकि यह ग़लतफ़हमी पूरे ज़ोर-शोर के साथ फैलाई जाती है कि इस्लाम में औरतों के लिए कोई इज़्ज़त व अधिकार नहीं है।

हम प्रायः समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में लोगों के इस्लाम क़बूल करने की घटनाओं का ब्योरा पढ़ते रहते हैं। ये घटनाएँ महान सत्य अर्थात् इस्लाम तक पहुँचने के रास्तों की ओर मार्गदर्शन करती हैं इसलिए इनको सार्वजनिक होना चाहिए ताकि जो लोग भी सत्य पर चलने के इच्छुक हैं उन्हें साहस मिल सके और जो पहले से इस राह के राही हैं उनके आत्मविश्वास और साहस में वृद्धि हो।

प्रस्तुत पुस्तक में अस्सी ऐसी औरतों के क़िस्से बयान किए गए हैं, जिनमें से अधिकांश का सम्बन्ध यूरोप और अमेरिका से है। इन सौभाग्यशाली औरतों को वास्तव में सच्चाई की तलाश थी और उन्होंने गहन अध्ययन, सोच–विचार और तजुर्बों के बाद इस्लाम ग्रहण किया। ख़ुदा की किताब क़ुरआन मजीद और इस्लामी किरदार इन्हें अपने साथ बहा ले गया। ये प्रतिभाशाली औरतें सभ्य, शिक्षित और धनवान घरानों से ताल्लुक़ रखती हैं। इन्हें इस काम के लिए न तो मजबूर किया गया है और न किसी प्रकार का सांसारिक लोभ दिया गया, बल्कि इस्लाम क़बूल करने के बाद आज़माइशों और परेशानियों ने इनका रास्ता रोकने की कोशिश की, मगर ये साहसी महिलाएँ अपने फ़ैसले पर जमी रहीं। ये घटनाएँ इस बात का भी खुला प्रमाण हैं कि इस्लाम अपनी ख़ूबियों के कारण फैला है, न कि ज़ोर–ज़बरदस्ती, और लोभ–लालच से।

उर्दू भाषा में जनाब डॉ० अब्दुल ग़नी फ़ारूक़ साहब के द्वारा संकलित यह पुस्तक 'हमें ख़ुदा कैसे मिला?' के नाम से ही प्रकाशित हुई। यह हिन्दी पुस्तक उसी उर्दू किताब का रूपान्तर है। अलबत्ता दो–तीन कहानियाँ ऐसी हैं जिन्हें उर्दू पुस्तक से निकाल दिया गया है और उनकी जगह नई कहानियाँ शामिल कर दी गई हैं।

जो लोग इस जीवन के रहस्य को समझना चाहते हैं और जिन्हें सत्य की खोज है, यह पुस्तक उनके लिए अवश्य ही मील का पत्थर सिद्ध होगी इस बात की हमें पूरी आशा है।

ईश्वर हमारा मार्गदर्शन करे और हमारा सहायक हो!

01, जनवरी 2008 ई०

—प्रकाशक

1. श्रीमती आमिना

(अमेरिका)

इस्लाम स्वीकार करने की यह हृदयस्पर्शी कहानी मासिक 'हिकायत', लाहौर के अंक फ़रवरी–मार्च, 1980 ई० में प्रकाशित हुई थी और इसे सत्तार ताहिर मरहूम ने लिखा था। मैंने प्रथम भाग का सारांश लिखा है, जबकि साक्षात्कार पर आधारित दूसरे भाग को ज्यों का त्यों सत्तार ताहिर के शब्दों में ही प्रस्तुत किया जा रहा है :

■ ■ ■ ■ ■

श्रीमती आमिना 50 वर्षीय अमेरिकी महिला हैं, जो अपनी सामाजिक सेवाओं के कारण पूरी दुनिया में मशहूर हैं। 1980 ई० में उनके विषय में जो किताब प्रकाशित हुई उसके अनुसार 350 व्यक्तियों ने उनके समझाने–बुझाने से नशीली वस्तुओं के सेवन का त्याग कर दिया था और 21 मर्दों और औरतों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया था।

उल्लेखनीय बात यह है कि 'शिकागो न्यूज़' से सम्बद्ध रचनात्मक प्रतिभा की धनी यह महिला पत्रकार शारीरिक रूप से विकलांग है। वह शिकागो के हब्शियों के स्लम (Slum) नामक एक ऐसे मुहल्ले में पैदा हुई जो गन्दगी, अपराध, नशे और ग़रीबी का गढ़ था। उसका पैदाइशी नाम सिंथिया (Synthia) था और उसका बाप भी अधिकांश हब्शियों की तरह आवारा, नशेबाज़ और अपराधी आदमी था और उसकी माँ ही गोरों के घरों में मज़दूरी करके घर का ख़र्च चलाती थी। बाप की लापरवाही और कठोर हृदयता के कारण वह बचपन ही में पोलियो का शिकार हो गई। परन्तु वह असाधारण बौद्धिक क्षमताओं की मालिक थी। पाँच साल की उम्र में उसकी माँ एक सस्ती–सी पहियोंवाली कुर्सी ख़रीद लाई और उसे एक स्कूल में छोड़ आई। सिंथिया ने जब से बोलना शुरू किया था, वह बार–बार कहा करती थी, ''मैं स्कूल जाऊँगी, मैं स्कूल जाऊँगी।''

सिंथिया बड़ी समझदार और बुद्धिमान लड़की थी। वह अपनी कुर्सी को घसीटती हुई स्कूल चली जाती, घर आ जाती और किताबें पढ़ती रहती। उसके शिक्षक (टीचर्स) उसकी बुद्धिमत्ता से बहुत प्रभावित थे। वह बड़ी धैर्यवान

और साहसी लड़की थी। वह किसी हीनभावना में ग्रस्त नहीं हुई। दूसरे बच्चों को भागते–दौड़ते देखकर वह अपनी विकलांगता पर न तो आँसू बहाती, न परेशान होती और सिर झुकाकर बड़े इत्मीनान से अध्ययन करती रहती। उसने स्कूल में अपनी बुद्धिमत्ता की धाक बिठा दी थी। उसे हर साल इनाम मिला करता था। समय बीतता गया और सिंथिया 17 साल की हो गई। उसने स्कूल की पढ़ाई पूरी कर ली थी और अब यूनीवर्सिटी में दाख़िला लेना था। चूँकि उसके श्रेष्ठ शैक्षणिक कारनामों और बुद्धिमत्ता से सभी प्रभावित थे। इसलिए उसे छात्रवृत्ति मिल गई और पाँच वर्ष तक यूनीवर्सिटी में पढ़ती रही और प्रतिष्ठा के साथ उसको पूरा किया और एक स्थानीय समाचारपत्र 'शिकागो न्यूज़' में नौकरी भी मिल गई।

यही वह समय था, जब सिंथिया अमेरिका के काले नेता मेल्कम एक्स के चरित्र से अवगत हुई। वह कुख्यात अपराधी और मादक पदार्थों का व्यापारी हब्शी था। वह कई संगीन वारदातों में शामिल था और ज़िन्दगी का बड़ा हिस्सा जेलों में बिता चुका था कि ख़ुदा का करना यह हुआ कि मेल्कम मुसलमान हो गया और न केवल उसके अपने जीवन में ज़बरदस्त इंक़िलाब आ गया और वह एक नेक, पाक–साफ़ इन्सान बन गया, बल्कि उसके कहने–सुनने से हज़ारों काले लोगों की ज़िन्दगियाँ बदल गईं। उसने सैकड़ों ऐसे स्वयंसेवक तैयार किए जो ख़ास तौर पर हब्शियों को सही राह पर लाने और उसको नशे से छुटकारा दिलाने के लिए दिन–रात प्रयासरत रहते थे। यह एक नया आन्दोलन था,एक नया इंक़िलाब था, जो धीरे–धीरे अमेरिका के हब्शियों में आ रहा था और जो उन्हें सम्मान के साथ ज़िन्दा रहना सिखा रहा था। सिंथिया, मेल्कम एक्स की ज़िन्दगी के दोनों रूप से परिचित थी। इसलिए उसके दिल और दिमाग़ ने इस्लाम धर्म से भी गहरा असर क़बूल किया था और चूँकि वह अध्ययन की शौक़ीन थी, इसलिए उसने इस्लाम के बारे में बहुत कुछ पढ़ डाला और उसको अपने विचारों और प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल पाया तो उसे क़बूल कर लिया। और एक दिन जबकि अपने मामूल के मुताबिक़ उसका बाप शराब के नशे में धुत्त होकर उसकी माँ की पिटाई करनेवाला था, उसने अपने बाप को समझाना शुरू कर दिया और माँ को धैर्य से काम लेने को कहने लगी और बातचीत के प्रवाह में उन्हें बता दिया कि वह

इस्लाम क़बूल कर चुकी है। उसके बाद जो कुछ हुआ, उसे ख़ुद सिंथिया, बल्कि आमिना की ज़बान से सुनिए :

मेरे माँ–बाप के लिए इस्लाम शब्द अजनबी नहीं था। मैं नहीं जानती थी कि इस्लाम और इस्लाम के अनुयायियों के बारे में अमेरिकियों का रवैया बिना भेदभाव, बिना रंग–नस्ल क्यों शत्रुओं जैसा है। मेरी ज़बान से यह सुनने के बाद कि मैं मुसलमान हो चुकी हूँ, मेरे माँ–बाप को अत्यन्त आश्चर्य हुआ, विशेषकर मेरी माँ को बहुत दुख पहुँचा। उसकी यह प्रतिक्रिया उस समय बहुत परेशानी का कारण बनी थी। मैं उसे एक पीड़ित औरत समझती थी। मेरा ख़्याल था कि वह मेरे मुसलमान होने पर ज़्यादा हँगामा न करेगी। मगर हुआ इसके विपरीत। मेरे बाप के चेहरे पर घृणा, तिरस्कार और उपहास के साथ–साथ लापरवाही की झलक भी दिखाई दे रही थी। मेरी माँ लगातार बोलती जा रही थी। आज जब वह दृश्य मुझे याद आता है तो मैं सहसा मुस्करा देती हूँ। लेकिन उस समय मेरी प्रतिक्रिया कुछ अलग थी। मैं यह महसूस करने लगी थी कि मैंने इस्लाम क़बूल करने का एलान कुछ जल्दी कर दिया है। इसका कारण यह नहीं था कि मेरे ईमान में कोई कमी थी, बल्कि यह कि मैंने यह फ़ैसला किया था कि जब तक मैं मुसलमानों के पूरे तौर–तरीक़ों को बाह्य और आन्तरिक रूप से अपना नहीं लेती, तब तक इस्लाम क़बूल करने का एलान नहीं करूँगी। उस समय मैं काफ़ी भावुक हो गई थी। अपने मुसलमान होने का ज़िक्र बड़ी उमंग और उत्साह से कर दिया। मेरे पिता बड़बड़ाते हुए बाहर चले गए। मेरी माँ मुझे समझाने लगी।

''मम्मी'' मैंने कहा, ''जो होना था, हो चुका है, मैं जो क़दम आगे बढ़ा चुकी हूँ वह पीछे नहीं हटा सकती।''

मेरी माँ ने और ज़्यादा सख़्ती से मुझे समझाना शुरू कर दिया। मैंने उनसे कहा कि वे अपना समय अकारण बरबाद कर रही हैं। मैं मुसलमान हो चुकी हूँ और अब कुछ नहीं हो सकता। मेरी माँ ने सोचा कि शायद मैं ज़िद कर रही हूँ या भावुक हो गई हूँ। उन्होंने अपना लम्बा भाषण अधूरा छोड़ा और मुझे अकेली छोड़कर चली गईं।

मैं मुसलमान क्यों हुई ? यह बात मुझसे कई लोगों ने पूछी है और मैं कई बार जवाब दे चुकी हूँ, इसके बावजूद मैं समझती हूँ कि मुझे इस सवाल का

जवाब बड़े सुकून और इत्मीनान से देना चाहिए। मेरे घरेलू हालात, अमेरिका में हब्शियों की सामूहिक स्थिति से अधिक मेरी विकलांगता ने मुझे इस्लाम की ओर आकर्षित किया। इसका विवरण भी सुन लें। एक समाचारपत्र में काम करने की वजह से मैं प्रतिदिन मेल्कम एक्स और मुसलमान होनेवाले हब्शियों के समाज–सुधार आन्दोलन के बारे में पढ़ती थी। चूँकि पोलियो के कारण मैं विकलांग और अपाहिज हो चुकी थी और अध्ययन के अलावा मेरा कोई काम न था। इसलिए मेरी सोच–विचार की आदत बहुत बढ़ गई थी। जब मैं पढ़ती कि मेल्कम एक्स और उसके स्वयंसेवक साथी लोगों की नशे की आदत छुड़ाने में सफल हो रहे हैं तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता। मैं समझती यह केवल एक ख़बर है, जिसमें सच्चाई नहीं है। लेकिन फिर मैं सोचती कि यह ख़बर किस प्रकार झूठी हो सकती है और किस हद तक झूठी हो सकती है ?

मेरे पास मेरे अपने इस सवाल का कोई जवाब न था, मगर उस ज़माने में मैंने यह निर्णय कर लिया कि मुझे इस्लाम के बारे में कुछ पढ़ना चाहिए। मैंने कुछ किताबें हासिल कीं और पढ़ने लगी। इस्लाम के बारे में उन किताबों ने मुझे काफ़ी प्रभावित किया। जब मैंने वे किताबें पढ़ लीं तो मेरे दिल में क़ुरआन पढ़ने का ख़्याल पैदा हुआ और मैंने अंग्रेज़ी में क़ुरआन के अनुवाद की एक प्रति हासिल की। पवित्र क़ुरआन के उस अनुवाद ने मुझे अनुपम आध्यात्मिक आनन्द प्रदान किया, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकती। आज मैं समझती हूँ कि अगर कोई भी व्यक्ति अभिरूचि, ध्यान और लगन से पवित्र क़ुरआन का अध्ययन करे तो वह इस पवित्र ग्रंथ की सत्यता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

पवित्र क़ुरआन के अध्ययन ने मुझे कई दिन बेचैन रखा। मेरे दिल में एक अजीब प्रकार की भावनाओं की उथल–पुथल पैदा हो गई थी। जी चाहता कि अब मेल्कॉम एक्स से मिलूँ, मगर वह इस शहर से बहुत दूर थे। मैंने समाचारपत्र के द्वारा यह पता लगाया कि यहाँ हमारे शहर में कौन ऐसा व्यक्ति है, जो मुसलमानों का मार्गदर्शन करता है। इसका पता मुझे जल्द ही मिल गया। मैंने उस व्यक्ति मुहम्मद यूसुफ़ को फ़ोन किया और उससे मुलाक़ात के लिए समय माँगा। दूसरी ओर से मुझे बड़ी हमदर्द और नर्म आवाज़ सुनाई दी। मुहम्मद यूसुफ़ ने मुझे बताया कि मैं जिस समय चाहूँ उनसे मिल सकती हूँ। मैंने उन्हें

बताया कि कल दोपहर बाद उनसे मिलूँगी। समय तय हो जाने के बाद मैंने इत्मीनान की साँस ली।

जब मैं अगले दिन मुहम्मद यूसुफ़ से मिलने गई तो वे मुझे देखकर कुछ परेशान हो गए। मैंने उनकी परेशानी के कारण को भाँप लिया। वे किसी स्वस्थ और हष्ट–पुष्ट लड़की से मिलने की उम्मीद रखते थे। जब उन्हें व्हीलचेयर पर बैठी चलने–फिरने से विवश मुझ जैसी लड़की दिखाई दी तो वे कुछ परेशान–से हो गए। मगर मेरी मुस्कराहट और ख़ुशदिली ने उनकी परेशानी को जल्द ही ख़त्म कर दिया। मुहम्मद यूसुफ़ मेरी ही तरह हब्शी थे। कभी उनका नाम जॉनी ब्लेगडन था। अब वे मुहम्मद यूसुफ़ जैसे ख़ूबसूरत नाम के मालिक थे। वे इस शहर के मुसलमानों के प्रतिनिधि या इमाम थे। वही मस्जिद में नमाज़ पढ़ाते और वही क़ुरआनी शिक्षा देते थे। वे सहानुभूति भरे स्वर में मुझसे मेरे बारे में बातचीत करते रहे। बातों–बातों में बड़े अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने मुझसे मेरे और मेरे परिवार के बारे में सब जानकारी ले ली। मैंने उनसे पूछा कि वे मुसलमान क्यों हुए थे?

मुहम्मद यूसुफ़ मुस्करा दिए। फिर उन्होंने धीरे से बड़े मीठे स्वर में कहा, ''मैं इसलिए मुसलमान हुआ कि अल्लाह की यह मर्ज़ी थी कि वह मुझे सीधा रास्ता दिखाए।'' उनका वह जवाब मैं आज तक नहीं भूली हूँ और जीवन भर न भूल सकूँगी, क्योंकि मैं भी यही समझती हूँ कि अल्लाह जिस इन्सान को सीधे रास्ते पर लाना चाहता है, उसके दिल में इस्लाम के लिए मुहब्बत पैदा कर देता है।

मुहम्मद यूसुफ़ ने मुझे बताया कि वे हब्शियों के ग़रीब इलाक़े में पैदा हुए थे। उन्होंने बचपन ग़रीबी में गुज़ारा। बड़े हुए तो वे एक ऐसे होटल में नौकर हो गए, जहाँ उन्हें बर्तन धोने के लिए रखा गया था। मगर उनसे और भी ज़रूरी काम लिया जाता था। कुछ पैकेट दे दिए जाते कि वे उन्हें किसी जगह पहुँचा आएँ। इसके बदले इनाम में उन्हें एक–आध डॉलर मिल जाया करता था। एक दिन उनके जी में आया कि इस पैकेट को खोलकर देखना चाहिए। जब उन्होंने खोलकर देखा तो उसमें उन्हें हशीश मिली। उन्होंने हशीश महँगे दामों में बेच दी और होटल वापस न गए। मगर होटल के प्रबंधक ने उन्हें ढूँढ निकाला। पैकेट माँगा और जब पैकेट न मिला तो उनकी ख़ूब पिटाई की। वे

कई दिन बिस्तर से न उठ सके। उस घटना के बाद वे अपराधों की दुनिया में पहुँच गए। 30 वर्ष की अवस्था तक उन्होंने हर बुरा काम किया। वे औरतों की दलाली करते, वेश्याओं के अड्डे की निगरानी की ड्यूटी अंजाम देते। हीरोइन और अन्य मादक वस्तुओं का ख़ुफ़िया धंधा करते-करते ख़ुद भी उन चीज़ों के आदी हो गए। उन्हें कई बार सज़ा हो चुकी थी। मगर वे सज़ा के भय से मुक्त हो चुके थे। एक बार जब वे जेल में थे तो कुछ लोग उनसे मिलने आएँ। ये स्वयंसेवक मुसलमान थे, जो क़ैदियों में इस्लाम का प्रचार कर रहे थे। उनके धर्मप्रचार से मुहम्मद यूसुफ़ बहुत प्रभावित हुए और उनका जी चाहने लगा कि वे सम्मानित और चिन्तारहित जीवन बिताएँ। जब वे जेल से छूटे तो बहुत बदल चुके थे। मगर उन्हें जीवित रहने के लिए कुछ-न-कुछ करना था। वे कुछ भी नहीं जानते थे। इसलिए उन्होंने यही सोचा कि अब भी उन्हें अपराधिक जीवन बिताकर ही अपना पेट पालना पड़ेगा। वही स्वयंसेवक जिन्होंने जेल में उनके विचारों को बदलने की कोशिश की थी, वे उनसे मिले। उन्होंने उनके लिए रोज़गार की व्यवस्था की। कुछ नक़द रक़म दी, ताकि जब तक उन्हें वेतन नहीं मिलता, वे इस रक़म से काम चलाएँ और उन्हें अपने साथ रखते। इस प्रकार मुहम्मद यूसुफ़, जो कभी जॉनी ब्लेगडन थे, मुसलमान हो गए।

इस्लाम के साथ उनके लगाव का यह हाल था कि एक साल में उन्होंने क़ुरआन मजीद पढ़ लिया। इस राह में उन्हें बहुत-सी कठिनाइयाँ और परेशानियाँ आईं। मगर वे किसी परेशानी से न घबराए। क़ुरआन की शिक्षा के बाद वे इस्लामी, नियमों और जीवन-शैली को अपनाने में सफल हो गए। चार साल के बाद उन्हें उस इलाक़े में मुसलमानों का इमाम नियुक्त कर दिया गया। इमाम बनने के बाद उन्होंने अपनी मेहनत से ज़मीन के लिए चन्दा जमा किया और वहाँ एक छोटी-सी मस्जिद बनवा दी। इस मस्जिद के बनाने में ख़ुद उन्होंने और दूसरे मुसलमानों ने भाग लिया था। वे ख़ुद मज़दूरों के साथ काम करते और उसकी मज़दूरी नहीं लेते थे।

मैं मुहम्मद यूसुफ़ की ज़िन्दगी और उनकी बातों से अत्यन्त प्रभावित हुई और उनसे कहा कि मैं मुसलमान होना चाहती हूँ। मुहम्मद यूसुफ़ साहब ने पहली बार मुझे भरपूर निगाहों से देखा और बोले, "ख़ुदा मुबारक करे। मगर

मुसलमान होना बहुत मुश्किल है।''

''मैं हर मुश्किल पर क़ाबू पा लूँगी।''

''अल्लाह का शुक्र है।'' उन्होंने कहा।

''क्या तुम्हें कलिमा और नमाज़ आती है?''

मैंने 'नहीं' में सिर हिलाया। उन्होंने मुझे एक छोटी–सी किताब दी। उसमें रोमन अक्षरों में कलिमा और नमाज़ लिखी हुई थी। कहने लगे, ''इसे याद कर लो और अगर हो सके तो तीसरे पहर को मेरे पास थोड़ी देर के लिए आ जाया करो।'' मैंने कुछ ही दिनों में न केवल कलिमा और नमाज़ याद कर ली, बल्कि उनका अर्थ भी समझ लिया। इस बीच मैं मुहम्मद यूसुफ़ से भी मिलती रही और उनसे इस्लाम धर्म के बारे में जानकारी हासिल करती रही।

जुमा का दिन था। मस्जिद में तमाम मुसलमानों के सामने मैंने कलिमा पढ़ा और मुसलमान हो गई। मेरा नाम आमिना रख दिया गया। मुसलमान होने के बाद मैंने पहला काम यह किया कि खाने के साथ थोड़ी–बहुत शराब पीने की जो आदत थी, वह छोड़ दी। मैं सिगरेट भी पी लिया करती थी, यह भी छोड़ दी और मुसलमान औरतों जैसा लिबास सिलने के लिए दे दिया। मैं समझती थी कि जब मैं मुसलमान औरतों की तरह लम्बे लिबास में अपना शरीर छुपाऊँगी और सिर को भी ढक लूँगी तो व्हील चेयर में बैठी हुई काफ़ी हास्यप्रद दिखाई दूँगी। मैंने प्रत्येक व्यंग्य और उपहास का सामना करने का फ़ैसला कर लिया। जब मैं पहली बार मुसलमान औरतों का लिबास पहनकर घर से निकलने लगी तो मेरी माँ ने मुझे हैरत से देखा।

''सिंथिया, यह क्या पहन रखा है तुमने?''

उसके चेहरे पर व्यंग्य और उपहास था। मेरे बाप ने भी जो रात भर शराब पीने के बाद अब कुर्सी पर बैठे ऊँघ रहे थे, अपनी लाल आँखें खोलकर मुझे देखा और क़हक़हा लगाया।

''मम्मी!'' मैंने कहा, याद रखिए, मेरा नाम आमिना है, सिंथिया नहीं।''

''आ.....मिना.....क्या नाम हुआ यह भला'', माँ ने कहा, ''लड़की तेरा दिमाग़ तो नहीं चल गया?''

मैंने अपनी माँ को समझाने की कोशिश की कि मैं आपको बता चुकी हूँ और अब मैं मुसलमान की तरह बाक़ायदा जीवन का आरंभ कर रही हूँ।

''तुम्हारी जगह नरक में है, तुमने.....''

इससे पहले कि वे कुछ और कहतीं मैंने उनकी बात काटकर कहा, ''मम्मी, आपको मेरे मामलों में हस्तक्षेप की ज़रूरत नहीं, अगर कोई बात करनी है तो जब मैं दफ़्तर से आऊँगी तो कर लेना। इस समय मुझे देर हो रही है।'' मैं व्हील चेयर को ढकेलती हुई बाहर निकल गई। हब्शियों की इस गन्दी बस्ती में जिस किसी ने मुझे इस लिबास में देखा, वह पहले तो हैरान हुआ, फिर मज़ाक़ उड़ाने लगा। मगर मैंने किसी की एक न सुनी और अपनी राह चलती रही। जब मैं अपने अख़बार के दफ़्तर पहुँची तो वहाँ भी सख़्त प्रतिक्रिया हुई। बहुत–से लोग मेरे आसपास जमा हो गए। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं मुसलमान हो गई हूँ और मुसलमान औरतें ऐसा ही लिबास पहनती हैं, तो कुछ लोगों ने ख़ामोशी इख़्तियार कर ली और कुछ लोग बड़बड़ाते हुए चले गए। संयोगवश उस दिन वेतन का दिन था। वेतन मिला तो मैंने इसका एक चौथाई भाग अपने इलाक़े की मस्जिद के फ़ंड में जमा कर दिया। जब मैं घर लौटी तो मेरी माँ मेरा इन्तिज़ार कर रही थी। मेरे बाप भी घर पर मौजूद थे। मैं वेतन का आधा भाग आनी माँ को दे दिया करती थी। उस रक़म से मेरे बाप नशे के लिए कुछ पैसे ऐंठ लिया करते थे। मैंने जब अपने वेतन की कुछ रक़म अपनी माँ को दी तो उन्होंने हैरत से मुझे देखा और पूछा, ''तुमने इस बार दस डॉलर कम दिए हैं।''

''हाँ, अब हर माह आपको इतनी रक़म ही मिलेगी। मैंने अपने वेतन का एक चौथाई मस्जिद को देने का फ़ैसला कर लिया है।'' मेरी यह बात सुनते ही वह मुझे, मुसलमानों और मस्जिद को कोसने लगी। मैंने कोई जवाब देना उचित नहीं समझा और अपने कमरे में चली गई। मैं बहुत देर तक अपनी माँ को बकते–बड़बड़ाते सुनती रही। बीच–बीच में मेरे बाप की भी आवाज़ सुनाई देती थी, ''अब सिंथिया हमारे हाथ से निकल गई। मुसलमानों ने इसका दिमाग़ ख़राब कर दिया है। हमने तो कभी गिरजे को चन्दा नहीं दिया। यह वेतन का एक चौथाई मस्जिद को देने लगी है।'' मेरे माँ–बाप के नज़दीक मुसलमान लुटेरों से कम नहीं थे, जो उनकी बेटी की कमाई लूटकर ले गए थे। धीरे–धीरे मैंने अपना जीवन इस्लाम के सिद्धान्तों और उसूलों के मुताबिक़ ढाल लिया। वे लोग जो पहले मुझ पर उंगलियाँ उठाते थे, मुझसे भी लापरवाह हो

गए और मेरे और इस्लाम के ख़िलाफ़ ज़हर उगलने से भी, और फिर क्रिसमस का त्योहार आ गया। हम चाहे कितने ही ग़रीब और बदहाल क्यों न हों, क्रिसमस को ठाट-बाट से ज़रूर मनाते हैं। क्रिसमस के दिन शराब पानी की तरह बहाई जाती है। जब मैंने मेहमानों के साथ शराब के प्याले को छूने से ही इंकार कर दिया तो हमारे घर में क़ियामत बरपा हो गई। बाप तो सुबह से नशे में धुत्त थे, माँ भी दो-एक बार मेहमानों के साथ पी चुकी थीं। नशे की हालत में वे मुझ पर बरसने लगे। मेहमान भी नशे में थे। वे भी, जो उनके मुँह में आया, बकने लगे। उन सबकी हालत दयनीय थी। मैंने सोचा कि मुझे इस कमरे से चले जाना चाहिए। मगर जब मैं अपनी व्हील चेयर को ढकेल कर जा रही थी तो एक मेहमान लड़का और मेरे बाप मेरे पीछे लपके और व्हील चेयर के सामने खड़े हो गए।

"रास्ता छोड़ दें।" मैंने कहा, "मुझे जाने दें।"

"यह पी लो, फिर चली जाना।"

लड़के ने मेरे रास्ते से हटे बिना शराब का प्याला मेरे आगे किया।

"मैं लानत भेजती हूँ इस पर।"

मेरे मुँह पर एक ज़ोरदार तमाचा लगा, जो मेरे बाप ने मारा था। मेरा सिर चकरा गया, आँखों से आँसू आ गए। मगर मेरे बाप और उस लड़के में तो जैसे शैतान की आत्मा घुस गई थी। वे मुझे पीटने लगे। उन्होंने मुझे रूई की भाँति धुन दिया। मैं ख़ामोशी से यह ज़ुल्म सहती रही। वे गालियाँ बक रहे थे। नशे में उनके मुँह से झाग निकल रहा था। जब वे थककर बैठ गए तो मैं किसी न किसी तरह अपने कमरे में पहुँच गई। उस रात मैंने फ़ैसला किया कि मुझे क्या करना है।

मेरी पहली प्रतिक्रिया यह थी कि मुझे अपनी मस्जिद के इमाम मुहम्मद यूसुफ़ को सारा दुखड़ा सुनाना चाहिए और फिर यह घर छोड़ देना चाहिए। लेकिन जैसे-जैसे मेरा ग़ुस्सा और जोश ठंडा होता गया, मेरी सोच बदलती गई कि मुझे अपनी परेशानियाँ लेकर मुहम्मद यूसुफ़ के पास नहीं जाना चाहिए, इनका समाधान ज़रूर तलाश करना चाहिए और अपने माँ-बाप के साथ ही रहना चाहिए। उनका मुझपर हक़ है और मेरा भी यह कर्तव्य है कि मैं उनकी ज़िन्दगी बदलने की कोशिश करूँ। अत: उस दिन मैंने एक महत्वपूर्ण फ़ैसला

किया और अगले दिन मैंने इस फ़ैसले से मस्जिद के इमाम मुहम्मद यूसुफ़ को अवगत कर दिया।

मैंने अख़बार की नौकरी छोड़ दी और स्वयंसेवक बन गई। मुझे मामूली गुज़ारा भत्ता मिलने लगा। जब मेरे माँ–बाप को मेरे इस फ़ैसले की ख़बर हुई तो बहुत सटपटाए। वे यह सोच ही नहीं सकते थे कि मैं अच्छी–भली नौकरी छोड़ दूँगी। मैंने उनसे कहा कि वे चिन्ता न करें, उनको उनका हिस्सा मिलता रहेगा। मैं अख़बारों के लिए दिन में लिखूँगी और जो पैसा वहाँ से मुझे मिलेगा, वह मैं उनको दे दिया करूँगी। मेरे इस व्यावहारिक जीवन का आरंभ उस समय हुआ जब मैं मुसलमान स्वयंसेवक बन गई।

मुहम्मद यूसुफ़ ने मुझे बहुत–सी हिदायतें दीं, जिसके लिए मुझे चुना गया, उस राह के ख़तरों से आगाह किया। मुझे ख़ुद भी अन्दाज़ा था कि यह राह ख़तरों से भरी है। मगर इस्लाम ने मुझे साहस प्रदान किया। इसकी वजह से मैं किसी ख़तरे को ख़ातिर में नहीं ला रही थी। मैं जेलों में जाने लगी। वहाँ मैं क़ैदियों से मिलती। उनके सामने इस्लाम की बड़ाई बयान करती। उनको उनकी ज़िन्दगी के घिनौने पहलू दिखाकर उनको बेहतर जीवन व्यतीत करने की राय देती। कुछ क़ैदी समय बिताने के लिए मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते, कुछ मेरा मज़ाक़ उड़ाते। उनमें ऐसे लोग भी थे, जिन्होंने मेरी शारीरिक विकलांगता पर भी क़हक़हे लगाए। मगर मैं बिल्कुल न घबराई, न मेरी हिम्मत ने जवाब दिया। उन क़ैदियों में से एक हब्शी क़ैदी अरबंटो भी था। उसने मेरी बातों से काफ़ी असर क़बूल किया और एक दिन कहने लगा, ''तुम बड़ी साहसी लड़की हो। अगर तुम वास्तव में यह चाहती हो कि बुराई का अन्त हो जाए तो बर्नाडो का ख़ात्मा कर दो?''

''बर्नाडो कौन है?'' मैंने पूछा।

बर्नाडो इस शहर में एक बड़े माफ़िया–गिरोह का सरदार है। वही व्यक्ति है, जो इस शहर में मादक वस्तुओं का ठेकेदार है। अगर वह न हो तो लोगों को नशे की चीज़ें उपलब्ध न हों और न लोग उसके आदी ही हों। वह बड़ा ख़तरनाक आदमी है। आज मैं जिस हालत को पहुँचा हूँ, उसका ज़िम्मेदार भी बर्नाडो है।

''मैं बर्नाडो से कैसे मिल सकती हूँ?''

उसने मेरे कान में बर्नाडो का पता बता दिया। जब मैं जाने लगी तो अरबंटो का स्वर बिल्कुल बदल गया था। वह लज्जित होकर कहने लगा, ''मुझसे ग़लती हुई कि मैंने तुमसे बर्नाडो का ज़िक्र किया। तुम इस पूरी घटना को भूल जाओ। तुम अन्दाज़ा नहीं कर सकती हो कि बर्नाडो कितना ख़तरनाक आदमी है।''

''मगर मैं उससे मिलने का फ़ैसला कर चुकी हूँ?'' मैंने दृढ़तापूर्वक कहा।

''तुम उससे मिलकर क्या करोगी?'' उसने पूछा।

''उसको सीधा रास्ता दिखाने की कोशिश करूँगी।'' वह हंसने लगा। उसके क़हक़हे दूर तक मेरा पीछा करते रहे। सुबह का समय था जब मैं, मिलने का समय लिए बिना, बर्नाडो के शानदार घर के अन्दर दाख़िल हुई। उस घर को देखकर कोई व्यक्ति अनुमान नहीं लगा सकता था कि इस घर में रहनेवाला व्यक्ति कोई बहुत बड़ा अपराधी है।

''तुम यहाँ क्या कर रही हो?'' एक नौकर ने मुझे रोककर पूछा। वह मेरे लिबास और मेरी व्हील चेयर को ग़ौर से देख रहा था।

''मुझे मिस्टर बर्नाडो से मिलना है।'' मैंने कहा।

''नहीं।'' उसने क़हक़हा लगाकर कहा, ''मिस्टर बर्नाडो से मिलना इतना आसान नहीं है।''

''आख़िर क्यों?'' मैंने कहा, ''वह भी इन्सान है और इन्सान इन्सानों से मिला-जुला करते हैं।''

हम दोनों में तू-तू मैं-मैं होने लगी। उसी समय एक अधेड़ उम्र का एक विशालकाय व्यक्ति एक कमरे से बाहर निकला और ग़ुस्से से बोला, ''यह क्या हो रहा है? शोर क्यों मचा रखा है?'' नौकर ने उस व्यक्ति के सामने सिर झुकाकर कहा, ''यह लड़की आपसे मिलने के लिए ज़िद कर रही थी।''

''मुझसे?'' उसने पूछा, ''क्या काम है?''

''मैं आपसे अकेले में बात करना चाहती हूँ।'' मैंने कहा।

बर्नाडो ने कुछ आश्चर्य से मेरी ओर देखा। फिर नौकर को वहाँ से जाने का इशारा किया। जब नौकर चला गया तो बर्नाडो ने बड़े अहं से कहा, ''मैं इस तरह किसी से मुलाक़ात नहीं करता हूँ। तुम विकलांग हो इसलिए रुक

गया हूँ। कहो, मैं तुम्हारी क्या सहायता कर सकता हूँ?''

मैंने उसकी ओर देखा और उसकी आँखों में आँखें डालकर कहा, ''मिस्टर बर्नाडो! क्या वास्तव में आप इस विकलांग लड़की के कुछ काम आना चाहते हैं?''

उसने जवाब देने से पहले कुछ सोचा, फिर मुस्करा कर कहा, ''हाँ, कहो, मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ।'' मैंने फिर उसकी आँखों में आँखें डाल दीं। मैंने महसूस किया मिस्टर बर्नाडो कुछ बेचैनी महसूस कर रहा है। वह मेरी नज़रों से नज़रें चुरा रहा था।

''मिस्टर बर्नाडो!'' मैंने कहा, ''अल्लाह ने आप को सब कुछ दिया है। अब आपको हिदायत की ज़रूरत है, सच्ची हिदायत की।''

''लड़की, मैं नहीं जानता तुम कौन हो? मेरा समय बहुत क़ीमती है। दो मिनट में अपनी बात ख़त्म करो।''

मैंने जब बात शुरू की तो बर्नाडो का चेहरा ग़ुस्से से लाल हो गया। उसने ग़ुस्से को दबाकर कहा, ''तुम पागल हो। निकल जाओ यहाँ से। तुम्हें किसने बताया कि मैं यह काम करता हूँ? मैं तुम्हें और तुमको यह बतानेवाले को ज़िन्दा नहीं छोड़ूँगा।''

मैंने बड़े इत्मीनान से कहा, ''आपके इस ग़ुस्से और जोश ही से ज़ाहिर हो रहा है कि मुझे आपके बारे में जो भी सूचना मिली है, वह सही है।''

''तुम बकवास करती हो। चली जाओ यहाँ से। मुझे तुम्हारी विकलांगता का ख़्याल आ रहा है, वरना......''

''मैं जानती हूँ मिस्टर बर्नाडो। आप बहुत ताक़तवर हैं। सारा शहर आपके चँगुल में फँसा हुआ है।''

''आख़िर तुम चाहती क्या हो?'' बर्नाडो ने चिल्लाकर कहा।

''मैं चाहती हूँ कि आप मानव-जाति के हित में अपना यह धंधा छोड़कर कोई और काम करें और अगर आपसे यह संभव नहीं तो फिर विकलांग लड़की पर कृपा करें। मुझे प्रति दिन पाँच मिनट मुलाक़ात का समय दे दिया करें।''

वह हैरत से मेरा मुँह तकने लगा। फिर उसने क़हक़हा लगाया और बोला, ''तुम ज़िद की पक्की हो......तुम कल फिर आ सकती हो इसी समय।''

मैं वहाँ से निकली तो बहुत संतुष्ट थी। बर्नाडो इटालियन अप्रवासी था, दिल का खुला। उसको ज़िन्दगी में शायद ही मुझ जैसा इन्सान मिला हो। वह मेरे व्यक्तित्व में रुचि लेने लगा। एक दिन के बाद दूसरा दिन.... वह मुझे हर दिन बुलाता, मुझसे बातें करता। पाँच मिनट की बातचीत का दायरा फैलकर घंटों तक पहुँच गया। मैं उसके सामने इन्सानों की दुर्दशा का उल्लेख करती। नशे की तबाहकारियों का वर्णन करती। इस्लाम की सत्यता का उल्लेख करती। धीरे-धीरे उसके विचारों में कुछ लचक पैदा होने लगी।

''आमिना'', एक दिन उसने मुझसे कहा, ''मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो, मुसलमान क्या होते हैं ? मगर मैं एक बात जान गया हूँ कि तुम इन्सान की मानसिकता को ख़ूब समझती हो।''

''इस्लाम इन्सान का धर्म है, सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था......'' मैंने जवाब दिया। ''इसलिए इस्लाम मुसलमानों को इन्सानी मानसिकता पर गहरी नज़र रखने का उपदेश देता है।'' मैंने महसूस किया कि अब जब मैं उससे मिलने जाती हूँ तो वह कुछ बेचैनी महसूस करने लगता है। उसने एक दिन मुझसे कहा, ''आमिना, वास्तव में मनुष्य का जीवन मिटनेवाला है और मनुष्य को दुनिया में अच्छे काम करने चाहिएँ, दूसरों का भला सोचना चाहिए।''

''अल्लाह का शुक्र है.....'' मैंने जवाब दिया..... ''ख़ुदा का लाख-लाख शुक्र है कि यह बात आपके दिमाग़ में समा गई है।''

कुछ दिनों के बाद बर्नाडो ने अपना धंधा छोड़ दिया। वह सही राह पर आ गया। उसने बिना संकोच के स्वीकार कर लिया कि वह माफ़िया गिरोह का सदस्य है। उसने माफ़िया के गुप्त भेदों को खोलकर रख दिया। आपको याद होगा कि राष्ट्रपति फोर्ड के राष्ट्रपति-काल में बर्नाडो के इस काम से अमेरिका में कितना तहलका मचा था! बर्नाडो ने पत्रकारों से कहा था, ''एक अपंग और चलने-फिरने से विवश लड़की ने मुझे उड़ने की यह शक्ति प्रदान की है कि मैंने बुराई की ज़ंजीरों को तोड़ दिया है और खुली आज़ाद फ़िज़ाओं में उड़ने का साहस अपने अन्दर महसूस कर रहा हूँ।''

उस दिन मैं बहुत रोई थी जब मुझे सूचना मिली कि बर्नाडो को जेल में गोली मार दी गई है। उसको माफ़िया के आदमियों ने क़त्ल कर दिया था। उसका जीवित रहना उनके लिए ख़तरनाक हो सकता था। वह एक ऐसा

इन्सान था जो सच्चाई की राह पर चल निकला था। वह ज़िन्दा रहता तो एक बड़ा सुधारक बन सकता था।

बर्नाडो के तौबा करने के कारण मीडिया ने मुझे बहुत ख्याति प्रदान की। मेरे भाषण प्रकाशित होने लगे टी०वी० और रेडियो पर मुझे बुलाया गया और मेरी सेवाओं की बड़ी सराहना की गई।

विश्व हेवीवेट चैम्पियन मुहम्मद अली मुझसे मिलने आए। उन्होंने मेरी बहुत तारीफ़ की। राष्ट्रपति फोर्ड ने मुझे व्हाइट हाउस में बुलाया और मेरी प्रशंसा की इस ख्याति और सम्मान के बावजूद मुझमें घमंड पैदा नहीं हुआ, क्योंकि अल्लाह को घमंड पसन्द नहीं है। इस्लाम ने मेरे जीवन में जो इंक़लाब पैदा किया, मैं सारी दुनिया में फैलाना चाहती हूँ और अगर यह मेरे बस में नहीं तो मेरे दिल में यह ख़ाहिश ज़रूर है कि इस्लाम की बरकतों से अमेरिका के काले लोग अवश्य लाभ उठाएँ।

मेरे बाप शराब से तौबा कर चुके हैं। वे हर नशा छोड़ चुके हैं। मेरी माँ मेरा सम्मान करती हैं। अगरचे उन्होंने अपना धर्म नहीं छोड़ा, मगर उनके जीवन में बड़ा बदलाव आ चुका है।

पिछले कुछ वर्षों में मेरी कोशिशों की वजह से साढ़े तीन सौ लोगों ने नशे से तौबा की है और 21 मर्दों और औरतों ने इस्लाम क़बूल किया है।

मैं एक अपंग औरत हूँ, मगर मैं अपने आपको अपंग नहीं समझती, क्योंकि मेरा विश्वास है कि जो व्यक्ति मुसलमान हो जाए, वह कभी अपाहिज या अपंग नहीं हो सकता। ख़ुदा उसका सहारा बन जाता है..... मेरा जीवन इस्लाम के प्रति समर्पित हो चुका है। मैं इस्लाम ही के लिए काम करूँगी और इस्लाम की आत्मा मनुष्यों में फूँक देना चाहती हूँ।

जब भी कोई इन्सान बुराई का रास्ता छोड़ता है तो मैं समझती हूँ कि इस्लाम की विजय हुई है.....तो यह है मेरी कहानी.....सिंथिया से आमिना बनने की।

□ □ □

2. आयत हरीरी

(अमेरिका)

खाड़ी युद्ध 1989 ई० के तुरन्त बाद नॉर्थ कैरोलिना (अमेरिका) की छावनी फ़ोर्ट ब्रेग में मुसलमान फ़ौजियों की संख्या 100 थी, जिनमें एक महिला आयत हरीरी भी थी। सुश्री हरीरी उन फ़ौजों में शामिल थीं, जो खाड़ी युद्ध में सम्मिलित होकर सऊदी अरब के फ़ौजी अड्डे दम्माम में रही थीं और वहीं उन्हें इस्लाम स्वीकार करने का सौभाग्य मिला था। 30 वर्षीय आयत हरीरी, जिनका ईसाई नाम पिक (Pech) था। स्टॉफ़ सार्जेंट थीं और उन्हें इस्लाम से इतनी मुहब्बत और लगाव था कि वे नौकरी में रहते हुए भी सिर पर स्कार्फ़ ओढ़ती और ऐसा लिबास पहनती थीं जिससे जिस्म ढक सके और यह अधिकार प्राप्त करने के लिए उन्होंने क़ानूनी तौर पर काफ़ी प्रयास किया था। उनके इस्लाम स्वीकार करने की कहानी उन्हीं की ज़बान से सुनिए :

■ ■ ■ ■ ■

इराक़ ने कुवैत पर क़ब्ज़ा कर लिया और सऊदी अरब के आग्रह पर अमेरिकी फ़ौजें वहाँ पहुँचीं तो सौभाग्य से मैं भी उन दो सौ औरतों में शामिल थी जो इस फ़ौज का हिस्सा थीं और दम्माम छावनी में तैनात हुईं। मैं वहाँ क्वार्टर मास्टर की भूमिका निभा रही थी। हमारी बटालियन में पाँच कम्पनियाँ सम्मिलित थीं, जिसमें एक हज़ार फ़ौजी थे। उनमें दो सौ औरतें भी थीं। ....क्वार्टर मास्टर की हैसियत से मेरी ड्यूटी फ़ौजियों के लिए कपड़े, भोजन और रसद की व्यवस्था करनी थी और इस हवाले से हमें स्थानीय रूप से विभिन्न चीज़ें ख़रीदनी पड़ती थीं। अतः इस मक़सद के लिए सहायक के रूप में हमें स्थानीय आदमी को नौकर रखना पड़ा...... यह लेबनान का एक मुसलमान हुसैन हरीरी था। यही व्यक्ति इस्लाम से मेरे परिचय का कारण बना और यही बाद में मेरा जीवन साथी तय पाया।

हुआ यूँ कि कुछ ही दिनों में मैंने अन्दाज़ा कर लिया कि हुसैन हरीरी एक अलग चरित्र का मालिक है। मेरा अब तक का अनुभव था कि अमेरिकी मर्दों की बहुसंख्या औरतों के मामले में बहुत ही ग़ैर संजीदा है। वे उसे भोग-विलास और मनोरंजन का एक साधन समझते हैं और अपने आचरण से वे औरत के लिए आदरणीय व्यवहार नहीं अपनाते और जैसे ही उन्हें मौक़ा

मिलता है, वे औरत का मज़ाक़ उड़ाने, उसका अपमान करने या हवस का निशाना बनाने से नहीं चूकते। लेकिन हुसैन हरीरी का आचरण बिल्कुल अलग था। वह दिन का बड़ा हिस्सा मेरे साथ बिताता, लेकिन कभी भूलकर भी उसने कोई छिछोरी हरकत न की। मान–मर्यादा और गंभीरता उसके व्यक्तित्व का आवश्यक अंग था। मैंने उसकी आँखों में अमेरिकी मर्दों की तरह कभी यौन–सम्बन्धी भूख नहीं देखी। वह कभी बेबाकी से मुझसे निगाहें दो–चार नहीं करता और आमतौर से नज़रें झुकाकर शिष्टाचार के साथ पेश आता....। इस संदर्भ में मैंने बात की तो उसने बताया कि इस्लाम ग़ैर औरतों से आज़ादाना मेल–मिलाप से रोकता है और एक मुसलमान के लिए अपनी बीवी के अलावा किसी दूसरी औरत को छूना तक हराम (वर्जित) है।

हरीरी की यह बात सुनकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ। मैंने तो आम अमेरिकियों की भाँति सुन रखा था कि मुसलमान बड़े हवसपरस्त (कामुक) होते हैं और गोरी चमड़ीवाली सुन्दर औरत को देखते ही उनकी राल टपकने लगती है और वे उसे हासिल करने के लिए हर तरह के जतन करने लगते हैं। लेकिन हुसैन हरीरी तो बिल्कुल ही अलग तरह के व्यवहार का प्रदर्शन कर रहा था और औरत के संदर्भ में उसने जिन इस्लामी शिक्षाओं से मुझे अवगत कराया था, वे इस्लाम की बिल्कुल अलग तस्वीर पेश कर रही थीं। सच्चाई यह है कि मेरे दिल में हुसैन के साथ–साथ इस्लाम के प्रति भी नरमी पैदा होती जा रही थी। मैंने इच्छा व्यक्त की कि वह मुझे इस्लाम के परिचय सम्बन्धी लिट्रेचर उपलब्ध कराए। हुसैन हरीरी ने मुझे क़ुरआन के अंग्रेज़ी अनुवाद की एक प्रति लाकर दी और जब मैंने उसका अध्ययन शुरू किया तो इस किताब की शैली मुझे अपने साथ बहा ले गई। मैंने देखा कि क़ुरआन की शिक्षाएँ अत्यन्त सरल हैं और स्वाभाविक भी। ईसाइयत में त्रिवाद (त्रीश्वरवाद) की धारणा कभी मेरी समझ में नहीं आई थी और यही हाल प्रायश्चित (कफ़्फ़ारे) और पैदाइशी गुनाहगार की धारणाओं का भी था। लेकिन जनसामान्य की भाँति मैं भी उन धारणाओं को केवल औपचारिक रूप से और बिना सोचे–समझे अपनाए हुए थी। परन्तु अब जो क़ुरआन को पढ़ा तो बिल्कुल ही नई दुनिया नज़र आई। यहाँ एकेश्वरवाद की धारणा अत्यन्त स्पष्ट थी। ख़ुदा एक है, उसका कोई साझी नहीं है और हर प्रकार के अधिकार और सम्पूर्ण जगत

की बागडोर उसी के हाथ में है। मनुष्य को बुद्धि, समझ–बूझ और विवेक देकर एक विशेष अवधि के लिए संसार में इसलिए भेजा जाता है, ताकि ख़ुदा देखे कि वह यहाँ विभिन्न मामलों में अपनी मर्ज़ी चलाता है या ख़ुदा के आदेशों का पालन करता है........।

यह धारणा भी मुझे पूर्णतः बुद्धि संगत और तर्क संगत लगी कि मौत शरीर को आती है, आत्मा को नहीं और मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन के एक–एक पल का हिसाब सुरक्षित रखा जा रहा है और एक समय आएगा जब उसके सभी कर्मों का हिसाब–किताब होगा तथा उन्हीं कर्मों के अनुसार उसे इनाम या सज़ा मिलेगी।

क़ुरआन के अध्ययन और हुसैन हरीरी से बातचीत के नतीजे में जब इस्लाम की सच्चाई मेरी समझ में आ गई और मैंने उसे दिल और बुद्धि के बिल्कुल अनुकूल पाया तो एक दिन मैंने इस्लाम क़बूल करने का एलान कर दिया। हुसैन बहुत ख़ुश हुआ। उसने मुझे तीन बार शहादत का कलिमा पढ़ाया। अंग्रेज़ी में उसका अनुवाद पढ़ाया और इस तरह मैं इस्लाम की पवित्र–पावन छत्र–छाया में आ गई। इस नेमत (अनुग्रह) पर मैं ख़ुदा का जितना भी शुक्र अदा करूँ, कम है। इसके तुरन्त बाद ही मैं और हुसैन आपस में जीवन–साथी बन गए। मेरा जीवन एक नई क्रान्ति, नए इंक़िलाब से परिचित हुआ।

मैने पाँचों वक़्त की नमाज़ पढ़नी शुरू कर दी। हुसैन ने मुझे सादा और सफ़ेद रंग का स्कार्फ़ ख़रीद दिया। मैं सरकारी कामों से फ़ुरसत पाकर अपने निवास पर आती तो काला गाउन पहन लेती और सिर पर काला स्कार्फ़ बाँध लेती। इस प्रकार मैं देखने में बिल्कुल सऊदी महिला की तरह नज़र आती। एक दिन मैं सफ़ेद स्कार्फ़ बाँधकर खड़ी थी। अमेरिकी फ़ौजी इधर–उधर जा रहे थे। उनमें से कुछ ने आश्चर्य से कहा, ''इधर यह नन (ईसाई संन्यासिनी) कहाँ से आ गई ?'' मैंने कमरे में जाकर आइने में देखा, मैं सचमुच इस लिबास में बिल्कुल एक नन नज़र आ रही थी। एक दिन काला स्कार्फ़ बाँधकर मैं हुसैन के साथ बाहर घूम रही थी, प्रत्येक व्यक्ति मुझे जिज्ञासा के साथ देख रहा था। तब मैंने एक व्यक्ति को रोक कर कहा, ''मैं स्टाफ़ सार्जेंट पैक हूँ। आपको मुझसे कुछ कहना है ?'' उसने हैरत से मुझे देखा और खिसियाकर चल दिया।

सरकारी ड्यूटी के दौरान में मुझे वही रेगिस्तानी फ़ौजी वर्दी पहननी पड़ती थी। मैंने स्कार्फ़ के बारे में सम्बन्धित अधिकारी से बातचीत की, लेकिन मुझे इसकी अनुमति नहीं मिली। इस्लाम क़बूल करने के एक महीने के बाद मैं दोबारा अमेरिका चली गई और फ़ोर्ट प्रेग की छावनी में तैनात हो गई। मैं चाहती थी कि ड्यूटी के दौरान में भी मुझे स्कार्फ़ और लम्बा पर्देदार लिबास पहनने की अनुमति मिल जाए। इसके लिए मैं फ़ौजी नौकरों के क़ानूनी सलाहकार जज एडवोकेट जनरल से मिली, ताकि अपने अधिकारों के संदर्भ में मुझे यह छूट मिल जाए। लेकिन जज महोदय ने मेरे इस प्रकार के किसी अधिकार को मानने से इन्कार कर दिया।

इस दौरान में मुझे पता चला कि फ़ोर्ट प्रेग सिटी में कुछ मुसलमान औरतों ने एक इस्लामी तबलीग़ी (इस्लाम प्रचारक) और सामाजिक संस्था बना रखी है, जिसको 'सिस्टर्स ग्रुप' (Sisters Group) कहा जाता है। मैं भी उसकी सदस्या बन गई और उसके कामों में भाग लेने लगी। उसकी एक महिला सदस्या के पति ने 'इस्लामिक कम्यूनिटी सेंटर' (Islamic Community Centre) क़ायम कर रखा था और वह बहुत जानकार आदमी था। उस महिला ने अपने पति से मेरी समस्या के बारे में बात की और उन्होंने भाग-दौड़ करके ऐसे क़ानूनों की नक़ल प्राप्त कर ली, जो नागरिकों को उनके धार्मिक कर्तव्यों का निर्वाह करने की अनुमति प्रदान करते हैं। मैं दोबारा जज एडवोकेट जनरल से मिली और उनके सामने सम्बन्धित अधिकारों की नक़ल प्रस्तुत करके अपील की। जज साहब ने मुझे ड्यूटी के दौरान ब्राउन रंग का स्कार्फ़ पहनने की अनुमति दे दी। उन्होंने कहा, ''इन क़ानूनों का अध्ययन करने के बाद मुझे अब 'नहीं' कहने का कोई अधिकार नहीं रहा।'' और इस तरह अल्लाह की मेहरबानी से मैं सरकारी ड्यूटी के दौरान भी स्कार्फ़ पहनने लगी।

लेकिन समस्या यहीं पर ख़त्म नहीं हुई। मुझे फ़ौज में और अमेरिकी समाज में रहते हुए बार-बार लोगों की प्रश्न भरी दृष्टि और बातचीत का सामना करना पड़ा। एक दिन एक साहब ने व्यंग्य भरे अन्दाज़ में कहा, ''यह तुमने सिर पर क्या चिथड़ा बाँध रखा है? इसकी क्या ज़रूरत है?''

''यह चिथड़ा नहीं है जनाब! मैं मुसलमान हूँ और मेरे धार्मिक कर्तव्यों का यह एक हिस्सा है। एक मुसलमान औरत सिर को खुला नहीं रख सकती।''

वह बहुत हैरान हुआ और प्रभावित भी। कितने ही लोग हैं जो स्कार्फ़ देखकर जिज्ञासा से रुक जाते हैं, लेकिन मेरा रैंक देखकर चुपचाप डरकर चल देते हैं। ये सारे लोग ई–4 या उससे कम रैंक के होते हैं, जबकि मेरा रैंक ई–6 है, जो कि अमेरिकी फ़ौज में एक प्रतिष्ठित और उल्लेखनीय रैंक है।

इसी तरह एक बार मुझे कमांडर सार्जेंट मेजर ने इंटरव्यू के लिए बुलाया। वह मेरा वरिष्ठतम अधिकारी था औरNCODP अर्थात् नॉन कमीशंड ऑफ़िसर डेवलपमेंट प्रोग्राम के इंचार्ज की हैसियत से हर महीने दो या तीन अफ़सरों से मुलाक़ात किया करता है। वहाँ भी मेरे स्कार्फ़ और पर्देवाले लिबास की बात चली तो एक महिला अधिकारी ने कहा था, ''क्या फ़ौज में इस प्रकार के अधिकारों की कोई गुंजाइश मौजूद है ?''

''क्यों नहीं,'' मैंने कहा, ''देखिए, यहाँ कभी भी इस बात का ख़्याल नहीं रखा जाता कि किस का क्या धर्म है, बल्कि एक फ़ौजी की हैसियत से उसके अधिकारों का ख़्याल रखा जाता है। आप ईसाई धर्म के फ़ौजियों की भावनाओं का ख़्याल रखते हैं। लूथर्ज को अभीष्ट अधिकार प्राप्त हैं और यहूदियों का तो विशेष ध्यान रखा जाता है। यहूदी सिपाहियों और अफ़सरों को छूट प्राप्त है कि वे सूअर नहीं खाते, इसलिए वे मेस में खाना नहीं खाया करें और अपने भोजन का अलग प्रबंध करा लें। इसी प्रकार विवाहित लोगों को अधिकार प्राप्त हैं कि वे शाम को अपने घरों में चले जाया करें और उन्हें राशन के बजाय नक़द रक़म दे दी जाती है, ताकि वे अपनी मर्ज़ी से अपनी ज़रूरत की खाने–पीने की चीज़ें ख़रीद लें। स्पष्ट है, जब धर्म और परिवार के आधार पर विभिन्न लोगों को खाने–पीने की छूट प्राप्त है, तो एक मुसलमान की हैसियत से मुझे यह अधिकार क्यों नहीं मिल सकता कि मैं अपने अक़ीदे (आस्था) के मुताबिक़ अपने सिर को ढाँक सकूँ ?''

मेरी बात सुनकर उक्त अधिकारी सोच में पड़ गया और फिर सिर हिलाकर कहने लगा, ''क्यों नहीं; आपको इसका पूरा अधिकार प्राप्त है और हम इसकी रक्षा करेंगे।''

□ □ □

3. श्रीमती असमा

(स्वीडन)

स्वीडन के समाज को मुसलमान बनाने, विशेष रूप से औरतों को इस स्वाभाविक धर्म के क़रीब लाने में वहाँ जो औरतें सक्रिय भूमिका निभा रही हैं, उनमें मशहूर नव मुस्लिम स्वीडिश महिला श्रीमती असमा भी शामिल हैं। वे अपने इस्लाम क़बूल करने के बारे में बताती हैं :

▪▪▪▪▪

''इस्लाम के जिस सर्वश्रेष्ठ गुण ने मुझे इसकी ओर खींचा वह इसके परदे का क़ानून है। अल्लाह तआला मौलाना मादूदी (रह०) पर अपनी अपार कृपा और अनुकम्पाएँ करे, पर्दे के बारे में उन्होंने इस्लामी शिक्षाओं का बड़े प्रभावी ढंग से वर्णन किया है। लेकिन मुसलमान औरतों की समस्या यह है, कि वे इतनी अच्छी जीवन–व्यवस्था रखते हुए भी ख़ुद को उसकी रहमतों से दूर किए हुए हैं। सच्चाई यह है कि इस्लाम मुसलमानों की जिस प्रकार की सोसाइटी चाहता है, मुझे अफ़सोस के साथ यह कहना पड़ता है कि ऐसी सोसाइटी कहीं भी नहीं है। मुसलमान देश भी ऐसी आदर्श सोसाइटी पेश करने में पीछे है, जिसके कारण इस्लाम और मुसलमानों को लगातार नुक़सान उठाना पड़ रहा है और इस कमी के कारण बहुत–से लोग इस्लाम की शीतल छाया में नहीं आ रहे हैं।''

श्रीमती असमा ने इस बारे में अपना उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा, ''मैं मुसलमानों की हालत देखते हुए शायद कभी भी सही राह नहीं पा सकती थी, लेकिन मेरा सौभाग्य है कि धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन मेरे लिए ख़ुदा की कृपा का कारण बन गया। इस अध्ययन के दौरान में मैंने इस्लाम के हिजाब (पर्दे) के क़ानून का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया, जिससे मेरे अन्दर इस्लाम क़बूल करने की इच्छा पैदा हुई।''

श्रीमती असमा फिर अपने पिछले विषय की ओर पलटीं और कहने लगीं, ''ज़रूरत इस बात की है कि मुसलमान अपने मामलात बेहतर बनाएँ। भ्रष्टाचार और बेईमानी की जो बुरी आदतें मुसलमानों के बीच पाई जाती हैं, वे

बिल्कुल ही सहन करने के लायक़ नहीं हैं। उनको पूरी तरह ख़त्म करने की ज़रूरत है। इस्लाम के प्रति ऊँचे-ऊँचे दावों के साथ इस तरह की बेईमानी ज़रा भी अच्छी नहीं लगती। मामलों में कमज़ोरी तबाह करनेवाली है। यह कमज़ोरी आगे चलकर बड़ी तबाही का कारण बन सकती है। क़ुरआन में इसी ओर ध्यान दिलाते हुए कहा गया है :

'ऐ ईमानवालो! तुम वह बात क्यों कहते हो, जिस पर ख़ुद अमल नहीं करते?' (क़ुरआन, 61 : 2)

श्रीमती असमा ने उलेमा, शिक्षाशास्त्रियों और औरतों के लिए आवश्यक ठहराया है कि वे नई पीढ़ी की उत्तम शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध करें। आख़िर बच्चों की अधूरी शिक्षा के साथ हम अपने उज्जवल भविष्य का सपना कैसे देख सकते हैं? औरतों को चाहिए कि वे हज़रत आइशा, हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) और वर्तमान काल की महान महिला ज़ैनब-उल-ग़ज़ाली का चरित्र अपनाएँ।

श्रीमती असमा 1992 ई० में पाकिस्तान भी आई थीं। हमें ख़ुद भी उनकी बात सुनने का मौक़ा मिला। उनकी बात से स्पष्ट होता है कि मानो एक लगन और तड़प है जो उन्हें इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए हर समय सक्रिय किए हुए है। 1992 ई० में लाहौर में एक इज्तिमा से, जिसमें स्त्री-पुरुष दोनों शामिल थे, भाषण देते हुए मुस्लिम लीडरों से ज़ोर देकर कहा कि दूसरे ग़लत दृष्टिकोणों या विचारधाराओं के साथ-साथ मुसलमानों के अन्दर फैलनेवाले राष्ट्रवाद (Nationalism) का भी अन्त करें। उन्होंने कहा, "यह अजीब बात है कि यूरोप के अन्दर 'नेशनल स्टेट' की अवधारणा अपनी मौत आप मर रही है और हमारे यहाँ मुसलमानों के अन्दर इसको तरक़्क़ी मिल रही है। इसी प्रकार मुसलमानों के लिए ज़रूरी है कि वे आत्मनिर्भर बनें, पश्चिम पर आर्थिक निर्भरता ख़त्म करें, क्योंकि हमारे वर्तमान आर्थिक पिछड़ेपन का महत्वपूर्ण और मौलिक कारण पश्चिम पर की जानेवाली यही आर्थिक निर्भरता है। दूसरे का सहारा लेनेवाले जीवन की कठिनाइयों में कभी अटल नहीं रह सकते।"

□□□

4. सुश्री अमल–अस्साएग़

(Amal Al Sayegh)

इस्लाम क़बूल करने की इस कहानी का सम्बन्ध उस समय से है, जब शाम (सीरिया) में एक इस्लामपसन्द लोकतांत्रिक शासन था और देश हाफ़िज़–अल–असद की निर्दय तानाशाही के शिकंजे से सुरक्षित था। उस ज़माने में हम्स और हुमा इस्लामी आन्दोलन के केन्द्रों की हैसियत से प्रसिद्ध थे और सम्मान की नज़र से देखे जाते थे।

▪ ▪ ▪ ▪

श्रीमती अमल–अस्साएग़ का सम्बन्ध आर्मीनिया के एक ऐसे ईसाई परिवार से था, जो अपने मूल देश से पलायन करके पहले तुर्की के एक क़िले मार्दीन (Mardin) में रहा और फिर कुछ समय बाद शाम के एक सरहदी क़स्बे अल–हसाक़ा (Al Hasaka) में बस गया। श्रीमती का परिवार पेशे की दृष्टि से सोने–चाँदी के गहने बनाने का काम करता था।

नवयुवती साएग़ असाधारण रूप से बुद्धिमान लड़की थी। शैक्षिक योग्यता में वह अपनी हमउम्र लड़कियों से कहीं आगे थी। इसलिए पाठ्यक्रम की पुस्तकों पर दक्षता प्राप्त करने के अलावा उसने एक साथ पाँच भाषाओं अर्थात् अरबी, तुर्की, अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी और कुर्द पर भरपूर दक्षता प्राप्त कर ली और ज्यों ही उसने स्कूल की पढ़ाई पूरी की उसे स्थानीय सरकारी अस्पताल में नर्स की नौकरी मिल गई और वह अपनी व्यक्तिगत योग्यता और कार्यकुशलता के कारण थोड़े ही समय में चीफ़ नर्स बन गई।

इसके साथ अमल–अस्साएग़ स्थानीय राजनैतिक कामों में रुचि लेने लगी। उसका परिवार ख़ुशहाल था। क़स्बे की सामाजिक ज़िन्दगी में विशेष हैसियत रखता था और सामान्य अर्मीनियाई ईसाइयों की भाँति उसके राजनीतिक सम्बन्ध राष्ट्रवादी पार्टी—बास पार्टी—से थे। इस कारण उसे विशेष लोकप्रियता मिली और बहुत जल्द वह पार्टी के गुप्त सेल की निरीक्षक (निगराँ) बना ली गई।

ख़ुदा का करना यह हुआ कि 1953 ई० में हम्स और हुमा की इस्लामी तहरीक ने अल हसाक़ा के शिक्षण संस्थानों में शैक्षिक और धर्म–प्रचार का काम करने के लिए अपने कार्यकर्ता शिक्षकों को भिजवाया.....उनमें मर्द भी थे और औरतें भी। स्वभाव की दृष्टि से ये लोग बड़े सदाचारी, सज्जन और मिज़ाज की दृष्टि से उत्साही धर्म प्रचारक थे। इन्हीं में मिस आलिया अल जव्वाद भी थीं, जो नैतिकता, प्रेम, उमंग और उत्साह की मालिक थीं और सामनेवाले को प्रभावित करने की विशेष योग्यता रखती थीं।

इसे अमल–अस्साएग़ का सौभाग्य ही कहना चाहिए कि एक दिन मिस आलिया अल–जव्वाद तब्लीग़ी और दावती दौरे पर उस अस्पताल में पहुँच गईं, जहाँ सुश्री साएग़ सरकारी ड्यूटी करती थीं। यह मुलाक़ात बड़ी ही सार्थक रही। आलिया जव्वाद ने इस्लाम का परिचय इतने सरल अन्दाज़ में और आधुनिकतम संदर्भों में कराया कि अमल–अस्साएग़ प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकीं। आलिया ने विदा होते हुए उसे पवित्र क़ुरआन की एक प्रति तोहफ़े में दी।

अमल आलिया के सदव्यवहार और आकर्षक बातचीत से इतना प्रभावित हुई थी कि अस्पताल से फ़ुरसत पाकर घर आते ही उसने पवित्र क़ुरआन का अध्ययन शुरू कर दिया। एक ईसाई की हैसियत से उसने इंजील का अध्ययन कर रखा था। वह अरबी से भली–भाँति परिचित थी और ख़ुदा ने उसे समझ बूझ भी काफ़ी प्रदान की थी। इसलिए क़ुरआन पढ़ते हुए वह आश्चर्य और प्रभावी रूप से उस अन्तर को महसूस कर रही थी, जो क़ुरआन और मौजूदा बाइबल में पाया जाता है। वह देख रही है कि क़ुरआन कितने स्वाभाविक ढंग से मनुष्य का व्यावहारिक मार्गदर्शन करता है, उसकी बुद्धि और विवेक को सीधे अपील करता है, जबकि बाइबल मनुष्य की बुद्धि और विवेक से बहुत दूर कतराकर निकल जाती है और कितनी ही परस्पर विरोधी बातें पढ़नेवाले को बार–बार परेशान करती रहती हैं।

सुश्री आलिया समय–समय पर अस्पताल में अमल से मिलती रहीं। इसके परिणामस्वरूप दोनों में निकटता बढ़ती चली गई। हर बार अमल क़ुरआन की कुछ आयतों के हवाले से मन में पैदा होनेवाले सवाल करती। आलिया उनके जवाब देतीं और अमल को संतुष्ट करने की कोशिश करतीं।

इस प्रकार कुछ ही समय के बाद इस्लाम और क़ुरआन अपनी सभी ख़ूबियों के साथ निखरकर अमल के सामने आ गए और उसको प्रत्येक दृष्टि से इस बारे में संतुष्टि हो गई। अब व्यावहारिक रूप से कलिमा पढ़ने और इस्लाम क़बूल करने की बारी आ गई, लेकिन इसमें सबसे बड़ी आशंका यह थी कि अल हसाक़ा में रहते हुए अमल इसका एलान करती है तो एक हंगामा उठ खड़ा होगा और अधिक संभावना थी कि उसका परिवार उसको जान से मार देगा। अत तय पाया कि वह हुमा की ओर पलायन कर जाएगी। वहाँ कोई प्रभावशाली ख़ुदापरस्त मुसलमान उसे पनाह में ले लेगा और वहीं वह इस्लाम क़बूल करने का एलान कर देगी।

मिस आलिया ने अल हसाक़ा में टीचर्स यूनियन के अध्यक्ष बद्र अल शव्वाफ़ से बात की। बद्र का संबधं भी हुमा से था और वह वहाँ काफ़ी असर रखते थे। अतः उन्होंने बड़ी ख़ुशी से आमादगी का इज़हार किया कि वह अमल को अपने घर में पनाह देंगे, जहाँ वह परिवार के एक सदस्य की हैसियत से पूरे इत्मीनान के साथ और भयमुक्त होकर जब तक चाहेगी रह सकेगी। तय पाया कि स्कूल का सेशन पूरा होते ही बद्र अल शव्वाफ़ अमल को किसी प्रकार हुमा ले जाएँगे। इस बीच वह अपने नए धर्म का और अधिक गहराई और ध्यान से अध्ययन करती रहेगी। सेशन ख़त्म हुआ। मिस आलिया बद्र अल शव्वाफ़ और दूसरे अध्यापक अपना काम पूरा करके वापस हुमा चले गए। अभी वे अमल को वहाँ लाने का प्रोग्राम बना ही रहे थे कि अचानक बद्र अल शव्वाफ़ को अमल का टेलीग्राम मिला कि ''जल्द ही हसाका पहुँचिए। मैं गंभीर संकट में हूँ।'' इस पर बद्र ने तुरन्त टेक्सी ली और कुछ घंटों में अस्पताल के सामने मस्जिद के दरवाज़े पर पहुँच गए। आलिया अमल के पास गई। उसको स्थिति से अवगत कराया और थोड़ी देर के बाद अमल उनके साथ टेक्सी में हुमा की ओर चल दी।

शाम तक अमल के माँ-बाप को अन्दाज़ा हो गया कि अमल उनकी पहुँच से दूर जा चुकी है। दूसरी सुबह उन्होंने स्थानीय पादरी को साथ लिया और अपनी गाड़ी से हुमा पहुँच गए। वहाँ उन्होंने पुलिस से शिकायत की कि बद्र अल शव्वाफ़ नाम के एक अध्यापक उनकी बेटी का अपहरण करके ले आए हैं। पुलिस ने तुरन्त ही बद्र से सम्पर्क किया और थोड़ी ही देर में बद्र और

अमल थाने में मौजूद थे। पादरी ने पुलिस अफ़सर से अनुमति ली और अमल को अलग करके उसको नसीहत करनी चाही : ''मेरी बेटी, हमें पता है कि तुम्हें धोखे से अपने पैतृक धर्म से बदगुमान करके नया धर्म अपनाने पर बहकाया गया है। होश में आओ और अपने असल धर्म और माँ-बाप और परिजन की ओर पलट आओ। इसी में भलाई है वरना नुक़सान ही नुक़सान है।''

अमल ने पादरी की नसीहत और धमकी को नज़रअन्दाज़ करते हुए जवाब में कहा : ''मैं किसी के बहकाने में नहीं आई। मैंने अपनी मर्ज़ी से स्वतंत्र अध्ययन से और बहुत सोच-विचार के बाद इस्लाम क़बूल किया है कि यही स्वाभाविक धर्म है, जबकि ईसाइयत परस्पर विरोधी बातों और अंधविश्वासों के अतिरिक्त कुछ नहीं। मैं आपको भी निमंत्रण देती हूँ कि कृपया आप भी बुद्धि से काम लें और गुमराही को छोड़कर इस्लाम की रस्सी को थाम लें।''

यह सुनकर पादरी हक्का-बक्का रह गया। वह बहुत परेशान हुआ। उसने यह सब कुछ अमल के माँ-बाप को बता दिया। अब उन्होंने पैंतरा बदला और पुलिस को बताया कि घर से आते हुए अमल भारी रक़म और सोना चोरी करके ले आई है और इस सम्बन्ध में ज़रूरी पूछताछ के लिए इसका हसाका जाना बहुत ज़रूरी है। पुलिस अफ़सर ने यह माँग स्वीकार करने से इन्कार कर दिया और उन्हें अदालत में मुक़दमा दायर करने की सलाह दी। उसने यक़ीन दिलाया कि मुक़दमे के फ़ैसले तक अमल हुमा में एक मशहूर धार्मिक विद्वान और प्रभावी व्यक्ति शैख़ तौफ़ीक़ सब्बाग़ की देख-रेख में रहेगी।

अमल के माँ-बाप ने एक और चाल चली कि वास्तव में अमल का दिमाग़ी संतुलन ठीक नहीं और यह सब कुछ उसने असंतुलित मानसिक दशा में किया है। वे उसे हसाका ले जाना चाहते हैं, ताकि उसका उचित इलाज करा सकें। लेकिन पुलिस अफ़सर ने उनकी यह बात भी स्वीकार नहीं की। सख़्ती के साथ यह सुझाव दिया कि वे अदालत से सम्पर्क करें। अदालत के फ़ैसले के बाद ही वह उनकी कुछ मदद कर सकता है। अतः अमल के माँ-बाप ने दमिश्क की एक अदालत में मुक़दमा दायर कर दिया। अमल अदालत में पेश हुई। उसने दो टूक अन्दाज़ से अपना पक्ष प्रस्तुत किया और बड़े विस्तार

के साथ बताया कि इस्लाम के किन गुणों से वह प्रभावित हुई और ईसाइयत से क्यों विमुख और विरक्त हुई। उसने बड़े विश्वास के साथ बताया कि इस्लाम को समझने के लिए उसने ख़ूब अध्ययन किया है। रातों को जाग-जागकर चिन्तन-मनन किया है और जब सत्य उसके सामने प्रकट हो गया तो उसने इसे क़बूल कर लिया।

अदालत ने अमल का पक्ष स्वीकार कर लिया कि वह सूझ-बूझवाली और व्यस्क है और उसने इस्लाम अपनी स्वतंत्र इच्छा से स्वीकार किया है। इसलिए वह मुसलमान ही रहेगी और उसके माँ-बाप या उसके ख़ानदान को यह अधिकार प्राप्त नहीं है कि इस सम्बन्ध में उस पर कोई ज़बरदस्ती की जाए।

फ़ैसले के बाद अमल वापस हुमा आ गई और अपनी दोस्त आलिया अल जव्वाद के पास रहने लगी। आलिया हुमा के क़रीब एक गाँव में रहती थी और एक स्कूल में पढ़ाती थी। अमल को भी उसी स्कूल में नौकरी मिल गई। एक दिन अमल और आलिया स्कूल जा रही थीं कि अचानक एक कार उनके पास आकर रुकी। उसमें से दो आदमी निकले। उन्होंने आनन-फानन अमल को क़ाबू में किया और दबोचकर कार में ठूंसकर ले भागे। कार में अमल की माँ भी थी।

अमल इस अचानक घटना से बौखला गई। कुछ देर तक उसकी समझ में कुछ नहीं आया। फिर उसने बुद्धि से काम लिया और अपनी माँ को बताया कि आपने अच्छा किया कि मेरी मदद को आ गए। मैं ख़ुद इस माहौल से तंग थी। मगर डरी हुई और मजबूर थी, कुछ कर नहीं सकती थी। अब मैं दिलो-जान से आपके साथ हूँ।

अमल ने ज़बान से तो यह सब कुछ कह दिया, लेकिन वह दिल ही दिल में ख़ुदा से मदद की दुआ कर रही थी। वह बड़ी ही परेशानी और मुसीबत के साथ अल्लाह से दुआ कर रही थी : ''ऐ ख़ुदा, मैं कुफ्र और शिर्क के अन्धेरों में भटक रही थी, तूने अपनी मेहरबानी से मुझे तौहीद (एकेश्वरवाद) और इस्लाम की नेमत प्रदान कर दी। अब ये ज़ालिम दोबारा मुझे उन्हीं अन्धेरों में झोंकना चाहते हैं। मैं तेरी बहुत कमज़ोर और मजबूर बन्दी हूँ और अगर तेरी मदद ने साथ न दिया तो मैं तबाह और बरबाद हो जाऊँगी।.....ऐ परवरदिगार,

मेरी मदद कर......तेरे अलावा इस समय कोई मेरी मदद नहीं कर सकता।''

वह आँखें बन्द किए दिल में यह वाक्य दोहरा रही थी कि गाड़ी हसाका के क़रीब जा पहुँची। उसने आँखें खोलकर देखा कि सामने चेकपोस्ट थी और कुछ फ़ौजी गाड़ी को रुकने का इशारा कर रहे थे। उसका दिल ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा और ज्यों ही गाड़ी के ब्रेक लगे। उसने एक झटके के साथ दरवाज़ा खोला और बाहर निकल आई और कुछ वाक्यों में फ़ौजियों से अपनी कहानी सुना दी। उसने बताया कि वह मुसलमान हो गई है, अदालत ने उसके हक़ में फ़ैसला दे दिया है, लेकिन ये लोग ज़बरदस्ती उसे हुमा से अपहरण करके ले आए हैं और अब उसे या तो दोबारा ईसाई बना लेंगे या जान से मार देंगे।

मुसलमान फ़ौजी अमल की समस्या समझ गए। उन्होंने उसे पनाह दे दी और अपहरण करनेवालों को अपनी हिरासत में ले लिया। अमल को हिफ़ाज़त के साथ वापस हुमा पहुँचा दिया गया, जहाँ उसने बद्र अल शव्वाफ़, शैख़ तौफ़ीक़ सब्बाग़ और आलिया की मदद से बाअमल मुसलमान युवक से शादी कर ली और एक मुसलमान धर्मप्रचारिका की हैसियत से आनन्दमय जीवन व्यतीत करती रही।

□ □ □

5. सिस्टर अमीना

(अमेरिका)

सुश्री अमीना जिनान का सम्बन्ध अमेरिका से है। उन्होंने 1977 ई० में इस्लाम क़बूल किया था। उससे पूर्व वे अमेरिका में संडे स्कूलों में ईसाइयत की शिक्षा दिया करती थीं। इस्लाम क़बूल करने के बाद उन्हें कई प्रकार की असाधारण क़ुरबानियाँ देनी पड़ीं, मगर उन्होंने किसी मौक़े पर साहस और दृढ़ता को हाथ से नहीं छोड़ा। इस प्रकार वे अपनी असीम सहनशीलता, धैर्य, स्नेह, सुस्वभाव, सदाचरण और मानव-सम्मान के कारण अपने परिचितों और औरतों में 'स्माइलिंग लेडी' अर्थात् मुस्कराती महिला के नाम से याद की जाती हैं। इसी अच्छे स्वभाव और सुशीलता के कारण लोग उन्हें श्रृद्धा-भाव से सिस्टर अमीना कहते हैं और हालाँकि पिछले दो वर्षों से उनकी रीढ़ की हड्डी में दर्द है और वे बैसाखियों का सहारा लेने पर मजबूर हैं, मगर न तो वे पाँच वक़्त की नमाज़ क़ज़ा होने देती हैं और न सत्य-धर्म के प्रचार-प्रसार में कोताही करती हैं। अत: वे इस विवशता के बावजूद हज़ारों मील की यात्रा करके फ़रवरी 1990 ई० में पाकिस्तान गईं और इस्लाम पर अपने अटल विश्वास से अनगिनत मर्दों और औरतों को प्रभावित किया। वे एक कर्मयोगी महिला हैं और क़ुरआन और सुन्नत के एक-एक आदेश को पूरा करने की कोशिश करती हैं। पाकिस्तान की यात्रा में उनके साथ उनका दस वर्षीय बेटा मुहम्मद भी था, जो बड़ा प्रतिभाशाली और संवेदनशील बच्चा है और सिस्टर अमीना इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार उसकी तरबियत कर रही हैं।

सुश्री अमीना ने विभिन्न अवसरों पर अपने इस्लाम क़बूल करने के कारण बयान किए हैं। मैंने इस तरह के तीन लेखों को सामने रखकर अमीना की आत्म-कथा संकलित की है। उनमें सबसे विस्तृत लेख सुश्री मुनव्वर सादिक़ का है, जो मुझे मेरे बुज़ुर्ग और मेहरबान दोस्त कुँवर सईदुल्लाह ख़ान साहब (सरगोधा) ने उपलब्ध कराया। मैं इसके लिए कुँवर साहब और सुश्री मुनव्वर सादिक़ दोनों का आभारी हूँ।

▪ ▪ ▪ ▪

मैं जनवरी 1945 ई० में अमेरिका के राज्य लासएंजिल्स के वेस्ट क्षेत्र में पैदा हुई। मेरे माँ–बाप प्रोटेस्टेंट ईसाई थे और ननिहाल और ददिहाल दोनों ओर धर्म की बड़ी चर्चा थी। मैं स्कूल के आठवें ग्रेड में थी कि मेरे माँ–बाप को फ़्लोरिडा स्थानांतरित होना पड़ा और मेरी शेष शिक्षा–दीक्षा वहीं पूरी हुई। मैं पढ़ने–लिखने में बहुत तेज़ थी, विशेषकर बाइबल से मुझे बड़ी रुचि थी और उसके बहुत–से अंश मुझे मौखिक रूप से याद थे। इस सम्बन्ध में मैंने अनेक पुरस्कार भी प्राप्त किए। मैं पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य कार्यक्रमों में भी बढ़–चढ़कर भाग लेती थी और 'वीमन लिब्रेशन मूवमेंट' (नारी मुक्ति आन्दोलन) नामक संगठन की सक्रिय कार्यकर्ता थी।

हाईस्कूल की पढ़ाई पूरी हुई तो मेरी शादी हो गई और इसके साथ ही मैं मॉडलिंग के पेशे से जुड़ गई। ख़ुदा ने मुझे आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान किया था और मैं ख़ूब मेहनत करती थी। इसलिए मेरा कारोबार ख़ूब चमका। पैसे की रेल–पेल हो गई। शोफ़र, बेहतरीन गाड़ियाँ तथा सुख–सुविधा का हर सामान उपलब्ध था। हालत यह थी कि कभी–कभी जूता ख़रीदने के लिए मैं हवाई यात्रा करके दूसरे शहर जाती थी। इस बीच मैं एक बेटे की माँ भी बन गई। मगर सच्ची बात यह है कि हर प्रकार की सुख–सुविधा के बावजूद दिल संतुष्ट न था। अशान्ति और उदासी जैसे मेरी जान के पीछे स्थाई रूप से लग गई थी और जीवन में कोई ज़बरदस्त शून्य महसूस होता था। परिणामस्वरूप मैंने मॉडलिंग का पेशा छोड़ दिया। दोबारा धार्मिक जीवन–शैली अपना ली और विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं में स्वेच्छा से धर्म–प्रचार का काम करने लगी। इसके साथ ही मैंने आगे की शिक्षा के लिए यूनीवर्सिटी में नामांकन करा लिया। विचार था कि इस बहाने शायद आत्मा को कुछ शान्ति मिलेगी। उस समय मेरी उम्र तीस साल थी।

इसे सौभाग्य ही कहिए कि मुझे एक ऐसी कक्षा में दाख़िला मिल गया जिसमें काले और एशियाई छात्रों की बहुत बड़ी संख्या थी। शुरू में बड़ी परेशानी हुई, मगर अब क्या हो सकता था। और अधिक घुटन यह देखकर महसूस हुई कि उनमें बहुत–से लोग मुसलमान थे और मुझे मुसलमानों से सख़्त नफ़रत थी। मेरी दृष्टि में सामान्य यूरोपियनों की तरह इस्लाम पाश्विकता और अज्ञानता का धर्म था और मुसलमान असभ्य, विलासी और औरतों पर अत्याचार

करनेवाले और अपने विरोधियों को जीवित जला देनेवाले लोग थे। अमेरिका और यूरोप के सामान्य लेखक और इतिहासकार यही कुछ लिखते आ रहे हैं। बहरहाल, मैंने बड़ी ही मानसिक घुटन के साथ पढ़ाई शुरू की, फिर अपने आपको समझाया कि मैं एक मिशनरी (प्रचारक) हूँ। क्या अजब कि ख़ुदा ने मुझे इन विधर्मियों के सुधार के लिए यहाँ भेजा हो, इसलिए मुझे परेशान नहीं होना चाहिए। अतः मैंने स्थिति की समीक्षा शुरू की तो मैं आश्चर्य में पड़ गई कि मुसलमान दोस्तों का आचरण दूसरे काले नौजवानों से बिल्कुल अलग था। वे शिष्ट, सभ्य और स्वाभिमानी थे। वे सामान्य अमेरिकी नौजवानों के विपरीत न तो लड़कियों से बेझिझक आज़ादाना मिलना-जुलना पसन्द करते थे, न आवारगी और भोग-विलास के रसिया थे। मैं धर्म-प्रचार की भावना से उनसे बात करती और उनके सामने ईसाई धर्म के गुणों का बखान करती, वे बड़े शिष्ट और आदरपूर्ण ढंग से मिलते और वाद-विवाद में उलझने के बजाय मुस्कराकर चुप हो जाते।

मैंने अपनी कोशिशों को इस प्रकार बेकार जाते देखा तो सोचा कि इस्लाम का अध्ययन ज़रूर करना चाहिए, ताकि उसकी ख़राबियों और कमियों से वाक़िफ़ होकर मुस्लिम छात्रों का मज़ाक़ उड़ा सकूँ। मगर दिल के कोने में यह एहसास भी था कि ईसाई पादरी, लेखक और इतिहासकार तो मुसलमानों को वहशी, गँवार, जाहिल और न जाने किन-किन बुराइयों का रूप बताते हैं, लेकिन अमेरिकी समाज में पलने-बढ़ने वाले इन काले मुसलमान नौजवानों में तो ऐसी कोई बुराई दिखाई नहीं देती, बल्कि ये बाक़ी सभी छात्रों से अलग और पवित्र आचरण के मालिक हैं। फिर क्यों न मैं ख़ुद इस्लाम का अध्ययन करूँ और वास्तविकता से परिचित हो जाऊँ। अतः मैंने इस उद्देश्य से सबसे पहले क़ुरआन का अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ना शुरू किया और मेरी हैरत की सीमा न रही कि यह किताब दिल के साथ-साथ दिमाग़ को भी अपील करती है। ईसाई धर्म पर चिन्तन-मनन के दौरान और बाइबल के अध्ययन के परिणामस्वरूप मन-मस्तिष्क में कितने ही सवाल पैदा होते थे, परन्तु किसी पादरी या विद्वान के पास उनका कोई जवाब न था और यह प्यास मेरी आत्मा के लिए स्थाई रोग बन गई थी। मगर क़ुरआन पढ़ा तो इन सारे सवालों के ऐसे जवाब मिल गए जो बुद्धि और चेतना के बिल्कुल अनुकूल थे और अधिक संतुष्टि के लिए अपने

मुसलमान सहपाठी नौजवानों से बातें कीं। इस्लामी इतिहास का अध्ययन किया तो अन्दाज़ा हुआ कि मैं अब तक अंधेरों में भटक रही थी। इस्लाम और मुसलमानों के बारे में मेरा दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से अनुचित, अन्यायपूर्ण और अज्ञानपूर्ण था।

अधिक संतुष्टि के लिए मैंने इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और उनकी शिक्षाओं का अध्ययन किया तो यह देखकर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि अमेरिकी लेखकों के प्रोपगंडे के बिल्कुल विपरीत नबी (सल्ल०) सम्पूर्ण मानव–जाति के हितैषी, उपकारक और सच्चे शुभ चिन्तक हैं, विशेष रूप से उन्होंने औरतों को जो स्थान और सम्मान दिया है, उससे पहले या बाद में इसका कोई उदाहरण नज़र नहीं आता......माहौल की मजबूरियों की बात दूसरी है, वरना मैं बड़े शर्मीले स्वभाव की लड़की हूँ और पति के अलावा किसी दूसरे मर्द से बेतकल्लुफ़ी पसन्द नहीं करती। अतः जब मैंने पढ़ा कि पैग़म्बरे–इस्लाम ख़ुद भी बहुत शर्मीले थे और विशेष रूप से औरतों के लिए स्तीत्व, पवित्रता और लज्जा की ताकीद किया करते थे, तो मैं बहुत प्रभावित हुई और इसे औरतों की आवश्यकता और मानसिकता के बिल्कुल अनुकूल पाया...... फिर नबी (सल्ल०) ने औरतों को कितना ऊँचा स्थान प्रदान किया है इसका अन्दाज़ा आप (सल्ल०) के इस कथन से होता है कि "स्वर्ग माँ के क़दमों तले है।" और आप (सल्ल०) के इस कथन पर तो मैं झूम उठी कि औरत नाज़ुक आबगीनों (हीरे–जवाहरात) की तरह है और तुममें सबसे अच्छा वह है जो अपनी पत्नी और घरवालों के साथ अच्छा व्यवहार करता है।

क़ुरआन और इस्लाम के पैग़म्बर (सल्ल०) की शिक्षाओं से मैं संतुष्ट हो गई और इस्लाम के इतिहास के अध्ययन और अपने मुस्लिम सहपाठियों के चरित्र ने मुसलमानों के बारे में सारी ग़लतफ़हमियों को दूर कर दिया और मेरी अन्तरात्मा को मेरे सारे सवालों के जवाब मिल गए तो मैंने इस्लाम क़बूल करने का फ़ैसला कर लिया। इसका उल्लेख मैंने उपर्युक्त छात्रों से किया तो वे 21 मई, 1977 ई० को मेरे पास चार ज़िम्मेदार मुसलमानों को ले आए। उनमें से एक डेंवर (Denver) की मस्जिद के इमाम थे। अतः मैंने उनसे कुछ और सवाल किए और कलिमा–ए–शहादत (इस्लाम का मूल मंत्र) पढ़कर इस्लाम

के दायरे में दाख़िल हो गई। मेरे इस्लाम क़बूल करने से पूरे ख़ानदान पर जैसे बिजली गिर गई। हमारे पति–पत्नी के सम्बन्ध वास्तव में मिसाली थे और मेरा पति मुझसे टूटकर मुहब्बत करता था, मगर मेरे इस्लाम क़बूल करने के बारे में सुनकर उसे असाधारण धक्का लगा। मैं उसे पहले भी क़ायल करने की कोशिश करती रही और अब फिर समझाने की बहुत कोशिश की, मगर उसका ग़ुस्सा किसी प्रकार ठंडा नहीं हुआ और उसने मुझसे सम्बन्ध–विच्छेद कर लिया और मेरे ख़िलाफ़ अदालत में मुक़दमा दायर कर दिया। अस्थाई रूप से दोनों बच्चों की देख–भाल और पालन–पोषण मेरी ज़िम्मेदारी क़रार दी गई।

मेरे पिता भी मुझसे गहरा दिली सम्बन्ध रखते थे। मगर इस ख़बर से वे भी बेहद ग़ुस्सा हुए और ग़ुस्से में डबल बैरल शॉट गन लेकर मेरे घर आ गए, ताकि मुझे मार डालें। मगर ख़ुदा का शुक्र है कि मैं बच गई और वे हमेशा के लिए सम्बन्धों को तोड़कर चले गए। मेरी बड़ी बहन मनोरोग विशेषज्ञ थी। उसने एलान कर दिया कि यह किसी मानसिक रोग में ग्रस्त हो गई और उसने गंभीरता से मुझे मनोचिकत्सीय संस्थान में दाख़िल कराने के लिए दौड़–धूप शुरू कर दी। मेरी पढ़ाई पूरी हो चुकी थी। मैंने आर्थिक आवश्यकताओं को सामने रखते हुए एक ऑफ़िस में नौकरी कर ली, लेकिन एक दिन मेरी गाड़ी के साथ दुर्घटना हो गई जिस कारण ऑफ़िस पहुँचने में थोड़ी–सी देर हो गई तो मुझे नौकरी से निकाल दिया गया। फ़र्मवालों के नज़दीक मेरा असली जुर्म यही था कि मैंने इस्लाम क़बूल कर लिया था।

इसके साथ ही हालत यह थी कि मेरा एक बच्चा जन्म से विकलांग था। वह मानसिक रूप से भी सामान्य नहीं था और उसका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं था, जबकि बच्चों के संरक्षण की ज़िम्मेदारी मुझ पर डाल दी गई थी और तलाक़ के मुक़दमे के कारण अमेरिकी क़ानून के अनुसार मुक़दमे के फ़ैसले तक मेरी सारी जमा राशि सील कर दी गई थी। नौकरी भी ख़त्म हो गई तो मैं बहुत घबराई और सहसा ख़ुदा के सामने सजदे में गिर पड़ी और गिड़गिड़ाकर ख़ूब दुआएँ कीं। दयावान अल्लाह ने मेरी दुआएँ सुन लीं और दूसरे ही दिन मेरी एक परिचित महिला दोस्त की कोशिश से ईस्टर सेल प्रोग्राम में मुझे नौकरी मिल गई और मेरे विकलांग बेटे का इलाज भी मुफ़्त होने लगा। डॉक्टरों ने दिमाग़ के ऑपरेशन का निर्णय किया और अल्लाह की विशेष कृपा

से यह ऑपरेशन सफल रहा। बच्चा स्वस्थ हो गया और मेरी जान में जान आई। लेकिन आह! अभी परीक्षाओं का सिलसिला बन्द न हुआ था। अदालत में बच्चों के संरक्षण का मुक़दमा दो साल से चल रहा था। अन्ततः दुनिया के इस सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश की आज़ाद अदालत ने फ़ैसला किया कि अगर बच्चों को अपने पास रखना चाहती हो तो इस्लाम को त्यागना पड़ेगा क्योंकि इस रुढ़िवादी धर्म के कारण बच्चों का चरित्र ख़राब होगा और सांस्कृतिक दृष्टि से उन्हें नुक़सान पहुँचेगा।

अदालत का यह फ़ैसला मेरे दिल और दिमाग़ पर बिजली बनकर गिरा। एक बार तो मैं चकराकर रह गई। ज़मीन-आसमान घूमते हुए नज़र आए। मगर अल्लाह का शुक्र है कि उसकी रहमत ने मुझे थाम लिया और मैंने दो-टूक अन्दाज़ में अदालत से कह दिया कि मैं अपने बच्चों से जुदाई गवारा कर लूँगी, मगर इस्लाम और ईमान की दौलत को हाथ से नहीं छोड़ सकती। अतः बच्ची और बच्चा दोनों बाप के संरक्षण में दे दिए गए।

इसके बाद एक साल इसी प्रकार बीत गया। मैंने अल्लाह से अपना सम्बन्ध गहरा कर लिया और धर्म के प्रचार-प्रसार में व्यस्त हो गई। परिणामस्वरूप सारी महरूमियों के बावजूद मैं एक विशेष प्रकार के सुकून और इत्मीनान से भरी रही। मगर मेरे शुभचिन्तकों ने आग्रह के साथ सलाह दी कि मुझे किसी नेक मुसलमान से शादी कर लेनी चाहिए क्योंकि औरत के लिए अकेले जीवन व्यतीत करना उचित और अच्छा नहीं है। अतः एक मराकशी मुसलमान की ओर से शादी की पेशकश हुई तो मैंने क़बूल कर ली। ये साहब एक मस्जिद में इमामत करते थे। क़ुरआन बड़ी अच्छी आवाज़ से पढ़ते और सुननेवालों को सम्मोहित कर देते। मैं धर्म के प्रति उनके गहरे लगाव से बहुत प्रभावित हुई और उनसे निकाह कर लिया। अदालत ने मेरी रक़में जारी कर दी थीं। अतः मैंने अपने पति को अच्छी-ख़ासी रक़म दी कि वे इससे कोई कारोबार करें। मगर हाय नाकामी कि शादी को केवल तीन महीने बीते थे कि मेरे पति ने मुझे तलाक़ दे दी। उसने कहा कि मुझे तुमसे कोई शिकायत नहीं। मैं तुम्हारा बहुत सम्मान करता हूँ, मगर उकता गया हूँ, इसलिए क्षमा-याचना के साथ तलाक़ दे रहा हूँ। मैंने उसे जो भारी रक़म दी थी, चूँकि उसका कोई लेखा-जोखा नहीं था, इसलिए वह भी उसने हज़म कर ली और उसकी मदद

से उसने जल्द ही दूसरी शादी रचा ली।

तलाक़ के कुछ महीनों के बाद अल्लाह ने मुझे बेटा दिया। उसका नाम मैंने मुहम्मद रखा। अब यह बेटा अल्लाह की कृपा से दस साल का है। सुन्दर, आकर्षक और बड़ा बुद्धिमान है। उसे ही देख-देखकर मैं जीती हूँ। अब मैंने अपने आपको अल्लाह की कृपा से इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया है और जी चाहता है कि शेष जीवन भी इसी पवित्र कर्तव्य में लग जाए। यह भी अल्लाह ही की कृपा है कि मैंने क़ुरआन को ख़ूब पढ़ा है। अमेरिका में इस समय क़ुरआन के 27 अनुवाद उपलब्ध हैं। मैंने उनमें से दस का पूर्ण रूप से अध्ययन कर लिया है। अरबी भाषा भी सीख ली है और जहाँ अनुवाद में कोई बात खटकती है, फ़ोन पर अरबी के किसी विद्वान से मालूम कर लेती हूँ। अल्लाह का शुक्र है कि मैं हदीस की विभिन्न किताबों अर्थात् बुख़ारी, मुस्लिम, अबू दाऊद और मिश्कात का कई-कई बार अध्ययन कर चुकी हूँ और इस्लाम को आधुनिकतम ढंग से समझने के लिए विभिन्न मुसलमान उलमा की किताबों का भी अध्ययन करती रहती हूँ। मैं समझती हूँ कि जब तक एक धर्म-प्रचारक क़ुरआन-हदीस और इस्लाम के बारे में भरपूर जानकारी न रखता हो वह धर्म-प्रचार की अपेक्षाओं को पूर्णरूप से पूरा नहीं कर सकता।

एक ज़माना था कि मैं रविवार के दिन आराम करने की बजाय किसी संडे स्कूल में बच्चों को ईसाइयत की शिक्षा देती थी। आज अल्लाह की कृपा से मैं रविवार का दिन इस्लामी सेंटरों में गुज़ारती हूँ और वहाँ मुसलमान बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने के अलावा अन्य विषय भी पढ़ाती हूँ। लॉस एंजिल्स में विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार की प्रदर्शनियों, कॉन्फ्रेंसों और संवाद-गोष्ठियों का आयोजन करके ग़ैर-मुस्लिमों तक इस्लाम धर्म का संदेश पहुँचाने की कोशिश करती हूँ। मैं उनसे कहती हूँ कि मैंने आप लोगों को धर्म बदलने के लिए नहीं बुलाया है, बल्कि इसलिए कष्ट दिया है कि हम एक-दूसरे को समझने की कोशिश करें और मैं आपको यह बताना चाहती हूँ कि मैं इस्लाम से क्यों जुड़ी हूँ? जीवन की क्या हक़ीक़त है और इन्सान और ख़ुदा का आपसी सम्बन्ध क्या है? मैं अल्लाह की कृपा से रेडियो और टीवी पर भी इस्लामी शिक्षाओं को पेश करने का कोई मौक़ा हाथ से नहीं जाने देती।

यह भी अल्लाह ही की मेहरबानी है कि मैंने विभिन्न स्थानों पर 'वीमेन स्टडी सर्कल' (Women Study Circle) क़ायम किए हैं, जिनमें ग़ैर-मुस्लिम महिलाएँ भी आती हैं। मैं उन्हें बताती हूँ कि इसी अमेरिका में आज से डेढ़ सौ वर्ष पूर्व औरतों को बाक़ायदा ख़रीदा और बेचा जाता था और एक औरत को घोड़े से भी कम क़ीमत पर अर्थात् डेढ़ सौ रुपये में ख़रीदा जा सकता था। बाद के ज़माने में भी औरत को बाप या पति की सम्पत्ति में से कोई हिस्सा न मिलता था, यहाँ तक कि अगर वह शादी के मौक़े पर एक लाख डॉलर पति के घर में लेकर जाती और कुछ ही महीनों बाद उसको तलाक़ लेनी पड़ती तो वह सारी रक़म पति की सम्पत्ति समझी जाती थी। शिक्षा के अवसर भी उसे मुनासिब रूप से हासिल न थे और इस एटमी और साइंसी ज़माने में भी स्थिति यह है कि अमेरिका में व्यावहारिक रूप से औरत दूसरे दर्जे की नागरिक है। वह मर्दों के बराबर काम करती है, मगर मज़दूरी उनसे कम पाती है। वह सदा अपने आपको असुरक्षित महसूस करती है। 15 साल की उम्र के बाद माँ-बाप भी उसके पालन-पोषण का उत्तरदायित्व नहीं उठाते और उसे ख़ुद नौकरी करके अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ता है। शादी के बाद तलाक़ का भय उसे हर समय घेरे रखता है और तलाक़ के बाद, जो यूरोपीय जीवन का अनिवार्य अंग बन गया है, न माँ-बाप, न भाई उसका ग़म बाँटते हैं। बच्चों की ज़िम्मेदारी भी उसी के सिर मढ़ी जाती है और पिछला पति बच्चों का बड़ी मुश्किल से 30 प्रतिशत ख़र्च बरदाश्त करते हैं, अर्थात् 50 डॉलर प्रति माह के हिसाब से अदा करते हैं, जिससे एक बच्चे का जूता ख़रीदना भी मुश्किल होता है।

मैं औरतों को बताती हूँ कि इसके विपरीत इस्लाम ने आज से चौदह सौ साल पहले औरतों को जो अधिकार दिए थे, उनका मानव-इतिहास में कोई उदाहरण नहीं मिलता। बेटी, बहन, पत्नी और माँ की हैसियत से उसे विशेष सम्मान और अधिकार प्राप्त हैं। बाप, पति, भाइयों और बेटों की जायदाद से उसको हिस्सा मिलता है और तलाक़ की स्थिति में बच्चों के पालन-पोषण का ज़िम्मेदार पति होता है। तलाक़ को वैसे भी इस्लाम में सख़्त नापसन्दीदा क़रार दिया गया है और शादी के अवसर पर पति की हैसियत के मुताबिक़ उसे मुनासिब रक़म (मेह्र) का हक़दार क़रार दिया गया है। पति को पाबन्द किया गया है कि वह अपनी जीवन-संगिनी के साथ अच्छा व्यवहार करे और

उसकी ग़लतियों को माफ़ करे और उस बात के लिए जन्नत में सर्वश्रेष्ठ पुरस्कारों की ख़ुशख़बरी दी गई है। जो अपनी बच्चियों का प्रेम और स्नेह के साथ पालन–पोषण करता है और उन्हें धार्मिक शिक्षण–प्रशिक्षण प्रदान करके उन्हें आदर के साथ विदा करता है और इस सम्मान की तो अन्यत्र कहीं मामूली–सी भी मिसाल नहीं मिलती कि माँ के क़दमों में जन्नत क़रार दी गई है और बाप की तुलना में उसे तीन गुना अधिक आदरणीय ठहराया गया है।

मैं जब ये तुलनात्मक बातें प्रस्तुत करती हूँ तो अमेरिकी औरतों के मुँह हैरत से खुले रह जाते हैं। ....वे तहक़ीक़ करती हैं और अध्ययन करती हैं और जब उन्हें यक़ीन हो जाता है कि मैं सही बातें कहती हूँ और वास्तव में इस्लाम ने औरतों को असाधारण अधिकार और सम्मान प्रदान किया है तो वे इस्लाम क़बूल कर लेती हैं। अतः अल्लाह का शुक्र है कि अब तक क़रीब लगभग 600 अमेरिकी औरतें इस्लाम के दायरे में प्रवेश कर चुकी हैं।

औरतों में धर्म–प्रचार के साथ–साथ मेरा लक्ष्य शिक्षा विभाग भी है, जिसके पाठ्यक्रम में इस्लाम के बारे में तरह–तरह की आपत्तियाँ और आरोप हैं। टीवी प्रोग्रामों में भी सही या ग़लत इस्लाम के ख़िलाफ़ ज़हर उगला जाता है। अतः मैंने निश्चय कर लिया है कि इस दुखद परिस्थिति का सुधार करना चाहिए। इसके लिए मैं एकेडमी ऑफ़ रिलीजियंस साइंस के कार्यकर्ताओं से मिली। यही लोग पाठ्यक्रमों और टीवी प्रोग्रामों में इस्लाम की ख़राब तस्वीर पेश करने के ज़िम्मेदार हैं। मैंने ज़ोरदार ढंग से उनसे बहस की और उन्हें क़ायल कर लिया कि अगर निशानदेही कर दी जाए तो वे सम्बन्धित अंशों में सुधार कर देंगे......अतः मैंने मुसलमान अभिभावकों का इस ओर ध्यान आकर्षित किया। अमेरिका में विभिन्न मुस्लिम संगठनों से सम्पर्क किया और उन्हें इस बात के लिए तैयार किया कि वे बच्चों की पाठ्यपुस्तकों में से ग़लत और आपत्तिजनक सामग्रियों की निशानदेही करें। इन कोशिशों के नतीजे में इस्लामिक फ़ाउंडेशन (IFOD) की स्थापना हुई, जिसके तहत पाठ्यपुस्तकों में इस्लाम के ख़िलाफ़ नकारात्मक और आपत्तिजनक चीज़ों की निशानदेही की जाती है। इसी प्रकार अमेरिका की यूनीवर्सिटियों में इस्लामियात का विषय (Islamic Studies) यहूदी, ईसाई और हिन्दू पढ़ाते हैं। हमने IFOD के माध्यम से यह माँग रखी है कि इस्लामियात को पढ़ाने के लिए केवल मुसलमान अध्यापकों

का चयन किया जाए। मुझे उम्मीद है कि अल्लाह ने चाहा तो हम यह माँग मंज़ूर करवा लेंगे।

आख़िर में यह सुखद समाचार भी सुनाती जाऊँ कि मेरा वह परिवार, जिसने मेरा पूरा सोशल बायकॉट कर दिया था, अल्लाह की मेहरबानी से उसके अधिकतर सदस्यों ने इस्लाम क़बूल कर लिया है। मेरे पिता जो मुझे जान से मारना चाहते थे, वे मुसलमान हो चुके हैं और माँ, सौतेले बाप, दादी, दादा और परिवार के कई अन्य लोग भी इस्लाम के दायरे में आ चुके हैं। यहाँ तक कि मेरा वह बेटा जो अपने ईसाई बाप के पास रहता है, जिसका धार्मिक प्रशिक्षण बिल्कुल ईसाइयत के मुताबिक़ बड़े एहतिमाम के साथ हो रहा था, एक दिन मेरे पास आया और कहने लगा : "मम्मी! अगर मैं अपना नाम बदल कर फ़ारूक़ रख लूँ तो आपके नज़दीक कैसा रहेगा?" मैं पहले हैरत और फिर ख़ुशी के बेपनाह एहसास में डूब गई। मैंने उसे गले से लगा लिया, प्यार किया और इस्लाम की दावत पेश की तो उसने फ़ौरन ही कलिमा पढ़ लिया। फ़ारूक़ अब भी बाप के संरक्षण में है, मगर अक़ीदे का पक्का मुसलमान है। मेरी वह बहन जो मुझे पागल समझती थी, एक समारोह में उसने मेरा भाषण सुना तो सहसा बहुत प्रशंसा करने लगी। उम्मीद है, अल्लाह ने चाहा तो वह भी एक दिन इस्लाम क़बूल कर लेगी।

यह भी अल्लाह की मेहरबानी है कि अमेरिका में रहते हुए मैं बापर्दा ज़िन्दगी गुज़ार रही हूँ। इस देश में चेहरे पर नक़ाब डालकर इधर-उधर जाना तो संभव ही नहीं कि इससे बहुत-सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, किन्तु चेहरे और हाथों के अलावा मैं पूरे शरीर को ढीले-ढाले लिबास में छिपाए रखती हूँ और इसमें भी क़दम-क़दम पर भेदभाव और संकीर्णतापूर्ण व्यवहार किया जाता है। अन्दाज़ा कीजिए कि एक बार मैं इसी लिबास में एक बैंक में गई तो जब तक वहाँ रही, बैंक का गनमैन मेरे सिर पर राइफल ताने खड़ा रहा। एक पी०एच०डी० महिला सम्बन्धित नौकरी के लिए चुन ली गई, मगर उसे पहले ही दिन इसलिए छुट्टी दे दी गई कि वह पर्दे वाले लिबास में थी और इस प्रकार के उदाहरण अनगिनत हैं। एक बार मैंने रेडियों पर बच्चों का प्रोग्राम किया, उसे पुरस्कार के योग्य घोषित किया गया, मगर समारोह के एक दिन पूर्व जब कमेटी के सदस्यों से मुलाक़ात हुई और उन्होंने मुझे इस्लामी

लिबास में देखा तो बड़ी ढिठाई से उन्होंने पुरस्कार रद्द कर दिया।

बहरहाल, यह है अमेरिका का माहौल और ये हैं वे रुकावटें जिनमें रहकर मुझे दीन की तबलीग़ का काम करना पड़ रहा है। दुआ करें कि अल्लाह मेरे क़दम जमाए रखे और आख़िरी समय तक न केवल ख़ुद ईमान और यक़ीन से मालामाल रहूँ, बल्कि यह रौशनी दूसरों तक भी पहुँचाती रहूँ।

■ ■ ■ ■ ■

फ़रवरी 1990 ई० में सुश्री अमीना 'इंटरनेशनल यूनियन ऑफ़ मुस्लिम वीमेन' के अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने के लिए पाकिस्तान आईं और वहाँ उन्होंने पंजाब यूनीवर्सिटी के इस्लामियात विभाग, लाहौर महिला कॉलेज, कनयर्ड कॉलेज, कॉलेज फ़ॉर होम एंड सोशल साइंसेज़ और इस्लामाबाद की विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं में भाषण दिया। उन्होंने औरतों को ज़ोर देकर बार-बार समझाने की कोशिश की कि औरत का आदर और सम्मान पर्दे में है और औरत की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा है। उन्होंने बड़े अफ़सोस के साथ कहा : "मैं समझती थी कि पाकिस्तान का समाज इस्लामी रंग में रंगा होगा, मगर अफ़सोस कि यहाँ एयरपोर्ट पर उतरते ही मुझे मर्दों के अजीब व अनोखे व्यवहार का सामना करना पड़ा। वे औरतों को जिस ढंग से बेबाकी के साथ घूरते हैं, इस तरह तो अमेरिका के बेदीन (विधर्मी) समाज में भी नहीं होता। फिर यहाँ की औरतें यूरोपियन औरतों की नक़्क़ाली में मॉडर्निज़्म अपनाने की बड़ी शौक़ीन हैं। मैं उन्हें होशियार करती हूँ कि यूरोप के समाज का अनुकरण न करें। वहाँ की औरतें आज़ादी और बराबरी के अर्थ को नहीं समझ सकीं। उन्होंने जीवन के हर क्षेत्र में मर्दों के मुक़ाबले का अन्दाज़ अपनाया और नारीत्व को त्यागकर मर्दों की चाल-ढाल को अपना लिया, जिसका नतीजा यह हुआ कि आज यूरोप में औरत से ज़्यादा उत्पीड़ित कोई नहीं। वह अश्लीलता और असुरक्षा के गहरे गड्ढे में गिर गई है और जो कुछ उसके पास था वह भी खो दिया है। आज हाल यह है कि घर को क़ैदख़ाना समझकर दफ़्तरों की ज़िन्दगी अपनाने के नतीजे में उसे सुबह-सवेरे ही तेज़ी के साथ गाड़ियों का पीछा करना पड़ता है और ट्रेफ़िक की बेपनाह भीड़ में दो-दो घंटे की भाग-दौड़ के बाद अपने दफ़्तर में पहुँचती है। वहाँ दिन भर नौकरानी की तरह काम भी करती है और अपने बॉस की पलकों के इशारों

पर हर प्रकार का नागवार काम भी करती है। शाम को दोबारा ट्रेफ़िक की बाढ़ का मुक़ाबला करके घर आती है तो थकावट से इतना निढाल और ज़िन्दगी से इतना उकता जाती है कि अपने नन्हे–प्यारे बच्चे की बात का जवाब तक नहीं दे सकती। अमेरिका की औरतों के बच्चे 'डे केयर सेंटर्स' में पलते हैं, जहाँ वे लापरवाही का शिकार रहते और मानसिक रोगी बन जाते हैं। वहाँ साधुवाद और जादूगरी का ज़हर पिलाया जाता है, उन पर आपराधिक हमले होते हैं और माँ–बाप की मुहब्बत और पारिवारिक जीवन से वंचित होकर वे बचपन ही में नशे के आदी हो जाते हैं। इसलिए बहुत–से बच्चे नौ–दस साल की उम्र में आत्महत्या तक कर लेते हैं और पब्लिक स्कूल में फेल होने वाले बच्चों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। एड्स और समलैंगिकता आम है और अमेरिका की कुछ रियासतों में तो समलैंगिकता को क़ानूनी हैसियत हासिल हो चुकी है। बुढ़ापे में माँ–बाप बड़ी बेबसी की हालत में जीवन व्यतीत करते हैं और जैसे ही किसी औरत की उम्र 35 साल से बढ़ती है, उसे इस तरह नज़रअन्दाज़ किया जाता है कि वह ज़िन्दा लाश होकर मानसिक रोगी बन जाती है। इसलिए अमेरिका में मानसिक रोगों के अस्पताल रोगियों से भरे हुए हैं अर्थात् वहाँ न औरतों को सुकून हासिल है, न बच्चों को, न बूढ़ों को। फिर यह बात समझ में नहीं आती कि पाकिस्तानी औरतें और मर्द उस समाज को आइडियल या आदर्श क्यों समझते हैं ? और वही आचरण क्यों अपना रहे हैं, जिन्होंने अमेरिकी और यूरोपीय समाज को तबाह–बरबाद कर दिया है ?"

□□□

6. अमीना थॉमस

(भारत)

अमीना थॉमस दक्षिणी भारत के एक ईसाई पादरी की बेटी हैं। वे ख़ुद भी एक सक्रिय ईसाई धर्म-प्रचारक और हेल्थ केयर क्रिश्चियन फैलोशिप की सदस्या थीं। अल्लाह ने उन पर मेहरबानी की और उन्होंने विस्तृत अध्ययन और लम्बे सोच-विचार के बाद फ़रवरी, 2001 में इस्लाम क़बूल कर लिया। उनकी यह विचारोत्तेजक और प्राणवर्द्धक कहानी अंग्रेज़ी पत्रिका 'रेडियंस' साप्ताहिक, नई दिल्ली में प्रकाशित हुई, जहाँ से मलिक अहमद सरवर साहब ने उर्दू में अनुवाद किया और अपनी प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका 'बेदार डाइजेस्ट, लालौर' के अंक सितम्बर 2003 में प्रकाशित किया। मलिक साहब के शुक्रिये के साथ इसे किताब में शामिल किया जा रहा है।

■ ■ ■ ■ ■

मैं दक्षिणी भारत के एक प्रोटेस्टेंट ईसाई घराने में पैदा हुई और पली-बढ़ी। मेरे बाप शुरू में एक रोमन कैथोलिक ईसाई थे। बाइबल की शिक्षाओं की रौशनी में उन्होंने रोमन कैथोलिक ईसाइयत की समीक्षा की और महसूस किया कि रोमन कैथोलिक न केवल मूर्तियों की पूजा करते हैं, बल्कि अपने बुज़ुर्गों (महान हस्तियों : जैसे पादरी और बिशप आदि) को कष्टनिवारक और संकटमोचक समझकर उनसे सहायता माँगते हैं। बाइबल की शिक्षाएँ रोमन कैथोलिक सिद्धान्तों को नकारती थीं। इसलिए वे प्रोटेस्टेंट बन गए और एक स्थानीय चर्च में फुल टाइम मसीही प्रचारक नियुक्त कर दिए गए।

मैं स्वयं भी एक सक्रिय और ख़ुदापरस्त ईसाई थी। लेकिन अब मैं बहुत ख़ुश हूँ कि मैं एक मुस्लिम औरत हूँ। केवल संयोगवश मुसलमान नहीं बनी, बल्कि ख़ूब सोच-समझकर मैंने इस्लाम का चयन किया है। संसार के पालनहार, जिसने सही रास्ते अर्थात् इस्लाम की ओर मेरा मार्गदर्शन किया, उसका मैं जितना भी शुक्र अदा करूँ, कम है। मेरा इस्लाम क़बूल करना विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का परिणाम है। तुलनात्मक अध्ययन ने मेरे मन-मस्तिष्क को क़ायल किया कि इस्लाम ही एक सच्चा धर्म है और अल्लाह का अन्तिम

धर्म है। तुलनात्मक अध्ययन से में इस नतीजे पर पहुँची कि संसार के पालनहार और एकमात्र स्रष्टा अल्लाह पर ईमान रखने का तक़ाज़ा (अपेक्षा) है कि मैं इस्लाम क़बूल करके मुसलमान बन जाऊँ, यद्यपि मुझे इसके लिए सामाजिक जीवन में कितनी ही समस्याओं का सामना क्यों न करना पड़े। मैं एक सक्रिय ईसाई धर्म–प्रचारिका और हेल्थकेयर क्रिश्चियन फैलोशिप की सदस्या थीं। इस संगठन में मेडिकल फ़ील्ड स्टॉफ़ के वे सदस्य सम्मिलित थे, जिन्होंने अपना जीवन ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए समर्पित कर रखा था। उनके जीवन का उद्देश्य ग़ैर–ईसाइयों में ईसाई शिक्षाओं का प्रचार करना और उन्हें ईसाई बनाना था। ईसाई होने के नाते मैं सोचती थी कि ईसा मसीह की ख़ुशी हासिल करने के लिए ज़रूरी है कि ईसाई धर्म के प्रचार–प्रसार को मैं अपने लिए परम कर्तव्य समझूँ। लेकिन बचपन ही से मेरे मन में ईसाई धार्मिक सिद्धान्तों विशेषकर 'त्रिवाद का सिद्धान्त', ईसा मसीह की मौत और उनके दोबारा ज़िन्दा होने के बारे में कई सवाल उठते थे, जिनका जवाब मेरा अन्तर्मन चाहता था। ईसाई होने के नाते मुझसे यह आशा की जाती थी कि ईसाई पादरियों ने मुझे जो कुछ पढ़ाया है, विशेष रूप से न्यू टेस्टामेंट (new Testament) की शिक्षाओं पर मैं अंधा ईमान रखूँ, लेकिन बाइबल ने मुझे सन्देह में डाल दिया कि यह अल्लाह का कलाम (वाणी) है भी कि नहीं, क्योंकि इसकी शिक्षाएँ आपस में टकराती हैं। न्यू टेस्टामेंट की शिक्षाएँ ओल्ड टेस्टामेंट से टकराती हैं। सेंट पॉल की शिक्षाओं की, ईसाइयत आज जिनका अनुसरण (पैरवी) कर रही है, वे हज़रत मूसा (अलैहि०) और हज़रत ईसा (अलैहि०) दोनों की शिक्षाओं से टकराती हैं।

अल्लाह का सच्चा कलाम (वाणी) कौन–सा है ? ओल्ड टेस्टामेंट(Old Testament) या न्यू टेस्टामेंट (New Testament), इस बारे में मैं भ्रम का शिकार थी। अगर दोनों अल्लाह की सच्ची वाणी हैं तो ईसाई Old Testament के सिद्धान्त और नियमों का पालन क्यों नहीं करते, हालाँकि हज़रत मूसा (अलैहि०) ख़ुद ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) की शिक्षाओं के पाबन्द थे। त्रिवाद के सिद्धान्त के अनुसार हज़रत ईसा (अलैहि०) 'एक ख़ुदा में तीन' में से एक हैं। अगर वास्तव में ऐसा है तो फिर उन्हें पूरी दुनिया के गुनाहों की ख़ातिर फाँसी पर क्यों लटकना पड़ा ? अगर हज़रत ईसा (अलैहि०) 'एक ख़ुदा में तीन' में

एक हैं तो फिर किसे ख़ुश करने के लिए उन्होंने सलीब पर चढ़ना पसन्द किया? अगर त्रिवाद का सिद्धान्त ईसाइयत का महत्त्वूपर्ण और मौलिक स्तंभ है तो फिर शुरू के ईसाइयों (325 शताब्दी पूर्व) ने इसे अपने ईमान का हिस्सा क्यों नहीं बनाया? सेंट पॉल भी, जिसे ईसाइयत का वास्तविक और सच्चा संस्थापक माना जाता है, सच्चे ख़ुदा के बारे में कुछ नहीं जानता था। जब 318 शताब्दी पूर्व त्रिवाद के सिद्धान्त पर दो ईसाई पादरियों में विवाद बहुत अधिक बढ़ गया तो सिकन्दरिया का पादरी आर्यूस (Airus), बिशप अलेक्ज़ेंडर और कांस्टेंटाइन के बादशाह झगड़े में कूद पड़े, जब विवाद के हल के लिए बातचीत नाकाम हो गई तो कांस्टेंटाइन के बादशाह ने चर्च के इतिहास में पहली रोमन कैथोलिक कलीसाई कॉन्सिल(Ecumencial Council) का अधिवेशन आयोजित किया, ताकि वह इस समस्या को हल करे। 325 ई. सी. में 300 बिशप नाइसिया (Nicea) में एकत्र हुए और त्रिवाद के सिद्धान्त पर विचार-विमर्श किया। ईसाइयों के ख़ुदा के तीन स्वरूप और आकार सामने आए अर्थात् बाप, बेटा और रूहुल-क़ुदस (पवित्रात्मा)।

सवाल पैदा होता है कि हज़रत इबराहीम (अलैहि०) ने अल्लाह की ख़ुशी के लिए अपने बेटे की क़ुरबानी पेश की, मगर अल्लाह ने हज़रत इबराहीम (अलैहि०) को अपने बेटे का ख़ून न बहाने दिया, तो फिर उस (अल्लाह) ने अपने बेटे (त्रिवाद के सिद्धान्त के अनुसार हज़रत ईसा अल्लाह के बेटे हैं।) का ख़ून अपनी ख़ुशी के लिए क्यों बहने दिया?

हम आदम और हव्वा (अलैहि०) की संतान हैं। उन्होंने एक गुनाह किया और ईसाई धार्मिक विश्वास के मुताबिक़ प्रत्येक व्यक्ति पैदाइशी गुनाहगार है। जहाँ तक बाइबल की बात है, वह भी इस धार्मिक विश्वास की पुष्टि नहीं करती कि करे कोई भरे कोई। जैसे किताब यरमयाह के अध्याय 31 की आयत 30 में है : "फिर यूँ न कहें कि बाप-दादा ने कुछ अंगूर खाए और औलाद के दाँत खट्टे हो गए, क्योंकि हर एक अपने ही बुरे कर्म के कारण मरेगा। हर एक जो कच्चे अंगूर खाता है उसी के दाँत खट्टे होंगे।" बाइबल की किताब अहबार के अध्याय 24 की आयत 16 में है : "और तू बनी इसराईल से कह दे कि जो कोई अपने ख़ुदा पर लानत करेगा, उसका गुनाह उसी के सिर लगेगा।" किताब हिज़क़ीएल के अध्याय 16, आयत 20 में है : "जो जान

गुनाह करती है, वही मरेगी। बेटा बाप के गुनाह का बोझ न उठाएगा और न बाप बेटे के गुनाह का बोझ। सच्चे की सच्चाई उसी के लिए होगी और शरारत करनेवाले की शरारत, शरारत करने वाले के लिए।''

अगर ईसा मसीह 'एक ख़ुदा में तीन' में एक है तो फिर वे फाँसी पर क्यों चिल्लाए : ''ऐ मेरे ख़ुदा! ऐ मेरे ख़ुदा तूने मुझे क्यों छोड़ दिया?''

(मरकस, 15 : 34)

क्या कोई कल्पना कर सकता है कि उपर्युक्त शब्द किसी ख़ुदा के मुँह से निकल सकते हैं? यह तो मुसीबत और परेशानी में फँसे एक बेबस और लाचार आदमी की पुकार है, जिसमें वह अपने स्रष्टा और मालिक से मुख़ातिब है।

ये थे वे सन्देह और शंकाएँ, जो मेरे मन में ईसाइयत और बाइबल के बारे में पैदा हुईं और मेरा विश्वास इस धर्म पर से बुरी तरह डगमगा गया और मैंने सत्य की खोज के लिए दौड़-धूप शुरू कर दी। उस समय तक मैं इस्लाम के बारे में कुछ न जानती थी। एक दिन मेरी एक मुसलमान सहेली ने एम०ए० नबी की किताब 'क्रिश्चियन-मुस्लिम डायलॉग' और अहमद दीदात की किताब 'Choice : Islam and Christianity' तोहफ़े में दीं। दोनों किताबें मेरे जीवन में क्रान्ति का आधार सिद्ध हुईं। इन किताबों के अध्ययन से मैंने महसूस किया कि मुसलमानों के धार्मिक विश्वास के पीछे कोई ठोस सच्चाई है। इसके बाद मैंने इस्लाम और ईसाइयत का तुलनात्मक अध्ययन शुरू किया। मैंने देखा कि एक ग़ैर-मुस्लिम इस्लाम के बारे में जो विचार रखता है, इस्लाम उससे बिल्कुल अलग है। एक ग़ैर-मुस्लिम के रूप में मेरा यह ख़्याल था कि मुसलमान ऐसे कट्टर लोग हैं जो शान्ति पर विश्वास नहीं रखते। अध्ययन के बाद मुझे मालूम हुआ कि इस्लाम का तो अर्थ ही शान्ति और अपने आपको अल्लाह की मर्ज़ी के हवाले कर देना है। मेरी उस सहेली ने मुझे अहमद दीदात की कुछ और किताबें दीं और जमाअत इस्लामी हिन्द, दिल्ली के महान और उच्च श्रेणी के बुद्धिजीवियों और सदस्यों ने मेरे भ्रमों और सन्देहों को दूर करने की कोशिश की। मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी की किताब 'दीनयात' (इस्लाम धर्म) ने इस्लाम को एक सम्पूर्ण रूप में मेरे सामने रखा। इस अध्ययन ने मुझे बेचैन कर दिया कि सम्पूर्ण विश्व के रचयिता और पालनहार सर्वोच्च अल्लाह पर सच्चा ईमान रखनेवाली की हैसियत से मुझे अब क्या

करना चाहिए ? इसके बाद अल्लाह की मेहरबानी से मैंने क़ुरआन का अध्ययन शुरू कर दिया और फिर क़ुरआन ने बहुत जल्द मेरे सामने सच्चाई और यथार्थ को स्पष्ट कर दिया और पूरी तरह खोल कर रख दिया।

अल्लाह का शुक्र है अब मैं ख़ुश और संतुष्ट हूँ। मैं विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि क़ुरआन ने अल्लाह के बारे में उन सभी प्रश्नों का संतोषपूर्ण उत्तर दे दिया जो मेरे दिमाग़ में थे। क़ुरआन मजीद तो ख़ुद एक मोजज़ा और चमत्कार है। यह एक बेमिसाल और अनोखी किताब है। इसका यह अनोखापन शक और सन्देह से परे है। यह मनुष्य की रचना हरगिज़ नहीं है। यह तो किसी सर्वोच्च सत्ता की रचना है। इस किताब में इन्सानी ज़िन्दगी के हर पहलू को समेट लिया गया है। किसी आदमी का कोई निजी मसला हो या राजनीतिक या सामाजिक मामला, पवित्र क़ुरआन सबका सुन्दर हल पेश करता है। इसकी सर्वाधिक आश्चर्यजनक और प्रशंसनीय विशेषता यह है कि 1400 साल से भी अधिक समय बीत जाने के बाद भी इसमें किसी अक्षर तो क्या एक मात्रा या बिन्दु तक की कमी-बेशी नहीं हुई है। यह अल्लाह तआला का वादा है कि क़ियामत तक इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता और अल्लाह तआला ख़ुद ही इसका रक्षक है। अल्लाह तआला स्पष्ट शब्दों में कहता है कि

> ''इसको हमने उतारा है और हम ख़ुद ही इसकी सुरक्षा करनेवाले हैं।'' (क़ुरआन 15, 9)

और फ़रमाया :

> ''निश्चय ही यह प्रतिष्ठित क़ुरआन है। एक सुरक्षित किताब में अंकित है।'' (क़ुरआन 56, 77-78)

इसकी तुलना में बाइबल में लगातार फेर-बदल होते रहे हैं। ईसाई पादरी और विद्वान इसमें जोड़-घटाव करते रहे और इसमें अब इतना अधिक फेर-बदल हो चुका है कि इसे हम ख़ुदा का कलाम या ईशवाणी नहीं कह सकते। ईसाइयों की अधिकांश जनसंख्या बाइबल और इंजील के इतिहास से अवगत नहीं है। वे समझते हैं कि न्यू टेस्टामेंट (नियम की नवीन पुस्तक) में शामिल चारों इंजीलों के चारों लेखक मुरकुस, मत्ती, यूहन्ना और लूका हज़रत ईसा (अलैहि०) के हवारी (साथी) थे, लेकिन यह सही नहीं है। इनमें से कोई भी ईसा (अलैहि०) का समकालीन न था और न किसी ने सीधे तौर पर हज़रत

ईसा (अलैहि०) को नसीहत करते सुना। चारों इंजीलें 70वीं सदी और 115वीं सदी के मध्य में यूनानी भाषा में लिखी गईं, जबकि हज़रत ईसा (अलैहि०) की भाषा आरामी थी। सबसे पहले मुरकुस की इंजील लिखी गई और यह रोम में हज़रत ईसा (अलैहि०) को फाँसी दिए जाने के चालीस साल बाद लिखी गई। मत्ती की इंजील यूहन्ना 110वीं सदी और 115वीं सदी के बीच एफ़ीसस (Ephesus) में या उसके निकट दूसरी जगह किसी अज्ञात लेखक ने लिखी। यह सामी विरोधी था और इसने यहूदियों को ईसा मसीह के दुश्मन के रूप में पेश किया है।

इस्लाम के सम्बन्ध में मेरा अध्ययन जारी था कि बेहतर भविष्य के लिए मैं सऊदी अरब गई। यहाँ मैंने मुसलमानों और उनकी जीवन-शैली का बहुत क़रीब से निरीक्षण किया। यहाँ मैंने महसूस किया कि सर्वशक्तिमान ख़ुदा ने यहूदियों से अपनी बादशाहत छीनकर मुसलमानों को इसी लिए दी हुई है, जैसा कि ईसा मसीह ने भविष्यवाणी की थी : "इसलिए मैं तुमसे कहता हूँ कि ख़ुदा की बादशाही तुमसे ले ली जाएगी और उस क़ौम को, जो इससे फल लाए, दे दी जाएगी।"

सऊदी अरब में मुझे धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का सुनहरा मौक़ा मिला। लिट्रेचर, ऑडियो, वीडियों कैसिटों के अलावा चलते-फिरते ज़िन्दा प्रमाणों ने मेरी बड़ी सहायता की। ये जीवन्त प्रमाण वे मनुष्य थे, जिन्होंने सच्चाई और सत्य धर्म का रास्ता पाने के लिए बड़ी खोज और मेहनत की थी। जब उन्हें सीधी राह मिल गई तो उन्होंने ईसाइयत को अलविदा कहकर इस्लाम क़बूल कर लिया। उन लोगों की खोज और अनुभव मेरे लिए बड़े लाभदायक और मार्गदीप सिद्ध हुए।

अमेरिकी नवमुस्लिम श्रीमती ख़दीजा वॉटसन के साथ, जो किसी अमेरिकी यूनीवर्सिटी में धर्मशास्त्र (Theology) की प्रोफ़ेसर रह चुकी हैं, साक्षात् वार्तालाप आध्यात्मिक शान्ति की तलाश में मेरे लिए बड़ी लाभप्रद रही। इसी बीच मैंने उच्च शिक्षा-प्राप्त नवमुस्लिमों की जीवनियों का अध्ययन किया। इनमें प्रोफ़ेसर अब्दुल अहद दाऊद (पूर्व नाम रेवरेंड डेविड बेंजमीन कलदानी), एक बिशप और रोमन कैथोलिक पादरी, 'मुहम्मद इन दी बाइबल' का लेखक क़िसीस (पादरी) चार्ल्स विलियम पिकथॉल के बेटे 'मुहम्मद मारमाड्युक पिकथॉल

की कथाएँ' बड़ी महत्वपूर्ण थीं।

सबसे बड़ी समस्या, जिसका मुझे सामना था, वह यह थी कि मैं अपने आपको सही ढंग से इबादत करने के क़ाबिल न पाती थी। मैं यह तो समझ गई थी कि एक ही ख़ुदा हर चीज़ का रचयिता है, लेकिन मुझे यह यक़ीन नहीं था कि सच्चा एक ख़ुदा ईसाइयत में है या इस्लाम में। यह हक़ीक़त है कि दोनों धर्म एक–दूसरे के बहुत क़रीब हैं, मगर इबादत का ढंग बिल्कुल अलग है। अब फिर मैं क्या करूँ? यह सवाल मुझे लगातार परेशान कर रहा था। मैंने अपनी यह परेशानी अल्लाह के सामने पेश करने का फ़ैसला किया। मैंने दुआ करते हुए अल्लाह से विनती की : ''ऐ मेरे अल्लाह! मैं दुआ के लिए तेरे सामने हाज़िर हूँ। तुझसे अधिक मुझे कोई नहीं जानता। तू ही जानता है कि मैं क्या हूँ और कहाँ हूँ? मेरे दिल में क्या है और मैं क्या चाहती हूँ? लेकिन मैं नहीं जानती कि तेरी तरफ़ से इस्लाम और ईसाइयत में से किसको प्राथमिकता और वरीयता प्राप्त है, तू किसको पसन्द करता है? अब मैं ईसाई नहीं हूं, ईसाइयत में ख़ुदा की धारणा के बारे में मेरे दिमाग़ में शक और भ्रम पैदा हो चुके हैं और न मैं मुसलमान हूँ कि मैं एक मुस्लिम औरत की तरह ज़िन्दगी गुज़ार रही हूँ। ऐ मेरे अल्लाह! सही धर्म को चुनने में मेरा मार्गदर्शन कर। मैं केवल सच्चाई की तलाश में हूँ, इसलिए मुझे गुमराह होने से बचा ले। अगर ईसाई धर्म सच्चा है तो फिर मुझे इस पर जमा दे और इसके बारे में मेरे मन में जो शंकाएँ और भ्रम हैं, उन्हें दूर कर दे। अगर इस्लाम सच्चा है तो फिर इसकी सच्चाई की पुष्टि कर और मेरे दिल में इसको जमा दे। मेरी मदद कर और मेरे अन्दर इतनी हिम्मत पैदा कर दे कि मैं अपने भावी धर्म के रूप में उसको क़बूल कर लूँ।''

क़ुरआन और बाइबल के तुलनात्मक अध्ययन और सच्चे दिल से अल्लाह के सामने दुआ ने इस्लाम की ओर झुके हुए मेरे दिल को ताक़त दी और मैं अन्दर ही अन्दर मुसलमान हो गई। मैंने मुसलमानों की तरह नमाज़ पढ़नी शुरू कर दी। पूरी नमाज़ के दौरान में मैंने महसूस किया कि इस्लाम की सबसे ज़्यादा आकर्षक चीज़ नमाज़ ही है। ईसाइयत की नमाज़ में एक ईसाई ईसा मसीह के माध्यम से अल्लाह से भलाई और मुक्ति की प्रार्थना करता है। लेकिन इस्लाम में नमाज़ का मतलब है कि दुनिया की तमाम चीज़ों से कटकर

सर्वोच्च ख़ुदा का सामीप्य हासिल करना, उसकी प्रशंसा और बड़ाई बयान करना, उसके इनाम और मेहरबानियों पर उसका शुक्र अदा करना। केवल अल्लाह ही जानता है कि कौन-सी चीज़ हमारे लिए लाभदायक है और वही एक एकमात्र हस्ती है, जो हमारी ज़रूरतों को पूरा करती है।

1421 हिजरी के रमज़ान का भी मैंने अवलोकन किया। मैं तो इसको एक चमत्कार ही समझती हूँ, क्योंकि मेरे ख़्याल में मुसलमानों की तरह रोज़े रखना मेरे लिए असंभव था। मैंने प्रयोग के रूप में रोज़े रखने शुरू किए कि जान सकूँ कि क्या मैं इस्लाम के आदेशों का पालन कर सकूँगी या नहीं? अल्लाह का शुक्र है कि पूरे 30 रोज़े रखने में मैं कामयाब रही, किन्तु मैंने अब भी व्यावहारिक रूप से इस्लाम क़बूल नहीं किया, क्योंकि मैं अपने परिवार और सहेलियों की संभावित प्रतिक्रिया से भयभीत थी। मैं सोचती थी कि कहीं वे मुझे अपने आपसे दूर न कर दें और मैं अकेली न रह जाऊँ। इस भय के बावजूद क़ुरआन की निम्नलिखित आयतों ने मुझे इस्लाम क़बूल करने का एलान करने पर मजबूर कर दिया कि एक सच्चे मुसलमान के लिए इस भय की कोई अहमियत नहीं होनी चाहिए। इन आयतों में अल्लाह तआला फ़रमाता है :

> ''ऐ ईमान वालो! अपने बाप और अपने भाइयों को अपना संरक्षक न बनाओ, यदि ईमान के मक़ाबले में कुफ्र उन्हें प्रिय हो। तुममें से जो कोई उन्हें अपना संरक्षक बनाएगा, तो ऐसे ही लोग अत्याचारी होंगे। (ऐ पैग़म्बर!) कह दो : यदि तुम्हारे बाप, तुम्हारे बेटे, तुम्हारे भाई, तुम्हारी पत्नियाँ और तुम्हारे रिश्ते-नातेवाले और माल, जो तुमने कमाए हैं और वह कारोबार जिसके मन्दा पड़ जाने का तुम्हें भय है और वे घर जिन्हें तुम पसन्द करते हो, तुम्हें अल्लाह और उसके रसूल और उसके मार्ग में जिहाद करने से अधिक प्रिय हैं तो प्रतीक्षा करो, यहाँ तक कि अल्लाह तआला अपना फ़ैसला तुम्हारे सामने ले आए। और अल्लाह अवज्ञाकारियों को मार्ग नहीं दिखाता।'' (क़ुरआन, 9 : 23-24)

इन आयतों के अध्ययन से मैंने महसूस किया कि अल्लाह ने सीधी राह की ओर मेरी रहनुमाई कर दी है और अब ईसाइयत की ओर देखना मेरे लिए अच्छा न होगा। अतः अल्लाह का शुक्र है कि 12 ज़ीक़ादा, 1421 हिजरी (6 फ़रवरी, 2001) को इस्लामिक एजुकेशन सेंटर, ताइफ़ में मैंने शहादत का कलिमा पढ़ लिया। मैं अल्लाह का शुक्र अदा करती हूँ जिसने मेरा मार्गदर्शन किया और जिसकी मेहरबानी के कारण आज मैं मुसलमान हूँ। इस्लाम क़बूल करने से पहले और बाद में मुझे बहुत–सी समस्याओं का सामना करना पड़ा, लेकिन अल्लाह ने हर तरह की आलोचनाओं और अन्य कठिनाइयों का मुक़ाबला करने की मेरे अन्दर हिम्मत पैदा कर दी और इस्लाम धर्म पर मुझे जमा दिया।

□ □ □

7. अमीना एनी स्पीगेट

(Ameena Annie Spieget)

(इंग्लैण्ड)

मेरा पालन–पोषण चर्च ऑफ़ इंग्लैंड के धार्मिक माहौल में हुआ। मुझे ख़ूब याद है कि प्रत्येक रविवार वास्तव में 'इंग्लिश रविवार' होता था, जिसमें ईसाइयत के धार्मिक सिद्धान्तों और अवधारणाओं की बजाय अंग्रेज़ी परम्पराओं की मिलावट अधिक होती थी और इंग्लैंड में यह एक मज़बूत परम्परा का रूप धारण कर चुका था। फिर यह दिन इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता था कि इसमें बच्चों को निरन्तरता के साथ सिखाया जाता था कि आज तुम यह काम करोगे और यह नहीं करोगे, विशेष रूप से रविवार के दिन मामूली–सी शरारत को भी पसन्द नहीं किया जाता था और उस पर डाँट पड़ती थी, जबकि शेष दिनों में हर प्रकार की शरारतें जायज़ थीं और किसी को इन पर टोकने की ज़रूरत महसूस नहीं होती थी। रविवार को सुबह–सवेरे चर्च जाने की तैयारियाँ शुरू हो जाती थीं और इस सिलसिले में घर के बड़ों का उत्साह और उमंग देखने लायक़ होता था।

थोड़ी बड़ी और समझदार हुई तो मैंने सोचना शुरू किया तो दिमाग़ में तरह–तरह के सवाल सिर उठाने लगे। इन सबका सम्बन्ध धर्म और उसके विभिन्न पहलुओं से था, लेकिन अजीब बात है कि किसी के पास मेरे सवालों का जवाब न था। हर कोई जवाब में समझाने लगता कि इस तरह के सवाल करना गुनाह है। मेरी ओर से ज़िद बढ़ी तो बताया गया कि बाइबल ख़ुदा ने ख़ुद लिखी है तब मैंने पूछा कि क्या वाक़ई उसने क़लम से लिखी है ? अगर ऐसा है तो उसे लिखते हुए किसने देखा था ? और मूल प्रति कहाँ मौजूद है ? मेरे ये सवाल विशेष रूप से मेरी आया (Governess) को तो हिला–हिलाकर रख देते थे। वह कानों को हाथ लगाने लगती और डर से थर–थर काँपने लगती।

मुझे मेरे किसी सवाल का जवाब न मिलता तो मैं सोचने लगती कि यह

तो मूर्खता और नालायक़ी का एक प्रदर्शन है कि मैं ऐसे धर्म को अपनाए रहूँ जिस की मौलिक शिक्षाएँ न केवल कोई दलील न रखती हों, बल्कि अमल के क़ाबिल भी न हों।

निस्सन्देह मैं अपने ख़ुदा से गहरी मुहब्बत रखना चाहती थी। उसमें बड़ी दिलचस्पी रखती थी और उसे सही रूप में जानने की इच्छुक थी। लेकिन मैं ईसाइयत के इस अक़ीदे से समझौता न कर सकी कि सर्वशक्तिमान और दयावान ख़ुदा ने इतनी क्रूरता और शर्मनाक तरीक़े से अपने इकलौते बेटे को केवल दुनिया को बचाने के लिए मौत के घाट उतार दिया। घटनाओं के विवरण के अनुसार जिस तकलीफ़देह तरीक़े से हज़रत मसीह को सूली पर चढ़ाया गया और जिस मुसीबत का उन्हें सामना करना पड़ा, मेरी बुद्धि क़बूल ही नहीं करती थी कि इस संदर्भ में ख़ुदा सर्वशक्तिमान कैसे है और उसको दयावान और मेहरबान कैसे माना जा सकता है? इसलिए यह विचार बार-बार दिमाग़ को परेशान करता कि अगर ख़ुदा वास्तव में सर्वशक्तिमान (Almighty) है, तो उसने जानते-बूझते हुए एक बिल्कुल निर्दोष व्यक्ति का, जो उसका अपना बेटा भी हो, आम गुनाहगार लोगों के बदले में बेरहमी के साथ कैसे सूली पर चढ़ा दिया? फिर यही नहीं जब मैं अपने आसपास अनगिनत लोगों को पाप और अत्याचार में लथपथ देखती तो सहसा सोचने लगती कि क्या ये सब ज़ालिम और पापी लोग एक बेगुनाह व्यक्ति की मौत के बदले बख़्श दिए जाएँगे? यह सोच मुझे बेचैन कर देती और मैं हर जाननेवाले से पूछने लगती कि मुझे इस बारे में तर्कों द्वारा संतुष्ट करो। लेकिन मैंने देखा कि ईसाई कहलानेवाले कम से कम आधे लोग ऐसे थे जो उन धार्मिक विश्वासों और सिद्धान्तों को ठीक नहीं समझते थे, लेकिन चूँकि उनके पास इनका कोई बदल न था, इसलिए वे बेसोचे-समझे उन्हें सीने से लगाए हुए थे, बल्कि इनके बारे में उन्हें न कोई परवाह थी, न ही वे इस बारे में गंभीर थे।

रविवार को दोपहर के बाद हम लोग सवाल-जवाब की महफ़िल में शामिल होते या फिर बाइबल के स्तुति-खंड (हमदिया हिस्से) को गाकर पढ़ते। इस बीच मैं सोचती रहती कि काश! वास्तविक स्रष्टा के बारे में सत्य एवं तथ्यों पर आधारित बातें बयान की जाएँ और वे आधारहीन क़िस्से बग़ैर

सोचे–समझे तोते की तरह न रटाए जाएँ, जिन पर मैं यक़ीन ही नहीं रखती थी और जो बुद्धि के भी बिल्कुल विपरीत थे। मैं आदत के मुताबिक़ अपना असंतोष व्यक्त करती तो यह कहकर मुझे मानसिक रूप से संतुष्ट करने का प्रयास किया जाता कि बचपन में, वास्तव में, मेरे धार्मिक संस्कार की रस्म पूरी नहीं की जा सकी थी, जिसके कारण मेरे मन में तरह–तरह की शंकाएँ उठती रहती हैं.......हालाँकि यह केवल उनका एक बहकावा था, असल बात यह थी कि ईसाइयत का हर विश्वास और धारणा बुद्धि से परे है और किसी भी सोचने–समझने वाले को प्रभावित नहीं करता। इसलिए मसीह (अलैहि०) के शरीर और ख़ून वाली धार्मिक अवधारणा से मुझे हमेशा घृणा होती रही। प्रोटेस्टेंट इसे केवल प्रतीक और दृष्टिकोण के रूप में मानते हैं, जबकि कैथोलिक दावा करते हैं कि 'इशाए–रब्बानी की रोटी' वास्तव में हज़रत ईसा (अलैहि०) के शरीर और रक्त का रूप धारण कर लेती है। इशाए–रब्बानी (Secraments) की धारणा ने मुझे बहुत परेशान किया और मैंने मन में निश्चय कर लिया कि मैं बिशप से अपने समर्पित होने की पुष्टि नहीं कराऊँगी। ध्यान रहे कि इस धार्मिक रस्म के मुताबिक़ बच्चे जब बालिग़ होने लगते हैं तो बपतिस्मा दिए हुए ईसाई बच्चों के सिर पर हाथ रखकर पादरी उनके सच्चे और पक्के ईसाई होने की पुष्टि करते हैं।

बात रविवार की चल रही है तो उस दिन शाम के बाद तक तरह–तरह की रस्में जारी रहतीं, शाम के बाद सब मिलकर लय के साथ बाइबल के स्तुति गीत (हमदिया गीत) गाते हैं। चूँकि यह सब कुछ मुझे अच्छा नहीं लगता था और दिन भर एक ही तरह की बातों से मैं तंग आ जाती थी, इसलिए अक्सर शाम के इस प्रोग्राम में शामिल होने से इंकार कर देती थी। इससे घर के सब लोग चिढ़ते और मुझ पर ज़ोर डालते कि अगर मुझे इस पवित्र प्रोग्राम में भाग लेने की सद्बुद्धि नहीं है तो दूसरों को गुमराह करने से बेहतर है कि मैं जाकर सो जाऊँ अर्थात् रविवार जो दूसरों के लिए बड़ा पवित्र, उत्साह और उमंग से भरा दिन रहता था, मेरे लिए मुसीबत बन जाता था और मैं बड़ी बेदिली के साथ रविवार की धार्मिक गोष्ठी में शामिल होती थी और जो दिन सत्कर्म और पुण्य के लिए विशिष्ट था वह मेरे लिए अशुभ और कष्टदायक बन जाता था।

बाइबल ने न मेरे असंतोष को दूर किया, न ही मुझे शान्ति प्रदान की और न मेरी बेचारगी पर तरस खाकर मेरी कोई मदद की।

वास्तविकता यह है कि बाइबल के प्रति मेरे दिल में ज़रा भी सम्मान और प्रेम की भावना बाक़ी न रही और विशेषकर जब मैं व्यस्क (बालिग़) हुई और किसी चीज़ की अच्छाई–बुराई को परखने की सलाहियत मेरे अन्दर पैदा हो गई तो मैंने देखा कि बाइबल विरोधाभासी बातों का एक जंगल है, मनगढ़न्त, काल्पनिक और निराधार कहानियों का एक रेगिस्तान है और निरर्थक तथा असंभव बातों का एक ऐसा संग्रह है जिनको पढ़ते समय एक समझदार पाठक अरुचि और खिन्नता का शिकार हो जाता है। मन को शान्ति प्रदान करने का तो सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि उनमें शान्ति का तो दूर–दूर तक कहीं निवास ही नहीं था। इसलिए वे लोग जो बाइबल में लिखी हुई बातों के स्पष्टीकरण, और तर्जुमानी के ज़िम्मेदार थे अर्थात् पादरी......उनसे भी जब मैं बहस करती और आपत्ति करती तो मेरी बातों का उनके पास कोई जवाब न होता था और इसका कारण यह था कि बाइबल वास्तव में एक दर्जन विभिन्न लेखकों के विचारों और दृष्टिकोणों का संग्रह है। इसलिए विज्ञान और भूगर्भविज्ञान (Goelogy) दोनों इस बात की पुष्टि करते हैं कि बाइबल की किताब उत्पत्ति में मनुष्य की उत्पत्ति का जो वर्णन किया गया है, वह स्पष्ट रूप से असंभव बातों में से है। इसी प्रकार यह बात भी ऐतिहासिक रूप से सिद्ध हो चुकी है कि ज़बूर के पवित्र गीत हज़रत दाऊद (अलैहि०) ने नहीं लिखे थे और बाइबल के दूसरे भाग भी, जिन्हें विभिन्न महान लोगों से संबद्ध किया जाता है, वे उनके लिखे हुए नहीं हैं। बहरहाल, जब यह साबित हो चुका है कि बाइबल बहुत–से लेखकों के विचारों पर आधारित पुस्तक है तो इनमें से किसको विश्वसनीय समझा जाए?

बाइबल के बारे में यह था मेरा विचार। जिज्ञासा, जाँच–परख और खोज ने मुझे इस किताब और ईसाइयत से दूर कर दिया और ख़ुदा ने मुझे समझ–बूझ की शक्ति प्रदान की थी, इसलिए मैं सच्चाई की तलाश में सक्रिय हो गई और मैंने अध्ययन जारी रखा, यहाँ तक कि क़ुरआन के रूप में मुझे मंज़िल मिल गई। मुझे पता चला कि बाइबल के विपरीत क़ुरआन केवल एक व्यक्ति हज़रत

मुहम्मद (सल्ल०) के माध्यम से लोगों तक पहुँचा और सदियाँ गुज़रने के बावजूद हर तरह के बदलाव और विकृति से बिल्कुल सुरक्षित है। इसकी कोई शिक्षा सामान्य बुद्धि(Comman Sence) के विरुद्ध नहीं है, न इस पर उपन्यास या देवमालाइ (पौराणिक कथाओं) की छाप है......इस प्रकार क़ुरआन ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया और इस्लामी शिक्षाओं की सुन्दरता और उत्कृष्टता ने मेरे दिल में घर कर लिया। मैं पूरी तरह सोच–समझ कर इस्लाम की रहमत की शीतल छाया में आ गई और इस धर्म ने मुझे हर पहलू से प्रसन्न और संतुष्ट किया और वह हार्दिक शान्ति प्रदान की कि इसके लिए ख़ुदा का जितना भी शुक्र अदा करूँ, कम है। बाइबल ने मुझे जितनी अशान्ति दी थी, क़ुरआन ने मुझे उतनी ही शान्ति और वास्तविक आनन्द और उल्लास से भर दिया।

□ □ □

8. डॉक्टर अमीना कॉकसन

(Dr. Aminah Coxon)

(इंग्लैंड)

डॉक्टर अमीना कॉकसन का पैतृक नाम एन कॉकसन है। वे पेशे से डॉक्टर और स्नायुरोग विशेषज्ञ (Neurologist) हैं और लन्दन के दिल यानी हार्ट स्ट्रीट में उनका क्लीनिक है। उन्होंने लम्बे अध्ययन और सोच-विचार के बाद 1985 ई० में इस्लाम क़बूल किया। रियाज़ (सऊदी अरब) में प्रवासी मशहूर लेखक जनाब हनीफ़ शाहिद ने उनसे डाक के ज़रिये इस्लाम क़बूल करने के कारण मालूम किए और अपनी बहुमूल्य किताब "Why Islam is our only choice" (अर्थात् इस्लाम ही मेरी पसन्द क्यों है ?) में सुरक्षित कर दिए। निम्न लेख उसी इंटरव्यू का भावानुवाद है।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

मैं 11 अक्टूबर 1940 ई० को लन्दन के एक कैथोलिक घराने में पैदा हुई। मेरी माँ एक बड़े अमीर बाप की बेटी थी, जबकि पिता जी ब्रिटिश अमरीकन टुबैको कम्पनी के डायरेक्टर थे। हम दो बहन-भाई हैं। दोनों ने कैथोलिक बोर्डिंग स्कूलों में शिक्षा प्राप्त की। भाई आज कल अमरीका में एक मशहूर व्यापारी है। उसके तीन बच्चे हैं और वह कैथोलिक ईसाई की हैसियत से आज भी पाबन्दी से चर्च जाता है।

मेरे पिता को टुबैको कम्पनी की नौकरी के सिलसिले में कई साल का समय मिस्र में बिताना पड़ा। दो साल तक मुझे भी मुस्लिम देश में रहने का अवसर मिला और ग़ैर शऊरी तौर पर मैं मिस्रवासियों की सामाजिक ज़िन्दगी, सामान्य आचरण और रीति-रिवाजों से बहुत प्रभावित हुई। क़ाहिरा की सुन्दर मस्जिदों, उनके मीनारों और विशेष रूप से अज़ान की आवाज़ ने मेरे दिल और दिमाग़ पर गहरा प्रभाव डाला और ग़ैर महसूस तरीक़े से मेरा दिल उनकी ओर खिंचा चला गया। फिर मैं वापस इंग्लैंड आ गई और यहाँ मुझे एक स्कूल में दाख़िल करा दिया गया। कुछ सालों के बाद मेरे पिता भी मिस्र से लन्दन आ गए और उनकी रहनुमाई में मैं ज़िन्दगी के मैदान में आगे बढ़ने लगी...... मैं

मेहनती स्वभाव की हूँ। अतः मैंने हर परीक्षा में उल्लेखनीय कामयाबी हासिल की और एम०बी०बी०एस० के बाद रॉयल कॉलेज ऑफ़ मेडिसिन और यूनीवर्सिटी ऑफ़ लन्दन से न्यरॉलोजी (स्नायु रोग विज्ञान) में पोस्टग्रेजुऐट डिग्री भी हासिल कर ली। इसके साथ ही मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (Psycho-analytic) का कोर्स भी पूरा कर लिया।

पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद मैंने डॉक्टर एन० कॉकसन से शादी कर ली। बच्चे भी हुए, लेकिन दुर्भाग्य से यह शादी कामयाब न हो सकी कि मेरा पति एक भौतिकतावादी स्वार्थी इन्सान था। वह हम बीवी–बच्चों को ख़र्च के लिए कुछ भी न देता, बल्कि उल्टे धौंस जमाता रहता। नतीजा यह हुआ कि कुछ वर्षों के बाद मैंने उस व्यक्ति से तलाक़ ले ली।

1978 ई० में डॉक्टर साहिबा ने लन्दन की हार्ट स्ट्रीट में, जिसे मेडिकल रोड भी कहा जाता है, अपना क्लीनिक खोल लिया और प्राइवेट प्रेक्टिस शुरू कर दी। सौभाग्य से शुरू ही में कुछ मुसलमान मरीज़ औरतों से उनका संपर्क हुआ और वह यह देखकर बहुत हैरान हुईं कि ख़तरनाक बीमारियों और सख़्त तकलीफ़ की हालत में भी मुसलमान औरतें अत्यन्त साहस से काम लेती थीं और इसका कारण एक ईश्वर पर उनका यक़ीन और ईमान था। इस सिलसिले में वे विशेष रूप से दो मुसलमान मरीज़ औरतों से बहुत प्रभावित हुईं......पहली एक मुसलमान नवजवान लड़की थी, जो अपनी बीमार माँ को लेकर उनके क्लीनिक में आई। डॉक्टर ने ऐसे ही सरसरी तौर पर लड़की का निरीक्षण किया, तो पता चला कि वह तो छाती के कैंसर से पीड़ित है। लेकिन जब लड़की को इस भयानक बीमारी के बारे में बताया गया तो उसने फ़ौरन कहा : ''अल्लाह का शुक्र है। यह अल्लाह की हिक्मत है कि मैं आपके पास आई और मुझे इस बीमारी का पता चल गया।''

डॉक्टर अमीना के लिए यह अनुभव बड़ा आश्चर्यजनक था कि वह लड़की न घबराई, न रोई, न चिल्लाई। उसने बड़े सब्र और साहस से अल्लाह का शुक्र अदा किया और इस यक़ीन का इज़्हार भी कि अल्लाह की कृपा से वह स्वस्थ हो जाएगी। लड़की के इस व्यवहार से डॉक्टर बहुत प्रभावित हुई। इस धर्म के लिए उसके दिल में अचानक नर्म गोशा पैदा होने लगा, जिसने एक कमज़ोर लड़की को साहस और धैर्य की एक विशेष शक्ति प्रदान की थी।

इसी प्रकार 1983 ई० में उनका परिचय ओमान के सुलतान क़ाबूस की माँ से हुआ। वे मधुमेह की मरीज़ा थीं, लेकिन धीरज, गरिमा, और साहस उन पर ख़त्म था। वे शानदार शख़्सियत की मालिक एक ख़ूबसूरत महिला थीं। लेकिन प्रेम, ममता और सहनशीलता की साक्षात प्रतिमूर्ति थीं। हालाँकि निर्दय रोग ने उन्हें निचोड़ कर रख दिया था। इसके बावजूद उनकी ज़बान पर कभी भूलकर भी शिकायत का एक शब्द भी नहीं आया। इस बुज़ुर्ग बीमार महिला के आचरण ने भी डॉक्टर अमीना कॉकसन को असाधारण रूप से प्रभावित किया और इसके कारण वे गंभीरता से इस्लाम के बारे में सोचने लगीं।....और कुछ समय के अध्ययन और चिन्तन-मनन के बाद उन्होंने इस्लाम क़बूल कर लिया।

इस सवाल के जवाब में कि उन्होंने अपने पैतृक धर्म ईसाइयत को क्यों छोड दिया? उन्होंने बताया :

मैं पैतृक रूप से कैथोलिक थी। माँ और बाप दोनों कैथोलिक थे। मुझे भी बचपन में एक कैथोलिक स्कूल में दाख़िल कराया गया, जहाँ मेरे पिता की मौसी (ख़ाला) और कई चचेरी लड़कियाँ ननों की हैसियत से सेवा कर रही थीं। मैं भी बीस वर्ष की उम्र तक अपने पैतृक धर्म पर कठोरता से जमी रही, लेकिन जब सोचने-समझने की उम्र को पहुँची तो इन आस्थाओं के बारे में भ्रम और सन्देह पैदा होने लगे। मज़बूत दीवारों में दरारें पैदा होने लगीं। इसलिए यह सोचकर मुझे अपने आप से नफ़रत होने लगी कि यह मेरे बदतरीन गुनाह थे, जिनके बदले में हज़रत मसीह (अलैहि०) को सूली पर चढ़ाया गया और वे बहुत ही दर्दनाक मौत से दोचार हुए। इसी प्रकार इशाए-रब्बानी के बारे में यह सोचकर मुझे सहसा घृणा होने लगती कि यह ख़ाना वास्तव में हज़रत मसीह (अलैहि०) के गोश्त और उनके ख़ून पर सम्मिलित है और त्रिवाद (Trinity) की समस्या ने तो मुझे बहुत परेशान किया और ख़ुदा को तीन हिस्सों में विभाजित देखकर मैं भौंचक्का रह जाती। यह सोचकर भी मैं चिन्तित रहती कि मैं तो पैदाइशी गुनाहगार हूँ। फिर हज़रत मसीह से कैसे मुहब्बत का दम भर सकती हूं। बाइबल और ईसाइयत की ये धारणाएँ मेरे मन में उभरी रहतीं। जब भी ख़ाली होती, इन पर सोचने लगती और उलझन से मेरा सर फटने लगता। सहसा सोचने लगती कि ये सारी बातें तो बिल्कुल आधारहीन हैं,

जिनका बुद्धि और प्रकृति से कोई दूर का भी सम्बन्ध नहीं। फिर मैं ज़्यादा देर तक उनसे कैसे जुड़ी रह सकती हूँ? ......फिर ख़्याल आता कहीं मैं पथभ्रष्ट तो नहीं हो रही हूँ? कहीं मैं अपने धर्म से दूर तो नहीं जा रही हूँ? परेशान होकर सहसा ख़ुदा से दुआ करने लगती कि ''ऐ ख़ुदा! मेरा मार्गदर्शन कर। मुझे सच्चा और सीधा रास्ता दिखा। अगर तूने मेरी मदद न की तो मैं तबाह हो जाऊँगी, कहीं की नहीं रहूँगी।''

अतः अल्लाह तआला ने मेरी दुआएँ सुन लीं। मुझे सहारा दिया और सोते में मैंने एक के बाद एक तीन स्पष्ट सपने देखे, जिनमें कोई अस्पष्टता न थी और मुझे विश्वास हो गया कि हिदायत के लिए मेरी बेक़रारी और जिज्ञासा के नतीजे में ख़ुदा मेरा मार्गदर्शन कर रहा है। सपने में मुझे बताया गया कि (1) अल्लाह से सम्पर्क पैदा करने के लिए मुझे किसी पादरी के सहारे की आवश्यकता नहीं है, (2) इस्लाम ही सत्य धर्म और सीधा रास्ता है, (3) हज़रत ईसा और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) आपस में बड़ी गहरी समानता रखते हैं। दोनों जन्नत में इकट्ठे हैं, और हज़रत ईसा (अलैहि०) ने मुझे हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के हवाले कर दिया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं सत्य की खोज में बड़ी परेशान और बेचैन थी। किन्तु यह भी ख़्याल आता था कि मुझे अपने पैतृक धर्म से दूर नहीं होना चाहिए......लेकिन उपर्युक्त सपनों ने जिस मंज़िल की ओर इशारा किया, वह रास्ता इस्लाम का था। मेरी मुसलमान मरीज़ों ने मेरे दिल में इस्लाम के लिए और अधिक नर्म गोशा पैदा कर दिया। विशेष रूप से उनका यह विश्वास कि सब कुछ ख़ुदा की ओर से होता है और उसके हर काम में कोई न कोई हिकमत ज़रूर होती है, जबकि इसके विपरीत यूरोप में लोग हर अच्छे काम का क्रेडिट ख़ुद लेते हैं, बुरे नतीजे को ख़ुदा से सम्बद्ध कर दिया जाता है।

इस सम्बन्ध में विशेष रूप से ओमान के सुलतान क़ाबूस अल सईद की आदरणीया माँ से बेहद प्रभावित हुई। वे मेरी मरीज़ा थीं। बुढ़ापे, कमज़ोरी और सेहत की ख़राबी के बावजूद वे हर एक से मुस्कुरा कर मिलतीं और हर ज़रूरतमन्द पर खुले दिल से धन निछावर कर देतीं। वे बहुत तकलीफ़ में थीं, इसके बावजूद उन्होंने कभी भी शिकवा-शिकायत का अन्दाज़ नहीं अपनाया, बल्कि बात-बात पर वे अल्लाह का शुक्र अदा करतीं........और जब मैं पूछती

कि बीमारी की इन्तिहाई तकलीफ़ में कौन–सी चीज़ उन्हें इत्मीनान और उम्मीद से जोड़े हुए है तो वे एहतिराम और मुहब्बत के गहरे एहसास से अल्लाह का नाम लेतीं कि वही महान हस्ती है जिसकी मेहरबानी उन्हें मायूस नहीं होने देती। वे पूरे विश्वास के साथ कहतीं : ''अल्लाह तआला दयालु और कृपालु (रहमान और रहीम) है। वही इन्सानों को विभिन्न प्रकार की नेमतों से नवाज़ता है और वही किसी हिकमत के तहत किसी तकलीफ़ से दोचार करता है। मैं उसकी प्रसन्नता पर प्रसन्न हूँ अपनी तकलीफ़ से परेशान नहीं हूँ।'' वास्तव में सुलतान क़ाबूस की माँ एक आदर्श मुसलमान महिला थीं।

.......उन्होंने मुझे इस्लाम से बहुत क़रीब कर दिया। अगरचे तीन स्पष्ट सपने देखने के बावजूद मैं अभी तक अपने आपको इस्लाम क़बूल करने पर तैयार न कर पाई थी, लेकिन रमज़ान आया तो मैं उस आदरणीय महिला की प्रेरणा से रोज़े रखने लगी और पहली बार सच्ची हार्दिक शान्ति से परिचित हुई।

एक साल इसी प्रकार बीत गया। दूसरा रमज़ान आनेवाला था कि कुवैत के एक मुसलमान परिवार से मेरा परिचय हुआ, यूसुफ़ अल–ज़वावी, घर के मुखिया, बहुत बीमार थे, लेकिन रोगी और उसके परिवार के अन्य सदस्यों का ख़ुदा पर यक़ीन और ईमान देखकर मैं दंग रह गई। ये लोग भी साहस, धीरज, प्रेम और नि:स्वार्थ का बहुत सुन्दर नमूना थे। पश्चिमी घरानों के विपरीत सब एक दूसरे पर जान छिड़कते और घर के मुखिया के स्वास्थ्य लाभ के लिए कोई कसर उठा न रखते......मैंने अपने पेशे के तक़ाज़ों का ख़्याल रखते हुए रोगी का विशेष ध्यान रखा। उसका वे ख़ूब सम्मान करते.... एक दिन आभार प्रकट करते हुए यूसुफ़ अल–ज़वावी ने कहा : ''मैं आपकी सेवा और एहसानों का शुक्रिया कैसे अदा करूँ? जी चाहता है कि सारी दौलत आपके क़दमों में ढेर कर दूँ.......जी चाहता है कि आपको अपनी बहू बना लूँ, आपको अपने परिवार का सदस्य बना लूँ।''

''लेकिन मैं तो इनसे भी अधिक क़ीमती चीज़ की अभिलाषी हूँ।'' मैंने जवाब में जिज्ञासा पैदा की।

''वह क्या है?'' यूसुफ़ और उसका सारा परिवार परेशान हो गया। ''आप मुझे मुसलमान बना लीजिए, अपने धर्म में दाख़िल कर लीजिए।'' मेरी

बात सुनकर उस घराने का अजीब हाल हुआ। ख़ुशी से उनकी चीख़ें निकल गईं। यूसुफ़ की आँखें बे-इख़्तियार छलक पड़ीं और सभी लोग ख़ुशी के ग़ैर मामूली एहसास से भर गए। दूसरे दिन मैंने कलिमा तैयबा पढ़ा और एक मुसलमान की हैसियत से रमज़ानुल मुबारक के सारे रोज़े रखे। नमाज़ों में बड़े ज़ौक़ व शौक़ से शामिल होती रही....अल्लाह का शुक्र है, मुझे मेरी मंज़िल मिल गई। एक गिरा हुआ इन्सान उठकर खड़ा हो गया और अंधेरों में भटकती हुई आत्मा उज्जवल, स्पष्ट और सरल राजमार्ग पर आ गई। सोचती हूँ कि अल्लाह के महान उपकार का शुक्र कैसे अदा करूँ ? वह ज़बान कहाँ से लाऊँ जो उसकी तारीफ़ करे ?

□ □ □

9. बेगम अमीना लाखानी

(अमेरिका)

बेगम अमीना लाखानी का सम्बन्ध ओहियो अमेरिका से है। उन्होंने 1991 में इस्लाम क़बूल किया।

■ ■ ■ ■ ■

जब मेरी तरह यूरोप की कोई औरत इस्लाम क़बूल करती है, तो पहले-पहल उसे मानसिक और व्यावहारिक रूप से ऐसी असाधारण कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना पड़ता है कि जिनका वर्णन करना संभव नहीं है। धर्म बदलने के नतीजे में जिस नये जीवन का आरम्भ होता है, उससे इन्सान अनगिनत नई जानकारियाँ प्राप्त करता है और सबसे बढ़कर यह कि एक औरत पर यह नई वास्तविकता प्रकट होती है कि अल्लाह तआला के इस विशाल जगत में औरत का क्या महत्व और स्थान है ?

यूरोपीय कलचर औरतों को अपने उद्देश्यों के लिए इस्तेमाल करता है और इस सम्बन्ध में टी०वी० के विज्ञापनों से बहुत काम लिया जाता है। इन विज्ञापनों में अनगिनत तरीक़ों से, विशेष रूप से औरतों को प्रेरित किया जाता है कि जीवन सुन्दरता, आकर्षण और मनोरंजन का नाम है और इस हवाले से उन्हें अपनी इच्छाओं की परवरिश करनी चाहिए। अतः स्मार्ट रहना मानो यूरोप में आइडियल समझा जाता है और इसका बुनियादी सबब यह है कि एक दुबली-पतली स्मार्ट औरत जब लिबास पहनती है तो उसका हर दिखाई पड़ने वाला अंग देखने वालों से दाद वुसूल करता है। यह अलग बात है कि उसकी बुद्धि उसकी दाद तलबी के नीचे दबकर दम तोड़ देती है। अतः यूरोप में ऐसी किताबें लाखों की संख्या में प्रकाशित होती हैं जिनके शीर्षक इस प्रकार के होते हैं, 'सेक्स सिम्बल बनने के तरीक़े', 'दोस्तियाँ केसे लगाई जा सकती हैं ?' आदि। ये किताबें आम तौर पर वे बदनसीब लड़कियाँ ख़रीदती और उनसे फ़ायदा उठाती हैं जो सुन्दरता और व्यक्तित्व की दृष्टि से अपेक्षाकृत कम सुन्दर होती हैं और समाज में सामान्य हालात में अपनी क़ीमत वुसूल करने की योग्यता नहीं रखतीं। यूरोप में भोग-विलासिता और मनोरंजन की हर चीज़

की इच्छा की जाती है और हर चीज़ की एक क़ीमत है। इस माहौल और सिस्टम में औरत भौतिक दृष्टि से ख़ूब इस्तेमाल होती है और जवाब में वह भी दूसरों को ख़ूब इस्तेमाल करती है। सारा सिस्टम ही इसी ढब पर चलता है और मैं भी इस्लाम क़बूल करने से पूर्व इसी धारा में बहती चली जा रही थी।

सच्ची बात यह है कि सारे भोग–विलास और मनोरंजन के बावजूद मेरी आत्मा को शान्ति नसीब नहीं थी। यूँ लगता था जैसे मैं एक शून्य में लटकी हूँ और किसी समय भी ज़मीन पर गिरकर मेरा वुजूद टुकड़े–टुकड़े हो जाएगा। मेरा मन पुकार–पुकार कर कहता था कि इस जगत का कोई मालिक और रचयिता है और वही आत्मा को सच्ची सन्तुष्टि प्रदान कर सकता है। लेकिन ईसाइयत की आस्थाएँ विभिन्न वस्तुओं व सम्मिश्रण से कम न थीं और किसी प्रकार बुद्धि को अपील न करती थीं......तंग आकर मैंने अन्य धर्मों के अध्ययन का फ़ैसला किया और ख़ुदा का शुक्र है कि मैंने जल्द ही लक्ष्य को प्राप्त कर लिया।

सौभाग्य से सबसे पहले मेरा परिचय पवित्र क़ुरआन से हुआ। फिर मैंने इस्लाम के बारे में अन्य किताबों का अध्ययन किया और यह देखकर हैरान रह गई कि इस्लाम की शिक्षाएँ तो बड़ी सादा हैं। इसके विपरीत विभिन्न बनावटी ज़रूरतों और झूठी इच्छाओं ने यूरोप के कलचर में जीवन को अन्तिम सीमाओं तक कठिन और पेचीदा बना दिया है। शुरू में मुझे इस्लाम एक पश्चिमी औरत के लिए अव्यावहारिक महसूस हुआ, इसलिए कि इस माहौल में प्रत्येक व्यक्ति दिखावा, बाहरी चमक–दमक, शान–शोकत, भोग–विलास और आनन्द ही को जीवन की अनिवार्यता समझता है और जिस जीवन–शैली में ये सुविधाएँ न हों यूरोप में उसको ख़राब और मूर्खतापूर्ण जीवन समझा जाता है। अत: अन्दाज़ा कीजिए कि इस्लाम को अपनाने के लिए मुझे सोच–विचार और आचरण के सारे ही साँचों को बदलना पड़ा।

इस्लाम तार्किक और प्रामाणिक धर्म है। इसकी कोई शिक्षा भी मानव–स्वभाव और तर्क के विरुद्ध नहीं। लेकिन चूँकि मैंने एक लम्बी अवधि एक ऐसे माहौल में गुज़ारी थी, जहाँ आज़ादी के नाम पर वास्तव में मनुष्य के अन्त:करण को अपमान और तिरस्कार का निशाना बनाया जाता है। इसलिए व्यक्तिगत और क्षणिक इच्छाओं को त्याग कर अल्लाह के दामन में पनाह

लेना मेरे लिए उत्साहवर्द्धक भी था और भय का कारण भी। आइने में अपनी सूरत और मुस्कुराहट देखकर ख़ुशी से फूल जाना बड़ा आसान है, लेकिन अपनी आत्मा में झांकना और अल्लाह के बिना और किसी पवित्र उद्देश्य के बिना अन्तरमन के शून्य को जाँचना बड़ा ही मुश्किल काम है। इसी लिए हर संभव निःस्वार्थता और भावना के बावजूद इस्लाम की ओर क़दम बढ़ाना साहस की माँग भी करता है और दृढ़ विश्वास की भी। निस्सन्देह मुझे भी इस मानसिक परीक्षा से गुज़रना पड़ा। लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की हिदायत के मुताबिक़ मैंने ईमान, साहस, स्थायीत्व और नमाज़ों से काम लिया और मंज़िल को पा लिया।

इस्लाम वह सम्पूर्ण जीवन व्यवस्था है, जिसमें मानव जीवन की पवित्रता पर ज़ोर दिया जाता है। व्यक्तिगत जीवन की दृष्टि से भी और पारिवारिक जीवन की दृष्टि से भी......विशेष रूप से अल्लाह की नज़र में औरत की एक ख़ास हैसियत है, जबकि पश्चिमी समाज में यह केवल व्यावसायिक प्रचार-प्रसार का साधन है। अतः इस्लाम में औरत के शोषण की बिल्कुल कोई गुंजाइश नहीं। यहाँ कारोबारी उद्देश्यों के लिए न औरत को बेचा जाता है, और न इस हवाले से उसका अपमान और तिरस्कार किया जाता है। इस्लाम की शरण में आने वाली एक औरत को समझ लेना चाहिए कि औरतों का प्रचार-प्रसार के लिए दिखावे और प्रदर्शन में भाग लेना बहुत बड़ा गुनाह है, और उन्हें आँखें बन्द करके गुनाह की इस घाटी में नही कूद जाना चाहिए। उन्हें एहसास कर लेना चाहिए कि वह खिलौना नहीं, जिन्हें भोगवादी लोग जिस प्रकार चाहें इस्तेमाल करते फिरें, बल्कि वे समाज का बहुत आदरणीय और सम्मानित अंग हैं और उन्हें पारिवारिक और सामाजिक जीवन में बड़ी ही रचनात्मक भूमिका निभानी है। इस दृष्टि से उन पर बहुत ही नाज़ुक ज़िम्मेदारी डाली गई है। इसलिए एक मुसलमान औरत को शराब, नशे और यूरोपियन कल्चर की अन्य अनैतिकताओं से दूर रहना होगा। दुर्भाग्य से टी०वी०, रेडियो, अख़बार, फिल्म और ड्रामे दिन रात गुनाह करने पर उकसाते हैं कि भोग-विलास और मनोरंजन वास्तविक जीवन है और शराब और औरत ही आनन्द की प्राप्ति का बेहतरीन साधन हैं। अतः हालत यह है कि यूरोप में लोग अपने पड़ोस में ऐसे व्यक्ति या घराने को क़बूल करने पर तैयार नहीं होते जो उनकी अय्याशी में

सहायक नहीं बनते। इस स्थिति में केवल ईमान, साहस, स्थायित्व और नमाज़ें ही एक मुसलमान का सहारा बनतीं और नेकी के रास्ते पर उसे जमाए रखती हैं।

एक मुसलमान महिला को अन्य औरतों के मुक़ाबले में कहीं ज़्यादा मज़बूत और विश्वास से भरी होना चाहिए। उसे यक़ीन होना चाहिए कि वह ख़ुशक़िस्मत है जिसे ईमान की दौलत प्राप्त हो गई। जबकि काफ़ी औरतें बेचारी अभागिन और दयनीय हैं कि अंधेरों में भटक रही हैं। इसलिए यूरोप के समाज में आज मुसलमान बनकर रहना बहुत बड़ी नाज़ुक ज़िम्मेदारी है, जिसको अगर उचित ढंग से पूरा किया जाए तो अल्लाह की ओर से ख़ैर और बरकत का साधन बन सकती है। अगर एक मुसलमान औरत अपने कर्म और चरित्र से, अपने पूर्ण ईमान और दृढ़ विश्वास से किसी एक औरत को भी इस्लाम के दायरे में ले आती है, तो दुनिया और आख़िरत के दृष्टिकोण से यह बहुत बड़ी सेवा होगी। अल्लाह का शुक्र है कि इस माहौल में एक मुसलमान महिला की भूमिका निभाने की अपनी–सी कोशिश कर रही हूँ। अल्लाह से दुआ है कि वह हमें नेकी पर जमे रहने और बदी से बचने की तौफ़ीक़ प्रदान करे कि दुनिया और आख़िरत की सारी कामयाबियाँ इसी में निहित हैं।

□ □ □

10. लेडी बार्न्स

(इंगलैण्ड)

इस घटना को अल्लामा इक़बाल ने बयान किया है।

अन्तरात्मा को जगा देनेवाली यह दास्तान अल्लामा इक़बाल मरहूम की फ़रमाइश पर लिखी जाने वाली किताब 'इस्लाम ज़िन्दाबाद' में छपी थी और वहीं से नक़ल की जा रही है।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

हकीमुल उम्मत अल्लामा इक़बाल ने बयान फ़रमाया : मिस्टर दाऊद आप्स की तरह लेडी बार्न्स का इस्लाम क़बूल करना भी अपने अन्दर आश्चर्य के कई पहलू रखता है। आप एक नवमुस्लिम अंग्रेज़ सैनिक की बीवी थीं। कुछ वर्षों की बात है ये दोनों पति-पत्नी एक मुक़दमे में फँस कर मेरे पास आए। चूँकि आरोप सरासर झूठे थे, इसलिए अदालत ने इन्हें बाइज़्ज़त बरी कर दिया, चूँकि अधिवक्ता की ज़िम्मेदारी मैंने अदा की थी। इसलिए कुछ दिनों बाद लेडी बार्न्स मुझे धन्यवाद देने के लिए लाहौर आईं। उस समय मैंने सवाल किया, "लेडी साहिबा! आपके इस्लाम क़बूल करने के कारण क्या हैं ?"

"मुसलमानों के ईमान की दृढ़ता, डॉक्टर साहब!" उन्होंने जवाब दिया और स्पष्टीकरण में एक घटना का उल्लेख किया :

"डॉक्टर साहब, मैंने देखा है कि दुनिया भर में कोई भी क़ौम ऐसी नहीं है, जिसका मुसलमानों की तरह ईमान मज़बूत हो। बस यही चीज़ मुझे इस्लाम की शीतल छाया में ले आई।" लेडी बार्न्स ने कुछ सोचा और कहा "डॉक्टर साहब, मैं एक होटल की मालिक थी। मेरे होटल में एक सत्तर वर्षीय बूढ़ा मुसलमान नौकर था। उस बूढ़े का बेटा बहुत ही ख़ूबसूरत नवजवान था। एक संक्रामक रोग में उस लड़के का देहान्त हो गया तो मुझे अत्यन्त दुख हुआ। मैं बूढ़े के पास सांत्वना के लिए गई, उसको तसल्ली दी और उसके सामने अपना दिली रंज और ग़म प्रकट किया। बूढ़ा बड़े ही अप्रभावी ढंग से मेरी बातें सुनता रहा और जब मैं ख़ामोश हो गई तो उसने बड़े कृतज्ञ भाव से आसमान की ओर उंगली उठाई और कहा, "मेम साहिबा! यह ख़ुदा की तरफ़ से है। ख़ुदा की

अमानत थी, ख़ुदा ने ले ली। इसमें दुखी होने की क्या बात है। हमें तो हर हालत में दयावान प्रभु का शुक्रिया अदा करना ज़रूरी है।''

''डॉक्टर साहिब! बूढ़े का आसमान की ओर उंगली उठाना मेरे दिल में हमेशा के लिए समा गया। मैं बार–बार उसके शब्दों पर विचार करती थी और हैरान थी कि 'ऐ प्रभु! इस दुनिया में इस प्रकार के धैर्यवान, कृतज्ञ और संतुष्ट हृदय भी मौजूद हैं। जिज्ञासा पैदा हुई कि बूढ़े ने ऐसा दृढ़ता पूर्ण हृदय कैसे पाया? इसी उद्देश्य से मैंने पूछा कि क्या मृतक के बीवी–बच्चे भी हैं? वह कहने लगा : 'एक बीवी है और एक छोटा–सा बच्चा।' बूढ़े के इस जवाब ने मेरी हैरत को कम कर दिया, मैंने उसकी हार्दिक सन्तुष्टि का कारण यह समझा कि चूँकि पोता मौजूद है, इसलिए वह उसकी ज़िन्दगी और मुहब्बत का सहारा बनेगा।''

इस घटना को ज़्यादा दिन नहीं बीते थे कि अनाथ बच्चे की माँ भी चल बसी। इससे मेरे दिल को बहुत तकलीफ़ हुई। बूढ़े के बेटे की बीवी का ग़म मेरी बुद्धि पर छा गया। सांत्वना के लिए मैं उसके गाँव रवाना हुई। उस समय भावनाओं और विचारों की एक दुनिया मेरे साथ थी। सोचती थी कि इस ताज़ा मुसीबत ने बूढ़े की कमर तोड़ दी होगी। वह होश–हवास खो चुका होगा। अनाथ बच्चे की कम उमरी उसको निढाल किए दे रही होगी। मैं इन्हीं ख़्यालों में डूबी हुई बूढ़े के घर पहुँची तो वह सिर झुकाए लोगों की भीड़ में बैठा था। मैंने उसकी ताज़ा मुसीबत पर अफ़सोस ज़ाहिर किया और उसे अपनी हमदर्दी का यक़ीन दिलाया। बूढ़ा मेरी सहानुभूति भरी बातें बड़े सुकून से सुनता रहा, लेकिन उसके जवाब की नौबत आई तो उसने फिर अपनी उंगली आसमान की ओर उठा दी और कहा मेम साहिबा, ख़ुदा की मर्ज़ी में कोई इन्सान दम नहीं मार सकता। उसी की चीज़ थी, और उसी की ओर लौट गई। हमें हर हाल में उसी का शुक्रिया अदा करना चाहिए।

''डा० साहिब'' लेडी बार्न्स ने बेहद हैरत के अन्दाज़ में कहा, ''मैं जब तक बूढ़े के पास बैठी रही, न उसके सीने से आह निकली, न आँख से आँसू गिरा और इस प्रकार इत्मीनान की बातें करता था, जैसे उसने अपने इकलौते बेटे और बहू को ज़मीन में दफ़न नहीं किया, बल्कि कोई फ़र्ज़ अदा किया है। थोड़ी देर के बाद मैं वापस लोट आई, मगर रास्ते भर बूढ़े के ईमान की दृढ़ता

पर विचार करती रही। यह ख़्याल मुझे तंग करता था और आश्चर्य चकित भी कि इतनी बड़ी मुसीबत में किसी इन्सान को यह मज़बूती, सब्र और शुक्र की नेमत कैसे हासिल हो सकती है?''

दुर्भागय से कुछ ही दिनों बाद बूढ़े का मासूम पोता भी चल बसा। इस सूचना के बाद मैंने अपने आँकलन की सभी योग्यताओं को नए सिरे से जमा किया और बेक़रारी के आलम में उसके पास गाँव पहुँची। मुझे विश्वास था कि अब लावारिस बूढ़ा धैर्य खो चुका होगा। उसका दिल और दिमाग़ बेकार हो चुका होगा और निराशा उसकी आशाओं के सभी रिश्तों को काट चुकी होगी। मगर यह देखकर ख़ुद मेरे होशो-हवास जवाब देने लगे कि बूढ़ा उसी सुकून की हालत में है, जिसका अनुभव मैं दो बार कर चुकी थी। मैंने बड़ी हमदर्दी के साथ उसकी मुसीबतों पर दुख व्यक्त किया। वह सिर झुकाए मेरी बातें सुनता रहा। कभी-कभी उसके सीने से आहों की आवाज़ भी आती। वह अत्यन्त दुखी भी था। मगर मेरे चुप होने पर उसने अत्यन्त धैर्यपूर्वक कहा, ''मेम साहिबा, ये सब ख़ुदा की हिकमत के खेल हैं। उसने जो कुछ दिया था ख़ुद ही वापस ले लिया है। इसमें हमारा था ही क्या? फिर हम अपने दिल को बुरा क्यों करें? बन्दे को हर हाल में ख़ुदा का शुक्र ही अदा करना चाहिए। हम मुसलमानों को यही आदेश है कि अल्लाह की मर्ज़ी पर सब्र करें।''

लेडी बार्न्स दिल के दर्द की कैफ़ियतों से पूर्ण थीं। उसने अपना दायां हाथ उठाया और रुँधी हुई आवाज़ में कहा, ''डॉक्टर साहिब! बूढ़े का यह जवाब मेरे लिए क़त्ल का पैग़ाम था। उसकी उंगली आसमान की ओर उठी हुई थी। मगर नश्तर बनकर मेरे दिल में उतर गई थी। मैंने उस कमज़ोर आदमी के दृढ़ विश्वास के सामने हमेशा के लिए सिर झुका दिया। मुझे यक़ीन हासिल हो गया कि बूढ़े का यह दिल का इत्मीनान बनावटी नहीं, वास्तविक है। अब वह गाँव में अकेला था। मैंने उसको अपने साथ चलने की दावत दी। उसने शुक्रिया अदा किया और बेतकल्लुफ़ मेरे साथ होटल में चला आया। यहाँ वह दिन भर होटल में काम करता और रात को ख़ुदा की याद में लग जाता था।

कुछ समय के बाद एक दिन बूढ़े ने क़ब्रिस्तान जाने का इरादा किया। जिज्ञासा मुझे भी साथ ले गई। मैं देखना चाहती थी कि अब उसकी भावनाएँ क्या रूप धारण करती हैं। क़ब्रिस्तान पहुँचकर वह टूटी-फूटी क़ब्रों को ठीक

करने लगा। वह मिट्टी खोद-खोद कर लाता और क़ब्रों पर डालता। फिर वह पानी ले आया और क़ब्रों पर छिड़काव करने लगा। इसके बाद उसने वुज़ू किया, हाथ उठाए और क़ब्रिस्तान वालों के लिए दुआ करके वापस चल दिया। मैंने इस पूरी अवधि में बड़ी एहतियात से उसकी हरकतों और व्यवहार का निरीक्षण किया और महसूस किया कि उसके हर काम में इत्मीनान की रौशनी और ईमान की मज़बूती अपना जल्वा दिखा रही है। मेरे दिल में वह चिंगारी जो एक लबे समय से धीरे-धीरे सुलग रही थी यकायक भड़क उठी। विश्वास हो गया कि यह बूढ़े की ख़ूबी नहीं, बल्कि उस सत्य धर्म (दीने-हक़) का कमाल है, जिसका यह बूढ़ा अनुयायी है। मैंने उसी समय मुसलमान होने का अन्तिम निर्णय ले लिया और होटल में पहुँच कर उससे कहा कि वह कोई ऐसी मुसलमान औरत बुला लाए जो मुझे इस्लाम की शिक्षा दे। बूढ़ा फ़ौरन उठा और अपने मुल्ला की लड़की को बुला लाया। उसने मुझे ख़ुदा और रसूल पर ईमान लाने की प्रेरणा दी और ला इला-ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह (अर्थात् अल्लाह के सिवा कोई इलाह (पूज्य) नहीं और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं।) का सबक़ सिखाया।

''डॉक्टर साहिब'' लेडी बार्न्स ने उत्साहवर्धक स्वर में कहा, ''अब मैं अल्लाह की कृपा से मुसलमान हूँ और ईमान की वही महिमामयी शक्ति, जिससे बूढ़े का हृदय परिपूर्ण था, अपने सीने में मौजूद पाती हूँ।''

□ □ □

11. बर्रह इस्लाम

(Barrah Islam)

(न्यूबर्टिन अमेरिका)

अल्लाह तआला का शुक्र है कि उसकी कृपा से मैंने ईसाइयत त्याग कर इस्लाम को क़बूल कर लिया है..... मैंने यक़ीनन बहुत बड़ा फ़ैसला किया है और मुझे अच्छी तरह अन्दाज़ा है कि मेरे ईसाई दोस्त और सगे-सम्बन्धी इसको नहीं समझ सकेंगे कि मैंने हज़रत मसीह (अलैहि०) के ख़ुदा होने का इनकार क्यों किया है? काश! वे एहसास कर सकते कि एकेश्वरवाद की धारणा तक पहुँचने के लिए मैंने कितना अध्ययन किया है और कितनी लम्बी अवधि तक सोच-विचार से काम लिया है।

वास्तव में ईसाइयत ने वैचारिक एवं व्यवहारिक दृष्टि से कभी भी मुझे सन्तुष्ट न किया। पैतृक रूप से मेरा सम्बन्ध कैथोलिक समुदाय से था, और होश संभालने पर मुझे इस धर्म की कमज़ोरियों का एहसास होने लगा था, लेकिन उनके बारे में सवाल करने की अनुमति नहीं मिलती थी और चर्च के ज़िम्मेदार लोग घूरकर और डाँट कर ख़ामोश रहने की ताकीद करते थे। उदाहरण के रूप में त्रिवाद(Trinity) की अवधारणा मेरी समझ से बिलकुल दूर थी, जिसे हास्यास्पद तर्क के द्वारा समझाने के योग्य बनाने की कोशिश की जाती थी, अर्थात् 1+1+1=3।

इसी प्रकार ईसाई उपासना पद्धति ने भी मुझे कभी प्रभावित नहीं किया। मेरे स्कूल अध्यापकों ने ज़ोर देकर प्रेरित किया कि मैं ईसाई रुढ़िवादियों (Cultist) से जुड़ जाऊँ। लेकिन मेरी अभिरुचि और विवेक ने उपासना के इस ढंग को पसन्द न किया कि बेहंगम शोर, बनावटी सुखद संगीत और भावनात्मक काव्य, जिसका अभिन्न अंग था, मैं जब इन लोगों को बेक़ाबू होकर गाते हुए सुनती और क़ीमती गिटारों पर उँगलियाँ चलाते हुए कभी ये आँसू बहाने लगते तो मुझे अच्छे न लगते.....

कैथोलिक समुदाय के लोग मेरे इस सवाल का जवाब न दे सके कि जब प्रोटेस्टेंट भी तीन ख़ुदाओं को पूजते हैं तो मैं उनके साथ मिलकर इबादत क्यों न

करूँ?

जहाँ तक अमली ज़िन्दगी का सम्बन्ध है हाई स्कूल के ज़माने में ही कैफ़ियत यह थी कि सारे माहौल के आधीन मैं भी असीम आज़ादी की बड़ी इच्छुक थी और इस सम्बन्ध में नैतिक पाबन्दियों को नहीं मानती थी.....लेकिन आध्यात्मिक दृष्टि से प्यास और शून्य का एहसास लगातार परेशान व बेचैन रखता था। इसीलिए सच्चाई और वास्तविकता की तलाश का सिलसिला भी बराबर जारी रहा। अतः मैं ग्रेजुएशन के दर्जों में थी, जब मैंने पहली बार ईसाइयत से बाहर निकल कर अन्य धर्मों के अध्ययन का आरम्भ किया।

मैंने सबसे पहले हिन्दूमत का अध्ययन किया और फिर बुद्ध धर्म का.... लेकिन दोनों ने मुझे तनिक भी प्रभावित न किया...... दोनों में शिर्क और मूर्ति-पूजा और अंधविश्वास का कमो-बेश वही अन्दाज़ पाया जो ईसाइयत में प्रचलित था।

अंत में मैंने इस्लाम के बारे में जानकारी हासिल कीं और इसने मुझे वास्तव में अत्यन्त प्रभावित किया। अध्ययन और शोध के दौरान यह बात भी मुझ पर स्पष्ट हुई कि मेरी अन्तरात्मा वास्तव में एक ऐसे धर्म की तलाश में थी, जिसमें विशुद्ध एकेश्वरवाद और जगत के सृष्टा के एकत्व की धारणा होती। इस तरह इस्लाम के रूप में मुझे खोया हुआ वह मोती अन्ततः मिल गया।

इस्लाम की यह अदा मुझे बहुत पसन्द आई कि इसने अत्यन्त दो-टूक अन्दाज़ में अल्लाह की सर्वोच्च सत्ता की घोषणा की, जबकि ईसाइयत, हिन्दूमत और बुद्धमत में यह मौलिक अवधारणा अस्पष्टता के मोटे पर्दों में लिपटी हुई नज़र आई। कितनी अनुपम, स्पष्ट और निखरी हुई है यह अवधारणा (अक़ीदा) कि अल्लाह के अलावा हरगिज़ कोई उपास्य नहीं और मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के सन्देष्टा हैं। और यही अवधारणा बुद्धि को अपील करती है।

इसके विपरीत पूरी कोशिश और खोज के बावजूद ईसाइयत में मैं एकेश्वरवाद का अक़ीदा तलाश करने में नाकाम रही...... लेकिन वह जो मसीह (अलैहि०) ने फ़रमाया कि, ''दरवाज़ा खटखटाओं तो तुम्हारे लिए खोला जाएगा, क्योंकि जो कोई माँगता है उसे मिलता है जो ढूँढता है वह पाता है।'' (मत्ती अध्याय-7, आयत-7-8) मैंने जी-जान से हक़ की तलाश की

और हक़ मुझे मिल गया.....वरना बाइबल का तो यह हाल है कि इसकी विभिन्न प्रतियों के मूल पाठ(Text) एक–दूसरे का खंडन करते हुए नज़र आते हैं। अस्पष्टता और रूपक वर्णन–शैली बार–बार सच्चाई का रास्ता रोक लेती है। शायद यही कारण है कि मेथोडिस्ट (Methodist) यहूवा (Jehoves) वालों की बाइबल नहीं पढ़ते और यहूवा वाले एंगलीकन(Anglican) की बाइबल को विकृत ठहराते हैं। और बैप्टिस्ट (Baptist) ईसाई दूवे Duay की बाइबल को नापसन्द करते हैं..... अर्थात् एक ही धर्म के लोग एक धर्म–ग्रंथ नहीं रखते। हर समुदाय की अलग किताब है जो दूसरे के निकट अविश्वसनीय है.....

इसके विपरीत अगर शोध करें तो हज़रत मसीह (अलैहि०) भी विशुद्ध एकेश्वरवाद के प्रचारक थे। उनसे पूछा गया कि ईमान की दृष्टि से किस बात को वरीयता प्राप्त है तो आपने जवाब दिया,

> ''ऐ इसराईल! (अर्थात् ख़ुदा के बन्दे) सुन, ख़ुदावन्द हमारा ख़ुदा एक ही ख़ुदावन्द है।'' (मुरक़स भाग–12, आयत 29)

ख़ुदा के एक होने का स्पष्ट इशारा यूहन्ना (3 : 17) और मत्ती (17 : 19) की इंजीलों में भी देखा जा सकता है।

अत: मेरे मन में कुछ भी भ्रम न रहा कि हज़रत मसीह (अलैहि०) और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) दोनों एक ही ख़ुदा के बन्दे और पैग़म्बर हैं और दोनों की शिक्षाओं में कहीं कोई मतभेद और विरोध नहीं है।

और यह अक़ीदा (आस्था) तो बिलकुल ही अक़्ल के ख़िलाफ़ और बेकार है कि ईसा मसीह (अलैहि०) ख़ुद ख़ुदा हैं..... अगर ऐसा है तो ईसाइयों ही के अक़ीदों के मुताबिक़ उन्हें फाँसी दे दी गई थी...... फिर ऐसे ख़ुदा के बारे में क्या टिप्पणी की जाए, जिसको दुशमनों ने मौत के घाट उतार दिया। इसके विपरीत क़ुरआन जगह–जगह इस बात का एलान करता है कि हज़रत मसीह (अलैहि०) अल्लाह के बन्दे और पैग़म्बर थे।

बहरहाल मुझे इस्लाम की जिस शिक्षा ने सबसे अधिक प्रभावित किया वह एकेश्वरवाद की अवधारणा (अक़ीदा–ए–तौहीद) है। कितनी व्यापकता और स्पष्टता है इस संक्षिप्त सूरा में :

> क़ुल हु वल्लाहु अहद। अल्लाहुस्समद। लम यलिद व लम यूलद। व लम य कुल्लहू कुफ़ूवन अहद......
>
> अर्थात् ऐ पैग़म्बर एलान कर दीजिए कि अल्लाह एक है, वह

बड़ा ही बेनियाज़ है, न उसकी कोई औलाद है और न वह
किसी की औलाद है और उस जैसा कोई नहीं है।

(क़ुरआन, 112 : 1–4)

इस्लाम जीवन व्यतीत करने की एक सम्पूर्ण जीवन–व्यवस्था प्रदान करता है। इसको अल्लाह ने ख़ुद प्रदान किया है और अपने आख़िरी पैग़म्बर (सल्ल०) के द्वारा तैयार और सुव्यवस्थित रूप में मानव–जाति के मार्गदर्शन के लिए दिया है..... अतः इस्लाम आज एक ऐसा जीवित चमत्कार और जीता–जागता इंक़िलाब है, जो इन्सान को दुनिया और आख़िरत (लोक–परलोक) की बेहतरीन भलाइयाँ प्रदान करता है।

जहाँ तक मैंने समझा है मोमिन वह है जो पूरे तोर पर अपने आपको अल्लाह के आज्ञापालन में दे देता है और उसके जीवन का एक–एक क्षण अल्लाह की याद में गुज़रता है.....काश! ईसाई इस हक़ीक़त को समझ सकते कि हज़रत मसीह (अलैहि०) भी पूर्ण मुस्लिम थे। और उन्होंने अपने आपको अल्लाह की प्रसन्नता के लिए समर्पित कर दिया था। उन्होंने ही यह भविष्यवाणी की थी कि मूसा (अलैहि०) की तरह के एक पैग़म्बर आएँगे, जो सत्य और सदाचार की आत्मा (Spirit of truth) होंगे और यह भविष्यवाणी हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ही पर चरितार्थ होती है।

इस प्रकार जब मैंने इस्लाम के बारे में खोज–बीन की तो वास्तव में हज़रत मसीह (अलैहि०) की सही शिक्षाओं को पा लिया, शक से यक़ीन तक पहुँच गई और अंधेरों से निकल कर रौशनी में आ गई।

□ □ □

12. बेकी हॉप्किंस

(Becky Hopkins)

(अमेरिका)

बेकी हॉप्किंस एक अमेरिकी महिला हैं। वे ईसाई परिवार में पैदा हुईं। जब उन्होंने क़ुरआन का अध्ययन किया तो इतनी प्रभावित हुईं कि इस्लाम क़बूल कर लिया। उनका एक विस्तृत पत्र पत्रिका ''इस्लामिक हॉरिज़न'' दिसम्बर 1987 ई० में प्रकाशित हुआ है। उसका कुछ अंश हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं :

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

वे लिखती हैं : जिन सवालों का जवाब मैं अपने पूरे जीवन में तलाश करती रही हूँ, उनका जवाब पाना मेरे लिए कितना अधिक सन्तोषजनक है, इसको शब्दों में बयान करना मेरे लिए सम्भव ही नहीं। यह ऐसा ही है जैसे कोई अन्धा हो और फिर अचानक वह सच्चाई देखने लगे और ऐसी रौशनी को पा ले जिसको उसने इससे पहले कभी न देखा हो। मैं इस ख़ुशी को कैसे बयान कर सकती हूँ, जो केवल सच्चाई को पाने से हासिल होती है।

मैं चाहती हूँ कि मैंने जो चीज़ पाई है उसको मैं सारी दुनिया के सामने गाऊँ। मैं चाहती हूँ कि हर व्यक्ति जिसको मैंने कभी जाना हो वह इसमें मेरा भागीदार बने और जो दरवाज़ा मेरे लिए खुला है, उस पर जश्न मनाने में वह मेरा शरीक हो,

सबसे ज़्यादा बड़ी और सबसे ज़्यादा अजीब चीज़ जो मुझे दिखाई गई वह क़ुरआन था।

कितना अधिक मैं अपने क़ुरआन से मुहब्बत करती हूँ। जब भी मुझे मौक़ा मिलता है तो मैं इसको पढ़ती हूँ। मैं इसको अपने से अलग नहीं रख सकती। यहाँ तक कि अंग्रेज़ी अनुवाद में भी इसके शब्द मेरे दिल को आनन्द प्रदान करते हैं और मेरी आँखों से आँसू निकल पड़ते हैं।

कितनी ही बार ऐसे क्षण आए हैं जबकि मैंने ख़ुदा की किताब को अपने

हाथ में ले लिया है और इसके बारे में सोच कर मैं रोई हूँ। इसके बिना मेरा पूरा जीवन कितना मूर्खतापूर्ण जीवन होता। इस्लाम के बिना मेरा जीवन कैसा होता, इसको सोच कर मैं काँप उठती हूँ।

अगर मैं सबसे ऊँचे पहाड़ पर चढ़ सकती और मेरी आवाज़ हर उस आदमी तक पहुँच सकती जो इस्लाम से बेख़बर है तो मैं चिल्ला–चिल्लाकर उनको वह बताती जो मुझे बताया गया है। मेरे सवालों का जवाब मुझे मिल गया। अब मैं जानती हूँ कि सच्चाई क्या है ? हर आदमी जो दुनिया में है वह सच्चाई मिलने पर अगर अल्लाह का शुक्र अदा करे और वह एक सौ साल तक प्रति दिन एक सौ बार ऐसा ही करता रहे तब भी इस एहसान पर शुक्र का हक़ अदा नहीं होगा।

उपर्युक्त अमेरिकी महिला के लिए क़ुरआन इतनी आश्चर्यजनक उपलब्धि कैसे बन गया। इसका कारण यह है कि क़ुरआन इन्सान की तलाश का जवाब है। उस महिला ने बहुत–से दूसरे मर्दों और औरतों की तरह इसमें अपनी प्रकृति की खोज का जवाब पा लिया और अपनी तलाश का जवाब पाने से अधिक बड़ी ख़ुशी इन्सान के लिए और कोई नहीं।

क़ुरआन मानव के अन्त:करण की प्रतिलिपि है, उसकी आवाज़ है। मनुष्य अपने जन्म की दृष्टि से सच्चाई का अभिलाषी है। इसी प्राकृतिक और विश्वव्यापी और शाश्वत सच्चाई को बताने के लिए तमाम पैग़म्बर आए। सभी पैग़म्बरों ने एक ही सच्चाई का एलान किया। मगर पिछले पैग़म्बरों की बताई हुई शिक्षाएँ अपने मूल रूप में सुरक्षित न रह सकीं।

तथापि अन्तिम सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर अवतरित पुस्तक (पवित्र क़ुरआन) आज भी अपने मूल और प्रारम्भिक रूप में पूर्णत: सुरक्षित है। यही कारण है कि क़ुरआन मानव–प्रकृति के बिलकुल अनुकूल है। दूसरे पवित्र ग्रन्थों में तब्दीलियों के कारण मानव–प्रकृति के साथ उनकी अनुकूलता बाक़ी नहीं रही। जबकि क़ुरआन अपनी इस अनुकूलता को पूरी तरह बाक़ी रखे हुए है। यही वजह है कि क़ुरआन आज तमाम इन्सानों के लिए सच्चाई का एकमात्र स्रोत बन गया है।

□ □ □

13. बेगम मौलाना उज़ैर गुल

(इंग्लैंड)

मौलाना उज़ैर गुल शैख़ुल हिन्द मौलाना महमूदुल हसन (रह०) के साथ मालटा में क़ैद थे। एक अंग्रेज़ औरत ने मौलाना हुसैन अहमद मदनी के हाथ पर इस्लाम क़बूल किया, फिर उन्हीं की राय और इच्छा से मौलाना उज़ैर गुल से शादी कर ली। यह आपबीती उस ख़ुशक़िस्मत मुस्लिम औरत की है। मौलाना उज़ैर गुल तो अभी तक जीवित हैं लेकिन यह ख़ातून अपने सच्चे मालिक के पास पहुँच चुकी हैं।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

मैं अपने पिता चार्ल्स एडवर्ड स्टीफ़ोर्ड स्टील की सातवीं बेटी हूँ। मैं 1885 ई० में हैदराबाद सिंध में पैदा हुई। मेरे पिता इन्साफ़पसन्द और बात के पक्के इन्सान थे। उन्हें भारत और भारतवासियों से बड़ा लगाव था। कभी-कभी तो वे ख़ुद को सिंधी कह दिया करते थे। हमारी वंश-परम्परा बड़ी महान थी। मगर हमारे पिता जी का कहना था कि शराफ़त और सज्जनता का मेयार चरित्र है, न कि ख़ून। बहरहाल मैं छः साल की ही थी कि मुझे शिक्षा के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया। मुझे सच्ची बात से हमेशा प्यार रहा। मैं हर बात का कारण खोजने की कोशिश किया करती थी।

मैं एक ईसाई परिवार में पैदा हुई। मगर ईसाई किसी एक अक़ीदे में भी एकमत नहीं हैं। ईसाइयों के बहुत-से फ़िरक़े (सम्प्रदाय) हैं, जो एक-दूसरे को जहन्नमी कहते हैं। इसलिए ईसाई धर्म मुझे गोरख-धंधा सा लगा। मेरी समझ में नहीं आता था कि हज़रत ईसा (अलैहि०) ख़ुदा के बेटे कैसे हो सकते हैं। मगर मुझे दुआ से बड़ा लगाव था, और मैं अकसर अनदेखे मालिक से लौ लगाकर दुआएँ करती रहती थी। जब मैं जवान हो गई तो मैंने बाइबल को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से पढ़ना शुरू किया। मुझे बाइबल की बहुत-सी बातें एक-दूसरी बातों से परस्पर विरोधी महसूस हुईं। मुझे बाइबल के ईशवाणी (अल्लाह का कलाम) होने में शक होने लगा। कुछ समय बाद मेरी शादी हो गई। मगर मेरे पति एक दुनियादार ईसाई थे। वे मेरे विचारों के साथी

न बन सके। इसलिए मैंने फ़ुरसत के समय में फ़लसफ़े (दर्शन) का अध्ययन शुरू कर दिया। मगर उन काल्पनिक भूल-भूलैयों से मुझे कुछ न मिला।

उन्हीं दिनों मैं अपने पिता के पास भारत आई। मेरी बारह वर्षीय लड़की और दस वर्षीय लड़का मेरे साथ थे। यहाँ मुझे वेदान्त पढ़ने का अवसर मिला। मुझे इसको पढ़ने से बड़ी शान्ति मिली। मुझे महसूस हुआ कि वह चीज़ मिल गई जिसकी मुझे तलाश थी। वेदान्त के अध्ययन ने मुझे हिन्दू धर्म से क़रीब कर दिया। कुछ समय के लिए एक हिन्दू मठ में मेहमान बनकर रही और हिन्दू बन गई। मुझे रामाकृष्ण के वेदान्ती पंथ में दाख़िल कर लिया गया, मगर मुझे यह शिर्क (बहुदेववाद) जैसा महसूस हुआ। इसलिए मेरा यक़ीन डगमगा गया, मुझे महसूस हुआ कि हक़ीक़त अभी और आगे है।

मैं इसी ज़माने में बीमार हो गई और मुझे इलाज के लिए फ्रांस जाना पड़ा। वहाँ मेरे सात ऑपरेशन हुए। हर ऑपरेशन पर मौत सामने खड़ी नज़र आती थी। मैं चाहती थी कि मैं मौत के लिए तैयारी कर लूँ। मैंने सोचा कि दुनिया त्याग दूँ और आख़िरत (परलोक) की तैयारी में लग जाऊँ। इसलिए मैं वापस जब भारत आई तो मैंने सन्यास ले लिया। मैंने 108 उपनिषद् पढ़े, लेकिन यह क्या.......यहाँ भी बाइबल की तरह के अनगिनत टकराव थे। इनमें कौन-सी बात सत्य है और कौन-सी ग़लत है, यह कैसे मालूम हो ? मैं एक बार फिर उलझ गई। मुझे भय हो गया कि इसी दिमाग़ी उलझन में कहीं पागल न हो जाऊँ। मुझे यह भी एहसास हुआ कि सन्यास से मेरी आध्यात्मिकता नहीं बढ़ रही है, बल्कि मानसिक खींचतान में वृद्धि हो रही है। इसी ज़माने में भारत में असहयोग आन्दोलन चल पड़ा। भारतीय, भारतियों से लड़ पड़े। अलमोड़ा भी दंगों से बचा न रहा। उस समय मेरे दिल ने कहा कि यह मठ में बैठकर ध्यान-ज्ञान का समय नहीं है, बल्कि बाहर निकल कर घायलों और दुखियों की सहायता करने का समय है। मैंने अपने गुरुजी से यह बात कही, मगर उन्होंने कहा कि हम लोग दुनियादार नहीं हैं। तुम जिन बातों को करने को कह रही हो, वे राजनीतिक बातें हैं हम इन बातों में नहीं पड़ते।

मुझे उनके सोचने के इस अन्दाज़ पर हैरत हुई। मैं उन्हें तो मठ छोड़कर घायलों की सहायता करने पर तैयार न कर सकी। मगर ख़ुद मठ से निकल आई। मैंने घायलों, रोगियों और दुखियों की सहायत की। इससे दिल को चैन

मिला और मैंने निश्चय किया कि आध्यात्मिक विकास मानवता की सेवा से हो सकता है, मठों की ज़िन्दगी से नहीं। इसलिए मैंने एक आश्रम खोलने का फ़ैसला किया, जिसमें नवजवान लड़कों को नैतिक रूप से प्रशिक्षित किया जाए। उस आश्रम में मैंने हिन्दू मुसलमान की क़ैद नहीं रखी। वहाँ एक मुसलमान लड़का दाख़िले के लिए लाया गया। यह लड़का अपने माता-पिता के लिए एक समस्या बन गया था। मैंने सोचा कि जब तक मैं मुसलमानों की जीवन-व्यवस्था के बारे में जानकारी हासिल न कर लूँ। मैं इस लड़के की तरबियत का हक़ अदा न कर सकूँगी। इस नीयत से मैंने क़ुरआन पढ़ना शुरू किया।

अब तक मैं मुसलमानों से डरती थी। मैं समझती थी कि मुसलमान एक प्रकार के 'डाकू' होते हैं, जो हर प्रकार का ज़ुल्म कर सकते हैं। लेकिन इस किताब ने मेरी आँखें खोल दीं। यह तो सरासर हक़ था और दिल में उतरता चला जा रहा था, यह अमली वेदान्त था। आह! अब तक मैं किन अंधेरों में थी। अफ़सोस कि यूरोपीय विद्वानों ने इस्लाम की कितनी ग़लत तस्वीर पेश की है। वह धर्म, जिसको मैं ख़ूंखार भेड़ियों का धर्म समझती थी, पूर्ण सच्चाई का धर्म था। "मेरे अल्लाह, अब मैं क्या करूँ, मैंने तो सारा जीवन अकारथ कर दिया।" मैंने सोचा मैं हिन्दू ही रहूँ या हिन्दू मत को छोड़ दूँ। मैंने सन्यास ग्रहण कर लिया था। क़ुरआन मुझे ज़िन्दगी की ओर बुला रहा था, ऐसी ज़िन्दगी की ओर जो परलोक के जीवन का आधार बनती है। मगर मुश्किल यह थी कि मैं एक पवित्र आश्रम की सन्यासिनी थी। लोग मुझे प्यार से माँ कहते थे। मैं मुसलमान हो जाऊँगी तो दुनिया क्या कहेगी? मगर मुझे अपनी आत्मा को दुविधा से बचाना था। मैंने लोगों के कहने की परवाह न की। मैंने मुसलमान होने का एलान कर दिया।

मेरे गुरु भाई बहुत भयभीत हुए, मगर मैंने उन्हें निस्स्वार्थ भाव से बताया कि असली वेदान्त यह है जो मैं क़बूल कर रही हूँ। मेरे गुरु भाइयों ने कहा कि यह काम मुसलमान हुए बग़ैर भी जारी रह सकता है। वेदान्ती रहकर भी क़ुरआन की राह अपना सकती हो। यह भी वेदान्त का ही एक सिलसिला होगा। लेकिन यह बात मेरे दिल में न उतर सकी। मैं समझ रही थी रामाकृष्ण ने सत्यता की राह नहीं अपनाई थी, बल्कि वह ख़ुद उनके दिमाग़ की उपज

और एक भ्रम था। हो सकता है किसी नाम-निहाद सूफ़ी ने उन्हें यह भ्रम दिलाया हो। मेरे हिन्दू दोस्तों ने मुझसे कहा कि मैं अपने आपको मुसलमान न कहूँ तो वे मुझे आगरा में रामाकृष्ण मिशन का महन्त बना देंगे। मगर मुझे सांसारिक लोभ न था। मुझे आत्मा की सन्तुष्टि की आवश्यकता थी। इसलिए मैंने उनकी बात को निरस्त कर दिया।

अब एक और मुश्किल आई। मुसलमानों ने मुझे मुसलमान मानने से इनकार कर दिया। वे कहते थे कि यह हमें हिन्दू बनाने के लिए नया रूप धारण कर रही है। मैं ख़ुद भ्रम में पड़ गई। मैं क़ुरआन को अपना मार्गदर्शन करनेवाली किताब मान रही थी, तो क्या यह बात मुसलमान होने के लिए काफ़ी न थी। अपने दिल की बेक़रारी को दूर करने के लिए मैं देवबन्द गई। मेरी लड़की मेरे साथ थी। हम दोनों बेपरदा थीं हमने मौलाना हुसैन अहमद मदनी से मुलाक़ात की। अपनी बात उनके सामने रखी और पूछा, ''क्या हम मुसलमान नहीं हैं?''

''तुम वास्तव में मुसलमान हो'' मौलाना ने एक ज़ोरदार क़हक़हा लगाकर कहा, ''तुम्हें इसमें संदेह क्यों है?''

मौलाना हुसैन अहमद मदनी साहब की महानता हम दोनों के दिल में बैठ गई। उन्होंने हमारी बहुत ख़ातिर की, बाद में वे मुझसे मिलने मंगलौर भी आए थे। उन्हीं के साथ मौलवी उज़ैर गुल भी थे। मौलाना हुसैन अहमद उन्हें बहुत चाहते थे। ऐसा लगता था जैसे वे दो दोस्त लड़के हों। वे एक-दूसरे से मासूम मज़ाक़ करते। एक-दूसरे की हंसी उड़ाते और कभी-कभी एक-दूसरे को चिढ़ाते भी थे। मुझे उनकी मुहब्बत पर रश्क होता।

वे दिन भर हमारे पास रहे। जब वे चलने लगे तो मैंने मौलाना हुसैन अहमद साहब से कहा कि फिर तशरीफ़ लाएँ, इस पर उन्होंने कहा कि मैं तो ज़्यादा न आ सकूँगा, मगर उज़ैर गुल कभी-कभी आया करेंगे। अतः मौलवी उज़ैर गुल साहब आते रहे। मैं उनसे पर्दा और दूसरे मसलों पर बेझिझक बातचीत करती रही। शुरू में यह समझती थी कि मौलवी बड़े तंग नज़र होते हैं। मगर बाद में पर्दे की हक़ीक़त मुझ पर खुली तो मैं उनकी व्यापक दृष्टि को मान गई।

यहाँ मैं इस्लाम के अध्ययन में लगी हुई थी कि अचानक मेरे पति का पत्र

आया कि अगर मैं फ़ौरन इंग्लिस्तान न लौटी तो वह मुझे ख़र्च देना बन्द कर देंगे। बच्चों की पढ़ाई का ख़र्च मुझसे वसूल करेंगे और मुझसे संबन्ध ख़त्म कर लेंगे। इसपर मुझे आश्चर्य हुआ, न अफ़सोस। मैं मुसलमान हो चुकी थी। अब मैं किसी ईसाई पति की बीवी कैसे रह सकती थी। रही रोज़ी-रोटी तो यह अल्लाह की देन है, कम या ज़्यादा मिलेगी ही।

उज़ैर गुल साहब को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने मेरा हाथ थामने की पेशकश को स्वीकार कर लिया। मैं जानती थी कि उनके यहाँ ग़रीबी है, मोहताजी है, पर्दा है, मगर मेरे लिए तो यही अल्लाह की पसन्दीदा जगह थी। उज़ैर गुल के घर में मुझे जीवन की हक़ीक़ी राहत मिली। वे बड़े ही सज्जन और दयालु पति साबित हुए।

यूँ भी वे सय्यद हैं और उन्होंने सय्यद की लाज रखी है। उनके पूर्वज अरब से अफ़ग़ास्तिान और अफ़ग़ानिस्तान से हिन्दुस्तान आए थे और हक़ के रास्ते के सफ़र में पूरब-पश्चिम के लिए हमारी राह एक थी, हमारी मंज़िल एक थी, हमारी आत्माएँ एक हो चुकी थीं। हम दोनों अल्लाह के प्यारे नबी (सल्ल०) के बताए हुए रास्ते पर चलने का संकल्प लेकर उठे थे। मुझे ख़ुशी है कि इस राह में मेरी बेटी, मेरा बेटा और मेरा भाई सब मुझसे हमदर्दी करते रहे। इन्होंने मुझे हक़ की राह में क़दम बढ़ाने से रोका नहीं। मेरा जीवन भी एक सफ़र है जो वर्षों के चिन्तन-मनन और खोज बीन के मरहलों से गुज़रकर इस्लाम की सुन्दर घाटी में ख़त्म हो रहा है।

□ □ □

14. श्रीमती सुरैया

(अमेरिका)

"जनाब रैहान ख़ान अमेरिका की ईस्टर्न मिशीगन यूनीवर्सिटी में प्रोफ़ैसर हैं। उनकी एक नवजवान गोरी शिष्य सुरैया ने हाल ही में इस्लाम क़बूल किया है और अपने आपको इस्लामी लिबास समेत धार्मिक अपेक्षाओं के अनुरूप ढाल लिया है। रैहान ख़ान साहब इस लड़की के लिबास और शिष्ट धार्मिक आचरण से बहुत प्रभावित हुए। उससे इंटरव्यू के रूप में बातचीत की और उत्तरी अमेरिका के मुसलमानों की एक मासिक पत्रिका 'यूनिटी टाइम्ज़' (अंक मार्च 1990) में प्रकाशित करा दिया। इंटरव्यू की कटिंग भाई जनाब सैयद वक़ार अली क़ारी साहब (प्रवासी अमेरिका) ने भिजवाया था, इसका अनुवाद यहाँ दिया जा रहा है :

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

सवाल : इस्लाम क़बूल करने से पहले आपके धार्मिक रुझान क्या थे?

जवाब : मेरा सम्बन्ध एक प्रोटेस्टेंट ईसाई परिवार से है, जिसके सभी सदस्य धर्म से दूर हैं, लेकिन मैं बचपन ही से धार्मिक रुझान रखती थी। जब मेरी उम्र दस वर्ष की थी, तभी मैंने अपने पड़ोसियों से फ़रमाइश की कि वे रविवार को चर्च जाया करें तो मुझे भी साथ ले जाया करें। इस प्रकार समय-समय पर मैं उनके साथ गिरजा जाने लगी और जब हाई स्कूल में पहुँची तो ईसाइयत के विभिन्न पंथों और समुदायों के बारे मे जानकारी हासिल करने लगी। इस बारे में मैंने कैथोलिक धर्म का विस्तृत और गहन अध्ययन किया और Mormons, Witness, jehovah's, Methodist और Pres By Terian जैसे धर्मों के बारे में भी पर्याप्त अध्ययन किया। मगर मेरी आत्मा प्यासी की प्यासी रही। मेरी आत्मा जो कुछ तलाश कर रही थी मुझे कहीं न मिला। जैसे मेरी अन्तरात्मा कहती थी कि इस जगत का सृष्टा और मालिक अकेला है और उसका कोई साझी नहीं, जबकि ईसाइयत के सभी समुदाय भ्रम और अस्पष्टता का शिकार हैं।

सवाल : इस परिस्थिति में इस्लाम धर्म से आपका परिचय कब और कैसे हुआ ?

जवाब : मैं हाईस्कूल ही में पढ़ रही थी जब मुझे मध्य-पूर्व के बारे में काफ़ी विस्तार के साथ अध्ययन करने का अवसर मिला और इसी हवाले से पहले-पहल इस्लाम और मुस्लिम शब्दों से मेरा परिचय हुआ। मगर स्कूल के ज़माने में मेरी जानकारी की परिधि यहीं तक सीमित रही। कॉलेज में पहुँची तो सौभाग्य से वहाँ मध्य-पूर्व से सम्बन्ध रखनेवाले मुसलमान छात्र भी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। उनसे मुलाक़ातें हुईं तो इस्लाम से परिचय हुआ और मैं इस धर्म के इस पहलू से बहुत प्रभावित हुई कि यह ईसाइयत और यहूदियत की भाँति (सामयिक) पार्ट टाइम धर्म नहीं बल्कि जीवन के हर क्षेत्र को घेरे हुए है। इस्लाम चूँकि दिन और रात के एक-एक क्षण में मार्गदर्शन करता है और ईसाइयत की भाँति इसकी संगति का दायरा एक सप्ताह में केवल एक घंटे तक सीमित नहीं होता। इसलिए जब एक व्यक्ति इसको अमली तौर पर अपनाए तो उसके जीवन में अनुशासन, शिष्टाचार और दृढ़ता पैदा हो जाती है, इस्लाम की यह दूसरी ख़ूबी थी जिसने मुझे बहुत प्रभावित किया। मुझे विश्वास हो गया कि इस्लाम एक सम्पूर्ण धर्म और प्रकृति के अनुकूल है। अतः मैंने इसे दिलो-जान से क़बूल कर लिया।

सवाल : और इसकी प्रतिक्रिया आपके परिवार पर क्या हुई ?

जवाब : परिवार के हर सदस्य की प्रतिक्रिया विभिन्न प्रकार की थीं। मेरे पिता का व्यवहार मुझसे बहुत ही स्नेहपूर्ण रहा है। इसलिए यद्यपि मैंने इस्लाम क़बूल करने के साथ अपना लिबास बदल लिया और सामान्य जीवन को बिलकुल नया रूप दे डाला, तथापि उनके प्रेम और व्यवहार में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा, बल्कि ऐसा हुआ कि एक बार मेरी एक फूफी आईं और उन्होंने मुझे ख़ूब बुरा भला कहा। मुझे सनकी और निराशावादी के ताने दिए, तो मेरे पिता ने मेरा बचाव किया, किन्तु मेरी माँ का व्यवहार अच्छा न था। वे मेरे जीवन की क्रान्ति पर बिलकुल ख़ुश न हुईं, लेकिन इसमें कोई सन्देह नहीं कि कुछ परेशानियों के बावजूद मैं भाग्यशाली हूँ कि अपने माँ-बाप के यहाँ रह रही हूँ और मुझे उन परेशानियों का सामना नहीं करना पड़ा, जिनकी सामान्य रूप से

आशंका रहती है।

सवाल : मैं हैरान हूँ कि आपके अन्दर इतना बड़ा क़दम उठाने का साहस कैसे पैदा हो गया?

जवाब : आपकी बात सही है कि अमेरिका के इस माहौल में जहाँ भौतिकता का बोलबाला है और विलासिता व मनोरंजन को ही जीवन का चरमोत्कर्ष समझा जाता है, वहाँ इस्लाम क़बूल करना और उसकी शिक्षाओं पर अमल करना बेहद कठिन काम है। इसलिए यह फ़ैसला करने से पहले मैंने हज़ार बार सोचा कि मेरे माँ-बाप मेरे साथ क्या व्यवहार करेंगे? मेरी पढ़ाई का क्या होगा? और मैं अपने दोस्तों में कैसे ज़िन्दा रह सकूँगी। अतः इस प्रकार की आशंकाओं ने मुझे बहुत परेशान किए रखा। मगर लम्बे और गहरे सोच-विचार के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँची कि एक सामयिक और अस्थाई परेशानी के मुक़ाबले में, जो इस्लाम क़बूल करने के नतीजे में पेश आ सकती थी, मुसलमान न होने के परिणाम दिमाग़ी और रूहानी दृष्टिकोण से अधिक गम्भीर हो सकते हैं। अतः मैंने अल्लाह से ख़ूब दुआएँ कीं, उससे सहायता और सहारा माँगा और वाक़ई अल्लाह ने मेरी दुआएँ सुन लीं और आश्चर्यजनक रूप से मुझे वह साहस और हौसला मिला कि मैं इतना बड़ा फ़ैसला करने के क़ाबिल हो गई।

सवाल : आप तो अभी नव उम्र हैं, आपका क्या विचार है कि आप वाक़ई इस फ़ैसले पर स्थाई रूप से क़ायम रहेंगी?

जवाब : मुझे विश्वास है कि मैंने यह फ़ैसला ख़ूब सोच-समझ कर किया है और इसमें कोई कमज़ोरी पैदा नहीं होगी। अन्दाज़ा करें कि जब मैं इस्लाम क़बूल करने के लिए एक मस्जिद में गई तो वहाँ के ख़तीब और इमाम ने मुझ पर ज़रा भी दबाव न डाला। बल्कि राय दी कि मैं पहले इस्लाम के बारे में ख़ूब अध्ययन कर लूँ और अगर इसके बारे में कोई मामूली सी भी आशंका व आपत्ति है तो सवाल करके उसे दूर कर लूँ, फिर इस्लाम क़बूल करूँ। इसके विपरीत जिन दिनों मैं कैथोलिक धर्म का अध्ययन कर रही थी, एक बार मैं कैथोलिक चर्च में गई, तो मेरे जानने वालों ने बड़ा दबाव डाला कि इस धर्म को फ़ौरन क़बूल कर लूँ।

मुझे इस बात का भी भरोसा है कि चूँकि मैंने बहुत–से धर्मों का अध्ययन किया है और मेरी चेतना ने उन्हें निरस्त किया है इसलिए मैंने जिस धर्म का चयन किया है वह हर लिहाज़ से बेहतरीन और अ़क़्ल के बिलकुल मुताबिक़ है। इसी प्रकार मैं यह भी बताती चलूँ कि मैंने दो साल से अधिक समय तक ख़ूब जमकर इस्लाम और उसकी शिक्षाओं का अध्ययन किया है। और बहुत–से लोगों से इसके बारे में बातचीत की है। इसलिए यह समझ लीजिए कि इस्लाम क़बूल करने में न तो किसी भावुकता व जल्दबाज़ी का अमल–दख़ल है, न इससे कोई सांसारिक लाभ जुड़ा है। मैंने यह फ़ैसला ख़ूब सोच–समझ कर किया है और अल्लाह ने चाहा तो इस पर जीवन भर क़ायम रहूँगी।

सवाल : आपने इस्लाम क़बूल करके क्या हासिल किया है ?

जवाब : आंकड़ों के रूप में या दो और दो चार की शैली में यह बताना कि मुसलमान होकर मैंने यह और यह कुछ हासिल किया है, काफ़ी मुश्किल है, किन्तु इस्लाम क़बूल करके मुझे सबसे बड़ी कामयाबी यह मिली कि जीवन में शिष्टाचार और अनुशासन का चलन पैदा हुआ। दिन और रात को एक लक्ष्य मिला और वह शून्य की कैफ़ियत जो दिल और दिमाग़ पर छाई रहती थी ख़त्म हो गई। फिर यह नेमत भी कुछ कम नहीं कि अल्लाह पर ईमान और उसका आज्ञापालन, इंसान की आत्मा को शान्ति प्रदान करते और उसे विकसित करते हैं, आत्मा में ऊँचाई और लक्ष्यों में बुलन्दी का एहसास पैदा होता है और इन्सान सख़्त से सख़्त हालात में परेशानी और मायूसी से महफ़ूज़ रहता है। अल्लाह का एहसान है कि इस्लाम की शिक्षाओं पर अमल ने मेरे जीवन के हर पहलू को सकारात्मक ढंग से बदल दिया। इनमें से कुछ बदलाव स्पष्ट और क्रान्तिकारी हैं, जबकि कुछ का सम्बन्ध मन और संकल्प से है और वह इसी कारण सूक्षम और अमूर्त हैं।

सवाल : आपने अपने बालों को ढाँप रखा है, अमेरिका के नंगे माहौल में आपको यह कैसा लगता है ?

जवाब : इस बारे में मेरे वही एहसासात हैं, जो एक बाअ़मल मुसलमान औरत के हो सकते हैं। मैंने अपना सिर ढाँपकर वास्तव में इस माहौल की गंदगियों और बुराइयों के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त की है और सामान्य स्त्रियाँ

अर्द्धनग्न के कारण जिस भय और परेशानी की हालत में रहती हैं, उससे मैंने काफ़ी हद तक छुटकारा पा लिया है। फिर मेरा सिर ढकना एक प्रकार का एलान भी है कि मैं मुसलमान हूँ और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इस बारे में अल्लाह ने जो आदेश दिया है मैं उसका पालन कर रही हूँ।

सवाल : आपके नज़दीक इसका कारण क्या है कि अमेरिका में जो लोग अपना धर्म बदलते हैं उनमें सबसे ज़्यादा तादाद इस्लाम को अपनानेवालों की है?

जवाब : मेरा यक़ीन है कि जो अनगिनत लोग इस्लाम को अपना रहे हैं और इसकी ओर लपक रहे हैं, उन्हें इस बात का एहसास हो गया है कि मौजूदा पश्चिमी जीवन-शैली न तो नैतिक मूल्यों का पालन-पोषण करती है न यह किसी गरिमापूर्ण, शिष्ट और साफ़-सुथरी जीवन-शैली को परवान चढ़ाती है। जबकि इसके विपरीत इस्लाम के रूप में वे ऐसे सत्य को पा लेते हैं, जो उन्हें सर्वश्रेष्ठ नैतिक मानदंड प्रदान करता है और इन मानदंडों को हासिल करने का वह दृष्टिकोण देता है जो यथार्थ पर आधारित है, प्राकृतिक है और गरिमापूर्ण भी, विशेष और महत्वपूर्ण बात यह है कि इस्लाम पश्चिम की संकीर्णताओं से बहुत उच्च है। और इन्सानों को भौतिकता और नस्लवाद से हटाकर शुद्ध मानवता के आधार पर सम्बोधित करता है।

सवाल : अमेरिका में इस्लाम क़बूल करने वालों का बहुमत काले लोगों पर आधारित है। आपके विचार में यह मुबारक पैग़ाम गोरों तक अपनी पहुँच बनाने में क्यों कामयाब नहीं हो सका?

जवाब : इस मामले में मैं कोई दक्षतापूर्ण राय तो नहीं दे सकती, किन्तु मेरा एक दृष्टिकोण है और वह यह कि जो लोग इस्लाम क़बूल करते हैं वे आमतौर से मौजूदा निज़ाम के पीड़ित लोग होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अमेरिका में बेचारे काले लोग बड़े ही मज़लूम हैं और जब वे इस्लाम के दायरे में आते हैं तो उन्हें हीनता, असमानता, अन्याय और अत्याचार के बजाये प्रेम, समानता और सम्मान मिलता है, तो उनकी परेशान और शोकाकुल आत्माओं को शान्ति मिल जाती है।

काले लोगों के इस्लाम की ओर लपकने का एक और कारण भी है। वे

जान गए हैं कि अफ़्रीक़ा में उनके पूर्वजों का धर्म इस्लाम था और जब उन्हें ज़बरदस्ती अपहरण करके अमेरिका लाया गया, तो उनसे यह नेमत छीन ली गई। इस तरह वे इस्लाम क़बूल करके वे अपने असली धर्म की ओर लौटते हैं।

सवाल : अमेरिका के समाचार और प्रचार–प्रसार के अन्य माध्यम यह दुष्प्रचार करते नहीं थकते कि इस्लाम का रवैया औरत के मामले में अनुचित है। आप एक शिक्षित गोरी ख़ातून हैं। इसके बारे में आपका विचार क्या है?

जवाब : इस सवाल का जवाब इतने थोड़े समय में नहीं दिया जा सकता। यह शीर्षक तो एक पुस्तक के लेखन की मांग करता है। संक्षेप में कहूँगी कि यह बात हक़ीक़त के ख़िलाफ़ है और यह आरोप आमतौर पर उन लोगों की ओर से दोहराया जाता है जो इस्लामी शिक्षाओं से बिलकुल बेख़बर हैं। वे मान लेते हैं कि जब इस्लामी समाज में मर्द और औरत का कार्यक्षेत्र अलग–अलग है तो अवश्य औरत ज़ुल्म का शिकार होती है। हालाँकि मामला ऐसा हरगिज़ नहीं है। इसके विपरीत— मैं अपने देश की स्थिति बताती हूँ, यहाँ बराबरी का मतलब यह लिया जाता है कि समाज में औरत वह सब कुछ करे जो मर्द करता है, लेकिन व्यावहारिक रूप से होता यह है कि औरत मर्द की भाँति कमाती भी है और घर का भी सारा काम करती है, जहाँ मर्द उसका साथ नहीं देता। फिर तो स्पष्ट है बराबरी कहाँ रही? और जिन घरानों में माँ और बाप दोनों काम करते हैं वहाँ बच्चों का जो हाल होता है वह अत्याचार और शोषण की एक अफ़सोसनाक मिसाल है। इस मामले का एक और रूप भी है, यूरोप के प्रसार–माध्यम और समाचार पत्र आमतौर पर मुसलमानों की हुकूमतों की कार्य–शैली और विभिन्न लोगों के व्यक्तिगत आचरण से समझ लेते हैं कि यही कुछ इस्लाम की शिक्षा है। हालाँकि ऐसा नहीं है। इन दोनों में फ़र्क़ करना ज़रूरी है। अतः मुसलमान होने की हैसियत से हमारा कर्तव्य है कि हम इस्लामी शिक्षाओं पर उनकी सही रूह के साथ अमल करें और ग़ैर मुस्लिमों के सामने इस्लाम के सच्चे प्रतीक बनें।

सवाल : अमेरिका में जो ग़ैर मुस्लिम औरतें इस्लाम क़बूल करना चाहती हैं उनके नाम आप का सन्देश क्या है?

जवाब : उन बहनों के लिए मेरी सलाह यह है कि वे इस्लाम के बारे में

अधिक से अधिक किताबों का अध्ययन करें और ध्यानपूर्वक चिन्तन–मनन करें। मैं इसी रास्ते से अपनी अस्ल मंज़िल इस्लाम तक पहुँची हूँ। दूसरी बात यह कि भयभीत हरगिज़ न हों। अगर आपने सीधे रास्ते तक पहुँचने का इरादा कर लिया तो अल्लाह अपनी कृपा से आपकी सहायता करेगा।

सवाल : आप मेरी योग्य छात्रा हैं। मैं जानना चाहता हूँ कि भविष्य में आप अपनी सलाहियतों को दीन की सेवा के लिए किस प्रकार काम में लाएँगी ?

जवाब : मेरा इरादा है कि मैं किसी इस्लामी स्कूल में टीचर बन जाऊँ, अपने शागिर्दों तक इस्लाम की सच्ची शिक्षा पहुँचाऊँ और दूसरे लोगों तक भी इस्लाम का सच्चा पैग़ाम पहुँचाऊँ। मुझे आशा है कि अगर अल्लाह ने चाहा तो मैं अपने इस इरादे में सफल हो जाऊँगी।

□ □ □

15. डॉक्टर कमला सुरैया

(केरल, भारत)

डॉक्टर कमला सुरैया (पारिवारिक नाम डॉक्टर कमलादास) उपन्यासकार हैं, कवयित्री हैं और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध लेखिका और शोधकर्ता हैं। उन्होंने 12 दिसम्बर 1999 ई० को इस्लाम स्वीकार किया तो भारत ही नहीं, बल्कि दुनिया भर के धार्मिक और शैक्षिक क्षेत्रों में तहलका मच गया। नीचे उनके इस्लाम क़बूल करने की घटना बयान की जा रही है। यह लेख कई अलग-अलग लेखों की सहायता से तैयार किया गया है।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

डॉक्टर कमला सुरैया 1934 ई० में दक्षिणी भारत के केरल राज्य के एक इलाक़े पन्ना पूरकलम (जनपद थ्रेसर) में पैदा हुईं। उनका सम्बन्ध नायर जाति के एक अमीर हिन्दू घराने से है। उनकी माँ निलापत बिलामनी मलयालम भाषा की कवयित्री थीं, जबकि पिता बी०एम० नायर प्रसिद्ध पत्रकार थे और एक ही समय में दो पत्रिकाओं के सम्पादक थे। उनके पति स्वर्गीय मधवादास इण्टरनेशनल मॉनीटरी फण्ड (IMF) के सीनियर कंसलटेंट थे।

ख़ुद डॉक्टर कमला सुरैया एक समय तक अंग्रेज़ी की अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ़ इण्डिया की सम्पादक कमेटी में शामिल रहीं। वे केरल की चिल्ड्रेन फिल्म सोसाइटी की अध्यक्ष थीं। केरल के फ़ारेस्ट्री बोर्ड की चेयर पर्सन थीं और मासिक पत्रिका 'पोयट' 'Poet' की ओरिऐंट एडीटर थीं।

डॉक्टर सुरैया एक ही समय मलयालम और अंग्रेज़ी भाषाओं में लिखती हैं। वे उपन्यासकार भी हैं, कहानीकार भी और कवयित्री भी। इस प्रकार विभिन्न हवालों से मलयालम में उनकी बीस से अधिक किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं और बहुत पसन्द की गई हैं। इनके नॉवल 'Entekatha' का पन्द्रह विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। इसी प्रकार अंग्रेज़ी में उनकी पाँच किताबें हैं और बड़ी लोकप्रिय हुई हैं। 1964 ई० में इन्हें 'एशियन पोएटरी प्राइज़' दिया गया। 1965 ई० में इन्हें केंट अवार्ड, एशियन वर्ल्ड प्राइज़ और

एकेडमी अवार्ड दिए गए। 1967 ई० में इन्हें 'Vayalar' अवार्ड मिला। जबकि 1969 ई० में उनके कथा-लेखन पर उन्हें केरल साहित्य एकेडमी अवार्ड का सम्मान मिला। कई देशी और विदेशी यूनीवर्सिटियों ने इन्हें डॉक्ट्रेट की मानद डिग्रियाँ प्रदान की हैं।

इन असाधारण शैक्षिक, साहित्यिक तथा लेखन और शोध सम्बन्धी योग्यताओं के साथ इस प्रसिद्ध महिला ने 12 दिसम्बर 1999 ई० को केरल के शहर कोचीन में एक शैक्षिक एवं साहित्यिक समारोह को सम्बोधित करते हुए उपमहाद्वीप के राजनीतिक, धार्मिक और शैक्षिक क्षेत्रों में इस रहस्योद्घाटन से सनसनी फैला दी : "दुनिया सुन ले कि मैंने इस्लाम क़बूल कर लिया है, इस्लाम जो मुहब्बत, अमन और शान्ति का दीन है, इस्लाम जो सम्पूर्ण जीवन -व्यवस्था है, और मैंने यह फ़ैसला भावुकता या सामयिक आधारों पर नहीं किया है, इसके लिए मैंने एक अवधि तक बड़ी गम्भीरता और ध्यानपूर्वक गहन अध्ययन किया है और मैं अंत में इस नतीजे पर पहुँची हूँ कि अन्य असंख्य ख़ूबियों के अतिरिक्त इस्लाम औरत को सुरक्षा का एहसास प्रदान करता है और में इसकी बड़ी ही ज़रूरत महसूस करती थी..... इसका एक अत्यन्त उज्जवल पक्ष यह भी है कि अब मुझे अनगिनत ख़ुदाओं के बजाये एक और केवल एक ख़ुदा की उपासना करनी होगी। यह रमज़ान का महीना है। मुसलमानों का अत्यन्त पवित्र महीना और मैं ख़ुश हूँ कि इस अत्यन्त पवित्र महीने में अपनी आस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर रही हूँ तथा समझ-बूझ और होश के साथ एलान करती हूँ कि अल्लाह के अलावा कोई पूज्य नहीं और मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल (दूत) हैं। अतीत में मेरा कोई अक़ीदा नहीं था। मूर्ति पूजा से बददिल होकर मैंने नास्तिकता अपना ली थी, लेकिन अब मैं एलान करती हूँ कि मैं एक अल्लाह की उपासक बनकर रहूँगी और धर्म और समुदाय के भेदभाव के बग़ैर उसके सभी बन्दों से मुहब्बत करती रहूँगी।"

बाद में एक टेलीवीज़न इंटरव्यू में इन्होंने स्पष्ट किया, "मैंने किसी दबाव में आकर इस्लाम क़बूल नहीं किया है, यह मेरा स्वतंत्र फ़ैसला है और मैं इस पर किसी आलोचना की कोई परवाह नहीं करती। मैंने फ़ौरी तौर पर घर से बुतों और मूर्तियों को हटा दिया है और ऐसा महसूस करती हूं जैसे मुझे नया

जन्म मिला है।''

''टाइम्ज़ ऑफ़ इण्डिया'' को इंटरव्यू देते हुए 15 दिसम्बर 1999 ई० को डॉक्टर सुरैया कमला ने कहा, ''इस्लामी शिक्षाओं में बुरक़े ने मुझे बहुत प्रभावित किया अर्थात् वह लिबास जो मुसलमान औरतें आमतौर पर पहनती हैं। हक़ीक़त यह है कि बुरक़ा बड़ा ही ज़बरदस्त (Wonderful) लिबास और असाधारण चीज़ है। यह औरत को मर्द की चुभती हुई नज़रों से सुरक्षित रखता है और एक ख़ास क़िस्म की सुरक्षा की भावना प्रदान करता है।'' उन्होंने और व्याख्या की, ''आपको मेरी यह बात बड़ी अजीब लगेगी कि मैं नाम-निहाद आज़ादी से तंग आ गई हूँ। मुझे औरतों के नंगे मुँह, आज़ाद चलत-फिरत तनिक भी पसन्द नहीं। मैं चाहती हूँ कि कोई मर्द मेरी ओर घूर कर न देखे। इसी लिए यह सुनकर आपको आश्चर्य होगा कि मैं पिछले चौबीस वर्षों से समय-समय पर बुरक़ा ओढ़ रही हूँ, शॉपिंग के लिए जाते हुए, सांस्कृतिक समारोहों में भाग लेते हुए, यहाँ तक कि विदेशों की यात्राओं में मैं अक्सर बुरक़ा पहन लिया करती थी और एक ख़ास क़िस्म की सुरक्षा की भावना से आनन्दित होती थी। मैंने देखा कि पर्देदार औरतों का आदर-सम्मान किया जाता है और कोई उन्हें अकारण परेशान नहीं करता।''

डॉक्टर सुरैया ने आगे कहा, ''इस्लाम ने औरतों को विभिन्न पहलुओं से बहुत-सी आज़ादियाँ दे रखी हैं, बल्कि जहाँ तक बराबरी की बात है इतिहास के किसी युग में दुनिया के किसी समाज ने मर्द और औरत की बराबरी का वह एहतिमाम नहीं किया जो इस्लाम ने किया है। इसको मर्दों के बराबर अधिकारों से नवाज़ा गया है। माँ, बहन, बीवी और बेटी अर्थात् इसका हर रिश्ता गरिमापूर्ण और सम्माननीय है। इसको बाप, पति और बेटों की जायदाद में भागीदार बनाया गया है और घर में वह पति की प्रतिनिधि और कार्यवाहिका है। जहाँ तक पति के आज्ञापालन की बात है यह घर की व्यवस्था को ठीक रखने के लिए आवश्यक है और मैं इसको न ग़ुलामी समझती हूँ और न स्वतंत्रताओं की अपेक्षाओं का उल्लंघन समझती हूँ। इस प्रकार के आज्ञापालन और अनुपालन के बग़ैर तो किसी भी विभाग की व्यवस्था शेष नहीं रह सकती और इस्लाम तो है ही सम्पूर्ण अनुपालन और सिर झुकाने का नाम, अल्लाह के सामने विशुद्ध बन्दगी का नाम। अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की सच्ची पैरवी का नाम, यही

ग़ुलामी तो सच्ची आज़ादी की गारंटी देती है, वरना इन्सान तो जानवर बन जाए और जहाँ चाहे, जिस खेती में चाहे मुँह मारता फिरे। अतः इस्लाम और केवल इस्लाम औरत की गरिमा, स्थान और श्रेणी का लिहाज़ करता है। हिन्दू धर्म में ऐसी कोई सुविधा दूर–दूर तक नज़र नहीं आती।''

डॉक्टर सुरैया कमला को इस्लाम क़बूल करने के लिए 27 वर्ष तक इन्तिज़ार करना पड़ा। वह सत्तर के दशक में इस्लाम से प्रभावित हुईं और इस सम्बन्ध में अपने पति से वार्ता करती रहीं जिन्होंने जवाब में एतिराज़ या मुख़ालफ़त का अन्दाज़ नहीं अपनाया, बल्कि सुझाव दिया कि किसी नतीजे पर पहुँचने से पहले उन्हें इस्लाम के बारे में विस्तृत और गहन अध्ययन करना चाहिए। उनके तीनो बेटों का रवैया भी सकारात्मक रहा। इसी लिए जब उनकी माँ ने इस्लाम क़बूल करने का एलान किया तो तीनों बेटे कोचीन पहुँच गए, ताकि सम्भावित विरोध का मिलकर मुक़ाबला किया जा सके। तीनों बेटों की प्रतिक्रिया थी, ''हमें अपनी माँ के फ़ैसले से कोई मतभेद नहीं। वह हमारी माँ हैं, चाहे वे हिन्दू हों, ईसाई हों, या मुसलमान, हम हर हाल में उनका साथ देंगे और उनके सम्मान में कोई कमी नहीं आने देंगे।'' बेटों के आज्ञापालन का उल्लेख करते हुए डॉक्टर सुरैया ने बताया, ''मेरे बेटों ने कह दिया है कि अगर आप ख़ुश हैं तो हम भी इस्लाम क़बूल करने पर तैयार हैं।''

इस्लाम क़बूल करने के बाद कट्टर–पंथी हिन्दुओं की ओर से धमकियों का सिलसिला शुरू हो गया। पत्रों में और टेलफ़ोन पर गालियाँ दी जातीं। श्रीमती के बेटे एम० डी० फ़्लाइड ने बताया, ''हमने इस बारे में कई फ़ोन सुने हैं, एक व्यक्ति ने धमकी दी, ''चौबीस घंटे के अन्दर इसको क़त्ल कर दूँगा।'' लेकिन डॉक्टर सुरैया जवाब में ख़ामोश थीं। ''मैंने सभी मामले अल्लाह पर छोड़ दिए हैं, वही हमारी सुरक्षा करने वाला है।''

उन्हें दुनिया भर के मुसलमानों की ओर से बधाई सन्देश प्राप्त होते रहे और वे बड़ी सच्चाई, मुहब्बत और गरमजोशी से उन्हें अपने समर्थन का यक़ीन दिलाते रहे। इससे मेरे इस विश्वास को ताक़त मिली है कि इस्लाम मुहब्बत और इख़्लास का मज़हब है। मेरी इच्छा है कि मैं बहुत जल्द इस्लाम के केन्द्र पवित्र शहर मक्का और मदीना की यात्रा करूँ और वहाँ की पवित्र मिट्टी को चूमूँ। अपने बारे में उनकी कविताओं, कहानियों और विभिन्न इंटरव्यूज़ से पता

चलता है कि उन्होंने इस्लाम क़बूल करने का निर्णय अचानक नहीं किया, जैसा कि ऊपर इशारा किया जा चुका है। क़रीब 28 वर्ष पूर्व इस्लाम धर्म के प्रति उनकी रुचि का आरम्भ उस समय हुआ जब उन्होंने दो यतीम मुस्लिम बच्चों..... इम्तियाज़ और इरशाद को लेपालक बना लिया। उन्होंने इन बच्चों को हिन्दू की हैसियत से पालन–पोषण करने के बजाये मुसलमान के रूप में प्रशिक्षित करने का फ़ैसला किया। उनके लिए इस्लामी शिक्षा की व्यवस्था की और ख़ुद भी इस्लाम और इस्लाम के इतिहास के बारे में अध्ययन आरम्भ कर दिया और फिर गम्भीरतापूर्वक और गहराई के साथ अपनी जानकारी में वृद्धि करती चली गईं। इस मक़सद के लिए उन्होंने मुस्लिम परिवारों से सम्बन्ध बढ़ा लिए। जिससे इस्लाम के बारे में उनकी एकाग्रता बढ़ती गई। इसका उल्लेख उन्होंने विद्वान पति मधुवादास से किया, वे धर्म से विरक्त और निर्पेक्ष थे। उन्होंने सुझाव दिया कि इस्लाम के बारे में अधिक से अधिक अध्ययन करें और मन में पैदा होने वाली छोटी–से–छोटी आशंकाओं का जवाब हासिल करें। इसलिए जब उन्हें पूर्णतः संतुष्टि हो गई, मन सन्तुष्ट हो गया तो उन्होंने इस्लाम क़बूल करने का एलान कर दिया।

एक इंटरव्यू में ''ख़लीज टाइम्ज़'' ने उनसे पूछा कि इस्लाम क़बूल करने पर उनके जानने वालों और वर्तमान लेखकों की क्या प्रतिक्रिया थी, तो उन्होंने बताया, बहुत ही कम लोगों ने विरोध किया। बस कुछेक लोगों ने बुरा माना और मुझे उनकी कोई परवाह नहीं। धमकियाँ देनेवालों के बारे में कहा, ''मैं तनिक भी उनसे भयभीत न हुई स्थानीय पुलिस के अधिकारियों ने मुझे गार्ड की पेशकश की। लेकिन मैंने उन्हें बता दिया है कि मुझे ऐसे किसी इन्तिज़ाम की ज़रूरत नहीं। मुझे केवल अल्लाह की हस्ती पर भरोसा है, वही मेरी सुरक्षा करेगा।'' इसलिए यह बात ईमान को बढ़ानेवाली है कि वे अपने ही घर में निवास करती रहीं और उन्होंने मामूली से सुरक्षा प्रबन्ध भी नहीं किए।

''ख़लीज टाइम्ज़'' ही से बातें करते हुए उन्होंने कहा, ''मैंने अब बाक़ायदा पर्दा अपना लिया है और ऐसा लगता है कि जैसे बुरक़ा बुलेटप्रूफ़ जैकेट है जिसमें औरत मर्दों की हवसनाक नज़रों से भी सुरक्षित रहती है और उनकी शरारतों से भी। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि इस्लाम ने नहीं, बल्कि

सामाजिक अन्यायों ने औरतों के अधिकार छीन लिए हैं। इस्लाम तो औरतों के अधिकारों का सबसे बड़ा रक्षक है।'' उन्होंने बड़े विश्वास के साथ कहा, ''इस्लाम मेरे लिए दुनिया की सबसे क़ीमती पूँजी है। यह मुझे जानसे बढ़कर प्रिय है और इसके लिए बड़ी से बड़ी क़ुरबानी दी जा सकती है।''

जहाँ तक इस्लामी शिक्षाओं पर अमल की बात है। डॉक्टर सुरैया कमला ने कहा, ''मुझे हर अच्छे मुसलमान की तरह इस्लाम की एक-एक शिक्षा से गहरी मुहब्बत है। मैंने इसे दैनिक जीवन में व्यावहारिक रूप से अपना लिया है और धर्म के मुक़ाबले में दौलत मेरे नज़दीक बेमानी चीज़ है।'' अपनी शायरी के हवाले से उन्होंने बताया, ''मैं आगे केवल ख़ुदा की तारीफ़ पर आधारित कविताएँ लिखूँगी। अल्लाह ने चाहा तो ईश्वर की प्रशंसा पर आधारित कविताओं की एक किताब बहुत जल्द सामने आ जाएगी।''

इस्लाम क़बूल करने के बाद डॉक्टर सुरैया कमला ने बहुत-से समाचार पत्रों, पत्रिकाओं और इलेक्ट्रानिक मीडिया को इंटरव्यूज़ दिए। हर इंटरव्यू में उन्होंने इस इरादे का इज़हार किया कि वे दुनिया पर इस्लामी शिक्षाओं की सच्चाई को उजागर करेंगी। 'ख़लीज टाइम्ज़' से बातचीत करते हुए उन्होंने कहा, ''मैं इस्लाम का परिचय नई सदी के एक ज़िन्दा और सच्चे धर्म की हैसियत से कराना चाहती हूँ। जिसकी बुनियादें बुद्धि, साइंस और सच्चाइयों पर आधारित हैं। मेरा इरादा है कि अब मैं शायरी को अल्लाह के गुणगान के लिए अर्पित कर दूँ और क़ुरआन के बारे में अधिक से अधिक जानकारी हासिल करलूँ और उन इस्लामी शिक्षाओं से अवगत हो जाऊँ जो दैनिक जीवन में रहनुमाई का सबब बनती हैं। मेरे नज़दीक इस्लाम की रूह यह है कि एक सच्चे मुसलमान को दूसरों की अधिक से अधिक सेवा करनी चाहिए। अल्लाह का शुक्र है कि मैं पहले से भी इस पर कार्यरत हूँ और आगे भी यही तरीक़ा अपनाउँगी। अतः इस सम्बन्ध में मैं ख़ुदा के बन्दों तक इस्लाम की बरकतें पहुँचाने का इरादा रखती हूँ। मैं जानती हूँ कि इस्लाम की नेमत मिल जाने के बाद मैं ख़ुशी और इत्मीनान के जिस एहसास से परिचित हुई हूँ उसे सारी दुनिया तक पहुँचा दूँ। सच्चाई यह है कि इस्लाम क़बूल करने के बाद मुझे जो इत्मीनान और सुकून हासिल हुआ है और ख़ुशी की जिस कैफ़ियत से मैं अवगत हुई हूँ, उसे बयान करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं हैं। इसके साथ ही

मुझे सुरक्षा का एहसास भी प्राप्त हुआ है। मैं बड़ी उम्र की एक औरत हूँ और सच्ची बात यह है कि इस्लाम क़बूल करने से पहले जीवन भर बेख़ौफ़ी का ऐसा ख़ास अन्दाज़ मेरे तजुर्बे में नहीं आया। सुकून, इत्मीनान, ख़ुशी और बेख़ौफ़ी की यह नेमत धन–दौलत से हरगिज़ नहीं मिल सकती। इसी लिए दौलत मेरी नज़रों में तुच्छ हो गई है।''

ख़ुशी और इत्मीनान के इस एहसास को उन लाखों बधाई सन्देशों ने और अधिक बढ़ा दिया जो उन्हें दुनिया भर से मिलते रहे, ख़लीज टाइम्ज़ के रिपोर्टर के मुताबिक़ उनके टेलीफ़ोन की घंटी दिन भर बजती रहती है। इस्लाम के मानने वाले उनकी ख़ुशियों में जी भरके शरीक होते रहे।

□ □ □

16. जे० गिलक्रीज़

(J. Gilcrease)

(अमेरिका)

मिसिज़ जोहना गिलक्रीज़ (jo Ana Gilcrease) का सम्बन्ध फोर्ट वर्थ टेक्सास (अमेरिका) से है, इन्होंने 1983 ई० में इस्लाम क़बूल किया और इस बारे में जो लेख तैयार किया गया है उसका अनुवाद आवश्यक बदलाव के साथ नीचे दिया जा रहा है।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

इस्लाम क़बूल करने से पहले मेरा सम्बन्ध फ़ंडामेंटल बैप्टिस्ट चर्च (Fundamental Baptist Charch) से था। मैं चर्च से विधिवत रूप से सम्बद्ध रहकर बीस साल तक ईसाइयत की शिक्षा प्राप्त करती रही और लगभग दस साल तक बच्चों के एक संडे स्कूल में धार्मिक शिक्षा देती रही। एक ईसाई की हैसियत से मैं अपनी धार्मिक आस्थाओं का दृढ़तापूर्वक पालन करती रही और अपने छात्रों से अक्सर कहा करती थी, ''अगर कोई औरत या मर्द पाँच मिनट तक आपसे बातचीत करे और उसे यह अन्दाज़ा न हो कि आप एक अच्छे ईसाई हैं तो आप व्यावहारिक रूप से अपने धर्म के सच्चे प्रतिनिधि नहीं हैं।'' अतः मैं स्वीकार करती हूँ कि मैं अपने ख़ुदा से उस समय भी मुहब्बत करती थी और उसकी शिक्षाओं पर कि जैसी कुछ मुझ तक पहुँची थीं, अनुसरण करने की कोशिश करती थी।

लेकिन फिर क्या हुआ कि मैंने क़रीब चालीस वर्ष की उम्र में अपना पैतृक धर्म त्याग दिया और उन आस्थाओं को छोड़ दिया जो मुझे जान से बढ़कर प्रिय थीं। बात यह है कि जैसे-जैसे मेरी सोच में दृढ़ता पैदा होती गई और मैंने आलोचनात्मक दृष्टि से जायज़ा लिया तो बाइबल के अधिकतर अक़ायद (आस्थाएँ एवं अवधारणाएँ) मुझे बुद्धि और तर्क के विपरीत दिखाई दिए और सोच-विचार तथा अध्ययन की धुन जितनी बढ़ती गई, मेरी परेशानी में वृद्धि होती चली गई।

यह निस्सन्देह मेरा सौभाग्य है कि इसी ज़माने में मैंने मध्य–पूर्व के बारे में एक किताब का अध्ययन किया, जिससे मेरे मन में इस्लाम के बारे में दिलचस्पी पैदा हुई और मैंने इस्लाम का विस्तृत अध्ययन करने का निश्चय कर लिया और अधिक समय नहीं बीता था कि मैं इस्लाम की सुन्दरता और ख़ूबसूरती पर मोहित हो गई और धार्मिक आस्थाओं (अक़ाइद) के बारे में विभिन्न पहलुओं से मेरे मन में जितने सवाल पैदा हुए थे ईसाइयत में मुझे उनका कोई जवाब नहीं मिलता था, इस्लाम ने उन सभी सवालों के जवाब दे दिए। मेरा मन सन्तुष्ट हो गया, मेरी बुद्धि निहाल हो गई और मैंने ईसाइयत को अलविदा कह कर इस्लाम के रहमत भरे दामन में पनाह ले ली और उस समय से आज तक अल्लाह का शुक्र है कि सन्तुष्ट और सुखद जीवन व्यतीत कर रही हूँ।

ईसाइयत की जिन धारणाओं ने मुझे इस धर्म से विमुख और विरक्त किया उनमें त्रिवाद और हज़रत ईसा (अलैहि०) के ख़ुदा का बेटा होने की धारणा है। बुद्धि और तर्क के अलावा ऐतिहासिक दृष्टि से भी ये अवधारणाएँ निराधार हैं अर्थात् ईसाइयों के अधिकतर लोग नहीं जानते कि Nicca Council के आयोजन अर्थात् 325 ईसवी तक ईसा (अलैहि०) के अल्लाह का बेटा होने की अवधारणा और त्रिवाद, ईसाइयत का हिस्सा नहीं बने थे, लेकिन दुर्भाग्य से इस ऐतिहासिक सच्चाई के बावजूद ईसाइयों के अधिसंख्य लोग शोध या सोच–विचार करने का कष्ट नहीं उठाते और आँखें बन्द करके बाइबल में से उपर्युक्त निरर्थक बातों को पढ़ते और उन पर ईमान रखते हैं। इसी प्रकार यह ऐतिहासिक सत्य भी हर प्रकार के भ्रम और आशंकाओं से मुक्त है कि ईसाइयों का कैथोलिक समुदाय बाइबल के किंग जेम्स एडीशन और सेंटजोसेफ़ एडीशन पर सबसे अधिक विश्वास करता है और इन्हीं के धार्मिक सिद्धान्त पर ईसाई धर्म की धार्मिक अवधारणाओं की बुनियाद है। लेकिन उच्च शिक्षा प्राप्त ईसाइयों ने भी शायद ही कभी खोज करने का कष्ट किया हो कि बाइबल के ये एडीशन हेरा–फेरी के किन चरणों से होकर वर्तमान रूप तक पहुँचे हैं।

इसी प्रकार का मामला बाइबल की चार किताबों मत्ती, मार्क, लूक़ा और जॉन का है। ये चारों हज़रत मसीह (अलैहि०) की जीवनी और कथनों पर आधारित हैं और उनके निधन के पचास–साठ वर्ष बाद लिखी गई थीं। और

चारों को अलग–अलग आदमियों ने तैयार किया है। इसीलिए चारों में कथनों और घटनाओं की दृष्टि से जो अन्तर और टकराव है वह जगह–जगह दिखाई देता है।.....लेकिन अजीब बात है कि इस सब कुछ के बावजूद इसको ईश्वर की वाणी समझकर पढ़ा जाता है।

ईसाइयत के जिस रूप ने मुझे इस धर्म से और अधिक विमुख और विरक्त किया, वह सुविधा–भोगी और पेशावर पादरियों का वर्ग है, जो अपनी शानो–शौकत और सज–धज की वजह से गिरजों के वातावरण को ज़ाहिर में रौबदार और प्रभावी बना देता है। लेकिन सरल स्वभाव इसको ख़ुशी से क़बूल नहीं करता और सादगी की वह अवधारणा विकृत होती है, जो किसी भी धर्म की आत्मा से जुड़ी है।

इसके विपरीत मैंने इस्लाम का अध्ययन किया तो जैसा कि पहले बता चुकी हूँ मुझे इसकी सादगी और शिक्षाओं के बौद्धिक और व्यावहारिक रूप ने बहुत प्रभावित किया, जैसे मैंने इस्लाम के प्रथम और आधारभूत स्तंभ नमाज़ के बारे में पढ़ा तो प्रत्येक अमेरिकी की तरह मैं भी परेशान हो गई कि नमाज़ दिन में पाँच बार पढ़नी होगी। यह अवश्य ही अरबी भाषा में पढ़नी होगी, विशेष रूप से इस अत्यन्त व्यस्त संसार में सारे काम छोड़ करके पाँच बार नमाज़ पढ़ना काफ़ी मुश्किल काम नज़र आया। लेकिन सोचा तो अन्दाज़ा हुआ कि वास्तविक सृष्टा की बिना शर्त आज्ञापालन के लिए यह काम ज़रूरी है। और अगर इसे नियमितता, निरन्तरता, विशुद्ध हृदयता के साथ ध्यानपूर्वक अदा किया जाए तो एक विशेष प्रकार की शान्ति और ख़ुशी का एहसास दिल और दिमाग़ में बस जाता है। और यह विश्वास तो असाधारण मानसिक और व्यावहारिक शक्ति का साधन बनता है कि मैं अल्लाह के सामने खड़ी हूँ। यह विश्वास जीवन के दैनिक कर्मों को पूरा करने में ख़ासतौर से सहायक सिद्ध होता है।

नमाज़ के बारे में यह बात भी समझ में आ गई कि अल्लाह को तो हमारी इबादत या उपासना की ज़रूरत नहीं है, लेकिन हम उसकी दया, कृपा और मार्गदर्शन के बग़ैर एक क़दम नहीं चल सकते। और नमाज़ हिदायत चाहने, बन्दा होने के एहसास और शुक्र को व्यक्त करने का एक ख़ूबसूरत अन्दाज़ है। एक सच्चे और बाअमल मुसलमान भाई ने एक बार उदाहरण के

रूप में नमाज़ के फ़ायदे बयान किए और यह मतलब उसने किसी हदीस से हासिल किया था कि अल्लाह के सामने नमाज़ के लिए जाना बिलकुल ऐसा ही है जैसे सख़्त प्यास की हालत में इन्सान पानी के किसी ठण्डे, साफ़–सुथरे स्रोत के किनारे जा पहुँचे। आत्मा का भी यही हाल है। वह अगर बार–बार अल्लाह के सामने हाज़िर नहीं होगी तो भूख, प्यास और जुदाई का एहसास उसे बहुत परेशान कर देगा, और चारों ओर फैला हुआ बुराइयों और पापों का हुजूम आत्मा को कुचल कर रख देगा।

मुसलमान मर्द और औरतें अलग–अलग नमाज़ पढ़ते हैं। इस बात ने भी मुझे बहुत प्रभावित किया। अमेरिका में लगभग सभी धर्मों के मानने वालों के चर्च और इबादतगाहें अपने अनुयायियों को अनुमति देते हैं कि मर्दों और औरतों का जहाँ जी चाहे आपस में मिलकर इबादत कर सकते हैं। मेरी अन्तरात्मा को यह दृश्य पसन्द नहीं आया। इससे इबादत की पवित्रता आहत होती नज़र आती है। जबकि इस्लाम में यह भद्दापन नहीं है।

ईसाइयत में बहुदेववाद और मूर्ति–पूजा का पहलू भी मुझे परेशान करता रहा, मैं टेक्सास के क़रीब फोर्टवर्थ यूनीवर्सिटी में रहती हूँ। टेलीफ़ोन डाइरेक्टरी से अन्दाज़ा होता है कि यहाँ Baptist Church से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के चालीस गिरजाघर हैं। लेकिन सभी में मूर्ति पूजा का चलन पाया जाता है। इसके विपरीत इस्लाम में मानव–प्रकृति के अनुकूल एकेश्वरवाद के मनमोहक स्वाभाविक दृष्टिकोण ने मेरी आत्मा की प्यास बुझा डाली और मैं इसकी ओर इस प्रकार लपकती हुई चली आई जैसे एक प्यासा साफ़ और निर्मल जल–स्रोत की तरफ़ लपकता है।

नमाज़ और तौहीद (एकेश्वरवाद) के बाद मुझे सबसे अधिक क़ुरआन ने प्रभावित किया। क़ुरआनी शिक्षाओं की सादगी और बेलाग स्वाभाविक अन्दाज़ इसका बौद्धिक पक्ष, साफ़–सुथरे दृष्टिकोण व विचार, भाषा की सुन्दरता और शान.....वास्तव में क़ुरआन का हर रूप बेमिसाल है। फिर बाइबल के बिलकुल विपरीत क़ुरआन की ऐतिहासिक हैसियत बड़ी ही प्रामाणिक और हर प्रकार के सन्देहों और भ्रमों से दूर है। पैग़म्बरे–इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के निधन के बाद उनके पहले उत्तराधिकारी आदर्श शासक हज़रत अबू बक्र ने अत्यन्त सतर्कता के साथ क़ुरआन की लिखी हुई

प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन और हाफ़िज़ों (क़ुरआन को याद करनेवालों) की राय से इस किताब की एक ऐसी प्रति तैयार कराई जो अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की हिदायतों के बिलकुल मुताबिक़ थी, जो क़ुरआन की तरतीब और संकलन के बारे में आप (सल्ल०) ने की थी, इसीलिए तीसरे ख़लीफ़ा–ए–राशिद हज़रत उसमान (रज़ि०) के ज़माने की प्रति, जो ताशक़न्द में सुरक्षित चली आ रही थी और जिसे बीसवीं सदी में प्रकाशित भी कर दिया गया था, उसे देखकर पता चलता है कि क़ुरआन आज भी उसी प्रकार शुद्ध और अतुलनीय है और पूरी तरह उसी रूप में है जिस प्रकार अपने उतरने के समय था।

इस्लाम क़बूल करने के सम्बन्ध में मुझे इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के बेमिसाल और महान व्यक्तित्व ने भी प्रभावित किया, उनके बारे में जनाब मसीह (अलैहि०) की भविष्यवाणी यूहन्ना की इंजील में इस प्रकार मिलती है :

> ''मुझे तुमसे और भी बहुत–सी बातें कहनी हैं, मगर अब तुम उनको संभाल नहीं सकते। लेकिन जब वह अर्थात् सत्य आत्मा आएगा तो तुमको तमाम सच्चाई की राह दिखाएगा। इसलिए कि अपनी ओर से न कहेगा, लेकिन जो कुछ सुनेगा वही कहेगा और तुम्हें आगे की ख़बरें देगा।''
>
> (अध्याय–16, आयत–12,13)

यह भविष्यवाणी बाइबल की प्रत्येक प्रति में मौजूद है और बहुत–से हेर–फेर के बावजूद पिछले दो हज़ार वर्षों से इसको मिटाया नहीं जा सका। अंग्रेज़ी में यह इस प्रकार है :

> "When he, The spirit of truth, Is come, He will guide you into all truth." (जब सत्य की आत्मा आएगा तो तुमको सच्चाई की राह दिखाएगा।)

मैंने इस्लाम के अध्ययन के दौरान जब हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की पवित्र जीवनी को देखा तो यक़ीन हो गया कि हज़रत ईसा (अलैहि०) की भविष्यवाणी केवल आप (सल्ल०) पर चरितार्थ होती है। आप (सल्ल०) 571 ई० में जब दुनिया में आए तो अल्लाह का धर्म विकृत होकर अपनी

हैसियत खो चुका था और सम्पूर्ण मानव–जाति पथभ्रष्टता, बुराई और अत्याचार के अंधकार में डूब चुकी थी। आपने अनगिनत बनावटी ख़ुदाओं के मुक़ाबले में मात्र एक ख़ुदा का ध्वज फहराया और एक क्रूर, घातक–व्यवस्था के ख़िलाफ़ बग़ावत का एलान कर दिया। मुझे अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की ज़िन्दगी प्रत्येक दृष्टि से मिसाली नज़र आई, वे सबके लिए अत्यन्त दयालु व कृपालु, सहनशील सबसे सच्चा प्रेम व स्नेह रखने वाले थे। अमानत और दयानत, न्याय और इन्साफ़ आप (सल्ल०) पर ख़त्म था, आपकी जीवनी और व्यक्तित्व में परस्पर विरोध नाम की चीज़ें ढूँढने से भी नहीं मिलतीं। आप कथनी–करनी में और खुले–छिपे में एक जैसे थे। अतः आपकी बेहतरीन ख़ूबियों से प्रभावित होकर प्रत्येक वह व्यक्ति आप (सल्ल०) के क़रीब आ गया जिसमें थोड़ी–सी भी सद्भावना मौजूद थी और इस प्रकार कुछ ही वर्षों में आप (सल्ल०) वह क्रान्ति ले आए, जिसका उदाहरण मानव–इतिहास में कहीं नहीं मिलता। निस्सन्देह आप (सल्ल०) ही 'हक़ की रूह' (Spirit of Truth) थे और आप (सल्ल०) ने ही हज़रत मसीह (अलैहि०) के बाद दुनिया को पूर्ण सत्य (All Truth) का रास्ता दिखाया।

जहाँ तक इस्लाम का सामाजिक जीवन से सम्बन्ध है, क़ुरआन मजीद और हदीस की रौशनी में आज के अत्यन्त व्यस्त वैज्ञानिक युग में भी एक मुसलमान धार्मिक सिद्धान्तों की इस व्यवस्था से पूरी तरह मार्गदर्शन प्राप्त कर सकता है। इसी लिए इस्लाम की नैतिक व्यवस्था घरेलू ज़िन्दगी के प्रत्येक क्षेत्र से लेकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के संदर्भ में भी एक व्यवहार–योग्य सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। इस्लाम अन्तर्राष्ट्रीय नैतिकता का एक मानदंड प्रस्तुत करता है और यह मानदंड न केवल दृढ़ और चिरस्थाई हैसियत का मालिक है, बल्कि अच्छे और बुरे रवैये को जाँचने का एक पैमाना देता है। इस्लाम अपने मानने वालों के दिलों में यह यक़ीन मज़बूती से बिठाने का प्रयास करता है कि वास्तविक सृष्टा.....अल्लाह.....उसकी सोच और आचरण के प्रत्येक पहलू से अवगत है और उसका पल–पल अल्लाह की निगाह में है। अतः एक व्यक्ति बड़ी कामयाबी के साथ सारी दुनिया को धोखा दे सकता है लेकिन अल्लाह को धोखा देने में वह बिलकुल कामयाब नहीं हो सकता।

इस्लाम मानव–जाति की उचित और सद्इच्छाओं, आशाओं और

कामनाओं का ध्यान रखता है और इन्हें विशेष महत्व देता है। वह भरपूर समाज में जीवन व्यतीत करने वाले इन्सान को इस प्रकार का नैतिक सिद्धान्त देता है, जो दैनिक जीवन को सन्तुष्ट और सुखद बनाने में भी उसका मार्गदर्शन करता है और आख़िरत की ज़िन्दगी की सफलता की भी गारंटी देता है।

इस्लाम की प्राकृतिक और पूर्ण जीवन–व्यवस्था का एक योग्य एवं अच्छा उदाहरण पारिवारिक इकाई के बारे में इसका शानदार रोल है। ज़ाहिर है, इन्सानी समाज में परिवार महत्वपूर्ण यूनिट है और हर ज़माने के इन्सानों का यह फ़र्ज़ है कि वे आनेवाली नस्लों में मानव–संस्कृति की सेवा की भावना भी पैदा करें और मानव–जाति के बारे में अपनी ज़िम्मेदारियाँ निभाने का शौक़ भी स्थानान्तरित करें। लेकिन अमेरिका या यूरोप के किसी समाचार पत्र का सरसरी तौर पर अध्ययन इस बात का अन्दाज़ा करने के लिए काफ़ी है कि वर्तमान युग में परिवार की संस्था यह ज़िम्मेदारी निबाहने में नाकाम साबित हुई है और इस प्रकार नई नस्लों को वह मज़बूत बुनियाद हासिल नहीं हुई जिस पर आर्थिक विकास, सच्ची ख़ुशी व संतुष्टि और संस्कृतियों एवं सभ्यताओं की उन्नति निर्भर होती है। इस्लाम इस मूलभूत इकाई अर्थात् परिवार को विशेष महत्व देता है और इसके लिए शादी को ज़रूरी क़रार देता है। अतः इस्लामी समाज में मर्द और औरत का सम्बंध ग़ैर संजीदगी, उच्छृंखला और भोग–विलास का प्रतीक नहीं, बल्कि बड़ा ही मज़बूत और पवित्र सम्बन्ध है।

इस बारे में इस्लाम बड़ी सतर्कता के साथ मर्द और औरत की मिली–जुली महफ़िलों, नाच–गाने और संगीत के समारोहों और अश्लीलता के विभिन्न प्रदर्शनों पर प्रतिबन्ध लगाता है। इस्लाम लोगों के स्वस्थ मनोरंजन का विरोध नहीं करता, लेकिन परिवार की सुरक्षा उसे अत्यन्त प्रिय है।

पारिवारिक यूनिट की मज़बूती और इस दृष्टि से अपेक्षित परिणाम प्राप्त करने के लिए इस्लाम ने मर्द को उच्च हैसियत देकर घर का सरबराह (प्रमुख) क़रार दिया है। अगुवाई का यह पद अत्याचार या तानाशाही को नहीं दर्शाता है, न पत्नी को बेबसी या ग़ुलामी की हैसियत दी गई है, बल्कि यह पद आपसी आदर, प्रेम और परामर्श से जुड़ा है। और औरत को घर में एक कार्य सहायिका, बल्कि उपाध्यक्ष की हैसियत प्राप्त है। अमेरिका और यूरोप की औरतें इसकी कल्पना भी नहीं कर सकतीं। माँ–बाप का आदर करना बच्चों का परम कर्तव्य

है और विशेष रूप से माँ को इस्लामी समाज में जो स्थान प्राप्त है, वह अत्यन्त सराहनीय एवं अनुकरणीय है।

दुर्भाग्य से अमेरिका में इस्लाम के ख़िलाफ़ कई प्रकार के भेदभाव प्रचलित हैं। इस्लामी इतिहास और इस्लामी शिक्षाओं के ख़िलाफ़ जान-बूझकर ग़लतफ़हमियाँ बड़े पैमाने पर फैलाई गई हैं। लोग इस्लाम के बारे में जानने की कोशिश नहीं करते और तंग नज़री और इस्लाम दुशमनी के कारण वे सही और प्रामाणिक जानकारी से वंचित हैं। ऐसी परिस्थिति में अमेरिका में निवास करने वाले सभी मुसलमानों का कर्तव्य है कि वे अपने आचरण और व्यवहार से इस्लाम का इस ढंग से प्रतिनिधित्व करें और अमेरिकियों के सामने सच्चे और सदाचारी मुसलमानों की ऐसी मिसाल पेश करें कि वे सत्य धर्म से प्रभावित हुए बग़ैर न रह सकें। हमें अपने चरित्र, आचरण और बातचीत से यह बात साबित करना है कि इस्लाम न केवल दैनिक जीवन की समस्याओं का बेहतरीन समाधान पेश करता है, बल्कि सामान्य सामाजिक और सांसारिक दृष्टि से भी मार्गदर्शन के कर्तव्यों का निर्वाह उत्तम ढंग से करता है। मुझे यक़ीन है कि हम जब अपनी निजी और सामाजिक ज़िन्दगी में इस्लामी शिक्षाओं पर अमल करेंगे और आदर्श मुसलमान की हैसियत से जीवन व्यतीत करेंगे तो आसपास का माहौल प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रहेगा और कितनी ही प्यासी आत्माएँ इस ओर खिंची चली आएँगी।

☐ ☐ ☐

17. दो जापानी बहनें

(जापान)

इस्लाम क़बूल करने की प्रस्तुत कहानी एक ऐसे इस्लामी धर्म प्रचारक ने बयान की है जो जापान की टोकियो यूनीवर्सिटी में पढ़ते रहे हैं और ख़ाली समय में इस्लाम धर्म के प्रचार–प्रसार का काम भी किया करते थे। उनकी यह कहानी दमिश्क़ की मशहूर पत्रिका ''हिज़ारतुल इस्लाम'' में प्रकाशित हुई थी। इसका अंग्रेज़ी अनुवाद कुवैत से प्रकाशित होने वाली एक किताब में शामिल किया गया, जिसका हिन्दी रूपान्तर पाठकों की सेवा में पेश है।

■ ■ ■ ■ ■

मिस्टर नकामोरा (Nakamura) उन छह जापानियों में शामिल थे जिनका सम्बन्ध बुद्धों के मशहूर धार्मिक केन्द्र 'नीजी' (Neeji) से था, और जो हमारे तबलीग़ी धर्म प्रचारकों के दल की कोशिशों से मुसलमान हुए थे। नीजी टोकियों से लगभग एक सौ किलोमीटर दक्षिण में इनज़ान (Inzan) शहर के क़रीब है। नकामूरा का इस्लामी नाम सअद रखा गया। ये साहब काफ़ी अमीर थे। व्यक्तिगत रूप से बड़ी अच्छी ख्याति के मालिक थे और यामेंशी राज्य में काफ़ी प्रभाव रखते थे....... इस्लाम से उनके लगाव और आसक्ति का हाल यह था कि उन्होंने केवल धार्मिक शिक्षाओं को समझने और इस्लामी समाज को समझने के लिए पहले पाकिस्तान और फिर भारत की यात्रा की और दोनों देशों में काफ़ी समय बिताया। मिस्टर सअद की तीन बेटियाँ थीं। बड़ी शादीशुदा थी और उसका पति एक प्रेस का मालिक था। जबकि दोनों छोटी बेटियाँ शायद जुड़वाँ थीं और टोकियो यूनीवर्सिटी में अन्तिम वर्ष की छात्रा थीं। दोनों अंग्रेज़ी साहित्य की उच्च शिक्षा हासिल कर रही थीं। और सअद की बड़ी इच्छा थी कि किसी प्रकार ये दोनों बेटियाँ इस्लाम क़बूल कर लें और फिर अन्य जापानी औरतों में इस्लाम के प्रचार–प्रसार का माध्यम बनें। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने मुझे ख़त लिखा कि मैं अपने साथियों के साथ किसी समय उनकी बेटियों से मुलाक़ात करूँ और उन्हें इस्लाम की ओर आकर्षित करूँ।

अतः फ़ोन पर दिन और समय तय हो गया और हम एक दिन जनाब सअद की बड़ी बेटी के घर पहुँच गए, जहाँ दोनों छोटी बहनों से हमारी मुलाक़ात हुई और इस्लाम के बारे में प्रारम्भिक परिचायक बातचीत भी हुई।

लेकिन हमने महसूस किया कि इस घर का माहौल इस्लाम पर बातचीत के लिए किसी प्रकार अनुकूल नहीं है, इसलिए हमने मुलाक़ात टाल दी और उन्हें दावत दी कि वे अगले जुमा को हमारे निवास पर पधारें। जहां उन्हें शानदार पाकिस्तानी डिनर भी खिलाया जाएगा। दोनों बहनों ने हमारी दावत ख़ुशी से क़बूल कर ली।

प्रोग्राम के मुताबिक़ अगले जुमा के दिन शाम को नकामूरा सिस्टर्ज़ हमारे निवास पर पहुँच गईं। उनके पिता सअद नकामोरा भी उनके साथ थे। हमारे ग्रुप लीडर अल-हाजी पाकिस्तानी थे, जो बेहद धार्मिक प्रेम-भाव और सदाचरण के साथ-साथ खाना पकाने में भी माहिर थे। उन्होंने कई प्रकार के मज़ेदार खाने तैयार कर लिए, लेकिन दोनों बहनों ने साफ़ कह दिया कि वे उस समय तक खाने को हाथ नहीं लगाएँगी, जब तक इस बात का स्पष्टीकरण न कर दिया जाए कि इस्लाम में औरत की क्या हैसियत है? पता चला कि किसी व्यक्ति ने उन्हें बहकाया है कि इस्लाम में औरत के साथ अत्याचार, अन्याय और हिंसक व्यवहार किया जाता है। इस धर्म में औरत के कोई अधिकार नहीं। इसकी हैसियत केवल लौंडी की है, अय्याशी के अलावा इसका कोई प्रयोग नहीं। इसको मर्दों के बराबर अधिकार हासिल नहीं, बल्कि इससे मनोरंजन और आमोद-प्रमोद का अधिकार भी छीन लिया गया है।

हम इस परिस्थिति के लिए तैयार नहीं थे और सच बात है कि दोनों बहनों के इस सवाल और एतिराज़ से निपटना बहुत मुश्किल लगा। लेकिन जैसा कि हमारी आदत है, हमने अल्लाह से दुआ की और उसी की कृपा से मेरे मन में बिजली की लहर की भाँति कुछ बातें आ गईं। मैंने दोनों लड़कियों से कहा, ''क्या आप ख़ुद अपनी आँखों से देखना पसन्द करेंगी कि ख़ुद संसार के स्रष्टा अल्लाह ने आप के इस सवाल का क्या जवाब दिया है?'' दोनों ने जवाब दिया कि ''बिलकुल, इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है।''

तब मैंने क़रीब के बुक शेल्फ़ से पिकथॉल का अंग्रेज़ी अनुवाद वाला क़ुरआन मजीद उठाया और सूरा-33, अल-अहज़ाब की आयत-35 का अनुवाद उनको सुनाने लगा। अनुवाद इस तरह है :

> ''बेशक मुसलमान मर्द और मुसलमान औरतें, मोमिन-मर्द और मोमिन औरतें, आज्ञाकारी मर्द और आज्ञाकारी औरतें, सच्चे मर्द और सच्ची औरतें, सब्र करने वाले मर्द और सब्र करनेवाली

औरतें, अल्लाह के आगे झुकने वाले मर्द और अल्लाह के आगे झुकने वाली औरतें, रोज़ा रखने वाले मर्द और रोज़ा रखने वाली औरतें, शर्मगाहों (गुप्तांगों) की हिफ़ाज़त करनेवाले मर्द और औरतें, अल्लाह को अधिक याद करनेवाले मर्द और औरतें...... अल्लाह ने उन सबके लिए क्षमा और बड़ा प्रतिदान तैयार कर रखा है।''

मेरे अनुभव के अनुसार यह पहला अवसर था, जब मैं किसी ग़ैर मुस्लिम पर पवित्र क़ुरआन के शब्दों का आश्चर्यजनक रूप से तात्कालिक प्रभाव देख रहा था। दोनों बहनों के चेहरे सन्तुष्ट और शान्त थे। दोनों ने एक स्वर में कहा ''कैसी पूर्ण समानता है मर्द और औरत में......'' तब मैंने उन्हें बताया कि इस्लाम के अनुसार लोक और परलोक में आदर और सम्मान पाने में औरत का कोई समतुल्य (साझी) नहीं, जन्नत तक उसके चरणों में है और उसका प्रत्येक सम्बन्ध आदरणीय और पवित्र है। किन्तु चूँकि मर्द और औरत के अंगों की रचना एक-दूसरे से अलग है, इसलिए यह कहना बिलकुल बेवकूफ़ी है कि दैनिक ज़िम्मेदारियों की दृष्टि से दोनों बराबर हैं.... दोनों का कार्यक्षेत्र अलग है और इस्लाम चाहता है कि दोनों अपने-अपने कार्यक्षेत्र में आत्म-सम्मान और गौरव के साथ अपनी ज़िम्मेदारियों का निर्वाह करें..... लेकिन नेकी को पाने और जन्नत हासिल करने में औरत मर्द से आगे भी निकल सकती है। इस सम्बन्ध में उसके रास्ते में हरगिज़ कोई रुकावट नहीं है। जाति, रंग या राष्ट्रीयता का इस्लाम में कोई अन्तर नहीं है। इस दृष्टि से अल्लाह की नज़र में सब बराबर हैं।

मैंने दोनों बहनों को बताया कि पैग़म्बरे इस्लाम (सल्ल०) के दौर में सब मुसलमान इस हक़ीक़त को जान गए थे और अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए मर्द और औरत सभी प्रयत्नशील रहते थे और नेकी का हुक्म देने और बुराई से रोकने की ज़िम्मेदारी सभी अंजाम देते थे। पैग़म्बरे-इस्लाम ने औरतों के अधिकार और उनकी इ़ज़्ज़त के सम्बन्ध में बहुत-से आदेश दिये हैं। मैंने दोनों जापानी बहनों को क़ुरआन की यह आयत भी सुनाई :

''ऐ लोगो! हमने तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया और फिर तुम्हारी क़ौमें और बिरादरियाँ बना दीं, ताकि तुम एक दूसरे को पहचान सको। वास्तव में अल्लाह के नज़दीक तुममें

सबसे ज़्यादा इज़्ज़तवाला वह है जो तुममें सबसे ज़्यादा परहेज़गार है। निस्सन्देह अल्लाह सब कुछ जाननेवाला और ख़बर रखनेवाला है।'' (क़ुरआन, 49 : 13)

दोनों बहने अपने बाप की तरह निर्मल स्वभाव की थीं और इस बातचीत से, विशेष रूप से क़ुरआनी शिक्षाओं से, बहुत सन्तुष्ट नज़र आ रही थीं..... बात ख़त्म हुई तो दोनों ने इच्छा व्यक्त की कि कुछ देर के लिए उन्हें अकेले छोड़ दिया जाए ताकि वे आपस में विचार-विमर्श कर सकें। इसलिए दोनों दूसरे कमरे में चली गईं। और कुछ ही मिनट के बाद वापस आकर उन्होंने कहा—

''हम दोनों इस नतीजे पर पहुँची हैं कि सारे धर्मों में केवल इस्लाम ही सच्चाई का ध्वजावाहक है और इसने औरत को जो अधिकार और मान-सम्मान प्रदान किया है वह बड़ा ही सुखद है। इसलिए हम दोनों ख़ुशदिली के साथ इस्लाम क़बूल करती हैं। उम्मीद है कि आप लोग इस मामले में हमारा मार्गदर्शन करेंगे।''

इस पर सब लोग बेहद ख़ुश हुए। मेरी ख़ुशी का तो कोई ठिकाना न था। हमने अल्लाह का शुक्र अदा किया और दोनों बहनों की इच्छा पर खाने से पहले दोनों को शहादत का कलमा पढ़वाया और इस्लाम में दाख़िल कर लिया। उन्होंने बड़े उत्साह, मुहब्बत और एहतिराम से कलमे के शब्दों को दोहराया,

''हम गवाही देती हैं कि अल्लाह के अलावा कोई इबादत के योग्य नहीं और हम गवाही देती हैं कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के बन्दे और रसूल हैं।''

हमने उनके इस्लामी नाम रखे, जो उन्होंने बहुत पसन्द किए। एक का नाम मैं भूल रहा हूँ जबकि दूसरी का 'आमिना' था, नबी-ए-अकरम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की माँ के नाम पर।

इस शुभ कार्य से फ़ारिग़ होकर हमने खाना खाया, जो वैसे तो बहुत मज़ेदार था, लेकिन मौक़े की अनुकूलता से हम हज़ार गुना ज़्यादा मज़ा महसूस कर रहे थे। मिस्टर सअद नकामूरा सबसे ज़्यादा ख़ुश थे। उनकी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी इच्छा पूरी हो गई थी।

☐☐☐

18. अमीरा

(अमेरिका)

मैंने अरकंसास में ऐसे माता–पिता के घर जन्म लिया, जो अरकंसास (अमेरिका) ही में पैद हुए थे। अतीत में जहाँ तक मैं झाँक सकती हूँ, उससे यही मालूम होता है कि मेरे पूर्वज दक्षिणी प्रान्तों से यहाँ आकर बसे थे। मेरा पूरा पालन–पोषण एक फ़ार्म में हुआ, जहाँ सुबह–सवेरे उठकर बड़ी संख्या में गायों का दूध दूहना होता है। मुर्ग़ियों को आहार देना होता है और रोज़मर्रा के दूसरे काम करने होते हैं। मेरा बाप एक चर्च का पादरी (Baptist) था। बैपटिस्ट ईसाइयों का एक फ़िरक़ा (पंथ) है, जैसे कैथोलिक और मैथोडिस्ट आदि। ये सभी ईसाई धर्म के विभिन्न पंथ हैं। ये भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों और पंथीय विचारों के माननेवाले हैं।

जिस क़स्बे में मेरा आवास था, वहाँ सब गोरी नस्ल के लोग रहते थे और सारे के सारे ईसाई थे, इसलिए मैं किसी दूसरे धर्म और संस्कृति से परिचित न हो सकी। मुझे हमेशा यह शिक्षा दी गई कि अल्लाह ने हम सब इनसानों को बराबर पैदा किया है। रंग, नस्ल, संस्कृति और धर्म की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं है। बाद में मुझे पता चला कि ऐसा धार्मिक प्रचार–प्रसार करना और शिक्षा देना, उस समय तक उनके लिए आसान है, जब तक वे अलग–थलग रहें और दुनिया के दूसरे धर्मों का उनसे परिचय न हो।

पहली बार मैंने किसी मुसलमान को उस समय देखा, जब यूनीवर्सिटी ऑफ़ अरकंसास के कॉलेज में नामांकन करवाया। मुसलमान लड़कियाँ विचित्र प्रकार के वस्त्र पहने हुए थीं, जबकि लड़के सिरों पर पगड़ियाँ लपेटे हुए और रात्रि वस्त्र (Night Gowns) जैसा लिबास पहने हुए थे। आज भी मुझे याद है कि मैं बड़ी देर तक उनको टकटकी बाँधे देखती रही थी। पहली बार जब मुझे एक मुसलमान लड़की से मुलाक़ात करने का मौक़ा मिला, तो उससे सवाल पूछते हुए मैंने संतोष का अनुभव किया। उसकी बातों ने मेरे दिलो–दिमाग़ में एक प्यास लगा दी। अल्हम्दुलिल्लाह (सारी तारीफ़ें अल्लाह ही के लिए हैं), अब सत्य को पा लेने की चाह पैदा हो गई।

मैं उस लड़की को कभी नहीं भुला सकती। उसका सम्बन्ध फ़िलिस्तीन

से था। मैं उसके पास घंटों बैठी उसके देश और कल्चर (संस्कृति) की कहानियाँ सुनती रहती। उसकी जिस चीज़ ने मुझे सबसे ज़्यादा आकर्षित और सम्मोहित किया, वह उसका धर्म 'इस्लाम' था। यह लड़की अन्दर से अत्यन्त संतुष्ट थी। मुझे आज भी अल्लाह और उसके पैग़म्बरों (अलैहि०) के बारे में उसकी बताई हुई हर बात याद है, यद्यपि आज तक मैंने उसे ज़ाहिर नहीं किया। मेरे मन में प्रायः त्रिवाद (तीन ख़ुदाओं से सम्बन्धित अवधारणा) के बारे में सवाल पैदा होते थे कि हम ईसा (अलैहि०) की इबादत (उपासना) करते हैं? सीधे-सीधे अल्लाह तआला की इबादत क्यों नहीं करते? अल्लाह तआला की सर्वोपरि और सर्वशक्तिमान सत्ता को महत्त्व क्यों नहीं दिया जाता?

मुझसे इस्लाम की इस बात को मनवाने के लिए कि एकमात्र यही सत्य-धर्म (दीने-हक़) है, जो मुझे और तमाम इंसानों को जन्नत (स्वर्ग) में ले जा सकता है, मेरी दोस्त (सहेली) ने वह सब किया, जो वह ख़ुद कर सकती थी। उसने मुझे बताया कि इस्लाम कोई साधारण धार्मिक पंथ नहीं है, बल्कि मानव-जाति के लिए यह एक सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था है। मेरी दोस्त ने छह महीने बाद अपनी ग्रेजुएशन पूरी कर ली और वापस फ़िलिस्तीन चली गई। फ़िलिस्तीन पहुँचने के दो सप्ताह बाद ही उसके घर के सामने उसकी हत्या कर दी गई। उसकी मृत्यु की ख़बर सुनकर मेरे हृदय को बहुत गहरा आघात लगा। मुझे महसूस हुआ जैसे मेरे शरीर का कोई भाग कट गया हो। जब वह अपने घर वापस जा रही थी तो हम जानते थे कि इस दुनिया में शायद ही हम एक-दूसरे से दोबारा मिल सकें। जाते समय उसने एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात बड़े विश्वास से कही थी कि वह मुझे पारलौकिक संसार—जन्नत में मिलेगी।

इसके बाद मध्य-पूर्व के कई लोगों से मेरी मुलाक़ात और दोस्ती हुई। मेरी सहेली की मौत से मुझे जो दुख पहुँचा था, उस दुख को सहने के लिए उन्होंने मेरी बड़ी मदद की। मैं घंटों क़ुरआन के टेप्स (Tapes) सुनती, यद्यपि मैं कभी न समझ पाई कि क्या कहा जा रहा है। आज भी यही स्थिति है कि मैं बड़ी चाहत से क़ुरआन को सुनती हूँ। हालाँकि कुछ समझ नहीं पाती। लेकिन क़ुरआन-पाठ (तिलावत) मेरे मन-मस्तिष्क और आत्मा को अपने प्रभावाधीन कर लेता है। कॉलेज में अरबी भाषा सीखने के लिए मेरे पास बिल्कुल समय नहीं था। कॉलेज से निकलने के बाद जब मैं अपनी कम्यूनिटी में वापस आ गई

तो मुसलमानों से मेरा आगे सम्पर्क न रहा। लेकिन मेरी आत्मा में इस्लाम की जो चाहत और अरबी भाषा से जो प्रेम उत्पन्न हो चुका था, उसने मुझे कभी न छोड़ा। इसके कारण मेरे माता–पिता और कई दोस्तों का ग़ुस्सा भी बढ़ा। माता–पिता और दोस्तों के व्यवहार ने मुझे दिग्भ्रमित (कंफ़्यूज़) कर दिया, क्योंकि मुझे तो हमेशा यह शिक्षा दी गई थी कि अल्लाह तआला की नज़रों में हम सब बराबर हैं। मैं सोचने लगी कि इस समता–सिद्धान्त में मेरे दोस्तों और परिवार के लिए शायद कुछ छूट हो।

यह 1995 ई० की वसन्त ऋतु थी, जब अल्लाह तआला ने मेरे जीवन में एक और व्यक्ति को दाख़िल किया। एक मुसलमान को कैसा होना चाहिए, वह व्यक्ति उसका सुन्दर नमूना था। उस व्यक्ति के कारण एक बार फिर इस्लाम मेरे मन–मिस्तष्क पर छा गया। मैंने उससे सवाल पूछने शुरू कर दिए। फिर एक दिन वह पहली बार मुझे मस्जिद भी ले गया। ये ऐसी यादें हैं, जो मेरे मन–मस्तिष्क में अंकित होकर रह गईं। उसने इस्लाम से सम्बन्धित जो कुछ भी दिया, मैंने पढ़ डाला। टेप्स को निरंतर सुना। यह क्रम आठ महीने तक चलता रहा, फिर वह पल आ गया, असत्य को त्यागने और सत्य को स्वीकार कर लेने का पल। 15 फ़रवरी 1996 को मैंने इस्लाम क़बूल कर लिया। (अल्हुम्दुलिल्लाह, सारी प्रशंसा सिर्फ़ अल्लाह के लिए है।)

इस्लाम स्वीकार कर लेने के बाद आज़माइशों (कड़ी परीक्षाओं) का दौर शुरू हो गया। सबसे पहली आज़माइश मेरी मंगनी का टूटना था। मेरे (मुसलमान फ़िलिस्तीनी) मंगेतर के माता–पिता नहीं चाहते थे कि उसकी शादी किसी अमेरिकी लड़की से हो। यद्यपि हमारे बीच मंगनी का सम्बन्ध और रिश्ता टूट गया, फिर भी मैं उसका आदर–सम्मान करती हूँ। अल्लाह तआला का शुक्र है कि उसने मुझे अटल रखा और मैं इंशाअल्लाह (ईश्वर ने चाहा तो) इस्लाम के रास्ते को न छोड़ूँगी।

जब मैंने एक अरब अर्थात् विदेशी से शादी की तो मेरे माँ–बाप को शायद झटका लगा। उन्होंने मेरे साथ बातचीत बन्द कर दी। मेरी अधिकतर अमेरिकी सहेलियाँ भी मुझे छोड़ गईं। जब मैंने इस्लाम अपनाया तो मेरे परिजनों ने मुझे मनोरोग–चिकित्सालय ले जाना चाहा। जब वे इसमें विफल हो गए तो उन्होंने मुझसे सम्बन्ध–विच्छेद की घोषणा कर दी। वे मुझे फ़ोन करवाते कि उन्हें विश्वास है कि मैं दोज़ख़ (नरक) में जलूँगी। मेरी प्राय: सभी

सहेलियाँ भी अपने फ़ोन में इसी इच्छा की अभिव्यक्ति करतीं, हालाँकि इससे मुझे अत्यन्त दुख पहुँचा। मेरे और मेरे घरवालों के बीच अनेक मतभेद पैदा हो गए। फिर भी मैं उनसे दिल की गहराइयों से प्रेम करती हूँ। ईश्वर की कृपा है, जिसने मेरे ईमान को शक्ति प्रदान की और मज़बूत बनाया।

सऊदी अरब में बम धमाकों के दो दिन बाद अंतिम बार मेरी अपने घरवालों से बात हुई। मेरे अंकल और कज़िन उन धमाकों में मारे गए थे। मेरे घरवालों ने मुझे यह ख़बर सुनाने और बताने के लिए फ़ोन किया था कि मेरे रिश्तेदार मुझसे बहुत प्रेम करते थे। और उनका ख़ून मेरे और मेरे 6 आतंकी मित्रों के सिर पर है। मैं कई दिनों तक रोती रही। अल्लाह का शुक्र है कि उसने मुझे दृढ़ता और अडिगता प्रदान की और मेरा ईमान बचा रहा।

बम धमाकों के चार दिनों बाद की बात है कि एक दोपहर को जब मैं अपने घर वापस लौटी, तो मैंने देखा कि खिड़कियों में किसी ने फ़ाइरिंग की हुई है और मेरी एक गाड़ी पर 'आतंकियों से प्रेम करनेवाली' (Terrorists Lover) पेंट किया हुआ है। पुलिस मेरी किसी तरह की सहायता करने को तैयार न थी। उसी रात जब मैं इंटरनेट के 'मुस्लिम चाट' पर गपशप लगा रही थी, मैंने फ़ाइरिंग की आवाज़ सुनी। पहले हमले में जो ख़िड़कियाँ बच गई थीं, अब दूसरे हमले में उन्होंने सबको तहस-नहस करके रख दिया। बाहर जो मेरे प्यारे-प्यारे जानवर थे, उन सबको भी उन्होंने मार दिया।

पुलिस आई और मुझे कहा कि "जब तक हमला करनेवालों की पहचान और गाड़ियों के बारे में जानकारियाँ नहीं दी जाती हैं, जिनपर वे आए थे, हमला करनेवालों का पता लगाना संभव नहीं है।" मैंने उनसे कहा कि मेरी गाड़ियों को चेक ही कर दें कि हमलावरों ने यात्रा के लिए उनमें कोई ख़तरा तो पैदा नहीं कर दिया। मैं होटल जाना चाहती हूँ और इसके लिए मैं सुरक्षित यात्रा करने की अभिलाषी हूँ। उन्होंने मुझे साफ़-साफ़ उत्तर दे दिया कि वे ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि हमें सन्देह है कि तुम्हारे आतंकी मित्रों ने हमें ट्रेप करने के लिए अन्दर बम न रख दिए हों। मैं अल्लाह के सामने झुक गई और रो-रोकर उससे दया और मार्गदर्शन की दुआ करने लगी।

अल्लाह ने बड़े ही प्यार से उत्तर दिया। एक रात को पार्किंग लाट में एक अज्ञात व्यक्ति ने मुझपर हमला कर दिया। उसने मुझे पीटने, घायल करने, मेरी कलाई और पसलियाँ तोड़ने की कोशिश की। उस आदमी को पकड़ लिया

गया। एक दिन जब मैं ड्राइक्लीनर के पास अपने कपड़े लेने गई तो मुझे बताया गया कि वे गुम हो गए हैं। उन कपड़ों में मेरे सभी स्कार्फ़, ओढ़ने की चादरें आदि शामिल थीं। उनके लिए ये वस्तुएँ गुम करना कितना आसान था।

यह क़स्बा बहुत छोटा है और आसपास में कोई मुसलमान और अरब भी नहीं है। निकटतम मस्जिद 120 मील दूर है। वैसे तो मैं यहां अकेली हूँ और कोई दूसरा मुसलमान नहीं, जिसके पास मिलने के लिए जा सकूँ। और उससे कुछ सीख सकूँ। लेकिन अल्हम्दुलिल्लाह, अल्लाह हर समय मेरे पास होता है। मेरे पास इसलाम का जो भी थोड़ा-बहुत ज्ञान है, यह इंटरनेट पर इस्लाम के बारे में उपलब्ध जानकारियों को पढ़ने, अपने सच्चे दोस्तों द्वारा प्रदत्त और इंटरनेट फ़ैमिली के ज़रीए हासिल किया हुआ है। मैं अपने फ़िलिस्तीनी भाई के प्रेम, सहायता, मित्रता और उसकी दुआओं के लिए उसकी विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ और ऐ मेरे फ़िलिस्तीनी भाई! तुम जानते हो, मैं किसे संबोधित कर रही हूँ। मेरे फ़िलिस्तीनी भाई! मेरी दुआ है कि अल्लाह तुम पर अपने अनुग्रह, उपहार और मान-सम्मान की वर्षा करे। इंटरनेट के मेरे दूसरे मुसलमान भाइयो और बहनो! मैं आप सबको अपने दिल की गहराइयों से चाहती हूँ और आप सब की कृतज्ञ हूँ।

मैंने यह आपबीती किसी प्रकार की सहानुभूति प्राप्त करने की आशा से नहीं लिखी है, लेकिन मैं सबसे यह ज़रूर कहूँगी कि मेरे लिए निरंतर दुआ करते रहें। अमेरिका और दुनिया भर में मुसलमानों के साथ जो अन्याय और अत्याचार हो रहे हैं और उनके साथ जिस पक्षपातपूर्ण व्यवहार का प्रदर्शन किया जा रहा है, अल्लाह ने चाहा तो यह जल्द ही अपने अंजाम को पहुँचेगा। मैं जानती हूँ कि अन्यायों और पक्षपातों के विरुद्ध युद्ध में मैं अकेली नहीं हूँ। यही समय है कि मीडिया लोगों के सामने इस्लाम की सही तस्वीर लाए।

अंतिम बात अपनी प्यारी सहेली से, जिसने सबसे पहले अपने इस्लामी ज्ञान में मुझे सम्मिलित किया। मैं जानती हूँ कि 15 फ़रवरी 1996 ई० को जब मैंने कलिमए-शहादत पढ़ा था, तुम (शायद) जन्नत में ख़ुशी से मुस्कुरा उठी थीं। अल्लाह ने चाहा तो हम एक बार फिर मिलेंगे।

□ □ □

19. जमीला करार

(Jamila karar)

(आस्ट्रिया)

मैं 1949 ई० में आस्ट्रिया में पैदा हुई। चूँकि मेरे माँ–बाप नास्तिक थे और खुले रूप में ख़ुदा का इन्कार करते थे इसलिए मेरी परवरिश इसी माहौल में हुई। मेरी एक छोटी बहन भी थी, माँ–बाप की पूरी कोशिश थी कि हम दोनों बहनें किसी धर्म के झमेले में पड़े बग़ैर जीवन बिताएँ। लेकिन इसके विपरीत हुआ यह कि मैं अभी सेकेंड्री स्कूल की विद्यार्थी थी कि धर्म में मेरी रुचि बढ़ने लगी और ख़ुदा की अवधारणा के बग़ैर मैं एक प्रकार की उलझन और बेइत्मीनानी महसूस करने लगी और मेरे दिल में यह आवाज़ उठने लगी कि कोई ऐसी उच्च एवं श्रेष्ठ हस्ती ज़रूर होनी चाहिए जो समस्त मानवीय मानदंडों से परे, अलग और अकेली होनी चाहिए, जो हमारी सुरक्षा करे और हमें शक्ति प्रदान करे..... लेकिन हालात और माहौल के परिदृश्य में मेरे दिल की यह आवाज़ दबकर रह जाती...... किन्तु जब भी अपने आसपास का जायज़ा लेती, मुझे अपने माँ–बाप सहित इस समाज का हर व्यक्ति उदासी और तनहाई की धुंध में लपटा हुआ नज़र आता..... सच्ची ख़ुशी शायद ही कहीं नज़र आती थी।

चौदह वर्ष की उम्र में मैंने एक संस्था में टाइपिस्ट की हैसियत से नौकरी कर ली और ख़ाली समय में एक कॉमरशियल और वोकेशनल स्कूल में प्रवेश भी ले लिया। उम्र के इस हिस्से में भी सब लोगों की भाँति आराम, राहत और मनोरंजन ही को जीवन का मक़सद समझती थी और उन्हीं कार्यों में व्यस्त हो गई जो हमारे समाज की मुख्य पहचान थे। वास्तव में ईसाई धर्म अपने मूल्यों की दृष्टि से असाधारण गिरावट का शिकार है और भौतिकता का रोग चारों ओर इस बुरी तरह फैल गया है कि कोई व्यक्ति इससे प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रहा...... लेकिन मैं इसको अपना सौभाग्य ही कहूँगी कि इस सब कुछ के बावजूद मैंने अपने दिमाग़ के दरवाज़े खुले रखे, और ईसाइयत के बारे में

जानकारी हासिल करने की कोशिश करती रही। लेकिन यह धर्म मेरी चेतना और अन्तरात्मा को सन्तुष्ट करने में बिलकुल नाकाम रहा। चूँकि मैंने नास्तिकता और इन्कार के माहौल में परवरिश पाई थी, इसलिए मैं ठोस बौद्धिक प्रमाण चाहती थी। मुझे पादरियों और अन्य धर्म गुरुओं की आधारहीन और मनगढ़त बातें सन्तुष्ट नहीं कर पा रही थीं।

1967 ई० में मेरी उम्र 18 वर्ष थी, जब मध्य–पूर्व में लड़ाई छिड़ गई और यही समय का सबसे बड़ा विषय बन गया। प्राकृतिक रूप से मेरा दिमाग़ भी इससे प्रभावित हुआ और सहसा जी चाहा कि अरबों की संस्कृति और कलचर के बारे में जानकारी हासिल की जाए और देखा जाए कि उनकी समस्याएँ क्या हैं। यहूदियों से उनके मतभेद की बुनियाद क्या है ? और उनकी जीवन–शैली की क्या ख़ूबियाँ और क्या ख़राबियाँ हैं ? इसलिए मैंने विभिन्न पुस्तकालयों से सम्पर्क किया। पहले अरबों के बारे में पढ़ा और फिर इस हवाले से इस्लाम से परिचित हुई, लेकिन यह अफ़सोसजनक बात है कि मैंने जितनी भी ऐतिहासिक किताबों, नॉविलों और रिपोर्टों का अध्ययन किया, उन सब में इस्लाम और अरबों के ख़िलाफ़ लेखकों का पक्षपात और शत्रुता छलक पड़ती थी, और मैं हैरान थी कि निरपेक्षता, संतुलन और न्याय के ध्वजावाहकों को क्या हो गया है ?

अन्ततः अल्लाह ने मेरी मदद की और मैं वियाना में एक मुस्लिम कल्चरल सोसाइटी से सम्पर्क करने में कामयाब हो गई और यहाँ मैंने इस्लाम के बारे में ख़ुद मुसलमानों की लिखी हुई किताबों का अध्ययन किया और मुझे यह जानकर बेहद ख़ुशी हुई कि इस्लाम तो मुहब्बत और बराबरी का धर्म है। इस पर नरसंहार अथवा आतंकवाद का आरोप अपने अन्दर कोई हक़ीक़त नहीं रखता।

इसका किसी विशेष जाति या नस्ल से कोई सम्बन्ध नहीं, बल्कि यह तो पूर्णतः अन्तर्राष्ट्रीयता का समर्थक है। मुझे इस्लाम के इस पहलू ने विशेष रूप से बहुत प्रभावित किया कि इस धर्म में रंग, नस्ल और इलाक़े का कोई फ़र्क़ नहीं और अल्लाह की नज़रों में वही व्यक्ति प्रतिष्ठा का पात्र है, जो उसकी उलूहियत और हाकिमियत (ईश्वरत्व और शासकत्व) की अधिक समझ रखता है। वास्तविकता यह है कि इस्लाम आपसी भाईचारा, उदारता, प्रेम,

अपनत्व, त्याग और समर्पण के जिन उच्च मूल्यों का संरक्षक और पोषक है वे ईसाई समाज में विलुप्त हैं। यहाँ तो एक ही धर्म के अनुयायी गोरे और काले एक गिरजे में मिलकर उपासना या इबादत भी नहीं कर सकते, बल्कि एक ही रंग और नस्ल के अमीर ईसाई और ग़रीब ईसाई एक ही गिरजे में अलग-अलग दर्जों में इबादत करते हैं।

यह और इस प्रकार की बहुत-सी ख़ूबियाँ थीं, जिनसे प्रभावित होकर मैंने बीस वर्ष की उम्र में अर्थात् 1969 ई० में उस समय इस्लाम क़बूल कर लिया जब विस्तृत और ठोस अध्ययन के बाद मुझे इत्मीनान हो गया कि अब मैं बामक़सद और मुफ़ीद ज़िन्दगी गुज़ार सकती हूँ और यह कि इस्लाम एक ही समय इन्सान की आत्मा को भी सन्तुष्टि प्रदान करता है और एक सुन्दर सन्तुलन के साथ उसकी आर्थिक समस्याओं में भी स्वस्थ मार्गदर्शन करता है..... सांस्कृतिक स्तर पर इस्लाम मानव मस्तिष्क की रचनात्मक प्रतिभाओं को निखारता और विकसित करता है और अपने माननेवालों में इन्साफ़ के लिए भी मान-सम्मान और उत्थान का कारण बनता है और सामान्य मनुष्यों के लिए सुख-शान्ति और अमन-चैन का साधन बन जाता है।

मैं इस सच्चाई को स्पष्ट रूप से स्वीकार करना चाहती हूँ कि इस्लाम ने मेरे जीवन को बिल्कुल बदल कर रख दिया है। मैं निराशा, अशान्ति और अकेलेपन के एहसास की उस असाधारण कैफ़ियत से दो-चार थी, जिससे यूरोप का शायद ही कोई व्यक्ति सुरक्षित नज़र आता है। इस्लाम ने मुझे इस परिस्थिति से छुटकारा दिला दिया और इस्लाम की परिधि में आकर मैं पहली बार सच्ची ख़ुशी और स्थाई शान्ति से परिचित हुई। ऐसा लगा जैसे सदियों की प्यासी रूह ठण्डे-मीठे स्रोत पर पहुँच गई हो..... इस एहसास ने मुझे इस्लाम का शैदाई (अनुरागी) बना दिया और मैं लगातार मेहनत से इस्लाम के बारे में अधिक से अधिक जानकारी हासिल करने का प्रयास करने लगी और मुसलमानों के इज्तिमाओं में शामिल भी होने लगी, ...और यह भी केवल अल्लाह की कृपा है कि मेरी शादी अफ़ग़ानिस्तान के एक मुसलमान छात्र से हो गई, जो वियाना में पढ़ रहा था.......मेरे पति ने पढ़ाई पूरी कर ली तो हम अफ़ग़ानिस्तान आ गए। उस समय मेरा एक बेटा और एक बेटी थी....और अल्लाह का शुक्र है, उस समय से लेकर आज तक मैं एक मुसलमान की हैसियत से खुले दिल

और इत्मीनान के साथ इस्लामी सिद्धान्तों पर कार्यरत हूँ और संतुष्ट व ख़ुश हूँ।

किन्तु मैं यह ज़रूर कहना चाहूँगी कि हम जहाँ कहीं भी हों मुस्लिम बहुल्य देशों में रहते हों या ग़ैर मुस्लिमों के बीच ज़िन्दगी गुज़ार रहे हों, हमें मुसलमान की हैसियत से अपने अमल और चरित्र का आलोचनात्मक जायज़ा लेते रहना चाहिए और अपनी कमज़ोरियों और कोताहियों का आंकलन करके उन्हें दूर करने की कोशिश करनी चाहिए, इस पहलू से मेरा आंकलन यह है कि आम मुस्लिम सोसाइटियों में, चाहे वे यूरोपीय विचार और संस्कृति से प्रभावित न भी हों, इस्लाम की केवल एक रस्मी और सरसरी कल्पना कार्यरत नज़र आती है। साफ़ महसूस होता है कि उन्होंने इस्लाम को न तो शऊरी तौर पर समझा है और न ही इस पर अमल करने में वे गम्भीर हैं। और जो कुछ है वह केवल एक ज़बानी जमा-ख़र्च है। इस्लाम उनके दिल और दिमाग़ में गहराई तक नहीं उतरा।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि हम निराश होकर बैठ जाएँ, बल्कि इस परिस्थिति में हमारा कर्तव्य है कि शिक्षा और दावत व तबलीग़ (प्रचार-प्रसार) के माध्यम से आम मुसलमानों को, चाहे वे रुढ़िवादी हों या पश्चिमवादी, इस बात पर सहमत करें कि एक अन्तर्राष्ट्रीय और प्राकृतिक दीन की हैसियत से इस्लाम भविष्य में होने वाले हर प्रकार के विकास का समर्थक है और आधुनिक प्रकार की हर सकारात्मक तरक़्क़ी का रक्षक और गॉरण्टी देने वाला भी है। हमें अतीत की तरह शोध और विज्ञान के मैदानों में बेहतरीन कारकरदगी का प्रदर्शन करना होगा और इस्लाम के विरोधियों और पश्चिमवादी मुसलमानों का यह विचार ख़त्म करना होगा कि पिछली कुछ सदियों से इस्लाम के माननेवालों पर जड़ता, ज्ञान से विमुखता, बेअमली और अज्ञानता की जो दशा छायी है इसका कारण इस्लाम है, इसलिए इस्लाम और इस्लाम-विद्या पर प्रतिबन्ध लगा देना चाहिए। हमें दुनियावालों को व्यावहारिक रूप से यह बता देना चाहिए कि सच्चा और असली इस्लाम तो वास्तविक अर्थ में एक सक्रिय जीवन-व्यवस्था है। अगर मुसलमान संकल्प कर लें तो अल्लाह की मदद से यह दुनिया में ऐसी क्रान्ति ला सकते हैं, जिसमें इन्सान न केवल इन्सान की और ज़ुल्म पर आधारित घातक व्यवस्थाओं की ग़ुलामी से स्थाई आज़ादी हासिल कर सके, बल्कि उसकी स्वस्थ मानसिक योग्यताएँ इस ढंग से विकसित

होंगी कि निर्माण, विकास, सच्ची ख़ुशी और ख़ुशहाली का एक अनुपम एवं प्राणवर्द्धक दौर शुरू हो जाएगा।

लेकिन मैं क्षमा–याचना के साथ यह निवेदन करूँगी कि केवल ज़बानी जमा–ख़र्च से परिस्थिति में कोई सकारात्मक बदलाव नहीं आ सकता, इसके लिए ज़रूरी है कि संवेदनशील और समझदार शिक्षित मुसलमान पूरे निस्स्वार्थ भाव से इस्लाम की आत्मा और मौलिक सिद्धान्तों के अनुरूप इस प्रकार का रचनात्मक शोध करें, जिससे इस्लाम का चेहरा निखर कर सामने आ जाए और उसकी सर्वांगीण शक्तियों का भी पता चल जाए.... इससे मानसिक और वैचारिक दृष्टि से उन अस्त–व्यस्त व परेशान मुसलमानों को भी अमली व व्यावहारिक सहारा मिलेगा, जो विचित्र विचारधाराओं की ओर लुढ़कते नज़र आते हैं। और उन ग़ैर मुस्लिमों को भी रौशनी मिल जाएगी जो प्रचलित विचारधाराओं से थक–हारकर ज़िन्दगी की नई लाभदायक और स्वास्थवर्द्धक मंज़िलों की तलाश में हैं और इस्लाम के रूप में उन्हें यक़ीन हो जाए कि बेयक़ीनी के भंवर में घिरी मानव–जाति के लिए यह धर्म आशा का संचार करनेवाला संदेश बन जाएगा।

उपर्युक्त लक्ष्यों के संदर्भ में विशेषकर उन समाजों के लिए जहाँ मुसलमान अल्पमत में हैं बल्कि पारंपरिक मुसलमानों के माहौल में भी, समझदार मुसलमानों का व्यक्तिगत आचरण निर्णायक भूमिका निभा सकता है। दूसरे शब्दों में, अगर मुसलमान अपने आपको क़ुरआन व सुन्नत के साँचे में ढाल लें और सच्चे दिल से अपने दैनिक जीवन में इस्लामी शिक्षाओं को अपना लें तो इस आचरण और चरित्र के परिणामस्वरूप वे प्राकृतिक रूप से अनिवार्यत: जिस आत्मिक शांति और घरेलू स्तर पर जिस ख़ुशी और इत्मीनान से अवगत होंगे उससे आसपास का माहौल प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रहेगा। और इस प्रकार इस्लाम का परिचय उत्तम स्वरूप में दूसरों तक पहुँचेगा और लोग ख़ुद क़दम बढ़ाकर इस्लाम की ओर ध्यान देने पर विवश होंगे।

इस बारे में हमें पवित्र क़ुरआन की इस हिदायत को सदा सामने रखना चाहिए कि,

> ''अब दुनिया में वह बेहतरीन गिरोह तुम हो, जिसे इन्सानों की हिदायत और सुधार के लिए मैदान में लाया गया है। तुम नेकी

का आदेश देते हो, बदी से रोकते हो और अल्लाह पर ईमान रखते हो।'' (क़ुरआन, 3 : 110)

इस बारे में अगर हम क़ुरआन मजीद को ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के कथनों कों सामने रखेंगे तो मुसलमान की हैसियत से अपने सामाजिक और नागरिक कर्तव्यों को ठीक ढंग से निभाना हमारे लिए आसान हो जाएगा। इसी संदर्भ में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) के महान साथियों (सहाबा) (रज़ि०) की जीवनी और उनके शानदार आश्चर्यजनक कारनामों का अध्ययन भी हमारे लिए रौशनी का मीनार साबित होगा।.......और इस बात को मैं फिर दोहराऊँगी कि इस बारे में महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे अपने अन्दर यह मज़बूत भावना होनी चाहिए कि हमें क़ुरआन और सुन्नत की हिकमत से भरी नसीहतों और अल्लाह के रसूल (सल्ल०) और उनके बेमिसाल साथियों (सहाबा) (रज़ि०) की प्राणवर्द्धक और ईमान को बढ़ानेवाली घटनाओं को अपने दैनिक जीवन का हिस्सा बनाना है। अर्थात् हमारा दैनिक जीवन, शिक्षा हासिल करने की दौड़–धूप, जीविका के साधन के लिए प्रयास, अर्थात् हर मैदान में हमें अल्लाह की मर्ज़ी को सामने रखना होगा और व्यक्तिगत पसंद और नापसंद पर दीनी–शिक्षाओं को वरीयता देनी होगी।

अगर हमने मुसलमान की हैसियत से जीवन का वाक़ई यह अन्दाज़ अपना लिया तो हम अल्लाह ने चाहा पवित्र क़ुरआन की उन ख़ुश ख़बरियों (सुसमाचारों) के पात्र बन जाएँगे, जो इस प्रकार बयान की गई हैं,

''जो लोग हमारे उद्देश्यों और मर्ज़ी के लिए जिद्दोजुह्द करेंगे, हम उन्हें अपने रास्ते दिखा देंगे और निस्सन्देह अल्लाह नेकी करनेवालों के साथ है।'' (क़ुरआन, 29 : 69)

और ''इन्सान के लिए वही कुछ है जिसके लिए वह कोशिश करता है।'' (क़ुरआन, 53 : 39)

□□□

20. सुश्री ख़ालिदा हेमिलटन

(Khalida Hamilton)

(इंग्लैण्ड)

सुश्री ख़ालिदा हेमिलटन का सम्बन्ध इंग्लैंड के एक ऊँचे राजनीतिक घराने से था। वे मारकोइस कर्ज़न ऑफ़ केडलस्टन और सर फ्रांसिस ली की चचेरी बहन थीं। वे जर्मनी में पैदा हुईं और ज्ञान व साहित्य के प्रति अपनी अभिरुचि के कारण प्रसिद्ध थीं। वे अंग्रेज़ी के अलावा जर्मन और फ्रेंच भी अच्छी तरह जानती थीं, ...1928 में इस्लाम क़बूल करने के बाद वे ब्रिटेन की 'मुस्लिम सोसाइटी' की अध्यक्ष भी निर्वाचित हुईं और लम्बे समय तक इस पद पर रहीं। वे इस्लाम से परिचित होने के सम्बन्ध में कुछ इस तरह बताती हैं।

▪ ▪ ▪ ▪

पैतृक रूप से मेरा सम्बंध चर्च ऑफ़ इंग्लैंड से था, बल्कि इंग्लैंड का उच्च वर्ग इसी धर्म से जुड़ा रहा है। लेकिन सच्ची बात है कि समझदार होने के बाद मेरा दिमाग़ कभी 'चर्चवाद' (Churchi ainity) के सिद्धान्तों और उसकी आस्थाओं से सहमत नहीं हो सका, कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) मसीह को ख़ुदा मानना, सिफ़ारिश, गुनाह का एतिराफ़, इशाए-रब्बानी, बप्तिस्मा और इस प्रकार के अन्य धार्मिक रीति-रिवाज मेरे दिमाग़ को कभी भी अपील न कर सके और यह सब कुछ मुझे हज़रत मसीह की मूल शिक्षओं के विरुद्ध लगता था, मेरा अन्तर्मन (रूह) कहता था ये धार्मिक सिद्धान्त किसी सच्चे पैग़म्बर के नहीं हो सकते, जो सामान्य बुद्धि (Common Sense) के ख़िलाफ़ हैं और व्यावहारिक भी नहीं हैं।

लन्दन की वूकिंग मस्जिद की सादगी और सुन्दरता से प्रभावित होकर, बल्कि अपनी आदत और प्रकृति से मजबूर होकर तीन वर्ष पूर्व मैंने एक दिन इस मस्जिद की सैर की। इस प्रकार पहली बार मुसलमानों से मेरा सम्पर्क और परिचय हुआ और इसके बाद मैं समय-समय पर मस्जिद के नायब इमाम अब्दुल ख़ालिक़ ख़ान से इस्लाम के बारे में सवाल करती रहती। इस उद्देश्य से

मैंने उन्हें विभिन्न समयों पर अपने घर साउथ सी (South Sea) भी बुलवाया। यह मेरा सौभाग्य है कि ख़ान साहब ने इस्लामी शिक्षाओं की जिस प्रकार व्याख्या की, उसने मुझे बहुत प्रभावित किया। उनकी वर्णन-शैली अत्यन्त आधुनिक और वैज्ञानिक थी और मेरे मन व प्रकृति के बिलकुल अनुकूल थी। और साथ ही इस्लामी पूजा व उपासना पद्धति ने भी मुझे बहुत प्रभावित किया। बेहद सादगी, इख़्लास (निश्च्छलता एवं निर्मलता) और बेबसी.....इबादत के इस रंग ने मेरा मन मोह लिया। मुझे विश्वास हो गया कि यही धर्म स्वाभाविक धर्म है, मानव-प्रकृति के पूर्णतः अनुकूल धर्म है। इसीलिए एक दिन मैंने शहादत का कलमा पढ़ा और मुसलमान हो गई।

मैं यह स्पष्ट करना ज़रूरी समझती हूँ कि इस्लाम की तौहीद (एकेश्वरवाद) की धारणा ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया। इस्लामी अवधारणा यह है कि इस जगत का सृष्टा और मालिक एक है, जो प्रतिक्षण अपनी पूरी सृष्टि का निरीक्षक है और हमारे भाग्य को तय करता है। उसने दुनिया की हर चीज़ के लिए एक नियम और मार्गदशक सिद्धान्त बनाए हैं और मानव को सोच-विचार और कर्म की स्वतंत्रता देने के साथ उसे लोक और परलोक की सच्ची सफलता के लिए मार्गदर्शन की नेमत भी प्रदान की है। और यह नेमत उसने अपने पैग़म्बरों द्वारा इन्सानों तक पहुँचाई है..... इन्सान अगर इस नेमत और हिदायत से बेनयाज़ हो जाए और जीवन व्यतीत करने का ख़ुद कोई नियम या विधान तैयार कर ले तो उसे असफलता, अशान्ति और परेशानी के अलावा कुछ नहीं मिलेगा..... मानव-जाति का सदियों का इतिहास इस सच्चाई पर गवाह है कि जब भी क़ौमों या इन्सानों ने पूर्ण स्वच्छन्दता या स्वतंत्रता अपनाई है और ईश्वरीय र्मादर्शन से विमुखता और विरक्ति प्रकट की है तो उन्हें नुक़सान और तबाही के सिवा कुछ नहीं मिला।........इस्लाम क़बूल करने से पहले भी मेरी अंतरात्मा और प्रकृति की यही आवाज़ थी कि त्रिवाद अर्थात् तीन ख़ुदाओं की धारणा मूर्खतापूर्ण सोच है। ख़ुदा को एक और केवल एक ही होना चाहिए और उसे ही केन्द्रीय स्थान प्राप्त होना चाहिए। उसे अविभाजित और अखंडनीय होना चाहिए। इस्लाम के अध्ययन से मेरा अन्तर्मन संतुष्ट और शान्त हो गया कि अल्लाह एक है, उसका कोई साझी नहीं और किसी भी दृष्टि से उसका कोई समकक्ष और बराबर नहीं है।

यूरोप के दूसरे देशों की तरह इंग्लैंड के लोग भी इस्लामी शिक्षाओं और इस्लामी प्रतीकों के बारे में अन्यायपूर्ण ढंग और कठोरता के साथ बात करते हैं, लेकिन त्रिवाद की तुलना में वे इस्लाम के एकेश्वरवाद की अवधारणा पर कभी बात नहीं करते। ऐसा लगता है कि वे इस विषय पर बहस करते हुए शर्माते हैं। सच्चाई का सामना करते हुए उनके अन्तर्मन की आँखें बन्द हो जाती हैं...... काश, यूरोप के देश समझते कि एकेश्वरवाद की अवधारणा से दूर होकर और बहुदेववाद (त्रिवाद) को अपनाकर वे आध्यात्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण से कितने बड़े घाटे से दो-चार हुए हैं।

सोचने योग्य बात यह है कि अगर संसार का सृष्टा और मालिक एक है और उसका कोई साझी नहीं है तथा उसी का हुक्म इस संसार में चलता हुआ नज़र आता है तो स्वाभाविक बात है कि सम्पूर्ण मानव-जाति की हिदायत और रहनुमाई के लिए उसका निश्चित किया हुआ नियम लागू होना चाहिए और इस मामले में इन्सानों को स्वतंत्रता से काम लेना चाहिए, लेकिन दुर्भागय से यूरोप की क़ौमों ने ख़ुदा को एक भौतिक स्वरूप में ढाल लिया। हज़रत ईसा (अलैहि०) और मरयम के रूप में उसको शारीरिक रूप दे दिया। जिसके नतीजे में यूरोप नैतिक और आध्यात्मिक रूप से पतन के गड्ढे में गिर गया, जबकि पैग़म्बरों की शिक्षा को.....हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की रहनुमाई में..... अपना कर मुसलमान और पूर्वी क़ौमें भौतिक दृष्टि से पिछड़ी होते हुए भी नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से कहीं बेहतर हैं..... हक़ीक़तों के इस पहलू ने भी मुझे ईसाइयत से दूर और इस्लाम से क़रीब कर दिया, और मैं सोचने पर मजबूर हो गई कि अगर ईसाइयत में ख़ुदा को भौतिक रूप देना जायज़ है तो अन्य मूर्ति-पूजा करनेवाली क़ौमों, हिन्दू, बौद्ध आदि का तरीक़ा कैसे ग़लत हो गया? फिर तो उनकी इबादत का तरीक़ा भी सही है, इस अवसर पर क़ुरआन ने मेरा ख़ूब मार्गदर्शन किया और आध्यात्मिक दृष्टि से मुझे सन्तुष्ट कर दिया कि अल्लाह ने अपना पैग़ाम बनी इसराईल के अनगिनत नबियों द्वारा मानव-जाति तक पहुँचा दिया था, जिसे हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर पूरा कर दिया और वह पैग़ाम एकेश्वरवाद (तौहीद) पर आधारित था, जबकि मूर्ति-पूजा केवल इनकारियों की खोज और अपने अन्दर कोई दलील और बुनियाद नहीं रखती। क़ुरआन ने दो टूक शब्दों में व्याख्या कर दी कि विभिन्न धर्मों के जिन

बुज़ुर्गों के बुत बनाकर उनकी पूजा की जाने लगी, वे स्वयं अपने जीवन में एक पवित्र एवं ईशपरायण चरित्र रखते थे। केवल एक ख़ुदा की इबादत करते थे। उनके नाम से जोड़कर मूर्ति पूजा उनकी मौत के बाद शुरू की गई।

मुझे भली–भाँति अन्दाज़ा हो गया कि ईसाइयों के लिए नुबूवत की सही अवधारणा को समझना और अपनाना कितना मुश्किल है। इस बारे में उनके सामने दो रुकावटें हैं। एक प्रायश्चित की अवधारणा (कफ़्फ़ारे का अक़ीदा) अर्थात् हज़रत ईसा की मौत के बदले में इन्सानों के सारे गुनाह माफ़ हो गए और दूसरे तौरेत की वे कहानियाँ जिनमें पैग़म्बरों के चरित्र को बिगाड़ कर पेश किया गया है। इसीलिए अगर उन कहानियों को सही मान लिया जाए तो ये पैग़म्बर हमारे लिए मुक्ति के बजाए शाश्वत अज़ाब और लानत का कारण बन जाएँगे। सिवाय इसके कि गुनाहों की माफ़ी के लिए कोई और आसान रास्ता अपना लिया जाए।

वास्तव में इस्लाम की ईशदूत्व (रिसालत) की अवधारणा, जैसा कि इसकी गवाही यहूदी उल्लेखों और परम्पराओं से भी मिलती है, ईसाई अवधारणा से पूर्णतः भिन्न है। इस्लामी अवधारणा के अनुसार पैग़म्बर का सम्पर्क सीधे ख़ुदा से होता है। वह सदाचार का भंडार और अत्यंत पवित्र आचरण और सत्कर्मों का मालिक होता है। और वह नीच से नीच अथवा निकृष्ट पापी लोगों को भी, जो इस्लामी अवधारणा का पालन करें, संयमी, सज्जन और ईशपरायण बना देता है। अतः यह सोच बड़ी मूर्खतापूर्ण है कि पैग़म्बर एक ऐसे व्यक्ति को भी, सिफ़ारिश करके, मुक्ति दिला देगा और उसके गुनाहों को माफ़ करवा लेगा, जो अत्याचार और पाप कर्मों में डूबा होगा अथवा पैग़म्बर अपनी पूरी उम्मत को जन्नत में ले जाएगा। तौरात में इस तरह की बहुत–सी कहानियाँ हैं और इस प्रकार की कहानियों ने ईसाइयों को गुनाह करने का दुस्साहस प्रदान किया है।

इसके विपरीत क़ुरआनी शिक्षाओं के अनुसार मुक्ति और मोक्ष की प्राप्ति के लिए पैग़म्बरों की पैरवी बहुत ज़रूरी है और ईसा या मरयम को पूज्य मानना गुमराही के अलावा कुछ नहीं। सोचने की बात यह है कि अगर ख़ुदा इन्सान का रूप ग्रहण करता है तो वह जगत की निगरानी और इन्सानों के सृष्टा और मालिक होने की ज़िम्मेदारी कैसे निभा सकेगा। ईसाइयों ने इस समस्या का

समाधान इस प्रकार तलाश किया कि एक और हस्ती को बाप(Father) के पद पर ला बिठाया, लेकिन इस हरकत ने मामले को और अधिक उलझा दिया। अगर एक हस्ती इन्सानी रूप भी रखती है और वह दिव्य शक्ति भी है, तो फिर संसार की व्यवस्था सुचारु रूप से कैसे चल सकती है। शारीरिक रूप धारण करके तो ख़ुदा बेबस हो जाता है जबकि दिव्य रूप में उसका प्रताप और गौरव स्थापित होता है। ख़ुदा को इन्सानी रूप देकर वास्तव में ईसाइयों ने अपने वैचारिक और बौद्धिक बाँझपन का प्रदर्शन किया है। ये बेचारे आध्यात्मिक चीज़ों को आध्यात्मिक रूप में देखने से वंचित हैं......और यह उनके सामूहिक धार्मिक चरित्र की एक विडम्बना है।

□□□

21. सुश्री ख़दीजा

(ऑस्ट्रेलिया)

सुश्री ख़दीजा ने जुलाई, 1980 ई० में मनसूरा, लाहौर में तहरीके इस्लामी के लीडर मियां तुफ़ैल मुहम्मद के हाथ पर इस्लाम क़बूल किया। दो महीने बाद वे वापस ऑस्ट्रेलिया चली गईं और अगस्त 1981 ई० में दोबारा पाकिस्तान आईं और यहाँ 29 सितम्बर 1981 ई० को उनका देहान्त हो गया। लेखक ने उनसे इस्लाम क़बूल करने के कुछ ही दिन बाद मनसूरा में मुलाक़ात करके प्रस्तुत साक्षात्कार रिकार्ड किया था। वे पूरे पर्दे के लिबास में थीं।

■ ■ ■ ■

सवाल : कृपया सबसे पहले अपना विस्तृत परिचय करा दीजिए?

जवाब : इस्लाम क़बूल करने से पहले मेरा नाम मारीना गारसिया था। मेरा पैतृक देश ब्राज़ील था। मगर मेरे पिता डॉक्टर आर्थर एडवर्ड गारसिया, जो एक माहिर चिकित्सक थे, ब्रिटिश सेना के मेडिकल कोर में एक उच्च अधिकारी थे और बर्मा में डयूटी पर थे, मैं वहीं 1929 ई० में पैदा हुई। मैट्रिक तक पढ़ाई रंगून में हुई। फिर पिता जी ने नौकरी से रिटायरमेंट ले लिया और कैलीफ़ोर्निया में रहने लगे। वहाँ उन्होंने प्राईवेट प्रेक्टिस शुरू कर दी, जो बड़ी कामयाबी से चलने लगी। मगर अफ़सोस! कि जल्द ही उन्हें मौत की ओर से बुलावा आ गया। उस समय मेरी उम्र 18 या 19 वर्ष थी। माँ इस सदमे से उबर न सकीं और दो तीन वर्ष के अन्दर ही उनका भी निधन हो गया।

मैं दुनिया में अकेली रह गई। मैं अपने माँ–बाप की अकेली संतान थी। बहन–भाई कोई न था। किन्तु मैंने हिम्मत न हारी। मैं पढ़ने–लिखने में हमेशा तेज़ रही। पिता जी मुझे डॉक्टर बनाना चाहते थे। इसलिए मैंने पढ़ाई जारी रखी और यूनीवर्सिटी ऑफ़ मेडिसिन, केलीफ़ोर्निया से स्नातक कर लिया। लिखने–पढ़ने का शौक़ भी था, इसलिए विभिन्न अख़बारों में कहानी और लेख लिखने का सिलसिला भी शुरू कर दिया और प्राइवेट प्रेक्टिस के साथ–साथ शराब, तम्बाकू और अन्य मादक चीज़ों के ख़िलाफ़ लेक्चर भी देने लगी। उन लेक्चरों के सिलसिले में मुझे अमेरिका और यूरोप के बहुत–से देशों में जाने का अवसर

मिला। मैंने दुनिया भर की सैर की, यहाँ तक कि अंततः मैंने आस्ट्रेलिया के शहर सिडनी में स्थाई निवास बना लिया। वहीं क्लीनिक खोल लिया और स्वतंत्र पत्रकारिता का सिलसिला भी जारी रहा। इससे मुझे अच्छी ख़ासी आमदनी हो जाती है।

सवाल : इस्लाम से आप कब और कैसे परिचित हुईं ?

जवाब : मेरा पैतृक धर्म ईसाइयत है। कैथोलिक सम्प्रदाय से मेरा सम्बन्ध था। मगर सच बात है कि इस धर्म ने मुझे कभी प्रभावित न किया। मन में तरह–तरह के सवाल उठते थे और मैं पादरियों और अन्य सम्बन्धित लोगों से बहस भी करती थी। मगर कहीं से कोई सन्तोषपूर्ण जवाब नहीं मिलता था। मिसाल के तौर पर त्रिवाद की अवधारणा इतनी निरर्थक और मूर्खतापूर्ण है कि कोई समझदार इन्सान इसे क़बूल नहीं कर सकता। इसके साथ यह भी बताती चलूँ कि मेरी अन्तरात्मा ने मुझे शराब और भोग–विलास से दूर रखा। मैंने कभी गोश्त नहीं खाया। कॉफ़ी तक नहीं पी, सब्ज़ियों और फलों के जूस पर गुज़ारा करती रही हूँ। मेरी अन्तरात्मा कहती थी कि जो अन्दाज़ यूरोप ने अपना रखा है यह प्रकृति के विरुद्ध है।

इसलिए सत्य की तलाश में मैंने अन्य धर्मों का अध्ययन शुरू किया। जैसे जोडाइज़्म, कन्फयूशिज़्म और हिन्दूमत। मगर किसी से भी मुझे शान्ति नहीं मिली। इस सिलसिले में मैंने इस्लाम के बारे में भी कुछ किताबों का अध्ययन किया। इसके अच्छे सिद्धान्तों से मैं प्रभावित तो हुई, मगर तस्वीर स्पष्ट न हुई। शायद इसलिए कि इन किताबों के लेखक यूरोप के पक्षपाती ईसाई थे। अतः मैं अपने दिल में इस्लाम के बारे में नर्म गोशा रखने के बावजूद इससे दूर ही रही। इसी हालत में एक लम्बा समय बीत गया।

यह मेरा सौभाग्य है कि मैंने श्रीमती मरयम जमीला की किताबों को पढ़ा और फिर जब 1960 ई० के क़रीब पत्रकारों के एक शिष्ट मण्डल के साथ पाकिस्तान आई और मरयम जमीला से मिली तो मैं उनकी सादगी और व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुई। उन्होंने एक ऐसे व्यक्ति से शादी की, जो पहले से शादी–शुदा था और उसके बच्चे भी थे। वे अपनी बूढ़ी सास की ख़ूब सेवा करतीं और ख़ामोशी व गौरव से धर्म की सेवा में लगी रहती हैं। मरयम जमीला ने मुझे मौलाना मौदूदी (रह०) से भी परिचित कराया और उनकी एक

किताब "Towards Understanding Islam" पढ़ने को दी। इस किताब से मुझे इस्लाम का भरपूर परिचय मिला। मैंने अन्दाज़ा कर लिया कि इस्लाम एक व्यापक और प्राकृतिक धर्म है। एकेश्वरवाद संसार की सबसे बड़ी सच्चाई है और नज़र आनेवाली हर चीज़ ख़ुदा के एक होने पर गवाह है। आस्ट्रेलिया वापस जाकर मैं अपने आपको इस्लाम क़बूल करने के लिए तैयार करने लगी। मगर दुर्भाग्य से एक दिन एक घटना घट गई। मैं गिर गई और टख़ने के क़रीब से मेरी टांग टूट गई। मैं एक लम्बे समय तक अस्पताल के बिस्तर पर पड़ी रही। इस दशा में केवल ख़ुदा की याद और दुआ ही एक मात्र सहारा था, जिसने मुझे दोबारा स्वस्थ किया। मैं दूसरी बार पाकिस्तान आई। मरयम जमीला से मिली। इस्लाम क़बूल कने की इच्छा व्यक्त की और उन्हीं की राय पर मनसूरा आकर मियाँ तुफ़ैल अहमद साहब के द्वारा इस पवित्र और महान उपकार से उपकृत हुई हूँ। इस सौभाग्य पर मैं अल्लाह का जितना शुक्र अदा करूँ कम है।

सवाल : आप के इस फ़ैसले पर आपके परिवार और आपकी सोसाइटी की क्या प्रतिक्रिया हुई ?

जवाब : जैसा कि मैं बता चुकी हूँ कि मेरा कोई परिवार नहीं। मैंने शादी नहीं की और इसका कारण यह था कि यूरोप के समाज में मर्द औरत से निस्स्वार्थ और विशुद्ध प्रेम हरगिज़ नहीं रखते। वे औरत को खिलौना, मनोरंजन और भोग-विलास का साधन समझते हैं और मुझे उनकी इन हरकतों से हमेशा विरक्ति रही है। मुझे कोई निस्स्वार्थ और मानव-मूल्यों का समर्थक पुरुष नज़र ही नहीं आया इसलिए मैं शादी नहीं कर सकी। बहरहाल जहाँ तक आम मिलनेवालों और सोसाइटी का सम्बंध है तो मैं जानती हूँ कि इनकी प्रतिक्रिया अच्छी नहीं होगी। वे नाक-भौं चढ़ाएँगे, मज़ाक़ उड़ाएँगे। मुझे इसकी परवाह नहीं, वैसे भी अब मैं आस्ट्रेलिया में नहीं रहना चाहती, वापस जाकर फ़्लैट बेचूँगी, कामों को समेटूँगी और पाकिस्तान या सऊदी अरब चली जाऊँगी। मेरी इच्छा है कि मेरा शेष जीवन मदीना में गुज़रे या लाहौर में। मैं मक्का मुअज़्ज़मा जाकर हज करने का भी फ़ौरी इरादा रखती हूँ। यूँ भी शायद आप जानते हों कि आस्ट्रेलिया के सामाजिक जीवन में आम यूरोपीय जीवन की भाँति सुकून और चैन नाम की कोई चीज़ नहीं मिलती। चोरी, लूट और अन्य

अपराधों की भरमार है। बच्चे, बूढ़े और औरतें नशे की आदी हैं। यौन अनाचार अन्तिम सीमाओं को फाँद चुका है और मामूली बात पर मकान जला दिए जाते हैं। इसीलिए कुछ भरोसा नहीं कि मैं वापस जाऊँ तो अपना फ़्लैट जला हुआ देखूँ। सिडनी में थोड़ी-थोड़ी देर के बाद फायर ब्रिगेड की गाड़ियां शोर मचाती, भागती दिखाई देती हैं और यह वहाँ के जीवन का दुखद नित्यनियम बन गया है।

सवाल : आपके विचार में इस्लाम के प्रचार-प्रसार का सही तरीक़ा क्या है?

जवाब : केवल एक और वह यह कि मुसलमान अपने चरित्र और अमली जीवन को इस्लाम के साँचे में ढाल लें। यूरोप का इन्सान अन्धेरों में भटक रहा है। उसके धर्म में इतनी क्षमता नहीं कि उसकी रहनुमाई कर सके। उसकी संस्कृति ने पूरे जीवन को जहन्नम में बदल दिया है। उसकी आत्मा प्यासी है और यह प्यास इस्लाम और केवल इस्लाम ही बुझा सकता है। मगर अफ़सोस कि आम मुसलमान इस्लामी जीवन से दूर हो गए हैं, इसीलिए जब यूरोप का शिक्षित इन्सान इस्लाम के बारे में पढ़ता है तो वह इसकी सत्यता को मान लेता है, मगर जब इस्लामी जगत् की बिगड़ी हुई व दयनीय हालत को देखता है तो वह परेशान और मायूस होकर इस्लाम से दूर रहता है। इसकी भरपाई इसी प्रकार हो सकती है कि मुसलमान इस्लाम को सही मानों में अमली व व्यावहारिक तौर पर अपना लें तब पूरा यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया और जापान समेत सभी देश इस्लाम की गोद में आ जाऐंगे।

सवाल : कोई ऐसी इस्लामी शख़्सियत जिसने आपको प्रभावित किया हो?

जवाब : जी हाँ, मैं मोहतरमा मरयम जमीला से बेहद प्रभावित हुई हूँ। उन्होंने अपनी पुरानी पारिवारिक परम्परा को त्याग कर पूर्ण इस्लामी अन्दाज़ अपना लिया है। वे बहुत ही सादा व ख़ामोश ज़िन्दगी बसर करती हैं। पति और उनकी नव्वे वर्षीय बूढ़ी माँ की सेवा करती हैं। बच्चों की प्रेम और स्नेह के साथ परवरिश करती हैं और मिलने वालों से बहुत ही गर्मजोशी से पेश आती हैं। और सबसे बढ़कर उन्होंने ऐसी बहुमूल्य पुस्तकें लिखी हैं जिन्होंने एक ओर पश्चिमी संस्कृति का आवरण उतार फेंका है और दूसरी ओर इस्लाम की

सच्चाई को स्पष्ट और रौशन कर दी है। मैं देखकर हैरान हुई हूँ कि श्रीमती मरयम जमीला टी०वी० नहीं देखतीं, मेकअप और साज–श्रृंगार के सामानों की परवाह नहीं करतीं। विलासिता के सामानों से बेपरवाह हैं। मैंने इस महिला को महानता की अत्यन्त ऊँचाइयों पर देखा है और उन्हीं की किताबों और शख़्सियत से प्रभावित होकर इस्लाम के हलक़े में आई हूँ। मैं इस महान औरत की कृतज्ञ हूँ और उसे सलाम करती हूँ।

सवाल : मौलाना मौदूदी के बारे में आपके विचार क्या हैं ?

जवाब : मेरे दिल में मौलाना के प्रति अत्यन्त आदर–सम्मान है। मैंने इस्लाम क़बूल करने से पहले उनकी किताबें भी पढ़ी थीं और इस्लाम की सही तस्वीर इन्हीं की किताबों से सामने आई थी। मेरा हार्दिक सुझाव है कि मौलाना ने इस्लाम की असाधारण सेवा की है और समय बीतने के साथ–साथ दुनिया भर में उनके सम्मान में वृद्धि होती जाएगी। अल्लाह मरहूम के दर्जों को बढ़ाए और उनके मिशन को सफलता प्रदान करे।

सवाल : कोई पैग़ाम, जो आप मुसलमानों को देना चाहती हों ? विशेष रूप से महिलाओं को।

जवाब : मैं अपनी मुसलमान बहनों तक यह पैग़ाम पहुँचाना चाहती हूँ कि वे इस्लाम की न्यायपूर्ण व्यवस्था को अपनाएँ और जो जीवन–पद्धति इस्लाम के पैग़म्बर ने उनके लिए तैयार की है, उसी को अपनाएँ। मैंने शलवार–क़मीज़, चादर और बुरक़े से बढ़कर अच्छा लिबास औरतों के लिए कोई नहीं देखा। इसी से औरतों की इज़्ज़त है, और यही चीज़ समाज को विभिन्न ख़राबियों से सुरक्षित रख सकती है। मैं उन तक यह बात पहुँचाना चाहती हूँ कि यूरोप में औरतों का लिबास इन्तिहाई ख़राब और अपमानजनक होता है। ख़ुदा के लिए उनकी नक़्क़ाली से बचें और पर्दे का वह अन्दाज़ अपनाएँ जिसकी प्रेरणा इस्लाम ने दी है।

व्याख्या : सुश्री ख़दीजा के बारे में यह बात ईमान को बढ़ानेवाली है कि उन पर फ़ालिज का हमला हुआ, तो उन्हें नीम बेहोशी की हालत में अस्पताल में दाख़िल कराया गया। तीन चार दिन के बाद उन्हें होश आया और पता चला कि यूनाइटेड क्रिश्चियन अस्पताल के बिस्तर पर पड़ी हैं तो बहुत परेशान और ग़ुस्सा हुईं। बार–बार कहती थीं कि मर जाऊँगी मगर किसी ईसाई के हाथ से

दवा नहीं खाऊँगी। वह परेशानी से कहती थीं क्या मैंने ईसाइयत को त्यागकर इसलिए इस्लाम क़बूल किया है कि मुझे ईसाइयों के अस्पताल में मौत आए। उन्होंने बेहद ज़िद की कि मुझे जल्द से जल्द इस अस्पताल से निकाला जाए। अतः उन्हें सर्विसेज़ अस्पताल ले जाया गया, जहाँ वे 29 सितम्बर 1981 ई० को अपने वास्तविक मालिक से जा मिलीं। उसी शाम मनसूरा में मियाँ तुफ़ैल मुहम्मद साहब ने उनकी जनाज़े की नमाज़ पढ़ाई और श्रद्धा और सम्मान के साथ क़रीब के क़ब्रिस्तान में दफ़न कर दिया गया। इस प्रकार उनकी यह इच्छा अनोखे ढंग से पूरी हो गई कि वे आस्ट्रेलिया छोड़कर स्थाई रूप से पाकिस्तान में रहना चाहती हैं।

□ □ □

22. सुश्री ख़दीजा अब्दुल्लाह

(मराकश)

प्रस्तुत लेख ''उर्दू डाइजेस्ट'' के अंक जुलाई, 1992 ई० में प्रकाशित हुआ था। अंग्रेज़ी से उर्दू अनुवाद जनाब मुहसिन फ़ारानी ने किया है। दोनों के शुक्रियों के साथ इसका हिन्दी अनुवाद यहाँ पेश किया जा रहा है।

■ ■ ■ ■ ■

''इस्लाम में स्वागत है, अलहम्दुलिल्लाह बहन स्वागत है'' यह कहते हुए मेरी नई बहनें मुझे गले से लगाती और चूमती हैं। एक बूढ़ी और आदरणीय अफ़गान औरत मेरे गाल को तीन बार चूमती है। उसकी आँखें चमक रही हैं, मुँह में दाँत नहीं, मगर मुस्कुराहट मेरे लिए जादू है। भाषा की दीवार ने हमें शब्दों के आदान-प्रदान से रोक दिया। लेकिन मुहब्बत को व्यक्त करने के लिए शब्दों की आवश्यकता नहीं होती।

इस प्रकार मेरे इस रूहानी सफ़र के आख़िरी चरण का आरम्भ हुआ, जो मुझे यहूदियत से ''यहूद बराय मसीह'' (Jew for Jesus) के संक्षिप्त दौर में लाया। उसके बाद एक बार फिर मैंने यहूदियत को परखा। फिर लम्बी एवं शुष्क अवधि ऐसी बीती जिस बीच मैं न किसी धर्म पर चलती थी, न धर्म में सच्चाई ढूँढने में सक्रिय थी। मेरे जीवन का यह शून्य उस समय ख़त्म हुआ जब मैंने ''बुद्धमत के तीन जवाहिर'' में पनाह ली। यह अवधि पाँच बरस रही। क़रीब दो वर्ष पूर्व, मेरी मुलाक़ात एक असाधारण इन्सान से हुई, जोकि एक छात्र था जिसने इस्लाम से मेरा परिचय कराया.......लेकिन पहले मैं आपको थोड़ा-सा अतीत में ले जाना चाहती हूँ।

मैंने मराकश में यहूदी ख़ानदान के यहाँ परवरिश पाई। मेरे दादा-दादी और मेरे माँ-बाप घर में यहूदी रीति-रिवाजों का अनुसरण दृढ़तापूर्वक नहीं करते थे। हम साल में तीन बड़ी छुट्टियाँ मनाते। हर सप्ताह अपने दादा-दादी के यहाँ 'सब्त' मनाने जाते। लेकिन वहाँ सब्त के सिद्धान्तों की अधिक पाबन्दी न होती। मेरे पिता और चाचा तो दोपहर के खाने के फ़ौरन बाद ही सिग्रेट सुलगा लेते, सौमआ (Synogogue) में पवित्र दिनों में मैं अपने पिता और दादा

के बीच बैठना पसन्द करती और सफ़ेद और नीली दुआइया चादरों में लिपटे हुए लोगों को गीतों वाली दुआ के साथ–साथ झूमते देखती। सबसे अधिक मुझे शोफ़ार (मेंढे का सींग) नामी गीत सुनना पसन्द था। इसकी आवाज़, एक अलग ही दुनिया के जैसी आवाज़ मेरे रोंगटे खड़े कर देती। किन्तु धर्म, घर में एक धार्मिक पारिवारिक भोज समारोह से अधिक कुछ न था।

मिस्र से यहूदियों के चले जाने की ख़ुशी में होने वाली दावत के अवसर पर मेरे दादा निर्वासन की पूरी कहानी पढ़कर सुनाते......किस प्रकार फ़िरऔन की नस्ल (क़िब्ती) बनी इसराईल पर ज़ुल्म के पहाड़ तोड़ते थे, कैसे हज़रत मूसा उन्हें मिस्रियों की ग़ुलामी से छुड़ाकर लाए थे और किस प्रकार फ़िरऔ़न और उसकी फ़ौज पीछा करते हुए क़ुलज़ुम सागर में डूब गई थीं.....लेकिन उस समय मैं इतनी छोटी थी कि इस कहानी में कोई दिलचस्पी महसूस नहीं होती थी। मैं इस समारोह में केवल खाना पसन्द करती थी। बाद में जब मेरे दादा की मृत्यु हुई तो उनकी ज़िम्मेदारी बड़ा बेटा होने की हैसियत से पिताजी ने संभाल ली, मगर वह कभी पूरी कहानी नहीं पढ़ते थे। हम सब 'कफ़्फ़ारे के दिन' को रोज़ा रखते थे और मैं समझती थी कि रोज़ा रखने की धारणा गुनाहों से छुटकारा पाने का साधन है। मैं हमेशा यह कहकर मज़ाक़ करती कि एक दिन तो मेरे अपने गुनाहों के कफ़्फ़ारे के लिए भी काफ़ी नहीं। यहूदियत एक पंथ था, जिसको मैं अपना कह सकती थी, लेकिन यह केवल पारंपरिक, खोखला और आध्यात्मिकता से ख़ाली था। न इसमें दैनिक उपासना थी, न व्यक्तिगत न सामूहिक और अल्लाह का नाम तक न आता था.....लेकिन मेरे अन्दर इन आरम्भिक वर्षों में ही एक नवजात आध्यात्मिकता रौशन थी। रविवार को गिरजे की घंटियाँ जैसे ही सुनाई देतीं। मेरे क़दम बड़े–से सफ़ेद कलीसा की ओर उठ जाते। मैं शौक़ से अन्दर चली जाती और देखती कि कैथोलिक मसीही क्या करते हैं। मैं अपने हाथ पवित्र जल में डबोती और अपने सीने पर सलीब का निशान बनाती और रुकूअ में चली जाती। अज़ान की जादूई आवाज़ आती, तो मैं बालकनी में जाकर लोगों को नमाज़ के लिए सफ़ें (पंक्तियाँ) ठीक करते देखती। जब कभी मैं कुछ ईसाई ननों को लम्बे काले चोग़े (वस्त्र) में देखती तो मैं भी उन्हीं की भाँति इबादत (उपासना) करने की इच्छुक होती, ...इस परिदृश्य में आप देख सकते हैं कि मैंने अल्लाह और

सच्चाई की तलाश में अपना जीवन बसर किया है। मेरी हालत उस अजनबी की–सी थी, जो किसी अनजाने शहर में आ पहुँचा हो और ठिकाने की तलाश में कभी एक चौक में रुकता हो और कभी दूसरे में। मैं भी कभी मंज़िल के क़रीब आ पहुँचती थी और कभी दूर हो जाती, मगर यह संकल्प रखती थी कि आख़िरकार मैं रास्ता पा लूँगी......

> ''जिसे अल्लाह हिदायत देना चाहे, उसका सीना इस्लाम के लिए खोल देता है।'' (क़ुरआन, 6 : 125)

1966 ई० में हमें अमेरिका जाने का अवसर मिला। मैं 19 वर्ष की थी। मुझे यहाँ एक बड़े सांस्कृतिक आघात का सामना करना पड़ा। मुझे याद है कि जब मैं अमेरिका में पहली बार एक बूढ़ी फूफी को दफ़न करने के अवसर पर एक सौमआ में गई तो मुझे बड़ी शर्म आई। मैं दुआ पढ़नेवाले रिब्बी के अजनबी स्वर पर अपनी हँसी रोक न सकी। इब्रानी बोलने का यह ढंग कितना हास्यप्रद था। और फिर मेरे चाचा की सभी लड़कियों के व्यस्क होने के समारोह ''बैत मित्ज़वा''(Bat Mitzvah) मनाए जाने लगे। मराकश में यह नाम कभी नहीं सुना था। इसलिए मुझे और मेरे पिता को इसकी कल्पना पर ही हँसी आई। मैं अपनी हद तक 'बैत मित्ज़वा' की इच्छुक न थी, किन्तु उन्हें इस समारोह की तैयारी के लिए इब्रानी और तौरात के सबक़ लेते देखती तो मुझे बहुत अच्छा लगता था।

1968 ई० की गर्मी की छुट्टियों में एक माह के लिए मैं इसराईल पहुँची तो मुझे वहाँ की हर चीज़ से मुहब्बत हो गई। इसराईल मराकश ही की तरह था। इसलिए वापस आकर मैंने वहाँ रहने की इच्छा व्यक्त की। पिता जी ने कहा हरगिज़ नहीं। मैंने निश्चय कर लिया चाहे कुछ भी हो, मैं फिर जाऊँगी। अतः 1972 ई० में लौटकर इसराईल आई। मैं यहाँ इब्रानी सीखने और एक केबूटस (Kibbutz, यहूदी सामूहिक फ़ार्म) पर काम करने लगी। मैंने इस उम्मीद पर एक धार्मिक केबूट्स का चयन किया कि एक धर्म की शिक्षाओं को जान सकूँ। लेकिन तीन वर्ष बाद निराश होकर उसे छोड़ना पड़ा। मैंने इब्रानी सीखी और आदेशों और प्रतिबन्धों, खाने–पीने के तरीक़ों और पवित्र दिनों के बारे में बहुत कुछ जाना, लेकिन यहूदियत के बारे में कुछ न सीख पाई। मैं समझना चाहती थी कि आख़िर हम यहूदी अल्लाह के प्यारे किस प्रकार हैं

और इस चयनित क़ौम से दुनिया में नफ़रत क्यों की जाती रही है और इसको बार–बार परीक्षा से क्यों गुज़रना पड़ा।

केबूट्स से विदा होकर मैं पूरे फ़िलिस्तीन में घूमती फिरी। जज़ीरा नुमा सीना के दक्षिणी सिरे तक गई। अलतूर में ठहरी, जो भूतों का अड्डा लगता था, जिसे उसके निवासी छोड़कर जा चुके थे। (इसराईली क़ब्ज़े की वजह से) और सीना के पश्चिमी तट पर उत्तर की ओर अबू–रदीस की यात्रा की। यह पूरा सफ़र मैंने फ़ौजी जीपों, बसों और ट्रकों पर किया। अरब लड़के मुझे हैरत से देखते कि यह अकेली लड़की इस रेगिस्तान में क्या कर रही है। एक समय मैंने घर वापसी का इरादा किया। मगर मेरे पिताजी ने पैसे न भेजे और मैं न जा सकी। मैं उनकी इच्छा के ख़िलाफ़ इसराईल आई थी। इसलिए अब वे आगे मेरा भार उठाने के लिए तैयार न थे, उन्होंने जवाब लिख भेजा, ''तैर कर घर आ जाओ।'' मुझे बड़ा दुख हुआ और उस समय मेरी आँखें खुल गईं, जब यसूअ के कुछ दीवानों से मेरा वास्ता पड़ा। वे अपने आपको ''यहूद बराये यसूअ'' कह रहे थे। मैं कुछ जानने के लिए उनके साथ गई। वे Old Testament (नियम की प्राचीन पुस्तक) की कुछ आयतों से मुझ पर साबित करना चाहते थे (यद्यपि मुझको समझाने की कोई आवश्यकता नहीं थी) कि ईसा मसीह का आगमन और जैसे उनका स्वागत और उनके साथ व्यवहार हुआ, यह सब हज़रत मूसा (अलैहि०) की पाँच किताबों में बयान हुआ है।

आख़िरकार मैं घर लौट आई और अपने माँ–बाप से 'यहूद बराये यसूअ' की चर्चा की, तो उन्हें स्वाभाविक रूप से उसे मानने में दिक़्क़त हुई। उन्होंने मुझसे आग्रह किया कि मैं यहूदियत को एक अवसर और दूँ। यहाँ से मेरे जीवन के उस सूखे और कठिन दौर का आरम्भ हुआ जो बारह साल तक खिंच गया। मुझे अपना मन साफ़ करने के लिए मुहलत की आवश्यकता थी। मुझे गर्व है कि अपनी कुछ, अपेक्षाकृत कम भाग्यवान, सहेलियों के विपरीत मैं कोरियाई 'सिन माइंग मून' के अनुयायियों (Moonies) और 'हरे कृष्णा' जैसे समुदायों के पीछे कभी न गई।

1986 ई० में एक मिशनरी ने मेरी बेटी को एक पम्फ़लेट थमा दिया, जिसमें 'शिव शिव बुद्धमत' के बारे में कुछ लिखा था, मैं बुद्धमत के बारे में बहुत कम जानती थी, मगर इतना ज़रूर पता था कि वे लोग विदेशों में प्रचारक

नहीं भेजते। मैं उनके धोखे में न आई, किन्तु एक बुद्धमठ ढूँढ़ लिया और इस धर्म का सुराग़ पाने में खो गई। पाँच वर्षों तक मैं बुद्धमत पर चलने का प्रयास करती रही। इस पर सोच-विचार किया और 'महायान' पंथ की अनुयायी बन गई, जिसका अर्थ है 'महान गाड़ी'। इस बीच मैं तिब्बती या 'वज्रयान' से परिचित हुई। जिसका अर्थ है 'हीरा गाड़ी.....' जो तमाम रुकावटें पार करती चली जाती है।

यहूदियत और ईसाइयत जैसे एक ख़ुदा के माननेवाले धर्मों से विमुख और विरक्त होने के बाद सर्वशक्तिमान ख़ुदा की तलाश में मैं बुद्धमत की ओर उन्मुख हुई तो पता चला कि यह तो धर्म से बढ़कर एक जीवन-दर्शन है। इसमें गुनाह और जुर्म की कोई धारणा ही नहीं है। हर बात कारण और परिणाम है। क्रिया और प्रतिक्रिया है। इन्सान अपने कर्मों के लिए बड़ी हद तक व्यक्तिगत रूप से ज़िम्मेदार है। वह ख़ुद अपना जज और मुनसिफ़ है। मुझे बुतों के आगे झुकने में कोई परेशानी पेश न आई, क्योंकि मैं जानती थी कि ये देवताओं के प्रतिनिधि होने के बजाए महात्मा बुद्ध के गुणों के विभिन्न पहलुओं को दर्शाते हैं, लेकिन जब 'वज्रयान' पंथ के अन्दर गहराई में गई तो मुझे दर्जनों देवी-देवताओं, पेच-दर-पेच धार्मिक रीति-रिवाजों, मुश्किल मंत्र अलापने के लिए लम्बे मंत्रों और तिब्बती भाषा से वास्ता पड़ा। धीरे-धीरे मैं ऐसे चरण में पहुँच गई, जहाँ कई पूर्व यहूदी और पूर्व ईसाई (जिनमें कई राहिब और राहिबात होते हैं) बुद्धमत के अध्ययन और उसपर अमल करने के दौरान कहीं बाद में पहुँचते हैं, मैं अपने दिल में समझती थी कि अगर महात्मा बुद्ध एक बार फिर दुनिया में आ जाएँ तो उन्हें यह देखकर बड़ा दुख होगा कि उनकी शिक्षाओं की क्या दुर्दशा हुई है और किस प्रकार बुद्धमत के करोड़ों अनुयायी उन्हें ख़ुदा समझकर उनकी पूजा करते हैं। वे पीपल के नीचे बैठकर जो ज्ञान-ध्यान करते रहे तो क्या उनका उद्देश्य यही था, जिसपर आज उनके अनुयायी चल रहे हैं। इसी प्रकार हज़रत मूसा (अलैहि०) और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) यह देख कर नाख़ुश होंगे कि उनके मानने वाले क्या से क्या हो गए हैं। मैं जो मुसलमान हुई तो केवल इसलिए कि मैं इस्लाम (सभी युगों और ज़मानों के लिए एक कल्याणकारी धार्मिक अवधारणा और एक जीवन-व्यवस्था) और मुसलमानों में फ़र्क़ कर सकती थी।

जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया, मेरी मुलाक़ात मलेशिया के एक छात्र से हुई जो तीन और छात्रों के साथ मेरे पास आकर ठहरा था। इनमें से एक कुछ समय पूर्व मुझसे एक हेल्थ फूड सुपरमार्केट में भी मिला था, जहाँ वह पार्टटाइम काम करता था। जब चारों हमारे पड़ोस में आ गए तो वे हमसे सलाम–दुआ करने आए। उसके बाद मैं दूसरों से मिली और हमने एक–दूसरे को डिनर पर बुलाया। वे मेरे घर में बुद्ध प्रतिमा और बुत देखकर बड़े बदमज़ा हुए, लेकिन उनमें से एक इस सोच में पड़ गया कि यह एक यहूदी औरत बुद्धमत को कैसे मानती है ? हम कई घंटे बातचीत करते रहे और बहुत जल्द मुझको एहसास हो गया कि मैं इस्लाम के बारे में कुछ भी नहीं जानती। हमने सलमान रुशदी, आयतुल्लाह ख़ुमैनी और इस्लाम में औरतों पर कथित अत्याचार जैसे विषय पर बातें कीं। मुझे यह जानकर हैरत हुई कि कुछ इस्लामी देशों में यद्यपि औरतें वास्तव में किसी हद तक अत्याचार का शिकार हैं, मगर दूसरे इस्लामी देशों में ऐसी कोई बात नहीं।

उसने इस्लाम को मुझ पर ठूँसने की कोई कोशिश न की, बल्कि क्रमवार और धीरे–धीरे इस्लाम की विशेषताएँ स्पष्ट कर दीं। बातचीत में इस्लामी पर्दे ''हिजाब'' की भी बात आई। मेरा विचार यह था कि मुसलमान मर्दों को औरत का आकर्षण बेक़ाबू और दीवाना बना देता है। इसलिए मुसलमान औरत को उनसे सुरक्षित रहने के लिए पर्दे में लिपटी रहना चाहिए। उस शरीफ़ आदमी ने क़ुरआन से हक़ीक़तों को खोल–खोलकर बयान किया और इस बारे में अपने ख़ानदान की मिसालें दीं। मैं समझती थी कि मुसलमान औरत को अपने जीवन साथी के चयन का अधिकार प्राप्त नहीं। मगर अब मालूम हुआ कि सच्चाई इसके विपरीत है। उसने बड़े अच्छे शब्दों में बताया कि उसके लिए यह कितना सम्मोहक और आकर्षक है कि वह अपनी बीवी को घर से बाहर अजनबी मर्दों की निगाहों से बचने के लिए उचित लिबास पहने देखे और घर के अन्दर उसके पैरों की ख़ूबसूरती, उसके गोल बाज़ुओं की नर्मी, और निगाहों से ओझल उसकी हसीन गर्दन के ख़्याल और उनकी तमन्ना में खोया रहे। मैं आश्चर्य से उसे देखने लगी। पश्चिम में औरतों के ये अंग देखने की चीज़ ख़्याल किए जाते हैं, क्योंकि वे सदा खुले रहते हैं। मैंने पश्चिमी लिबास और पश्चिमी आचरण पर आलोचनात्मक निगाह डाली तो एहसास हुआ कि

अपनी सम्पूर्ण आज़ादी से फ़ायदा उठाने के बावजूद हम ख़ुश नहीं। हम सब उदास और ज़ख़्मी आत्माएँ हैं, जिन्हें मीडिया ने बेवक़ूफ़ बनाकर धन की देवी की क्रय शक्ति की पूजा करने पर मजबूर कर रखा है। हज़ारों डॉलर औरत के शरीर को सुन्दर बनाने पर ख़र्च किए जाते हैं। चाहे इसमें उनका मानवीय सौन्दर्य ही क्यों न छिन जाए, और जो औरतें टीप-टाप के साँचे में फ़िट नहीं बैठतीं, क्योंकि वे बहुत मोटी या बहुत पतली होती हैं, वे जीवन के अज़ाब से दो-चार होकर रोगिणी बन जाती हैं।

मेरा वे सच्चा शुभचिन्तक भी सच्चे इस्लाम की व्यावहारिक रूप की तलाश में निकला हुआ था। उसे बड़ा एहसास था कि किस प्रकार सत्ताधारी लोगों ने बहुत कुछ अपने हित और स्वार्थ के अनुसार ढाल लिया है। लेकिन उसका परिदृश्य मुझसे अलग था। उसके ख़ानदान वाले एक-साथ नमाज़ पढ़ते थे। वे शाम को मिल बैठते और क़ुरआन पढ़ते थे, धर्म उनके जीवन की धुरी थी। मैं इस पर बहुत रश्क करती। मैंने इस्लाम के बारे में गुमराह करनेवाले विचारों का बोझ उठा रखा था, जिसे उसने एक-एक करके मेरे सिर से उतार दिया.....यह काम उसने मिसालों से अपने व्यवहार से और क़ुरआन के पन्नों से मार्गदर्शन करते हुए किया। वह नमाज़ पढ़ता। मैं उसे देखती रहती। कभी-कभी वह मुझे देखता जबकि मैं ज्ञान-ध्यान में लगी होती। कभी-कभी हम देहात में, किसी पहाड़ी पर या नदी के किनारे जा निकलते और वहाँ अपनी-अपनी इबादत (उपासना) करते।

मैं एक वर्ष तक और बुद्धमत पर जमी रही। इस बीच अध्ययन और केवल अध्ययन मेरा ओढ़ना-बिछौना था। मैंने इस्लाम, अरब जगत् और मध्य-पूर्व की राजनीति पर बहुत-सी किताबों और पत्रिकाओं को चाट डाला। मैंने हार्टफ़ोर्ड सेमजी के "प्रोग्राम : इस्लाम का अध्ययन" सुना और वहाँ अरबी पढ़ने पहुँच गई। वहीं प्रोफ़ेसर इब्राहीम अबू रबीअ़ से मुलाक़ात हुई। उन्होंने अपने लेक्चर सुनने की दावत दी। सेमजी की किताब 'द मुस्लिम वर्ल्ड' में पहली बार मैंने अली शरीअती का नाम पढ़ा और फिर तलाश करके उनपर और उनकी किताबें पढ़ीं। उनकी किताबों ने मुझे बहुत प्रभावित किया। मुझे उस सच्चे मुसलमान के दुनिया से उठ जाने का अफ़सोस हुआ। अब मैंने अपने दोस्तों के साथ रमज़ान के रोज़े रखने शुरू किए। उन्हें इस पर आश्चर्य

भी हुआ और ख़ुशी भी। किन्तु किसी ने मुझसे कभी न पूछा कि मैं कब इस्लाम क़बूल कर रही हूँ। वे मुझे अपनी बिरादरी का सदस्य जानकर यह एहसास दिलाते कि उन्हें मुझसे मुहब्बत और हमदर्दी है, चाहे मैं यहूदी हूँ या ईसाई।

आख़िरकार निर्णायक मोड़ आ गया। जब मुझे एक मलेशियाई भाई ने एक किताब पढ़ने को दी। उसने ग्रेजुएशन किया था और अब घर लौट रहा था। वह किताब भी मौरिस बुकैले की 'दी बाइबल, क़ुरआन एण्ड साइंस'। यह मेरे लिए इस्लाम क़बूल करने में आख़िरी कारण बनी। इस किताब ने सभी बाक़ी सवालों का जवाब दिया जो इस्लामी सिद्धान्तों और साइंस एवं टेकनोलॉजी और पर्यावरण के प्रसंग में इस्लामी दृष्टिकोण के सम्बन्ध में मेरे मन में उठ रहे थे।

एक मुसलमान भाई ने मुझे क़ुरआन का तोहफ़ा दिया था अब मोरिस बुकैले की किताब से मेरे अन्दर क़ुरआन पढ़ने का शौक़ उमड आया, तो मैं पाबन्दी से इस किताब को पढ़ने और इसको समझने की कोशिश करने लगी। और एक बार जब मैंने इस्लाम क़बूल करने का इरादा ज़ाहिर किया तो हर ओर से मुझे सहायता मिलने लगी। काफ़ी पहले मैंने अपने दोस्त से कहा था कि वह मुझे नमाज़ पढ़ना सिखा दे। लेकिन उसने हामी न भरी थी। वह मुझसे बेहतर जानता था कि अभी मैं इसके लिए तैयार न थी

अपनी हद तक मैं कुछ समय पूर्व से मुसलमान हो चुकी थी, फिर भी दुनिया के सामने मैंने 9 फ़रवरी, 1992 ई० में इस्लाम क़बूल कर लिया। ...इस नेमत को पाने पर मैं अल्लाह के हुज़ूर शुक्र का सज्दा करती हूँ.....अलहम्दुलिल्लाह।

23. श्रीमती ख़दीजा फ़िजूई

(इंग्लैण्ड)

बचपन में मेरी धार्मिक शिक्षा चर्च ऑफ़ इंग्लैंड की देख–रेख में हुई, मगर होश संभाला तो मेरा मन इससे बिल्कुल संतुष्ट न हुआ। मुझे चर्च ऑफ़ इंग्लैंड की शिक्षाओं में शक्ति और सम्मान की कमी नज़र आई, इसलिए मैं उस चर्च से अलग हो गई और बीस वर्ष की आयु में रोमन कैथोलिक बन गई। नतीजा यह हुआ कि मेरे सगे–सम्बन्धी और सारे दोस्त सख़्त नाराज़ हो गए और उनकी नाराज़गी बल्कि दुश्मनी ने मुझे कई वर्षों तक परेशान रखा। परन्तु चूँकि मुझे यक़ीन हो चुका था कि केवल रोमन कैथोलिक ही सच्चा धर्म है और इसे ख़ुदा की हिमायत और मदद हासिल है, इसलिए मैंने दूसरों की दुश्मनी या अपनी परेशानी की कोई चिंता न की और अपने दृष्टिकोण पर क़ायम रही।

लेकिन कुछ समय के बाद मुझे शिद्दत से एहसास हुआ कि रोमन कैथोलिक से जुड़ाव एक क़ीमत चाहता है और वह है सोच–विचार और राय प्रकट करने पर पाबन्दी यानी यह विश्वास कि चर्च और चर्च की शिक्षाएँ हर तरह की ख़राबी से मुक्त हैं और उन पर आपत्ति करना उनके इनकार करने के बराबर है, चाहे वे बुद्धि के कितना ही विरुद्ध क्यों न हों। इसी लिए जब कभी मेरी बुद्धि किसी बात पर आपत्ति करती तो मैं अपने आपको समझाती कि ख़राबी वास्तव में मेरी बुद्धि में है और चर्च बुद्धि से परे है। उदाहरणार्थ यह विश्वास कि चर्च में जो रोटी भी पादरी लोग खाते हैं वह पहले ही यीशू मसीह के वुजूद में बदल जाती है। दूसरे शब्दों में, उसकी हैसियत एक ही समय में ख़ुदा की भी होती है और इन्सान की भी, हालाँकि प्रत्यक्षतः इसका एहसास नहीं होता। मैं अक्सर हैरत में पड़ जाती कि एक पूरा इन्सान रोटी में कैसे समा सकता है और फिर हज़रत मसीह एक ही समय में विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग रोटियों में कैसे समा सकते हैं, जबकि संसार में लाखों चर्च हैं और हर चर्च में बहुत–सी रोटियाँ इस्तेमाल की जाती हैं। यह बात बड़ी बेजोड़ और हास्यास्पद लगती थी कि इन्सान अपने गोश्त और ख़ून के साथ एक रोटी का

रूप धारण कर ले। दिमाग़ जिस दूसरी बात पर बहुत परेशान होता वह हज़रत ईसा का सूली पर चढ़ना है। कहा जाता है कि हज़रत ईसा (अलैहि०) की क़ुरबानी की घटना बार-बार पेश आती है। इसके अलावा भी कई सवाल थे, जो मन में पैदा हुए। किन्तु मैंने अपने आपको मजबूर किए रखा कि चर्च की आस्थाएँ निस्संदेह सही और ठीक हैं,परन्तु बुद्धि से परे हैं। ऐसे विचारों से बचने के लिए मैंने अपने आप पर एक आध्यात्मिक नशा सवार कर लिया अर्थात् मैं ज़्यादा से ज़्यादा इबादत में लगी रहती ताकि बुद्धि को विभिन्न सन्देहों के बारे में सोचने का अवसर ही न मिले, न इसमें विद्रोह के कीड़े कुलबुला सकें। यह अलग बात है कि मैं अपने आपको अक़ीदे का पक्का कैथोलिक नहीं समझती थी और इस पर बहुत परेशानी में थी।

मगर अपने आपको बनावटी ढंग से व्यस्त रखने का नशा टिकाऊ साबित न हुआ। मैं प्रयास के बावजूद अपने आपको कुँवारी मरयम, यीशू या अन्य पूर्वजों की पूजा पर तैयार न कर सकी। कैथोलिक लोग यीशू (ईसा अलैहि०) की माँ को.......ख़ुदा की रानी और तमाम शक्तियों की मध्यस्थ क़रार देते हैं और उसकी सिफ़ारिश को अनिवार्य कहते हैं। मैंने एक बार एक पादरी को देखा। वह स्कूल के बच्चों को बता रहा था कि एक व्यक्ति यद्यपि बहुत अभागा और गुनहगार था लेकिन सिर्फ़ एक नेकी ने उसे नरक से बचा लिया था और वह यह कि वह व्यक्ति मरयम की पूजा बड़ी पाबन्दी से करता था। मैं सोचती रह गई कि इंजील तो हज़रत ईसा को छुटकारा दिलानेवाला कहती है मगर पादरी साहब यह सम्मान मरयम को दे रहे हैं। आख़िर दोनों बातों में समानता क्या है?

इन तमाम दिमाग़ी उलझनों के बावजूद कैथोलिक चर्च में सन्तुष्टि के सामान भी थे और मैं कभी-कभी इस वातावरण में बहुत ख़ुशी भी महसूस करती थी, किन्तु पूरे एक वर्ष तक मैं बड़ी दुविधा में रही। मेरी मुलाक़ात प्रोटेस्टेंट अक़ीदे वाले कुछ लोगों से हुई, जिनके धर्म के बारे में गर्म जोशी और ख़ुलूस कैथोलिक लोगों से कम न था। उन्होंने मुझे ऐसा रास्ता बताया जो कैथोलिक अक़ीदों का पूरा-पूरा बदल भी था और बाइबल की शिक्षाओं पर आधारित भी और जिसमें चर्च ऑफ़ इंग्लैंड के जैसी जटिलता और भ्रम भी नहीं था। वह केवल यीशू को निजात देने वाला समझते थे, अगरचे मैं उनके

अक़ीदे की सादगी से बहुत प्रभावित हुई मगर मैं इस बात से सहमत न हो सकी कि केवल विश्वास ही मुक्ति का साधन बन सकता है। बहरहाल, कई प्रकार के सन्देहों के बावजूद मैं रोमन कैथोलिक अक़ीदे पर क़ायम रही।

मैं उस समय इस्लाम के बारे में कुछ न जानती थी। समाचार पत्रों के लेखों द्वारा केवल इतनी ख़बर अवश्य थी कि इस्लाम ग़ुलामी का समर्थक है और अब तक अरब देशों में यह घृणित कारोबार जारी है। बहु पत्नित्व के कारण औरतों पर अत्याचार किया जाता है। जानवरों को बेझिझक काट कर खाया जाता है और मादक वस्तुओं पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। स्कूल के ज़माने में सलीबी जंगों के बारे में भी पढ़ा था, जिनमें मुसलमानों को अत्यन्त क्रूर एवं निर्दयी बताया गया था।

इन सारे धार्मिक पक्षपातों के बावजूद मैंने इस्लाम के बारे में मालूमात हासिल करने का इरादा किया। कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट अक़ीदों के बीच दिल और दिमाग़ की खींचातानी ने मुझे मानसिक रूप से तोड़ दिया था और मैं बीमार रहने लगी थी। हल सिर्फ़ एक ही था कि मैं जल्द–से–जल्द सच्चाई पा लूँ और यकसूई हासिल कर लूँ। इसके लिए मैंने क़ुरआन से संपर्क करने का फ़ैसला कर लिया। मैंने ख़ुदा से सीधी राह दिखाने की दुआ की। फिर यह मान लिया कि मैं दूर के किसी ग्रह की मख़लूक़ (प्राणी) हूँ, न ईसाइयत के बारे में कुछ जानती हूँ न इस्लाम के बारे में । मन में जितने पक्षपात और पूर्वाग्रह थे वे झटक दिए और सत्यमार्ग को पाने के लिए पवित्र क़ुरआन के अध्ययन में लीन हो गई।

मैंने क़ुरआन के रूप में निस्सन्देह एक बदल तो पा लिया, परन्तु मन विभिन्न प्रश्नों से भर गया। क्या वास्तव में यह ख़ुदा की ओर से वह्य (प्रकाशना) है या मुहम्मद (सल्ल०) ने किसी ज़रिए से बाइबल की ऐतिहासिक कहानियों को सुना और ख़ुदा के हवाले से अपने शब्दों में बयान कर दिया? मुहम्मद (सल्ल०) पर कोई भूत–प्रेत तो सवार नहीं था (ख़ुदा मुझे क्षमा करे) चूँकि वे बेहद बुद्धिमान थे, इसलिए क्या शैतान ने तो उन्हें अपना हथियार नहीं बना लिया था? (अल्लाह की पनाह)

इन बेहूदा सवालों के जवाब के लिए मैंने हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की जीवनी और चरित्र के बारे में जानने की ज़रूरत महसूस की। इसके लिए मैंने

मुस्लिम और ग़ैर मुसिलम लेखकों की किताबें हासिल कीं। पता चला कि उन्होंने किसी इन्सानी ज़रिए से यहूदी और ईसाई इतिहास का ज्ञान प्राप्त नहीं किया था। वह पढ़ना–लिखना जानते ही न थे, इसलिए उन्होंने सीधे तौर पर बाइबल का अध्ययन भी नहीं किया था। अब अगर मान लीजिए कि उन्होंने क़ुरआन की सारी मालूमात यहूदी और ईसाई उलेमा से हासिल की थीं तो यह असम्भव है कि ज़बानी बातचीत को इतने विस्तार के साथ याद रखा जाए और फिर उन्हें किताब का रूप भी दे दिया जाए। माना कि यह सूरत सम्भव भी होती तो यह खेल अन्य लोगों से छुपा नहीं रह सकता था और फिर स्वयं यहूदियों और ईसाइयों के लिए क़ुरआन का विरोध बिलकुल बेतुकी हरकत थी। वास्तव में कुछ लोगों ने इस प्रकार के आरोप लगाने की कोशिश भी की। मगर कोई सुबूत न होने के कारण ये आरोप दम तोड़ बैठे।

बहरहाल पूर्ण संतुष्टि होने पर मैंने इस्लाम स्वीकार कर लिया और मैं इस पर ख़ुदा का शुक्र अदा करती हूँ।

□ □ □

24. सिस्टर ख़ौला लुकाता

(जापान)

सिस्टर ख़ौला लुकाता 1961 ई० में जापान में पैदा हुईं। वे फ्रांसीसी साहित्य की उच्च शिक्षा के लिए पेरिस में थीं कि ख़ुशक़िस्मती से वे 1990 ई० में इस्लाम की पवित्र और बरकतवाली छत्रछाया में आ गईं और फिर जब वे अरबी की शिक्षा के लिए क़ाहिरा पहुँचीं तो अल्लाह ने अपनी कृपा से वहाँ एक जापानी नव–मुस्लिम डॉक्टर हस्सान लुकाता से उनका नाता जोड़ दिया और दोनों वैवाहिक सूत्र में बन्ध गए। इस्लाम धर्म स्वीकार करने की उनकी कहानी उन्हीं की ज़बानी सुनिए, जिसे उन्होंने रोड टू इस्लाम (Road to Islam) के शीर्षक से लिखी है :

▪ ▪ ▪ ▪

अधिकतर जापानियों की तरह इस्लाम को स्वीकार करने से पूर्व मेरा भी कोई धर्म न था, यहाँ तक कि फ्रांसीसी साहित्य की उच्च शिक्षा के लिए पेरिस आ गई और वहाँ की एक यूनिवर्सिटी में प्रवेश ले लिया। यहाँ सार्त्र, नित्शे और कमयूस मेरे प्रिय फ़लसफ़ी थे और ये तीनों वास्तविकता के प्रचारक थे। लेकिन अजीब बात यह है कि इसके साथ ही मैं धार्मिक अध्ययन की भी बहुत शौक़ीन थी। किसी आत्मिक रूहानी तलब के कारण नहीं बल्कि सत्य की खोज में मैं विभिन्न धर्मों के विषयों में भी पढ़ती रहती थी। मुझे इससे बिल्कुल कोई रुचि नहीं थी कि मरने के बाद क्या होगा। हाँ, यह इच्छा अवश्य थी कि यह भौतिक जीवन साफ़–सुथरा एवं ढंग से व्यतीत हो। किन्तु अक्सर ख़्याल आता कि धर्म के संदर्भ में मेहनत और जुस्तजू के कारण मैं अपना समय व्यर्थ ही नष्ट कर रही हूँ। परन्तु केवल जुस्तजू के कारण मैं इस्लाम के अतिरिक्त हर धर्म का अध्ययन करती रही। इस्लाम को मैं इस योग्य भी नहीं समझती थी कि इसके बारे में सोचा भी जाए। उस समय मेरी प्रतिक्रिया यह थी कि इस्लाम मूर्तिपूजा का एक धर्म है जिसे जाहिल और गँवार लोग ही अपनाए हुए हैं (अल्लाह तआला मुझे क्षमा करे) अतः सबसे पहले मैंने ईसाइयों से दोस्ताना सम्बन्ध स्थापित किए और बाइबल का अध्ययन शुरू कर दिया। गिरजाघर भी

जाती रही। उद्देश्य यह था कि किसी प्रकार ख़ुदा के वुजूद का एहसास हो, परन्तु मेरी सारी मेहनत बेकार गई। बाइबल या गिरजे की हाज़िरी के बावजूद ख़ुदा के अस्तित्व का हलका–सा विश्वास भी दिल में न बैठ सका।

कई वर्षों की व्यर्थ खोज के बाद मैं बौद्ध मत की ओर मुड़ी कि शायद ज्ञान, ध्यान और योग द्वारा मैं ख़ुदा के अस्तित्व का आभास कर सकूँ। बौद्ध मत में भी ईसाइयत की तरह मुझे कुछ बातें वास्तविकता के क़रीब नज़र आईं, परन्तु इसके कुछ पहलुओं को मैं न समझ पाई, न स्वीकार कर सकी। मेरी आत्मा और दिल कहता था कि अगर ख़ुदा मौजूद है तो वह सबके लिए एक रूप में होना चाहिए और यह कि सत्य को सरल और सादा होना चाहिए। हर व्यक्ति के लिए समझने योग्य और निखरा हुआ होना चाहिए। ईसाइयत और बौद्ध मत के अध्ययन के दौरान में यह बात मेरे लिए बहुत बड़ा सवाल बन गई कि ख़ुदा की निकटता प्राप्त करने के लिए आख़िर दैनिक जीवन को त्याग देना और समाज से कट जाना क्यों आवश्यक है ? उस समय मैं मानसिक बेचैनी की अन्तिम सीमा पर थी और सच्चाई की खोज करते–करते मानो थक–हार कर गिर रही थी। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कि ख़ुदा को मुझ पर तरस आ गया और मेरा परिचय एक अलजज़ाइरी मुसलमान से हो गया। वह फ्रांस ही में पैदा हुआ था और वहीं पढ़ा था और बेचारा इतना बेअमल था कि उसे नमाज़ तक पढ़नी नहीं आती थी, न ही उसके सामान्य जीवन पर इस्लाम की कोई छाप थी। लेकिन ज़बानी–कलामी वह ख़ुदा की बड़ी चर्चा करता था......इस पर ख़्याल आया कि मुझे इस्लाम के बारे में भी जानकारी प्राप्त करनी चाहिए, क्या पता कि यहीं से लक्ष्य की प्राप्ति हो जाए। अतः मैंने क़ुरआन का एक फ्रांसीसी अनुवाद ख़रीद लिया, परन्तु मैं इसके दो पन्ने भी न पढ़ सकी। वह मुझे बहुत ही अजीब–सा अपरिचित और बोर लगा। मैंने इस अध्ययन को छोड़ दिया और पेरिस की एक मस्जिद में चली गई, ताकि किसी से सहायता ले सकूँ। यह रविवार का दिन था और मेरा सौभाग्य कि मस्जिद में महिलाओं के लिए एक लेक्चर हो रहा था। वहाँ जितनी औरतें थीं, सबने बहुत ही गर्म जोशी से मेरा स्वागत किया और सप्रेम मुझे हाथों हाथ लिया और यह पहला अवसर था कि मैं बाअमल मुसलमान औरतों से परिचित हो रही थी और पहला अवसर था कि मैं उन लोगों के बीच बहुत शान्ति और

ख़ुशी के एहसास से परिचित हो रही थी। जबकि इसके विपरीत मैंने ईसाई औरतों के मजमे में अपने आपको अजनबी और बेगाना महसूस किया। इस पहले अच्छे तजुर्बे के बाद मैं हर रविवार को मस्जिद के लेक्चर में शामिल होने लगी। इस्लाम के बारे में मुझे एक किताब भी दी गई और हालत यह हुई कि लेक्चर का एक–एक क्षण और किताब का एक–एक पन्ना मानो मेरे लिए ख़ुदाई संदेश बन गया और मैं मानसिक और हार्दिक रूप में सन्तुष्टि और शान्ति की उस अनुपम मनोदशा से दोचार हुई, जिसका तजुर्बा अब तक नहीं हुआ था और यह देख कर मैं ख़ुशी से पागल हो गई कि मैंने सच्चाई की खोज कर ली है। सुबहानल्लाह, मैंने अपने पालनहार को तलाश कर लिया....और सजदे की हालत में तो मैं उसके बहुत क़रीब हो जाती थी, बहुत ही क़रीब......कितनी ख़ुशनसीब हूँ मैं.......घटाटोप अंधेरों में मुझे रोशनी मिल गई, सीधे रास्ते का सुराग़ मिल गया। उसके एक ही महीने के बाद मैंने कलिमा–ए–शहादत पढ़ा और मुसलमान हो गई। सुबहानल्लाह, अलहम्दुलिल्लाह!

उसके फ़ौरन बाद ही मैं अरबी ज़बान सीखने लगी और क़ुरआन के हुस्न से चमत्कृत हो गई। तब पता चला कि मैं पहली बार क़ुरआन से प्रभावित क्यों नहीं हुई थी। उस समय मैंने क़ुरआन नहीं पढ़ा था, क़ुरआन का अनुवाद पढ़ा था।

उन दिनों जबकि मुझे यह निर्णय लेना था कि मैं इस्लाम को स्वीकार करूँ या न करूँ, मैंने अपने अंदर संजीदगी के साथ रोज़ाना पाँच ज़रूरी इबादतें अदा करने की क्षमता और रुजहान का अन्दाज़ा नहीं लगाया था और न ही हिजाब (बुर्क़ा आदि) पहनने के बारे में सोचा था। हो सकता है कि मैं इस बात से डर रही थी कि मेरे मुसलमान होने के फ़ैसले पर असर डालने के लिए मेरे अन्दर नकारात्मक रुजहान न पैदा हो जाए। पेरिस की मस्जिद में पहली बार जाने के पूर्व मैं एक ऐसे संसार में रहती थी, जिसका इस्लाम से कोई सम्बन्ध न था। मैं नमाज़ और हिजाब से बिल्कुल अपरिचित थी, फिर भी मेरे अन्दर कोई चीज़ पैदा हो चुकी थी और इस्लामी बिरादरी में दाख़िल होने की मेरी इच्छा इतनी प्रबल थी कि मैं इस बात से बिल्कुल परेशान नहीं थी, जिससे धर्म–परिवर्तन के बाद मेरा वास्ता पड़ता।

वास्तव में यह बात ध्यान देने योग्य है। लेकिन मुझको अल्लाह की

रहमत और उसकी कृपा से इस्लाम के लिए हिदायत मिल गई थी।

यद्यपि मैं हिजाब की आदी न थी, लेकिन अपना धर्म बदलने के बाद मैं फ़ौरन ही इसका फ़ादया महसूस करने लगी। मस्जिद में रविवार को इस्लामी लेक्चर में पहली बार उपस्थित होने के कुछ दिन बाद अगले रविवार को पहनने के लिए मैंने स्कार्फ़ ख़रीदा। मुझसे किसी ने स्कार्फ़ पहनने को नहीं कहा था। मैं मस्जिद और वहाँ की दूसरी मुस्लिम बहनों के सम्मान में ऐसा करना चाहती थी। मैं रविवार के आगमन के लिए बेचैन थी, क्योंकि पिछले लेक्चर ने मुझे ऐसे रूहानी जज़बे (आध्यात्मिक भाव) से आनन्दित किया था, जिसका इससे पूर्व मुझे कोई अनुभव न था। मेरे दिल में रूहानियत की परवरिश के लिए इतनी चाह थी कि मैंने लेक्चर के हर शब्द को इस प्रकार सोख लिया था जैसे शुष्क स्पंज पानी को सोख लेता है। दूसरे रविवार को लेक्चर रूम में जाने से पहले मैंने वुज़ू किया और स्कार्फ़ पहना। लेक्चर के बाद मैं पहली बार नमाज़ वाले कमरे में दाख़िल हुई। मैंने दूसरी बहनों के साथ बड़ी ख़ामोशी से नमाज़ अदा की। मस्जिद में बिताए हुए कुछ घंटों ने मुझको इतना प्रसन्न और सन्तुष्ट कर दिया था कि वहाँ से निकलने के बाद भी इस ख़ुशी को अपने दिल में सुरक्षित रखने के लिए मैं स्कार्फ़ पहने रही। चूँकि वह ठंड का मौसम था, इसलिए लोगों को मेरा स्कार्फ़ अपनी ओर आकर्षित न कर सका। अवाम में यह मेरा हिजाब का पहला मुज़ाहिरा था और मुझे अपने अन्दर एक फ़र्क़ का एहसास हुआ। मैंने अपने आपको पाकीज़ा और सुरक्षित समझा। मुझे एहसास हुआ कि मैं अल्लाह से ज़्यादा क़रीब हो गई हूँ।

दूसरे देश में एक जापानी औरत होने की वजह से लोग मुझको (पब्लिक) सार्वजनिक स्थलों पर घूर-घूर कर देखते थे तो मैं बेचैन हो जाती थी। अब मैं स्वयं को हिजाब के कारण सुरक्षित समझती थी और स्वयं को ग़लत निगाहों का केन्द्र नहीं समझती थी।

इसके बाद मैं जब बाहर जाती तो हिजाब में जाती। यह एक ऐसा स्वाभाविक और स्वेच्छिक आचरण था, जिसको किसी ने मुझ पर ज़बरदस्ती नहीं लादा था। इस्लाम के सम्बन्ध में सबसे पहली किताब जिसका मैंने अध्ययन किया उसमें हिजाब को सरल ढंग से स्पष्ट करते हुए कहा गया था कि अल्लाह इसकी ज़ोरदार तरीक़े से नसीहत करता है। अगर किसी ने

अधिकारिक रूप में कहा होता कि ''जैसे ही तुम इस्लाम स्वीकार कर लो तो हिजाब अवश्य इस्तेमाल करो'' तो मैं इस हुक्म के विरोध में अवश्य विद्रोह कर देना चाहती। इस्लाम का अर्थ है कि ईश्वर की मर्ज़ी के आगे समर्पण और उसके आदेशों के पालन के लिए नतमस्तक हो जाना। मुझ जैसी हस्ती के लिए, जिसने वर्षों बग़ैर किसी धर्म के जीवन व्यतीत किया था, किसी आदेश का बिना शर्त पालन करना बड़ा कठिन काम था। लेकिन अल्लाह के आदेश त्रुटिमुक्त हैं और सही इस्लामी तरीक़ा उन्हें बिना चूँचरा स्वीकार करना और लागू करना है। यह केवल इन्सानी समझ और बुद्धि है, जिससे ग़लती होती है और मैं दूसरे बहुत से लोगों की तरह अपनी तर्क शक्ति पर भरोसा रखती थी और किसी सर्वशक्तिमान शासक के अस्तित्व या नैतिक सिद्धान्त को स्वीकार करने की उपयोगिता को लेकर लगातार सवाल किया करती थी। बहरहाल मेरे जीवन के इस मोड़ पर मेरी इच्छाएँ स्वयं ही अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ हो गईं। अल्लाह का शुक्र है कि मैं इस्लामी कर्तव्यों को बिना किसी दबाव के एहसास के अदा करने के लायक़ हो गई थी।

मैं अपने रूप में पूरी तरह सन्तुष्ट थी। हिजाब केवल अल्लाह की बात मानने ही का प्रतीक न था बल्कि मेरे अक़ीदे का दो टूक इज़हार भी था। एक मुसलमान औरत जो हिजाब पहनती है, बड़े जन समूह में भी पहचान के योग्य होती है। इसके विपरीत किसी ग़ैर–मुस्लिम का अक़ीदा प्रायः शब्दों द्वारा बयान करने पर ही मालूम हो सकता है। हिजाब के बाद मुझको एक शब्द कहने की आवश्यकता न पड़ी। मेरे अक़ीदे का यह खुला इज़हार है और दूसरों के लिए अल्लाह के वुजूद की याददिहानी है और मेरे लिए अपने आपको अल्लाह के हवाले और समर्पण करने की याददिहानी है। मेरा हिजाब मुझको उकसाता और तैयार करता है कि होशियार हो जाओ, तुम्हारा आचरण एक मुस्लिम की तरह होना चाहिए, वैसे ही जैसे एक पुलिसमैन अपनी वर्दी में अपने पेशे का ख़्याल रखता है। उसी प्रकार मेरा हिजाब भी मेरी मुस्लिम पहचान को ताक़त पहुँचाता है।

अपना धर्म बदलने के दो सप्ताह के बाद मैं अपनी बहन की शादी में शरीक होने के लिए जापान वापस हुई। इस्लाम स्वीकार करते ही मैंने वह चीज़ मालूम कर ली थी जिसकी मुझे तलाश थी और अब मुझे फ्रांसीसी

साहित्य में डॉक्ट्रेट की डिग्री प्राप्ति में कोई रुचि न थी। इसके बजाए मेरी अभिरुचि अरबी और क़ुरआन सीखने की ओर हो गई। इसलिए मैंने निश्चय कर लिया कि फ्रांस वापस न जाऊँगी।

एक छोटे–से जापानी क़स्बे में रहना निस्सन्देह एक परीक्षा थी। मैंने निकट अतीत में ही मज़हब बदला था। इस्लाम के सम्बन्ध में मेरी जानकारी भी कम थी तथा दूसरे मुसलमानों से पूर्णत: अलग भी थी। किन्तु इस अलगाव ने मेरी इस्लामी मालूमात को विस्तृत कर दिया। रोज़ाना पाँचों वक़्त की नमाज़ों की पाबन्दी से अदायगी और स्कार्फ़ के प्रयोग ने मेरी इस्लामी पहचान को दृढ़ करने में मदद की और अल्लाह से मेरे सम्बन्ध को ताक़त पहुँचाई। मैं एकांत में प्राय: अपना सम्बन्ध अल्लाह से मज़बूत करती थी।

मैं जिस ढंग का वस्त्र पहनती थी, अब इसमें पहली बार बड़ी तब्दीली हुई। इस्लाम औरतों को पब्लिक में अपने देह की बनावट का प्रदर्शन करने से रोकता है। इसी लिए मुझे अपने बहुत–से कपड़ों को छोड़ देना पड़ा जो मेरी जिस्मानी बनावट को आकर्षक बनाते थे। मिनी स्कर्ट, पैंट, हाफ़ पैंट और छोटी आस्तीन के ब्लाउज़ हिजाब से मेल न खाते थे। इसलिए मैंने अपने लिए पाकिस्तानी तर्ज़ की शलवार और जम्पर बनाया। जब लोग मेरे नए अनोखे फ़ैशन को घूर कर देखते थे तो उससे मुझे कोई परेशानी नहीं होती थी।

धर्म बदलने के छह माह बाद मैंने मिस्र की यात्रा की। मैंने अपनी अरबी और इस्लामी अध्ययन की तीव्र इच्छा की पूर्ति किसी मुस्लिम देश में करने का दृढ़ निश्चय किया था। मिस्र में केवल एक जापानी व्यक्ति से परिचित थी। मेरे मेज़बान के घर में कोई अंग्रेज़ी नहीं बोलता था। मैं अपने मेज़बान को पहली नज़र में देखकर बहुत हैरान हुई। वह सर से पैर तक चेहरे सहित काले वस्त्र से ढकी हुई थी। इससे पूर्व मैंने फ्रांस में एक औरत को चेहरे के नक़ाब के साथ काले कपड़ों में देखा था। मैंने एक बड़ी इस्लामी कान्फ्रेंस में भाग लिया था, वहाँ उन मुस्लिम औरतों के बीच जो रंगीन कपड़े पहने हुए थीं और स्कार्फ़ लगाए हुए थीं, उनकी मौजूदगी बड़ी अनोखी मालूम हुई। मैंने फिर विचार करना शुरू किया, ''यह एक ऐसी औरत है जो अरब रस्मो–रिवाज के बन्धन में जकड़ी हुई है और इस्लाम की असली शिक्षा से वाक़िफ़ नहीं है।'' उस समय मेरी इस्लामी मालूमात बड़ी सीमित थीं। मेरा विश्वास था कि चेहरा

ढाँपने की जड़ें नस्ली रस्मो–रिवाज से संबन्धित हैं जिसकी इस्लाम में कोई बुनियाद नहीं है। ऐसा ही ख़्याल मेरे अन्दर उस समय हुआ जब यह जापानी औरत मुझे अपने घर में ले गई। मैं उससे कहना चाहती थी कि "आप हद से बढ़ रही हैं, यह अप्राकृतिक है।" पुरुषों से किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखने की उसकी कोशिशें भी मामूल से हटकर मालूम हुईं।

शीघ्र ही उस बहन ने मुझे बाताया कि मेरे कपड़े आम लोगों में इस्तेमाल करने के लिए उचित नहीं हैं। अगरचे मेरा विश्वास था कि मेरी पोशाक इस्लामी अपेक्षाओं के अनुकूल थी। मेरे अन्दर परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करने की काफ़ी योग्यता थी। प्रसिद्ध कहावत है कि "जब रोम में रहो तो वही करो जो रोमी करते हैं।" मैंने एक काला लिबास और एक लम्बा काला टुपट्टा बनाया। इस प्रकार मैं चेहरे के अलावा पूरे तौर पर ढक गई। मैंने नक़ाब के सम्बन्ध में भी सोचा। माहौल की धूल–मिट्टी से सुरक्षित रहने के लिए यह एक अच्छी चीज़ मालूम हुई। लेकिन मेरी मेज़बान बहन ने कहा कि इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। हो सकता है कि उन्होंने यह सोचकर कहा हो कि मैं जापान में इस पर अमल न कर सकूँगी या मेरा यह विचार सही नहीं है। उन बहनों का पक्का विश्वास था कि चेहरा छुपाना उनके धार्मिक कर्तव्यों का एक हिस्सा है।

ज़्यादातर वे बहनें जिनसे मेरा परिचय था, नक़ाब लगाती थीं। बहरहाल क़ाहिरा जैसे बड़े शहर में उनकी संख्या कम थी। कुछ बहनों को कथित तौर पर तकलीफ़ हुई और मेरा काला दुपट्टा देखने के बावजूद भी गले मिलीं। आमतौर से पश्चिमवादी मिस्त्री पुरुष बुर्क़ा पहननेवाली औरतों से दूर रहते थे और उन्हें "अल–उख़्वात" (बहनें) कह कर पुकारते थे। उनके साथ विशेष आदर और नम्रता का व्यवहार करते थे। ये बहनें ख़ास हद के अन्दर ही दिखाई देती थीं। आमतौर पर बुर्क़ापोश महिलाएँ अपने अक़ीदे की अधिक पाबन्द थीं, वे जो मामूली स्काफ़ लगाती थीं या बिल्कुल ही नहीं इस्तेमाल करती थीं। अपने कर्तव्यों के पालन से पूरे तौर पर दूर नज़र आती थीं।

इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व मैं चुस्त पैंट और मिनी स्कर्ट पहना करती थी, लेकिन अब मेरी लम्बी पोशाक ने मुझे बहुत ख़ुश किया और मैंने समझा कि मैं एक राजकुमारी की तरह हूँ। साथ ही साथ इसको मैंने अधिक आरामदेह

पाया। मैंने काली पोशाक को नापसन्द नहीं किया। इसके विपरीत मैंने क़ाहिरा जैसे धूल वाले शहर में अपनी काली पोशाक को अधिक उचित पाया। मेरी मुस्लिम बहनें अपनी काली पोशाक और दुपट्टे में बड़ी सुन्दर दिखती थीं और जब अपने चेहरों से नक़ाब उठाती थीं तो अन्दरूनी नूर झलकता था।

मैं अपने क़ाहिरा निवास के दौरान काले बुर्क़े में बहुत ख़ुश थी। बहरहाल मेरे अन्दर उस समय नकारात्मक प्रतिक्रिया होती थी, जब मेरी मिस्त्री बहनें मुझे परामर्श देती थीं कि जब मैं जापान वापस जाऊँ तो वहाँ भी उसी तरह रहूँ। मुझे इस बात पर अप्रसन्नता और पछतावा हुआ कि मैं जो सोचती थी वह नादानी थी। मेरी जानकारी में इस्लाम औरतों को अपनी सतरपोशी और व्यक्तित्व को छुपाने की प्रेरणा देता है। इस आदेश का पालन करते हुए कोई औरत बुर्क़े की जो डिज़ाइन पसन्द करे प्रयोग कर सकती है। (इस्लामी बुर्क़े के लिए कुछ शर्तें हैं, जैसे यह न तो बहुत बारीक और चुस्त हो और न ही सुसज्जित और भड़कीला।)

हर समाज का एक फ़ैशन होता है। मेरा विचार था कि मैं अगर जापान की गलियों में लम्बी–काली पोशाक पहन कर निकलूँगी तो मुझे पागल समझा जाएगा। मैंने अपनी मिस्त्री बहन से बहस करते हुए कहा कि मेरी नई पोशाक से जापानियों को गहरा सदमा होगा और कोई मेरी बात नहीं सुनेगा। वे इस्लाम को उसके ज़ाहिर से ही रद्द कर देंगे और उसकी शिक्षाओं को सुनने और समझने की कोशिश नहीं करेंगे।

बहरहाल, मिस्त्र में अपने निवास के अन्त तक मैं अपने लम्बे लिबास की आदी हो गई थी और उसे जापान में भी पहनने का ख़्याल था। मुझे अपने देश में काला लिबास पहनने में अब भी तकल्लुफ़ था। इसलिए मैंने कुछ हलके रंग के कपड़े और दुपट्टे बनाए। इस डिज़ाइन की पोशाक पहने हुए फिर एक बार मैं अपने देश वापस लौटी।

जापान में मुसलमानों की संख्या बहुत कम है। गली और बाज़ार में वे नज़र नहीं आते। किन्तु मेरे सफ़ेद दुपट्टे के सम्बन्ध में जापानियों का रवैया प्रोत्साहित करने वाला था। मुझे इस सम्बन्ध में न तो नापसन्दीदगी और न ही मज़ाक़ का सामना करना पड़ा। लोगों ने मान लिया था कि मेरा सम्बन्ध किसी धर्म से है, लेकिन वे यह न जानते थे कि किस से ? मैंने एक लड़की को अपनी

सहेली से धीरे से यह कहते सुना कि मैं बौद्ध मत की राहिबा (नन) हूँ। वास्तव में इस्लाम को स्वीकार करने से बहुत पहले मेरे अन्दर एक धार्मिक राहिबा (सन्यासिनी) का जीवन व्यतीत करने की बड़ी इच्छा थी। यह बड़ा रोचक पहलू है कि एक ईसाई या बुद्धिष्ट राहिबा की बाहरी हालत में बड़ी हद तक एकता है। एक बार मैं पेरिस की यात्रा में एक कैथोलिक राहिबा के साथ सफ़र कर रही थी। हम दोनों में इतनी एकरूपता थी कि मैं बड़ी मुशकिल से अपनी हँसी को रोक सकी। कैथोलिक राहिबा का लिबास अपने आपको अल्लाह के लिए वक़्फ़ कर देने की अलामत होता है और उसका आदर किया जाता है और यही उसकी पहचान भी होती है। ठीक इसी तरह से मुस्लिम औरत का हिजाब भी अल्लाह के आज्ञापालन का प्रतीक होता है। मुझे हैरत होती है कि लोग एक राहिबा के लिबास का आदर करते हैं और मुसलमान औरत के हिजाब की आलोचना करते हैं और उसे एक प्रतीक के बजाए इन्तिहापसन्दी और मज़लूमियत कहते हैं।

एक बार ट्रेन में एक बुज़ुर्ग ने मुझसे पूछा कि मैं क्यों यह निराले ढंग का लिबास पहनती हूँ। मैंने स्पष्ट किया कि मैं मुसलमान हूँ और औरतों से इस्लाम की माँग है कि वे घर के बाहर के मर्दों से अपने बदन को छुपाए रखें, क्योंकि औरत की सुन्दरता और हुस्न को देखकर दुष्ट प्रवृत्ति के मर्दों को अपनी दुष्कामना को रोकने में परेशानी होती है। आप यह कह सकते हैं कि एक व्यक्ति हमेशा औरतों की ओर कामवासना की नीयत से नहीं देखता। यह सही है, लेकिन समस्या उनके साथ होती है जो ऐसा करते हैं। उन असाधारण यौन-शोषण और अपराधों पर विचार कीजिए जो बहुत-सी सोसाइटियों में घटित होते रहते हैं। हम इन घटनाओं को पुरुषों को उच्च शिष्टाचार और मन को क़ाबू में रखने की प्रेरणा देकर नहीं रोक सकते। इनका समाधान केवल इस्लामी जीवन व्यवस्था ही में निहित है जो औरतों को हिदायत करता है कि स्वयं को पर्दे में रखें और मर्दों से सम्बन्ध रखने से हर संभव सीमा तक दूर रहें। एक छोटे स्कर्ट की व्याख्या इन शब्दों में की जा सकती है कि "अगर आपको मेरी आवश्यकता है तो मुझे ले जा सकते हैं।" जबकि हिजाब स्पष्ट रूप से यह बताता है कि "मैं आपके लिए निषिद्ध हूँ।" बुज़ुर्ग मेरी इस व्याख्या से काफ़ी प्रभावित दिखाई दिए। शायद इसलिए कि वे आजकल की औरतों के

भड़काऊ और कामोत्तेजक फ़ैशन को नासन्द करते थे। वे मेरा शुक्रिया अदा करते हुए यह कहते ट्रेन से उतर गए कि काश! हमारे पास इस्लाम के सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए और समय होता। जापानी लोग सामान्य रूप से धार्मिक बातचीत के आदी नहीं हैं, किन्तु मेरे हिजाब ने इस्लाम पर बातचीत करने का द्वार खोल दिया।

मेरे घर में केवल मेरे पिता जी को मेरे सम्बन्ध में अधिक चिंता थी, क्योंकि मैं पूर्णतः पर्दे में रहती थी, बहुत गरम दिनों में भी। गर्मी के मौसम में हर व्यक्ति गर्मी महसूस करता है, लेकिन मैंने हिजाब को अपने सिर और गरदन पर सीधे सूरज की किरणों से बचने का उचित साधन पाया। शायद मेरे सम्बन्धी मेरे क़रीब रहने को अनुचित समझते थे। किन्तु मैं अपनी छोटी बहन.......जो नेकर पहने हुए थी.......की रान देखकर परेशान हो गई। अपना धर्म बदलने से पहले भी किसी औरत के बदन की बनावट का दृश्य जो उसकी देह से चिपके हुए बारीक लिबास से झलकता था, मुझे परेशान कर देता था। मुझे महसूस होता था कि मैंने कोई ऐसी चीज़ देख ली है जिसको मुझे नहीं देखना चाहिए था। (यह वाक्य औरत की प्रकृति का दर्पण है।)

कुछ महिलाएँ केवल उस समय अच्छे वस्त्र पहनती हैं जब वे घरों से बाहर जाती हैं और उन्हें यह ख़्याल नहीं रहता कि वे घरों के अन्दर किस प्रकार रहती हैं। लेकिन इस्लाम में औरत अपने पति के लिए सुन्दर बनने की कोशिश करती है और पति भी अपनी पत्नी के लिए आकर्षक बनने का प्रयास करता है। एक दूसरे के प्रति इस प्रकार की भावनाएँ वैवाहिक जीवन को सुखद एवं सम्पन्न बनाती हैं। कोई औरत किसी मर्द का ध्यान अपनी ओर क्यों आकर्षित कराना चाहती है, जबकि वह एक विवाहित औरत है। क्यों वह पसन्द करती है कि दूसरी औरतें उसके पति को अपनी ओर आकर्षित कर लें? इस प्रकार कोई भी व्यक्ति यह देख सकता है कि इस्लाम पारिवारिक जीवन को ठोस बनाने में किस प्रकार सहायता करता है।

केवल औरतों को ही अपनी देह को छुपाने के आदेश नहीं दिए गए हैं बल्कि मर्दों को भी अपनी नज़रे नीची रखने की प्ररणा दी गई है। खेल-कूद के दौरान में भी मर्दों को नाफ़ से घुटनों तक अपने बदन के अंगों को छुपाना आवश्यक है।

ग़ैर मुस्लिम भाई यह सोच सकते हैं कि मुसलमान अपने आपको कपड़ों में पोशीदा रखने के मामले में ज़रूरत से ज़्यादा ही सतर्क और संवेदनशील हैं। वे पूछ सकते हैं कि बदन की प्राकृतिक स्थिति को क्यों छुपा कर रखा जाए? कुछ लोग तैराकी का नंगा लिबास पहन कर तैरते या नंगों के क्लब में शामिल होने में कोई शर्म महसूस नहीं करते। फिर भी पचास वर्ष पूर्व जापान में तैराकी के लिबास में तैरना लफ़ंगापन समझा जाता था।

इससे यह स्पष्ट होता है कि बदन को छुपाकर रखने का समाज का मानदंड बदल चुका है। अगर आप किसी चीज़ को छुपा कर रखें तो उसकी क़द्र बढ़ जाती है। औरतों के बदन को छुपा कर रखने से उसका आकर्षण और सौन्दर्य बढ़ जाता है। जैसा कि संसार की अधिकांश संस्कृतियों में दृष्टिगोचर होता है। अगर नैतिक मूल्य ज़माने से प्रभावित हो सकते हैं तो यह सोच असम्भव नहीं है कि भविष्य में लोग गलियों में बग़ैर कपड़ों के नंगे घूमेंगे। इसे कोई चीज़ नहीं रोक सकती। हम मुसलमानों के लिए अल्लाह ने हर ज़माने के लिए कसौटी सुनिश्चित कर दी है। हम उसका अनुसरण करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि वही हमारा सृष्टा है और वह जानता है कि हमारे लिए क्या सबसे उपयुक्त और बेहतर है?

मैं समझती हूँ कि मानव-संस्कृति का आरम्भ उस समय हुआ जब उसके अन्दर शर्म का एहसास जागा। अगर एक व्यक्ति अपनी शारीरिक इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता है और ऐसा खुले आम करता है तो वह जानवर से अलग नहीं है। लेकिन अफ़सोस, यह एक मात्र रास्ता है जिस पर इन्सान सरपट दौड़ा जा रहा है। सवाल यह है कि उचित लिबास और शिष्टाचार को तय कौन करेगा?........स्वयं इन्सान (जिसका पैमाना हवा के रुख़ के साथ बदल जाता है?) या अल्लाह? वह अल्लाह ही है जो मनुष्य के हर ज़माने की परिस्थितियों से बाख़बर है। इसी लिए उसने स्पष्ट रूप से बता दिया है कि इन्सान लोगों के सामने किस तरह से आए और यह भी बता दिया कि उसके लिए ज़िन्दगी गुज़ारने का सही तरीक़ा क्या है।

जापान वापस आने के तीन माह बाद मैं अपने पति (एक जापानी मुसलमान जो क़ाहिरा में शिक्षा प्राप्त कर रहा था, मिस्र में अपने निवास के आख़िरी दिनों में मैंने उससे निकाह कर लिया) के साथ सऊदी अरब गई जहाँ

उन्हें नौकरी मिल गई। मैंने अपने चेहरे को छुपाने के लिए एक छोटा–सा काला कपड़ा बना लिया था, जिसको नक़ाब कहा जाता है। यह मैंने इसलिए नहीं बनाया था कि मैंने अपनी क़ाहिरा वाली बहन के ढंग पर सोचना शुरू कर दिया था, जैसे यह कि पर्दा एक मुसलमान औरत के अपेक्षित वस्त्र का एक हिस्सा है, बल्कि मेरा ख़्याल था कि चेहरा और हथेली खुली रखने की इजाज़त थी, किन्तु मुझे सऊदी अरब जाने और चेहरे का नक़ाब लगाने की बड़ी इच्छा थी। मुझे यह जानने का शौक़ और जिज्ञासा थी कि पर्दे के अन्दर से मुझे कैसा लगेगा?

रियाज़ पहुँचने के बाद मैंने देखा कि सभी औरतें चेहरे का नक़ाब नहीं लगाए हुए थीं। ग़ैर–मुस्लिम औरतें अपने सिरों को ढंके बग़ैर लापरवाही के साथ अपने कन्धों पर काली चादर डाले रहती थीं। बहुत–सी विदेशी मुस्लिम औरतें पर्दा नहीं करती थीं, फिर भी तमाम सऊदी औरतें सिर से पैर तक पूर्णतः पर्दे का इस्तेमाल करती थीं।

पहले मुझे हैरत होती थी कि मुस्लिम बहनें बुर्क़े के अन्दर आसानी से कैसे सांस ले सकती हैं। इसकी बुनियाद आदत पर है। जब कोई औरत इसकी आदी हो जाती है तो कोई दिक़्क़त नहीं होती। पहली बार मैंने नक़ाब लगाया तो मुझे बड़ा अच्छा लगा। वास्तव में बड़ा आश्चर्यजनक महसूस हुआ मानो मैं एक महत्वपूर्ण शख़्सियत हूँ। मुझे एक ऐसे शाहकार की मालिक का एहसास हुआ, जो अपनी छुपी हुई ख़ुशियों से आनन्दित हो। मेरे पास एक ख़ज़ाना था जिसके बारे में किसी को मालूम न था, जिसे अजनबियों को देखने की अनुमति नहीं थी।

रियाज़ में प्रारम्भिक कुछ महीनों तक केवल मेरी आँखें खुली रहती थीं, लेकिन जब मैंने जाड़े का बुर्क़ा बनाया तो उसमें आंखों का बारीक नक़ाब भी शामिल कर लिया। अब मेरा पर्दा मुकम्मल था। इससे मुझे कुछ आराम मिला। अब मुझे भीड़ में कोई परेशानी न थी। मुझे महसूस हुआ कि मैं पुरुषों के लिए अदृश्य हो गई हूँ। आँखों के पर्दे से पूर्व मुझे उस समय बड़ी परेशानी होती थी जब अकस्मात मेरी निगाहें किसी पुरुष की निगाहों से टकराती थीं। इस नए नक़ाब ने काले चश्मे की तरह मुझे अजनबियों की घूरती निगाहों से सुरक्षित कर दिया। एक ग़ैर–मुस्लिम किसी दाढ़ी वाले व्यक्ति को एक स्याह बुर्क़ापोश

औरत के साथ देख सकता है। इस जोड़े के बारे में यह कल्पना हो सकती है कि इनमें एक है अत्याचारी और एक अत्याचार–पीड़ित (मज़लूम) और एक प्रभावी (ग़ालिब) है और एक पराभूत। इस्लाम में पति–पत्नी का सम्बन्ध एक गुण समझा जाता है। वास्तविकता यह है कि इस प्रकार औरत यह महसूस करती है कि उसका आदर और सुरक्षा एक ऐसे व्यक्ति द्वारा की जाती है जो वास्तव में उसका ख़्याल रखता है या मैं यह कह सकती हूँ कि एक ऐसी राजकुमारी जिसका हमसफ़र उसका रक्षक होता है। यह कहना बड़ा भ्रम है कि मुस्लिम औरतें मर्दों की केवल निजी सम्पत्ति हैं और उन्होंने ईर्ष्या के कारण इस बात से रोक दिया है कि अजनबी मर्द उन्हें देखें। एक मुस्लिम औरत अपने आपको अल्लाह के फ़रमान की पैरवी में छुपाए रखती है, ताकि उसको आदर और सम्मान प्राप्त हो, वह घूरती हुई अजनबी निगाहों का केन्द्र बनने या उनकी वस्तु होने से इनकार कर देती है। वह अपने अन्दर पश्चिमी औरतों के लिए हमदर्दी और रहम का जज़्बा रखती है जिन्हें सैकड़ों हवस भरी निगाहें बेरहमी से घूरती हैं और जिन्हें नफ़सानी ख़्वाहिशात के लिए बेदर्दी से इस्तेमाल किया जाता है।

मुझे मुसलमान हुए दो वर्षों से अधिक समय बीत चुका है। मेरे माहौल और मज़हबी सूझ–बूझ के साथ–साथ मेरा हिजाब पाँच बार बदला। फ्रांस में अपना धर्म बदलने के फ़ौरन बाद मैंने एक ही रंग के फ़ैशनेबल लिबास और स्कार्फ़ इस्तेमाल किए। सऊदी अरब में अब मैं सर से पैर तक पूरे काले नक़ाब में ढकी हूँ। इसलिए मुझे हिजाब के सबसे आसान तर्ज़ का पूर्ण अनुभव है।

कई वर्ष पूर्व जब एक जापानी मुस्लिम औरत सिर पर दुपट्टा लगाए हुए टोकियों के एक मुस्लिम संगठन में नज़र आई तो जापानी मुस्लिम औरतों ने उससे कहा कि वह अपने लिबास के मामले में दोबारा ग़ौर करे। क्योंकि इस तर्ज़ के लिबास से जापानियों को तकलीफ़ होती है। इस समय जापान में बहुत कम मुस्लिम औरतें अपने सिरों को छुपाती थीं। अब ज़्यादा से ज़्यादा जापानी औरतें इस्लाम स्वीकार कर रही हैं और मुश्किल परिस्थितियों के बावजूद सिरों तक को छुपा रही हैं। वे सब यह मानती हैं कि वह अपने हिजाब पर गर्व करती हैं और इससे उनके ईमान व यक़ीन को ताक़त मिलती है।

बाहर से हिजाब को देखकर कोई व्यक्ति उस चीज़ की कल्पना ही नहीं

कर सकता जो उसके अन्दर से प्रकट होती है। हम इस मामले को दो दृष्टिकोणों से देखते हैं— एक ग़ैर-मुस्लिम को इस्लाम एक जेलख़ाने की तरह नज़र आता है जिसमें किसी प्रकार की आज़ादी नहीं है। लेकिन इस्लाम में रहकर हमें शान्ति, आज़ादी और ऐसी ख़ुशी का एहसास होता है जिसको किसी और रूप से नहीं समझा जा सकता। एक पैदाइशी मुसलमान कह सकता है कि वह इस्लाम को सबसे बेहतर जीवन व्यवस्था समझता है क्योंकि वह इससे आरम्भ से ही परिचित है और बाहर की दुनिया के किसी और अनुभव के बिना वह बड़ा होता है। लेकिन मैं तो पैदाइशी मुसलमान नहीं हूँ, बल्कि मैंने अपना धर्म बदला है, मैंने नाम निहाद आज़ादी और नई जीवन व्यवस्थाओं के आकर्षण और लज़्ज़तों को अलविदा कह कर इस्लाम का चयन किया है। अगर यह सही है कि इस्लाम एक ऐसा धर्म है जो औरतों पर अत्याचार कर रहा है तो आज यूरोप, अमरीका, जापान और अन्य देशों में बहुत-सी महिलाएँ इस्लाम क्यों स्वीकार कर रही हैं ? काश कि लोग इस पर रोशनी डालते।

कोई व्यक्ति पक्षपात की ऐनक लगाकर किसी ऐसी महिला के स्थान का मुशाहिदा नहीं कर सकता जो हिजाब में भरोसेमन्द, विश्वस्त, संतुष्ट, शान्त और बावक़ार हो। जिसके चेहरे पर उत्पीड़न की छाया तक न हो। क़ुरआन मजीद उन लोगों को अन्धा कहता है जो अल्लाह की निशानियों को नकारने वाले हैं। इस प्रकार हम व्याख्या कर सकते हैं कि इस्लाम को समझने में ग़ैर-मोमिन की समझ-बूझ त्रुटिपूर्ण है।

□□□

25. मोमिना तबस्सुम, अब्दुल करीम

(भारत)

29 नवम्बर 2003 ई० को मैं अपनी बेटी स्मिता के साथ कानपुर से लखनऊ जानेवाली बस में बैठ गई। टिकट लेने के लिए जब मैंने अपना पर्स खोला तो मेरे होश उड़ गए। मैं बार–बार उसे उलट–पुलटकर देखने लगी। जो पैसे मैंने रखे थे, वे वहाँ नहीं थे। बड़ी मुश्किल से उसमें से 32 रुपये निकल पाए, जबकि बस का किराया 38 रुपये था। कंडक्टर बार–बार पुकार रहा था कि जिसने टिकट नहीं बनवाया है वह जल्दी बनवा ले। मैं डरी–सहमी उठी और कंडक्टर को 32 रुपये थमाकर अपनी सीट पर वापस आ गई। कंडक्टर बार–बार बाक़ी पैसों की माँग करता रहा, मैं बिल्कुल चुप थी, मुझसे कुछ बोला नहीं जा रहा था। दिमाग़ में अजीब–अजीब–सी आशंकाएँ आ रही थीं। कंडक्टर कह रहा था, ''पूरे पैसे दो, नहीं तो बस से उतर जाओ।'' यह कहकर उसने बस रुकवा दी। बस के अन्दर सन्नाटा छाया हुआ था। सारे यात्री मुड़–मुड़कर मेरी ओर देख रहे थे और मैं शर्म के मारे पसीने–पसीने हो रही थी।

इतने में एक व्यक्ति, जो काली शेरवानी पहने ड्राइवर के पीछेवाली सीट पर बैठे अख़बार पढ़ रहे थे, कंडक्टर से पूछने लगे कि क्या बात है। कंडक्टर ने मेरी ओर इशारा किया और कहा कि यह मैडम न पूरे पैसे दे रही हैं और न ही उतर रही हैं। उन्होंने एक उचटती दृष्टि मेरी ओर डाली और कंडक्टर से पूछा, कितने पैसे कम हैं। इसके बाद उन्होंने कंडक्टर को उतने पैसे दे दिए। बस फिर चल पड़ी। मैं अब अपने स्थान पर शांत और संतुष्ट थी। लखनऊ आ गया और मैं उतरकर एक ओर खड़ी हो गई ताकि उस भले आदमी का शुक्रिया अदा करूँ।

जब वे उतरे तो मैंने उनका शुक्रिया अदा किया और अपनी आँखों को छलकने से नहीं रोक सकी। वे यह कहकर जाने लगे कि कोई बात नहीं, मगर फिर अचानक ही मेरी ओर मुड़कर पूछने लगे कि बात क्या हुई थी ? दरअस्ल उनका यह सवाल इसलिए था कि मैं देखने में ख़ुशहाल लग रही थी। मैंने

बताया कि घर से चलते समय मैंने समझा था कि पर्स में पैसे हैं मगर वहाँ पैसे नहीं थे, मैं शायद रखना भूल गई। उन्होंने बड़े अपनेपन से कहा कि कई बार ऐसा हो जाता है। आपको जाना कहाँ है ? मैंने सरलता से कहा कि हुसैनगंज में रहती हूँ, पैदल चली जाऊँगी। उन्होंने मेरी गोद में स्मिता और मेरे भारी बैग की ओर देखा और मेरी ओर 20 रुपये का एक नोट बढ़ाते हुए बोले, आप रिक्शे से चली जाएँ। मेरे इनकार करने के बावजूद वे मुझे ज़बरदस्ती पैसे देकर चले गए।

मैंने रिक्शा लिया और अपने घर आ गई। शाम को मैंने अपने पति अमित को पूरी घटना सुनाई। वह भी बहुत प्रभावित हुए और कहने लगे कि उनका नाम, पता और फ़ौन नम्बर तो ले लिया होता। मुझे भी दुख हुआ कि नाम पता तो ले ही लेना चाहिए था। मैं बार-बार यह सोचती कि काश ऐसे भले आदमी से फिर मुलाक़ात हो। मैं जब भी घर से निकलती तो उन्हें तलाश करती रहती। अमित को भी जब कोई आदमी दाढ़ी-टोपी और शेरवानीवाला नज़र आता तो वे मुझे पहचानने को कहते।

कोई तीन महीने बाद एक दिन जब हम कचहरी रोड अमीनाबाद से गुज़र रहे थे कि अचानक मेरी नज़र उनपर पड़ी। जब तक मैं कोई निर्णय लेती और अमित को बताती, वे आगे बढ़ चुके थे। मैंने अमित से कहा कि शायद ये वही साहब हैं, ज़रा पूछना तो। अमित लपके और उन्हें रोका, मैं भी नज़दीक पहुँच गई। मुझे यह यक़ीन हो चुका था कि ये वही मौलाना हैं। मैंने उन्हें नमस्ते किया, मगर वे मुझे पहचान नहीं सके। मैंने उन्हें याद दिलाया तो वे हँसने लगे और उन्होंने हमें चाय की दावत दी। हम चूँकि उनसे मिलने को बेचैन थे इसलिए फ़ौरन ही उनके साथ पास के एक होटल में जा बैठे। हमने उनका शुक्रिया अदा किया। उन्होंने यही कहा कि छोड़िये, ऐसी कोई बात तो थी नहीं, जो आप लोग इतना याद करते रहें। अमित ने सबसे पहले अपनी डायरी में उनका नाम, पता और फ़ोन नम्बर नोट किया। चाय पीने के बाद मैं बोली कि हमें बड़ी ख़ुशी होगी कि चाय का पैसा मैं दे दूँ। वे चुप हो गए और हम पैसे देकर बाहर आ गए।

अब मैंने कहा, डॉक्टर साहब! एक बात कहूँ, आप कुछ महसूस नहीं कीजिएगा। ये 26 रुपये कृपया रख लीजिए। वे कहने लगे, भई! यह क्या बात

हुई ? यदि यह पहली और आख़िरी मुलाक़ात है, तो कोई बात नहीं, नहीं तो ऐसी बात मत कीजिए, मगर अमित ने 26 रुपये ज़बरदस्ती उनकी जेब में डाल ही दिए। अब मैंने उन्हें अपने घर आने को कहा तो वे बोले, हरगिज़ नहीं। दो बातें आप लोगों ने ज़बरदस्ती मनवा लीं, अब मेरी शर्त है कि पहले आप लोग मेरे घर तशरीफ़ लाएँ। हमने वादा कर लिया।

अगले रविवार को हम डॉक्टर साहब के घर जाने को निकले। मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे मैं अपने सगे भाई से मिलने जा रही हूँ। (मेरे कोई भाई या बहन नहीं है, माता-पिता का भी बहुत पहले देहांत हो चुका है।) वे अपने ऑफ़िस के बाहर ही हमारा इंतिज़ार कर रहे थे। बहुत ख़ुश हुए, घर के अन्दर ले गए और अपनी पत्नी उम्मे-सलमा आज़मी से मिलवाया। वे मेरी ही उम्र की बड़ी हँसमुख, मिलनसार और सलीक़ेमंद महिला हैं। उन्होंने हमारा भरपूर स्वागत किया। चाय पीते हुए मैंने कहा कि डॉक्टर साहब, अगर आप इजाज़त दें तो रोटी मैं पका दूँ क्योंकि बच्चा रो रहा है और भाभी परेशान हैं। वे बोले भाभी से पूछ लो, तुम अपने ही घर में हो।

उनकी इस बात से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। मैंने बहुत कहा, पर भाभी ने खाना पकाने में मुझे मदद नहीं करने दी। इस बीच मैं तो भाभी से बातें करती रही और डॉक्टर साहब अमित को अपनी किताबें दिखाते रहे, ढाई घंटे बाद जब हम चलने को तैयार हुए तो अमित ने दसयों किताबें ले ली थीं। वे किताबों के दीवाने हैं। चलते हुए भाभी ने एक पैकेट मेरे हाथ में थमा दिया और कहने लगीं, इसे घर जाकर खोलिएगा। घर पहुँचकर जब हमने पैकेट खोला, मेरे आश्चर्य और प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसमें मेरे लिए एक साड़ी-ब्लाउज़ और स्मिता के लिए एक फ्रॉक थी, साथ में एक किलो मिठाई का एक डिब्बा भी था।

अमित अक्सर डॉक्टर साहब से मिलते रहे। किताबें लाते और पढ़-पढ़कर लौटाते रहे। मैंने भी कई किताबें पढ़ीं। 'शान्ति मार्ग', 'मुक्ति मार्ग', 'जीवन मृत्यु के पश्चात', 'इस्लाम धर्म', 'इस्लाम—जिससे मुझे प्यार है', 'चालीस हदीसें', 'क़ुरआन का परिचय' और क़ुरआन का अनुवाद, सब कुछ पढ़ डाला। चार-पाँच बार मैं भी डॉक्टर साहब के घर गई। हर बार भाभी कुछ न कुछ कपड़े, खिलौने दे देती थीं। दो-तीन बार भाभी भी हमारे यहाँ आईं।

अमित भी लगातार डॉक्टर साहब के संपर्क में रहते। एक वर्ष से अधिक का समय बीत गया। बार–बार कहने के बावजूद डॉक्टर साहब घर नहीं आए। एक बार हम उनके घर गए तो वे बीमार थे और भाभी पास बैठीं अपनी नाराज़गी जता रही थीं। मालूम हुआ कि उन्होंने किसी अजनबी मरीज़ को ख़ून दिया था। मैंने भी भाभी का समर्थन किया। डॉक्टर साहब कह रहे थे कि अगर ख़ून देकर किसी की जान बच सकती है तो इसमें हर्ज क्या है?

अमित जब भी डॉक्टर साहब से मिलकर आते, कोई न कोई घटना बताते और आश्चर्य व प्रसन्नता के साथ उसे बार–बार दोहराते। उदाहरणार्थ, आज डॉक्टर साहब घर के राशन आटे, दाल, तेल, मसाले की लिस्ट लिए बैठे थे, कहने लगे कि सामान ख़रीदना है। इसी बीच एक छात्र आया। कुछ देर बाद उसने अपनी ज़रूरत जताई। डॉक्टर साहब ने 400 रुपये उसको दे दिए और सामान घर ले जाना रह गया।

एक दिन अमित ने बताया कि आज हम डॉक्टर साहब के साथ अमीनाबाद गए थे। उन्होंने अपने घर के लिए एक कंबल 350 रुपये में ख़रीदा। जब हम वापस आ रहे थे तो एक फटेहाल महिला मिली और कहने लगी कि मौलाना बच्चे सर्दी से परेशान हो रहे हैं, ओढ़ने को कुछ भी नहीं है। डॉक्टर साहब ने वह कंबल उसे दे दिया और ख़ाली हाथ घर लौट गए।

इस बीच अमित में असाधारण बदलाव आ चुका था। उन्होंने पूजा करना और मंदिर जाना छोड़ दिया था, जबकि वे पहले नियमित रूप से करते थे। धीरे–धीरे घर से तस्वीरें और मूर्तियाँ भी हट गईं। हमारे अन्दर स्वाभाविक रूप से बदलाव आने लगा। इसी बीच एक रात ग्यारह बजे अमित ने देखा कि डॉक्टर साहब एक हाथ में आटे का थैला और दूसरे हाथ में कुछ दूसरे सामानों के पैकेट लिए हमारी गली के पास से मुड़े हैं। अमित उनके पीछे लपके और निकट जाकर पूछा, आप इस समय यहाँ? और यह सब क्या है? पहले तो उन्होंने टालना चाहा मगर अमित के आग्रह पर बताया कि यहाँ एक वृद्धा रहती हैं, जिनका कोई सहारा नहीं है। मैं कभी–कभार कुछ सामान उन्हें पहुँचा देता हूँ। अमित भी उनके साथ हो लिए। उन्होंने वृद्धा को वे सामान दिए, कुछ पैसे दिए और वापस आ गए। फिर अमित उन्हें अपने साथ घर ले आए। अपने घर में उन्हें देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वे पहली बार हमारे घर आए थे।

मैं कुछ खाने पीने की तैयारी करने लगी मगर उन्होंने मुझे रोक दिया। बोले, खाना तो हम खा चुके हैं, बस तुम चाय बना लो। चाय के साथ–साथ बातें भी होती रहीं।

अमित बोले, ''आख़िर हम कब तक इसी हालत में रहेंगे ?''

डॉक्टर साहब ने कहा, ''जल्दी क्या है, वक़्त आने दो।''

''उससे पहले अगर मौत आ गई तो ?'' मैं बोल पड़ी।

डॉक्टर साहब ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बैठकर वे चले गए। इस रात हम लोग ठीक से सो नहीं सके। ईमान, बग़ावत, जन्नत, जहन्नम, डॉक्टर साहब, वह वृद्धा और इसी तरह के अनगिनत विचार ज़ेहन में कौंधते रहे।

तीन–चार महीने और बीत गए। हम लोगों ने नमाज़ पढ़ना सीख लिया और नियमित रूप से नमाज़ अदा करने लगे। इसी बीच अमित का ट्रांस्फ़र लखनऊ से ग़ाज़ियाबाद हो गया। ग़ाज़ियाबाद पहुँचकर हम लोगों ने नए जीवन का आरंभ किया। मैं अर्चना से मोमिना तबस्सुम, अमित, अब्दुल करीम और स्मिता उज़मा हो चुकी हैं। जीवन की यात्रा जारी है। डॉक्टर साहब हर वर्ष ईद के अवसर पर सबके लिए कपड़े और ईदी भेजते हैं। मैं भी लखनऊ जाती रहती हूँ। उनका घर मुझे अपना मैका लगता है और वे लोग भी उसी तरह पेश आते हैं। अल्लाह से दुआ करती हूँ कि यह रिश्ता हमेशा बना रहे। हम सभी लोग दुनिया की कामयाबी के साथ–साथ आख़िरत की कामयाबी पर भी ध्यान दें।

□ □ □

26. श्रीमती रहीमा ग्रिफ़्फ़थ्स

(इंग्लैण्ड)

श्रीमती रहीमा वह साहसी महिला हैं जिन्होंने बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में उस समय इस्लाम स्वीकार किया जब इंग्लैंड में ऐसी मिसालें बहुत कम थीं और शायद उस समय तक कोई अंग्रेज़ महिला मुसलमान न हुई थी। इस्लाम को स्वीकार करने के बाद उन पर क्या बीती, उसकी झलकियाँ इस लेख में देखी जा सकती हैं।

▪ ▪ ▪ ▪

कुछ महीने पहले तक मेरा सम्बन्ध ईसाई धर्म से था, लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि उसने अपनी कृपा से मुझे इस्लाम को समझने और स्वीकार करने का सौभाग्य प्रदान किया। इस मेहरबानी पर मैं उसका जितना भी शुक्र अदा करूँ, कम है।

मेरी आयु छब्बीस वर्ष है, मेरा जन्म लन्दन के एक ईसाई परिवार में हुआ। मैं भी उसी ढर्रे पर भोग–विलासपूर्ण जीवन व्यतीत करने और विकास की दौड़ में आगे बढ़ने के प्रयास कर रही थी, जिस पर हमारे देश की बड़ी आबादी सक्रिय है। ईसाई धर्म से रिवायती और ख़ानदानी सम्बन्ध की वजह से मैं चर्च में चली जाती थी। लेकिन मेरे मन ने ईसाइयत के अक़ीदों को कभी स्वीकार नहीं किया, न उस धर्म ने मुझे कभी शान्ति प्रदान की...... प्रत्यक्षतः सारी सुविधाओं के बावजूद जीवन सच्ची सन्तुष्टि और आत्मा की शान्ति से वंचित था और मैं ज़ेहनी तौर पर अपने आपको अधर में भटकता हुआ महसूस करती थी।

दिल को बहलाने के लिए मैं सैर पर चल पड़ी और 1927 ई० में मिस्र पहुँच गई। एक पर्यटक की हैसियत से मैंने क़ाहिरा की प्रसिद्ध मस्जिद मुहम्मद अली को भी देखा। मैं मस्जिद की सुन्दरता से भी प्रभावित हुई और सबसे अधिक सौभाग्य की बात यह है कि मस्जिद को उस समय देखने का कई बार अवसर मिला, जब लोग जमाअत के साथ नमाज़ पढ़ रहे थे। मैंने देखा कि अमीर और ग़रीब कंधे से कंधा मिलाए खड़े हैं और यहाँ इस प्रकार का कोई

भेद–भाव नहीं है जिसका मुज़ाहिरा चर्च में नज़र आता है, अर्थात् अमीर लोगों के लिए अलग सीटें हैं और ग़रीबों के लिए अलग हैं। फिर उन लोगों में मैंने निःस्वार्थ और आपसी मुहब्बत का ऐसा वातावरण देखा जिसकी कोई मिसाल यूरोप के जीवन में दिखाई नहीं दी थी। इससे भी बढ़कर यह कि अपने उपास्य के प्रति उनका आदर और भय सहसा दिल को प्रभावित करता था। नमाज़ के बीच अल्लाहु अकबर की आवाज़ दिल और दिमाग़ पर जादू कर रही थी। मैं इस सारे दृश्य को देख कर आश्चर्य के भँवर में डूब गई।

इस बात को चार–पाँच वर्ष बीत गए। इस बार मैं लन्दन की वोकिंग मस्जिद में चली गई और एक बार फिर उसी दिमाग़ी कैफ़ियत से दोचार हुई जिससे क़ाहिरा की मस्जिद अली में हुई थी। वही शान्ति और संतुष्टि का असाधारण एहसास और वही उच्च नैतिक मूल्यों का प्राणवर्द्धक दृश्य.....नमाज़ के बाद एक साहब ने क़ुरआन की पहली सूरत के संदर्भ से एक लेक्चर दिया और मुझे पहली बार इस्लाम और क़ुरआन की शिक्षाओं का बोध हुआ। पता चला कि यह सूरा वास्तव में एक दुआ है, हर मुसलमान के दिल की दुआ, हर इन्सान की दुआ....... यह भी अन्दाज़ा हुआ कि इस्लाम एक विश्व व्यापी मज़हब है, बनधुत्व और प्रेम इसका जौहर है। और ये तमाम नस्ली, भाषाई और क्षेत्रीय भेद–भाव से मुक्त है। एकेश्वरवाद मानो इस्लाम की जान है और एक ख़ुदा के अतिरिक्त कोई भी किसी दरजे में इबादत के लायक़ नहीं है। मुसलमान सारे पैग़म्बरों की बराबर इज़्ज़त करते हैं और इस्लाम सही मानों में शान्ति और बन्धुत्व का ध्वजावाहक है। इस्लाम का अर्थ ही शान्ति और सुरक्षा है।

ईसाइयत और यूरोपीय क़ौमों के हवाले से मुझे यह सब कुछ अजीब लगा। यह मेरे लिए मानसिक रूप से एक नया अनुभव था। अतः मैंने तय कर लिया कि इस्लाम के बारे में और अधिक जानकारी हासिल करूँ। इस्लाम मुझे एक व्यावहारिक धर्म मालूम हुआ और अन्दाज़ा हुआ कि विचार और हौसले की जो व्यापकता इस्लाम में है, उससे ईसाइयत वंचित है। फिर मैंने इस्लाम के बारे में आवश्यक किताबें हासिल कीं। क़ुरआन की एक प्रति मस्जिद से मिल गई और इमाम साहब ने मेरा मार्गदर्शन शुरू कर दिया। जहाँ मुश्किल पेश

आती, मैं सवाल करती। फिर वे उसका सन्तोषजनक जवाब देते और मैं संतुष्ट हो जाती। खोज–बीन और पूछताछ का यह सिलसिला तीन महीनों तक चला। यहाँ तक कि मुझे पूर्णतः संतुष्टि प्राप्त हो गई और कलिमा पढ़कर घोषित रूप से इस्लाम की परिधि में दाख़िल हो गई।

मेरी राय में पवित्र क़ुरआन हीरे–जवाहरात की एक ऐसी खान है जो कभी ख़त्म नहीं होगी और क़ियामत तक सारी मानवता की प्यास बुझाती रहेगी। यह शाश्वत मार्गदर्शन का एक ऐसा साधन है जो इन्सानी ज़िन्दगी से सम्बन्धित एक–एक समस्या के मार्गदर्शन का कर्तव्य पूरा करता है और इससे जुड़कर न कोई व्यक्ति गुमराह होगा, न उसे किसी परेशानी का सामना करना पड़ेगा........ अतः जहाँ तक मेरे अपने व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, इस्लाम को स्वीकार करने और क़ुरआन से सम्पर्क स्थापित करने के बाद अब मेरा दिल इतना मज़बूत हो गया है और ज़ाहिरी एतिबार से मैं एक ऐसे विश्वास से परिचित हुई हूँ कि किसी मुश्किल में परेशानी क़रीब नहीं आती। इस्लाम को स्वीकार करने के नतीजे में मैं बहुत–सी कठिनाइयों, मानसिक और व्यावहारिक आज़माइशों से दोचार हुई हूँ। लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि घबराहट या ग़म मेरे क़रीब भी नहीं फटकते। सुख और शान्ति की एक ऐसी कैफ़ियत दिल और दिमाग़ पर छाई रहती है कि उसे शब्दों में बयान करना मुश्किल है। हालाँकि मुझे इस्लाम धर्म के कारण एक सम्मानित और भारी वेतन की नौकरी से हाथ धोने पड़े, लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि मैं हालात से बददिल नहीं हुई।

मैं इस्लाम को स्वीकार करने से पूर्व चर्च ऑफ़ इंग्लैंड की निगरानी में चलने वाली एक ऐसी संस्था की उप प्रबंधक थी, जो लावारिस, बेसहारा बच्चों के पालन–पोषण का केन्द्र था और मैं अपने कार्यक्षेत्र में बहुत प्रिय भी थी, परन्तु ज्यों ही मैंने इस्लाम को स्वीकार किया मानो भिड़ों के छत्ते में हाथ डाल दिया। संस्था के सभी सहकर्मी हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गए और शीघ्र ही मुझे नौकरी से निष्कासित कर दिया गया। इस संदर्भ में एक सभ्य देश के सभ्य लोगों ने मेरे साथ जो व्यवहार किया उसकी झलकियाँ देखते जाइए :

(1) श्रीमती 'A' इस संस्था की निगरां कमेटी की सेक्रेटरी हैं, उन्होंने कमेटी की ओर से मुझे निम्नलिखित पत्र लिखा :

डीयर मिस ग्रिफ़्फ़िस!

आज ही हाउस कमेटी के सदस्यों को यह सुनकर बड़ी ही परेशानी और बेहद हैरत हुई है कि आप मुसलमानों में रुचि ले रही हैं और वोकिंग मस्जिद में इबादत करने और धार्मिक लेक्चर सुनने जाती हैं।

स्पष्ट कीजिए कि क्या यह सूचना सही है कि आप इस्लाम से व्यावहारिक रूप में जुड़ चुकी हैं। अगर ऐसा है तो कमेटी आपको चेतावनी देती है कि इस सूरत में आपका हमारे साथ चलना सम्भव नहीं रहेगा और हमारे लिए यह बात असहनीय है कि हमारी संस्था का एक सदस्य न केवल इबादत (उपासना) के लिए मस्जिद जाता हो, बल्कि अपने सहकर्मियों को भी अपने अक़ीदों से प्रभावित करने का प्रयास करता हो।

मैं इस पर अपनी ओर से यह जोड़ना चाहूँगी कि मुझे व्यक्तिगत रूप से आपका ईसाईयत को त्याग कर इस्लाम को स्वीकार करना बहुत ही बुरा महसूस हुआ है।

मैं आपसे विनती करती हूँ कि कृपया सारी परिस्थितियों पर गम्भीरता से विचार करें और अपने अक़ीदों पर पुनर्विचार करें।

आपकी शुभ चिन्तक

D. C. T. H.

इस पत्र के जवाब में मैंने स्पष्ट किया कि मेरा इस्लाम धर्म को स्वीकार करने का निर्णय अटल और अन्तिम है। इस पर कोई समझौता नहीं हो सकता। परन्तु मैं चकित हूँ कि यूरोप में धर्म आदमी का व्यक्तिगत मामला है, फिर इस पर आप लोग इतना क्रोधित क्यों हो रहे हैं। जबकि अक़ीदा बदलने से न तो मेरी कार्य क्षमता में अन्तर आएगा और न बच्चों से हमदर्दी में कमी आएगी।

मेरे इस स्पष्टीकरण के उत्तर में उपर्युक्त महिला का एक और पत्र आया कि निस्सन्देह धर्म हर आदमी का व्यक्तिगत मामला है, लेकिन हमारे लिए यह बात असहनीय है कि हम अपने बच्चों को एक मुसलमान औरत के हवाले कर दें और वह उन्हें घुटन के माहौल में तंग नज़री की शिक्षा देती रहे।

(2) श्रीमती B का सम्बन्ध भी उपर्युक्त कमेटी से है। वे पक्की ईसाई हैं और पाबंदी से चर्च में जाती हैं, जब उन्होंने मेरे द्वारा इस्लाम स्वीकार कर लेने की बात सुनी तो मानो किसी ने उनके पैरों तले अंगारे रख दिए। वे बेइख़्तियार उछल पड़ीं, ख़ौफ़ और आशंका से उन्होंने चीख़ मारी और दोनों हाथ फ़ज़ा में

बुलन्द करती हुई चिल्लाईं, उफ़ ग़ज़ब हो गया। यह मैं क्या सुन रही हूँ? उफ़! ख़ुदाया! मैं तो पागल हो जाऊँगी। इस्लाम तो पुरुषों का धर्म है और एक पुरुष ने उसे पेश किया है। यह तो औरतों के लिए निरा अज़ाब है।

(3) श्रीमती C भी कमेटी की सदस्य हैं। वे कई वर्षों तक बंगाल में रह चुकी हैं उनका कहना है। कि जिस क्षेत्र में वह रहती थीं, वहाँ के मुसलमान अच्छे चरित्र के लोग नहीं थे। निस्सन्देह वह असामान्य हद तक दयानतदार थे, परन्तु आदत के कारण झूठ भी बोलते थे। वहाँ महिलाओं के साथ जानवरों का-सा व्यवहार किया जाता था। पुरुष अपनी माँ, बहनों और अन्य सम्बन्धियों की इज़्ज़त करता था, लेकिन अपनी पत्नी की कुछ परवाह नहीं करता था, और इसका कारण यह था कि उनकी पवित्र किताब 'क़ुरआन' उन्हें यही शिक्षा देती थी।

मैंने उस महिला की विरोधाभासी बातों पर बहस करना उचित न समझा, किन्तु क़ुरआन से सम्बन्धित आक्षेपों के स्पष्टीकरण में स्वयं क़ुरआन की आयतों का अनुवाद पढ़कर सुनाया जिनमें अपनी पत्नियों के अधिकारों पर विशेष रूप से ज़ोर दिया गया था। लेकिन झूठ खुल जाने पर भी उन्होंने किसी शर्मिन्दगी का इज़्हार न किया—

(4) मिस्टर D इस कमेटी के पुरुष सदस्य हैं। व्यापक अध्ययन वाले विद्वान और योग्य आदमी हैं। एक प्रसिद्ध पब्लिक स्कूल के अवकाश प्राप्त हेड मास्टर हैं। जब उन्होंने मेरे धर्म परिवर्तन के बारे में सुना तो उन्होंने विचार प्रकट किया, "जहाँ तक मैं समझता हूँ ये मुसलमान तो बस जन्नत की कल्पना में मग्न रहते हैं। उनका ख़्याल है कि वहाँ उनके लिए यौन-सुख और आनन्द के असीम अवसर प्रदान किए जाएँगे, हालाँकि प्राकृतिक शारीरिक इच्छाएँ तो मौत के साथ ही ख़त्म हो जाती हैं। परलोक के संदर्भ में उनके बारे में सोचना ही मूर्खता है।"

(5) मिस्टर E एक पादरी हैं, उन्हें इसलिए बुलवाया गया था कि वे मुझे समझा-बुझाकर पुनः पैतृक धर्म पर ले आएँ। श्रीमान ने बड़े दुख भरे स्वर में मुझे डाँटा कि क्या तुम्हें एहसास है कि तुमने कितना भयानक क़दम उठाया है। यह तो अपने हाथों अपनी क़ब्र खोदने वाली बात है। इस प्रकार तो तुमने ईसा मसीह का इनकार कर दिया है।

"हरगिज़ नहीं" मैंने जवाब में कहा, "मैं अब भी जनाब मसीह का

आदर करती हूँ और उनके साथ जनाब मूसा और अन्य सभी सन्देष्टाओं का भी......... लेकिन मैं जनाब मुहम्मद (सल्ल०) को ख़ुदा का अन्तिम पैग़म्बर मानती हूँ।''

''तो क्या तुम मसीह को मूसा के बराबर कहती हो ?'' पादरी ने आपत्ति की।''

''जी हाँ, इस्लामी दृष्टिकोण से सारे ही सन्देष्टा समान रूप से सम्मान के पात्र हैं...... और यह तो आप जानते हैं कि जनाब मूसा ने ही वह ख़ुदाई आदेश (Commandments) दिए थे जो हज़रत ईसा ने भी अपना लिए और अगर ईसाई उनकी पाबन्दी करते रहते तो गुमराह न होते।''

''लेकिन हज़रत ईसा उपास्य का दर्जा रखते हैं। उन्हें हज़रत मूसा पर वरीयता प्राप्त है। वे ख़ुदा के बेटे हैं।'' पादरी ने कहा।

मैंने इस दावे का सबूत माँगा जो पादरी के पास न था, इसके विपरीत मैंने बाक़ायदा बाइबल का हवाला दिया, जिसमें जनाब मसीह मानते हैं कि मैं तो एक इन्सान हूँ और ख़ुदा का बन्दा हूँ।

लाजवाब होकर पादरी साहब कहने लगे : ''क्या आप इबादत करती हैं ?''

जी हाँ।

''किस की ?''

''एक ईश्वर की जिसका कोई साझी नहीं।''

''आप काले लोगों के साथ कैसे खड़ी होती हैं ? क्या आपके एहसास पर चोट नहीं लगती है ?''

''रंग से क्या फ़र्क़ पड़ता है।'' मैंने जवाब दिया : ''वे अक़ीदे के एतिबार से मेरे भाई हैं। वास्तव में यह केवल इस्लाम है जो विश्वव्यापी बन्धुत्व और बराबरी का पाठ पढ़ाता है और इस पर अमल भी कराता है। आज की ईसाईयत इससे वंचित है।''

(6) मिसेज F उस संस्था की अध्यक्षा थीं, जिससे मैं जुड़ी हुई थी, मेरी बहुत–ही सच्ची और पक्की दोस्त थीं। लेकिन इस्लाम स्वीकार करने के बाद मुझे इस दोस्ती से वंचित होना पड़ा। उन्होंने साफ़ बता दिया कि मैंने यह हरकत करके स्वयं को इन्तिहाई पस्तियों में गिरा दिया है और अब उनके दिल

में मेरे लिए ज़रा भी सम्मान नहीं है, उन्होंने सवाल किया, ''क्या तुम मानसिक रूप से इन काले लोगों के मुक़ाबले में स्वयं को अच्छी और बड़ी नहीं समझतीं जिनके तुम बराबर खड़ी होने की कोशिश कर रही हो?''

''नहीं, ऐसा नहीं है'' मैंने जवाब दिया ''ख़ुदा का शुक्र है, मैं कभी भी नकारात्मक बड़प्पन के एहसास में नहीं पड़ी।'' मैंने जवाब में कहा।

मेरी इस सहेली ने भी इस्लाम के ख़िलाफ़ दिल का ग़ुबार ख़ूब निकाला और सुनी–सुनाई निराधार बातें करती रही। इस्लाम तो केवल भारतवासियों का मज़हब है और क़ुरआन तो यौन–सम्बन्धी बातों के इर्द–गिर्द घूमता नज़र आता है। इस्लाम में बज़ाहिर कुछ ख़ूबियाँ भी हैं लेकिन उसकी मिसाल ऐसे सुन्दर खोल की है जिसके अन्दर बहुत–ही गन्दी चीज़ें भर दी गई हों। इस्लाम का नाम आता है तो ऐसा महसूस होता है जैसे मुँह कड़ुवा हो गया हो। उसमें धोखे और छलकपट के सिवा कुछ नहीं। उसमें महिलाओं के साथ बड़ा भयानक व्यवहार किया जाता है। एक–एक व्यक्ति कई–कई शादियाँ करता है मानो व्यभिचार और कुकर्म को पावन रूप दे दिया गया है.......।''

मैं इस बेहूदा टिप्पणी पर टकटकी बांधे उसे देखती रही, उसकी बकवास का क्या जवाब देती। पूरा यूरोप ही इस्लाम के प्रति ग़लत बयानी और जिहालत में पड़ा है।

(7) मिस G से भी मेरे घनिष्ट सम्बन्ध थे। उसने मेरे धर्म–परिवर्तन की बात सुनी तो अन्य लोगों की तरह वह भी सख़्त ग़ुस्सा हुई और उसने गालियों और कोसनों से भरा हुआ पत्र लिखा और जिहालत की बुनियाद पर उसी प्रकार का इल्ज़ाम लगाया जैसा मिसेज F लगा चुकी थीं। उसकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

''तुमने इस्लाम स्वीकार कर लिया, बहुत ही घटिया हरकत कर डाली। मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि तुम नैतिकता की दृष्टि से इतना गिर जाओगी। मैं नहीं समझती कि तुम्हें इस्लाम में क्या आकर्षण नज़र आया। यह शुद्ध पूर्वी मज़हब है और किसी शिक्षित यूरोपियन औरत के लिए डूब मरने का मक़ाम है कि वह उसे अपनाए। भला क्या तुलना है क़ुरआन की इंजील से। ज़रा विचार करो मुहम्मद (सल्ल०) का ख़ुदा एक अत्याचारी और अन्यायी बादशाह के रूप में सामने आता है, जबकि जनाब मसीह (अलै०) का ख़ुदा

बाप की हैसियत रखता है। मुहम्मद (सल्ल०) का कहना है कि वह पैग़म्बर है जबकि मसीह कहते हैं कि "मैं बाप की ओर से आया हूँ और संसार को छोड़कर बाप ही की ओर जा रहा हूँ।" इन बातों से अन्दाज़ा होता है कि मसीह का दर्जा पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०)से बहुत ऊँचा है और वे वास्तव में इन्सानी शरीर में ख़ुदा थे।

मैं नैतिकता की दृष्टि से इस्लाम के घटिया व्यवहार का बयान क्या करूँ? इससे तो सारी दुनिया परिचित है। इस धर्म में विशेष कर औरत का दर्जा बहुत ही नीचा है और क़ुरआन बहुपत्नित्व और ग़ुलामी पर खुलकर ज़ोर देता है। तलवार के ज़ोर पर धर्म-परिवर्तन की ताकीद करता है और खुल्लम-खुल्ला मनमानी इच्छाओं पर अग्रसर है।"

ग़रज़ क्या बताऊँ इस्लाम स्वीकार करने के बाद मुझ पर क्या बीती। सबसे ज़्यादा तकलीफ़देह बात यह थी कि ये लोग बज़ाहिर शिक्षित होने के बावजूद इस्लाम के बारे में बहुत ही ग़लत और सतही बातें करते थे। इनमें कुछ इल्ज़ामात तो इतने मूर्खतापूर्ण और बोदे थे कि मैं उनका ज़िक्र भी करना पसन्द नहीं करती। इससे भी बढ़कर दुख इस बात का है कि ये लोग जवाब में इस्लाम के बारे में कोई बात सुनते नहीं थे। ऐसा लगता था कि उन्होंने अपने दिल की आँखें और कान सख़्ती से बन्द कर रखे हैं।

अल्लाह का शुक्र है कि इन सारी मुख़ालिफ़ाना मुहिम के बावजूद मैं अपने दीन पर क़ायम हूँ और पूर्णतः संतुष्ट और ख़ुश हूँ।

27. रुक़ैया राशिद

(जर्मनी)

जर्मनी की एक उच्च शिक्षा प्राप्त महिला अरीका सेफर्ट ने 26 दिसम्बर 1981 ई० को इस्लाम स्वीकार किया और शादी के बाद कराची में बस गईं तो स्थानीय महिलाओं ने उनके सम्मान में कार्यक्रम आयोजित किया। उस कार्यक्रम का वृतांत इशरत जहाँ ने तैयार किया और रामपुर (यू० पी०) की मासिक पत्रिका 'ज़िक्रा' (मार्च 1982 ई०) में प्रकाशित हुआ।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

बर्लिन, विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रही एक जर्मन लड़की अरीका सेफ़र्ट सोशल स्टडीज़ ऑनर्स की छात्रा थी। वह लड़कपन ही से अपने माहौल से बेज़ार थी। उसे पश्चिम की चकाचौंध कर देने वाली चमक-दमक और नंग-धड़ंग तथाकथित सभ्य समाज से सदैव घृणा महसूस होती थी। वह महिला अधिकारों की स्वतंत्रता के नाम पर मिलने वाली बेहयाई, आदर तथा सम्मान को खिलौना समझने वाली और फिर मानवता के चर्मोत्कर्ष पर पहुँचने का दावा करने वाली सभ्यता से बहुत नाराज़ व परेशान रहती थी। अरीका सेफ़र्ट को पवित्रता की तलाश थी। वह सच्चाई और सत्यता की तलबगार थी। सभ्यता और समता से भरी हुई मानवता को हासिल करना चाहती थी। वह सत्य की तलाश में परेशान, विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन करती रहती थी। ऐसे में उसे मौलाना मौदूदी की किताब "दीनियात" का अंग्रेज़ी अनुवाद मिल जाता है। वह उसका गहराई से अध्ययन करती है और फिर उसके अन्दर का इन्सान जो मुसलमान पैदा किया गया है, एक दिन जाग उठता है। उसकी रूह में थरथराहट होने लगती है। वह बेचैनी से विभिन्न पुस्तकों का अध्ययन करती है। इस्लामी साहित्य उसकी रुचि का केन्द्र बन जाता है।

अरीका सेफ़र्ट सच्चाई की तलाश में कई जगहों की यात्रा करती है और फिर लन्दन में उसकी मुलाक़ात मौलाना निसार अहमद से होती है। इनके द्वारा अरीका को और अधिक रहनुमाई मिलती है। उसके बाद वह ज़िन्दगी का

सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण निर्णय कर लेती है।

26 दिसम्बर 1981 ई० को स्पार्क ब्रूक इस्लामी सेंटर बरमिंघम अमेरिका में होने वाले एक कार्यक्रम में अरीका सेफ़र्ट इस्लाम का बुनियादी कलिमा 'ला इला–ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' (कोई उपास्य नहीं सिवाए अल्लाह के और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) उसके रसूल हैं।) रूह की तमाम गहराइयों के साथ स्वीकार करके रुक़ैया बन जाती है। वह जर्मन लड़की अपने अतीत से हमेशा–हमेशा के लिए रिश्ता काट देती है।

मौलाना निसार अहमद सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए अपने भतीजे राशिद ज़ुबैर से रुक़ैया का विवाह कर देते हैं। रुक़ैया राशिद कराची में अपनी ससुराल में रहने लगती हैं और उन्हें देखकर कोई नहीं कह सकता कि वह नवमुस्लिम महिला है।

रुक़ैया राशिद से परिचय के विषय में 30 दिसम्बर 1981 ई० को 'इदारा–ए–फ़लाह' ख़्वातीन लाढी कोरंगी के तत्वावधान में एक कार्यक्रम आयोजित किया गया, जिसकी मुख्य अतिथि रुक़ैया राशिद थीं।

समय की इन्तिहाई पाबन्दी करते हुए रुक़ैया ठीक ग्यारह बजे अपनी सास (पत्नी मौलाना श्री अब्दुल हई) के साथ काले बुर्क़े में पधारीं। संस्था की तमाम औरतें अपनी नई बहन के स्वागत के लिए मौजूद थीं। बारह बजे तक रुक़ैया से सवाल–जवाब का सिलसिला जारी रहा। दोपहर को भोजन के बाद नमाज़ अदा की गई। फिर चाय से फ़ारिग़ होकर अपराह्न तीन बजे प्रोग्राम शुरू हुआ, जिसमें रावलपिंडी से तशरीफ़ लाने वाली श्रीमती रज़िया राशिद ने क़ुरआन मजीद की सूरा बक़रा (2 : 30–39) के रुकूअ नम्बर चार का दर्स दिया। उन्होंने कहा कि शिर्क वह बड़ा गुनाह है कि जिसकी माफ़ी की कोई सूरत नहीं है और यही वह गुनाह है जो हमारी नस–नस में बसा जा रहा है। आज शिर्क का यह हाल है कि जगह–जगह क़ब्रों को मज़ारों के रूप में पूजा जा रहा है। उनसे हाजतें तलब की जा रही हैं। रो–रोकर उन पक्की इमारतों से अपने दुखड़े बयान किए जा रहे हैं। कहीं राष्ट्रीय नेताओं की क़ब्रों को सलामी दी जा रही है तो कहीं यादगारों पर आस्था के फूल निछावर हो रहे हैं। शिर्क अगर यह नहीं तो और क्या है?

क़ुरआन के दर्स के बाद संस्था की एक अन्य महिला बेगम मंज़ूर इक़बाल साहिबा ने रुक़ैया को अंग्रेज़ी में स्वागतम कहते हुए एक हदीस अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ सुनाई। उसके बाद शमीम साहिबा और इशरत जहाँ अहमद ने उनकी हिम्मत, संघर्ष के जज़बे और हिजरत पर उन्हें मुबारक बाद दी।

आख़िर में रुक़ैया राशिद साहिबा ने अंग्रेज़ी में अपने ख़्यालात और एहसासात को व्यक्त करते हुए कहा कि महिलाओं के इतने बड़े मजमे को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ और ख़ुदा का एहसान मानती हूँ कि उसने मुझे आप लोगों की बिरादरी में शामिल होने का सौभाग्य प्रदान किया। मैं यूरोप में पली-बढ़ी, जर्मनी मेरा देश था, जहाँ अल्लाह का नहीं इन्सानों का क़ानून चलता है, वहाँ भौतिकवाद का चलन है। पाकिस्तान में यह देखकर अफ़सोस हुआ कि यहाँ के लोग यूरोप से प्रभावित हैं। उन्हें अपने कर्तव्यों को समझने वाला समझते हैं। अपने दैनिक जीवन में उनकी नक़ल करते हैं, हालाँकि कर्तव्यों को समझने वाले तो वे हैं जो अल्लाह के प्रति अपने परम कर्तव्यों का निर्वाह करते हैं। और नक़ल तथा अनुसरण केवल उसका ज़रूरी है, जो पूरा इन्सान है और नबी (सल्ल०) से बढ़कर पूर्ण व्यक्तित्व और किसका हो सकता है?

यूरोप में नैतिकता के पतन का यह हाल है कि हर व्यक्ति अपने बारे में सोचता है, औरत-मर्द शादियाँ अपनी पसन्द से करते हैं और जब एक दूसरे से दिल भर जाता है तो जुदा होकर किसी और को चुन लेते हैं। बच्चों को अपने आराम और आज़ादी में रुकावट समझते हैं। यही कारण है कि उनकी पैदाइश के बारे में तरह-तरह की रोकथाम करते हैं। औरतें नौकरी के चक्कर में दिन भर घर से बाहर रहती हैं ताकि ऐयाशियों के लिए अधिक-से-अधिक दौलत हासिल कर सकें। बच्चे जल्द ही माँ-बाप से उकता जाते हैं और घर छोड़ कर अपनी-अपनी मर्ज़ी से रहते हैं। लड़के और लड़कियाँ एक साथ रहने में कोई शर्म महसूस नहीं करते। वहाँ एक दूसरे पर बिल्कुल विश्वास नहीं किया जाता। किसी को किसी पर विश्वास नहीं है, बस दौलत ही उनके नज़दीक ख़ुदा है। दौलत ही सबसे बड़ा रिश्ता है। यूरोप में हर व्यक्ति अकेला है, पारिवारिक व्यवस्था बिल्कुल छिन्न-भिन्न हो चुकी है, अपराध, हिंसा और

बलात्कार आम हैं। यूरोप में अगरचे ईसाईयत है, लेकिन लोग अपने धर्म से बहुत दूर हो चुके हैं। सांसारिक सुख–सुविधाओं और भोग–विलासों को ही असली जीवन समझते हैं। उनके यहाँ परलोक और ख़ुदा के सामने जवाबदेही की कोई कल्पना तक नहीं है। सामाजिक और आध्यात्मिक दुर्दशा का यह आलम है कि औरत–औरत से शादी करती है और मर्द–मर्द से।

मैंने यहाँ टी०वी० पर कुछ प्रोग्राम देखे हैं, पाकिस्तानी संस्कृति में यूरोपीय रंग नज़र आता है और यह एक इस्लामी देश का मीडिया नहीं लगता, विशेषकर विज्ञापनों को देखकर बिल्कुल यूरोप आभास होता है।

टी०वी० पर दिखाई जाने वाली अंग्रेज़ी फ़िल्मों में जो कुछ दिखाया जाता है, वहाँ ऐसा बिल्कुल नहीं है, न पारिवारिक व्यवस्था ऐसी है और न ही कर्तव्य निर्वाह की भावना और हमदर्दी और मानवता इस प्रकार है जैसी फ़िल्मों में पेश की जाती है। यूरोप में प्रत्येक व्यक्ति आँखों के ज़िना (व्यभिचार) में गिरफ़्तार है, क्योंकि वहाँ औरत बिल्कुल नंगी हो चुकी है। वे सुअर खाते हैं और सुअर जैसी आदतों और बदमाशियों का शिकार हैं।

इसके विपरीत इस्लाम पूर्णतः सच्चाई पर आधारित एक रास्ता दिखाता है........ इस्लाम जीवन के रास्तों को संवारता है। पारिवारिक जीवन इस्लामी समाज का बुनियादी यूनिट है। इस्लाम में विशेषकर औरतों का बहुत आदर है। इस्लाम में औरतों और बच्चों को विशेष सुरक्षा प्राप्त है और मुसलमान औरतें बच्चों को ख़ुदा का इनाम समझती हैं और उन पर ख़ास नज़र रखती हैं और अपने बच्चों की सुरक्षा करती हैं।

मुसलमान औरतों को बिना ज़रूरत घर से बाहर निकलने से मना किया गया है और बाहर निकलने की सूरत में पर्दा ज़रूरी है। औरतों के आदर और सम्मान की यह सबसे बड़ी दलील है। औरत की आर्थिक ज़िम्मेदारियाँ मर्द के कंधों पर हैं और घर में मर्द की देख–भाल औरत के ज़िम्मे है। इस्लाम ने दुख–दर्द को बाँट दिया है, जबकि यूरोप में प्रत्येक व्यक्ति अपने दुख–दर्द समेत अपना बोझ आप उठाए फिरता है, कोई किसी को पूछने वाला नहीं है। मेरे एहसासात इस्लाम के बारे में बहुत अच्छे हैं। मैं इस्लाम को स्वीकार करने के बाद अपने आपको आज़ाद और सन्तुष्ट महसूस करती हूँ। इस्लाम केवल इस

संसार में अमन चाहता है बल्कि परलोक में भी सलामती की ख़ुशख़बरी देता है।

हमें वह रास्ता नहीं अपनाना चाहिए जो हमारा नहीं। यह रास्ता अल्लाह से दूर और शैतान से क़रीब करता है। मुसलमानों की असली ज़िन्दगी परलोक की ज़िन्दगी है। भौतिक विचार केवल शैतान पैदा करता है जो हमारा सबसे बड़ा दुश्मन है।

श्रीमती रुक़ैया के भाषण के बाद रज़िया साहिबा ने दुआ की कि अल्लाह हमारी इस बहन को इस्लाम की राह में दृढ़ता, साहस और स्वास्थ्य प्रदान करे और हमें इस्लामी नमूना बनने का सौभाग्य प्रदान करे। आमीन!

□ □ □

28. श्रीमती रोजा गॉर्डन अमीन

(इंग्लैण्ड)

मेरा सम्बन्ध इंग्लैण्ड से है। मेरे माता-पिता अक़ीदे के एतिबार से स्कॉटिश प्रेस्बाइटेरियन चर्च (Scottish Presbyterian Church) से संबन्धित थे और मुझे भी इसमें बपतिस्मा दिया गया। वे मज़हबी होते हुए भी तंग नज़र न थे। वे प्रायः हमें नसीहत करते कि दूसरे धर्म और उनके अनुयायी भी आदरणीय हैं। और यह कि चर्च से बाहर भी इतने ही लोग अच्छे हैं जितने कि इसके अन्दर अच्छे हैं। सहनशीलता और क्षमाशीलता मेरे माता-पिता के चरित्र का बड़ा ही रौशन पहलू था।

लेकिन अजीब बात है कि गिरजा घरों का वातावरण और वहाँ बुत तराशी के विभिन्न दृश्य अलग कहानी बयान करते थे। मिसाल के तौर पर चार्टर्स (Charters) केथड्रल के विशाल पश्चिमी द्वार के अन्दर कोई मूर्ति अपनी नज़ाकत और सुन्दरता के एतिबार से मन में नरमी और मिठास का एहसास पैदा करती थी, जबकि वहीं पर ऐसी भयानक, बदसूरत मूर्ति भी थी जिनसे मूर्खतापूर्ण और घृणाजनक कहानियाँ भी संबद्ध थीं। अर्थात् भयानक शैतानों की कहानियाँ जो बेख़बरों की घात में हैं या फिर बदशक्ल सुअर जैसे मानव जो ईसाईयत की ज़मीन से दूर हैं और उन्होंने ख़ुदा की ज़मीन को अत्याचार और गुनाह से प्रदूषित कर रखा है। यह इशारा इस्लाम के मानने वालों की ओर था। सत्य है कि यूरोप का मज़हबी और ग़ैर मज़हबी माहौल विशेषकर इस्लाम के ख़िलाफ़ नफ़रत और दुश्मनी का प्रचार नज़र आता है। कक्षा में और सामान्य पुस्तकों में इस बात का खुल्लम खुल्ला प्रचार किया जाता है कि इस्लाम अंधविश्वास पर आधारित, देवी-देवताओं पर आधारित एक ऐसा धर्म है जो अज्ञानता और असभ्यता का मिश्रण है। इसके साथ ही मुझे गिरजे और क्लास रूम में यह पाठ पढ़ाया गया कि ईसाईयत ही वास्तव में सच्चा आसमानी मज़हब है और फिर तमाम ऐसे चर्च जो ईसाईयत का प्रचार कर रहे हैं उनमें चर्च ऑफ़ इंग्लैंड ही सबसे ज़्यादा सही हैं, इसके अतिरिक्त बाक़ी सब असत्य हैं।

परन्तु शिक्षा के विभिन्न पड़ावों को पार करती हुई जब मैं विश्वविद्यालय

तक पहुँची और मेरी समझ भी परिपक्वता की ओर बढ़ने लगी तो मेरे मन में ईसाईयत के बारे में बहुत–से सवाल पैदा होने लगे, लेकिन सच्ची बात यह है कि इनको ज़ाहिर करते हुए मैं डर महसूस करने लगी। मुझे हज़रत मसीह (अलैहि०) और उनकी शिक्षाओं से मुहब्बत थी। लेकिन यह कहानी मेरे लिए बड़ी दुखद और आश्चर्यजनक थी कि ख़ुदा ने अपने एकलौते बेटे को आम इन्सानों के गुनाहों के बदले क़ुरबान कर डाला और यूँ एक पाक बाज़ बेगुनाह इन्सान को नाहक़ तकलीफ़ भी दी और सारी मानवता को स्वतंत्रता प्रदान कर दी कि अब वे जो चाहे करते रहें, उनके गुनाहों का कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अदा हो गया।

फिर मैं सोचती हूँ कि अगर मसीह (अलैहि०) को मालूम था कि वे पवित्र हैं तो फिर एक आम आदमी के मुक़ाबले में जो अपने भाई–बन्धू या उच्च इन्सानी लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अपना जीवन भेंट चढ़ा दें, उन्हें सलीब पर चढ़ाया जाना किस प्रकार असामान्य क़ुरबानी हो सकती है ? मिसाल के तौर पर पीटर (Peter) को रोम में सलीब पर चढ़ाया जाना मुझे अधिक प्रभावित करता हुआ लगता है। वह एक आम इन्सान था, लेकिन उसने ईसाईयत को स्वीकार किया और स्वर्ग के लिए वह फाँसी चढ़ गया। ज़्यादा आश्चर्य और चिन्ता उस समय हुई जब मैंने Golden Bough पढ़ी और देखा कि ईसाई धारणाएँ किस प्रकार ईसा पूर्व की शिर्क करने वाली क़ौमों के त्यौहारों से गडमड होकर रह गई हैं। वे जो फ़सल पकने के मौक़े पर मेले–ढेले (Fertility Festival) आयोजित करते थे और देवताओं के समक्ष श्रद्धा प्रकट करते थे, बिल्कुल वही कुछ हज़रत मसीह (अलैहि०) के मानने वालों ने अपना लिया था......ईसाईयत की इन धारणाओं और ऐतिहासिक दृष्टि से इसका अविश्वसनीय होना। नतीजा यह हुआ कि अपने पैतृक धर्म पर मेरा विश्वास बुरी तरह डगमगा गया और मैं ही नहीं बल्कि यूनीवर्सिटी में अधिकांश छात्र एवं छात्राएँ केवल नाम मात्र के ईसाई थे। विचार और व्यवहार की दृष्टि से वे नास्तिकता के ज़्यादा क़रीब थे।

लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि मैं धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करती रही और इस सम्बन्ध में एक मुस्लिम लड़की अक़ीला विरलास के व्यवहार ने मुझे बहुत प्रभावित किया। वह अपने मज़हब के बारे में बात करती तो मेरी बुद्धि इसकी हामी भरती हुई नज़र आई। अक़ीला का सामूहिक व्यवहार और

चरित्र भी शालीनतापूर्ण और प्रभावित करने वाला था। अतः इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजूकेशन में मैंने अपनी बातचीत के लिए जिस विषय का चयन किया वह इस्लाम के प्रचार के शुरूआती ज़माने के बारे में था। इस संदर्भ में जब मैंने शोध और खोज की तो इस्लाम के बारे में मेरी जानकारी में बड़ी वृद्धि हुई। इस्लाम मुझे एकेश्वरवाद और धार्मिक एकता का प्रचार करता हुआ नज़र आया। उसका यह दावा कि मूसा (अलै०), ईसा (अलै०) और मुहम्मद (सल्ल०) सब ख़ुदा के पैग़म्बर थे और एक ही सन्देश के अलमबरदार थे, मुझे बहुत उचित और क़ाबिले-क़बूल दिखाई दिया।

उस समय मुझे प्रोफ़ेसर एडविन ई. की किताब 'इस्लाम : एक परिचय' ने भी प्रभावित किया। इस किताब में उन्होंने क़ुरआन की सूरा इख़्लास के हवाले से जो बातें लिखीं, मैं उनसे बहुत प्रभावित हुई। वे लिखते हैं :

(1) इस्लाम अल्लाह के एक होने का दावा करता है अर्थात् वह एक है, अकेला है, कोई उसका शरीक और साझी नहीं, जबकि ईसाईयत में हज़रत मसीह (अलै०) को उपास्य के स्थान पर बिठा दिया गया है। और पुरानी नस्तूरी (Nestorian) धारणा के अनुसार वह एक ही समय में ख़ुदा भी हैं और इन्सान भी।

(2) इस्लाम का पैग़ाम सारी इन्सानियत के नाम है, जिससे मानव एकता का इशारा मिलता है।

(3) इस्लाम सहनशीलता और सहिष्णुता का प्रचार करता है। यही कारण है कि मुसलमानों ने ईसाइयों के मुक़ाबले में सदैव इन्सानी एहतिराम और बर्दाश्त का मुज़ाहरा किया है। ईसाई क़ौमों ने स्पेन, सिसली और फ़िलिसतीन में मुसलमानों के साथ जो व्यवहार किया वह बहुत ही अमानवीय था। जबकि मुसलमानों ने हर जगह, हर दौर में यहूदियों और ईसाइयों से उदारता, क्षमा, बल्कि सरपरस्ती का अन्दाज़ अपनाया। मुसलमानों ने क़ुरआनी आदेशों के अनुसार मानव-एकता को स्वीकार किया और उसका व्यावहारिक प्रदर्शन किया।

(4) इस्लाम बुद्धि को प्रभावित करता है और ज्ञान की प्राप्ति पर ज़ोर देता है। क़ुरआन में बहुत-सी आयतें हैं जिनमें प्रकृति के चमत्कारों और संसार की विभिन्न वस्तुओं पर चिंतन करने की दावत दी गई है। दिन-रात का परिवर्तन, चाँद और सूरज की भूमिका, मौसमों का उलट-फेर, असंख्य प्राणियों,

फल और अन्य वस्तुएँ अर्थात् दिखाई देने वाली एक-एक चीज़ देखने वाले को सोच-विचार की दावत देती है और अपने स्रष्टा की असीम महारत का पता बताती है........ इस संदर्भ से देखें तो स्वयं मनुष्य ईश्वर की बेमिसाल कृति है, और एक माँ की हैसियत से मैं तीन बार इस अनुभव से गुज़र चुकी हूँ, विज्ञान की छात्रा रह चुकी हूँ, इसलिए जानती हूँ कि माँ के पेट में बच्चे का पोषण कैसे होता है। उसका जन्म, उसकी पहली चीख़, माँ की छाती से उसकी ख़ुराक हासिल करना और उसके बाद पालन-पोषण और वे तमाम अच्छी आवाज़ें और मासूम हरकतें मुझे अल्लाह तआला की रहमतों और अज़मतों की याद दिलाती हैं। क्रिस्टोफर रेन(Christopher Wren) वह प्रसिद्ध इंजीनियर और निर्माण विशेषज्ञ था जिसने लन्दन के बहुत-से गिरजाघरों को डिज़ाइन किया। सेंट पाल कैथेड्रल उसकी सर्वोत्तम कृति है। उसका देहान्त हुआ और कैथेड्रल ही में उसे दफ़नाया गया, तो उसकी क़ब्र की तख़्ती पर यह इबारत लिखी गई, ''अगर तुम उसकी यादगारें देखना चाहते हो तो अपने आस-पास देखो।'' यह बात एक मृत आर्कीटेक्ट पर इतनी सही नहीं साबित होती, जितनी जीवित ख़ुदा और रब और क़य्यूम पालनहार पर फिट होती है। हम दिल की आँखें खोलकर अपने आसपास जिस ओर भी देखेंगे, जिस चीज़ का जायज़ा लेंगे उसमें अवश्य अल्लाह की क़ुदरतों और गुणों का कमाल नज़र आएगा........ और क़ुरआन जगह-जगह इसी बात की दावत देता नज़र आता है।

मैं इसे अपना सौभाग्य ही कहूँगी कि दूसरे विश्व युद्ध के बाद मुझे मिस्र जाने का अवसर मिला। इस्लाम से तो मैं प्रभावित थी ही, मिस्री मुसलमानों ने भी मुझे बहुत प्रभावित किया और मैंने वहाँ एक मुसलमान अमीन से विवाह कर लिया। शादी के बाद इस्लाम को और अधिक समझने के लिए मैंने मिस्र के प्रसिद्ध महान विद्वान और विचारक मुफ़्ती मुहम्मद अब्दहू की किताबों का अध्ययन किया और मेरे इस विचार में और दृढ़ता पैदा हो गई कि सारे धर्म अपनी असल के एतिबार से एक रंगी रखते हैं और इस्लाम इस एकता का सम्पूर्ण और बेजोड़ नमूना है। मुफ़्ती साहब की किताबों ने मुझे इस्लाम के प्रति संतुष्ट कर दिया और मैंने मन की संतुष्टि के साथ इस्लाम को स्वीकार कर लिया। अल्लाह का शुक्र है।

☐☐☐

29. ज़ैनब तोरह

(Zaynab Torah)

(नाइजीरिया)

श्रीमती ज़ैनब तोरह का पुराना नाम लेडिया लिंसी (Ladia linsy) था, उनके पूर्वज किसी ज़माने में नास्तिक थे, नाइजीरिया पर ब्रिटेन ने क़ब्ज़ा किया और वहाँ ईसाई मिशनरियों का आक्रमण हुआ तो ये लोग भी ईसाई हो गए और उत्तरी नाइजीरिया में अपना पैतृक आवास छोड़कर एडमावाह प्रान्त के शहर गोरोडोका (Gorodoka) में बस गए जो ईसाई मिशनरियों का केन्द्र था। यहाँ इस परिवार के ज़िम्मेदार लोगों ने ईसाईयत के प्रचार का प्रशिक्षण लिया और प्रचारक की हैसियत से स्थानीय आबादी में बड़ा काम किया।

श्रीमती ज़ैनब तोरह के दादा और पिता भी ईसाई धर्म के प्रचारक थे, लेकिन अल्लाह ने मोहतरमा पर करम फ़रमाया और वे इस्लाम की रहमत की छाया में आ गईं....... उनके इस्लाम को स्वीकार करने की दास्तान ख़ुद उनकी ज़बानी पढ़िए :

■ ■ ■ ■ ■

मेरा पालन–पोषण एक ईसाई परिवार में हुआ। मेरे माता–पिता न केवल ईसाई थे, बल्कि मेरे पिता अपने क्षेत्र में इंजील के जाने–माने प्रचारक थे और उनके कारण बहुत से लोगों ने ईसाईयत क़बूल कर ली...... लेकिन फिर वे बीमार हो गए और लम्बे समय तक बिस्तर पर पड़े रहने के बाद उनका देहान्त हो गया। मेरी माता का भी चर्च से गहरा सम्बन्ध है और वे प्रचारिका की हैसियत से सेवा कर रही हैं। इस बात को बताने का उद्देश्य यह है कि मैं एक पक्के ईसाई माहौल में पल–बढ़कर जवान हुई, जहाँ ईसाईयत के सिवा किसी दूसरे धर्म का मैंने नाम तक नहीं सुना था और स्वाभाविक रूप से मेरे माता–पिता की इच्छा थी कि मैं भी इसी धर्म की शिक्षा और प्रचार–प्रसार में अपनी योग्यताएँ लगाऊँ।

लेकिन अजीब बात यह हुई कि मैंने जब होश संभाला और चिन्तन–

मनन की आदत परवान चढ़ी तो ईसाईयत के अधिकांश दृष्टिकोणों और शिक्षाओं की ओर से मेरे मन में भ्रम और संदेह पैदा होने लगे। मैं सवाल करती, मगर कोई जवाब न मिलता और प्राय: डाँट खानी पड़ती, विशेष कर दो सवालों ने मुझे परेशान किया, त्रिवाद और कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) अर्थात् तीन ख़ुदाओं की धारणा और यह दृष्टिकोण कि हज़रत मसीह (अलै०) हमारे गुनाहों के बदले सूली चढ़ गए। जब भी मैं ज़िम्मेदार लोगों से इन विषयों पर बात करती तो जवाब मिलता कि ये बातें मानव-बुद्धि से परे हैं। यह पवित्र रहस्य है जिनको आँखें बन्द करके ईमान लाना चाहिए।

लेकिन मैं इस जवाब से संतुष्ट न होती, मैं और भी सवाल करती कि जो अक़ीदा मेरी समझ ही में नहीं आता और मेरी बुद्धि से बाहर है, उस पर मैं कैसे विश्वास कर सकती हूँ? मैं प्राय: सोचती कि इस हवाले से ईसाई पादरियों का तर्क बिल्कुल बोदा है और मेरे मन को बिल्कुल अपील नहीं करता। अब अगर मैं इन अक़ीदों को इसी हालत में स्वीकार कर लूँ, तो यह मात्र धोखा होगा। अपने साथ भी और ख़ुदा के साथ भी। मैं स्कूल में थी जब एक बार हमारे मिशनरी अध्यापक ने कहा था कि हमें पवित्र इंजील के बारे में हरगिज़ कोई सवाल नहीं करना चाहिए। ऐसा करके हम सख़्त गुनाहगार होंगे।

ईसाईयत के प्रति मेरे सन्देह जिस प्रकार बढ़ते चले गए, उसी अनुपात से मैंने चर्च आना-जाना कम कर दिया। अपने आपको सहारा देने की ख़ातिर मैंने इंजील का अध्ययन पहले से बढ़ा दिया, लेकिन अध्ययन के साथ-साथ मेरी असंतुष्टि में इसलिए बढ़ोत्तरी होती गई कि कुछ विरोधाभास मेरी समझ से बाहर थे। किताबे-मुक़द्दस में कुछ था और पादरी लोग उससे हटकर प्रचार कर रहे थे। अत: मैं ईसाईयत से पूरी तरह बेज़ार और उसकी मुख़ालिफ़ हो गई और सेकेंडरी स्कूल तक पहुँचते-पहुँचते मैंने चर्च जाना छोड़ दिया। केवल पवित्र इशाए रब्बानी के समारोहों में मजबूरन जाती और जब तक वहाँ रहती लगातार सोई रहती.......किन्तु इस ख़तरे के कारण कि कहीं कोई जोशीला ईसाई क्रोधित होकर मेरी पिटाई न कर दे, मैं सवालात नहीं करती, ख़ामोश रहती थी।

1967 ई० तक अक़ीदों और दिलो-दिमाग़ की यही हालत रही। मैं बस

नाम मात्र ही ईसाई थी, वरना ईसाईयत की धारणाओं से कोसो दूर थी, परन्तु चूँकि सामने कोई वैकल्पिक विचारधारा न थी और एक कट्टर ईसाई माहौल में रहने पर मजबूर थी, इसलिए मैं रोमन कैथोलिक चर्च से जुड़ गई। सदस्य की हैसियत से नहीं बल्कि एक आलोचक के तौर पर....... लेकिन कुछ ही हफ़्तों में मैंने अन्दाज़ा कर लिया कि शिक्षा और सिद्धान्त की दृष्टि से यह चर्च प्रोटेस्टेंटों से भी ज़्यादा कट्टर और तानाशाही व्यवहार का समर्थक है और साथ ही तर्क और दलील से भी कहीं दूर है। अतः मुझे इस विचार से बड़ी घृणा हुई कि मैं प्रत्येक रविवार को पादरी के सामने अपने गुनाहों का एतिराफ़ करती रहूँ। पादरी का स्थान और सम्मान कैसा भी क्यों न हो, बहरहाल वह इन्सान था और ईसाई अक़ीदे के अनुसार हर इन्सान पैदाइशी तौर पर गुनाहगार है। फिर उसके सामने गुनाहों का एतिराफ़ आख़िर क्यों? रोमन कैथोलिक चर्च में हज़रत ईसा (अलै०) और हज़रत मरयम (अलै०) की तसवीरों और मूर्तियों की भरमार थी और उन्हें देख-देखकर मेरे मन में नफ़रत पैदा हो जाती थी। मुझे तो स्पष्ट रूप से मूर्ति पूजा का ही एक रूप लग रहा था।

अतः मैंने रोमन कैथोलिक चर्च से भी अपना नाता तोड़ लिया, चर्च जाना छोड़ दिया और मज़हब से विमुख हो गई। अब मैं नाम ही की हद तक ईसाई थी। बस कभी-कभार रस्म निभाने की ख़ातिर गिरजे चली जाया करती थी।

1970 ई० का फ़रवरी महीना मेरे जीवन का महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी महीना है, जब मेरी मुलाक़ात वाडोना में कुछ मुसलमानों से हुई और जब उन्हें पता चला कि मैं ईसाईयत से फिरी हुई और केवल नाम की हद तक ईसाई हूँ तो उन्होंने मेरे सामने इस्लाम का परिचय पेश किया। उन्होंने बताया कि इस्लाम का अर्थ क्या है और इसकी शिक्षाओं का संक्षिप्त ख़ाका क्या है। मैं स्वीकार करती हूँ कि शुरू में मैंने इन मुसलमानों की बातचीत में बहुत कम रुचि ली। मुझे डर था कि ईसाईयत की तरह इस्लाम भी मुझे अपील न करेगा, जिससे मेरे इन दोस्तों को परेशानी होगी। चूँकि मैंने अपने दिल के द्वार मज़हब की ओर से बन्द कर लिए थे, इसलिए मुझे यह भी ख़तरा न था कि मैं इस्लाम को स्वीकार कर लूँगी।

वास्तव में धर्म के संदर्भ में मैंने यह नकारात्मक रवैया इसलिए अपना

लिया था कि मेरे नज़दीक सारे धर्म एक ही तरह के थे। हर एक के अपने अपने पवित्र रहस्य और उनसे सम्बन्धित अक़ीदे (आस्थाएँ) बुद्धि, सोच और तर्क–वितर्क से मुक्त हैं।.......यह तो बाद में पता चला कि इस्लाम के प्रति मेरे ये अनुभव बिल्कुल ग़लत और बेबुनियाद कल्पना की हैसियत रखते हैं। और यह कि दुनिया में अगर कोई धर्म अंधविश्वास, कट्टरता और बुद्धिहीनता के विरुद्ध है तो वह केवल इस्लाम है।

बहरहाल, मुसलमान जानकारों की बातचीतों ने मेरे अन्दर इस्लाम के बारे में दिलचस्पी पैदा कर दी और मुझे अन्दाज़ा हो गया कि यह धर्म ईसाईयत से बिल्कुल भिन्न है। मैंने देखा कि इस्लामी शिक्षाएँ ईसाइयत के विपरीत सादा, सरल, सबकी समझ में आने वाली हैं। ये बुद्धि, समझ और प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल हैं और ईसाईयत की तरह इनमें कहीं जटिलता और अंधविश्वास नहीं है और इनमें कोई ऐसी बात नहीं है जो इन्सान की समझ में न आ सके और यह जानकर तो मुझे बेपनाह हैरत और ख़ुशी हुई कि इस्लाम पूरे तौर पर सच्चाई और ईमानदारी का मज़हब है। यहाँ ख़ुदा और बन्दे के बीच कोई माध्यम नहीं। इस अक़ीदे ने तो मुझे निहाल कर दिया कि ख़ुदा के अलावा कोई उपास्य है ही नहीं।

ला इला–ह इल्लल्लाहु— और मेरे मन ने इसे फ़ौरन स्वीकार कर लिया.........सच्ची बात यह है कि इस्लाम की कोई एक शिक्षा भी ऐसी नहीं जो बुद्धि और समझ से टकराए।

मेरी बुद्धि और मेरी आत्मा इस्लाम की सच्चाई को स्वीकार कर चुकी थी, लेकिन मुसलमान होने की हिम्मत नहीं हो रही थी। बार–बार सोचती मेरे बाप–दादे सब ईसाई थे। मेरे दादा और पिता ईसाई प्रचारक थे और माँ अब तक इस धर्म की सेवा में लगी हुई है। सारा परिवार, मित्र, सम्बन्धी सब ईसाई हैं, मैं कैसे मुसलमान हो जाऊँ? मेरे परिवार वाले क्या सोचेंगे और मेरी माँ के दिल पर क्या बीतेगी? ये सब लोग परेशान भी होंगे और मुझसे नाता भी तोड़ लेंगे........इस प्रकार मैंने समझ लिया कि मैं यह क्रान्तिकारी क़दम उठाने का साहस न कर सकूँगी.........लेकिन मेरी आत्मा और भावनाओं के बीच संघर्ष जारी रहा.........मेरा दिल बार–बार गवाही दे रहा था कि मैं ईसाई मज़हब से

सन्तुष्ट नहीं, बल्कि बेज़ार हूँ.........जबकि इस्लाम की सच्चाई ने मुझे अपना प्रेमी बना लिया है। फिर इन्साफ़ तो न होगा कि अंधेरे और उजाले का सत्य मुझ पर प्रकट हो गया है और मैं अन्धेरे से निकल कर उजाले में न आ जाऊँ।

यह संघर्ष जारी रहा........अन्ततः अल्लाह ने मुझे साहस प्रदान किया, मुझे हिम्मत दी और मैंने हर प्रकार के ख़तरों को ताक़ पर रखकर 19 जून 1970 ई० को मुसलमानों की एक महफ़िल में इस्लाम को स्वीकार करने का एलान कर दिया.........अल्लाह का शुक्र है, मैं इस निर्णय से बेहद सन्तुष्ट और प्रसन्न हूँ और अल्लाह का शुक्र अदा करती हूँ कि उसने मेरी प्यासी आत्मा को शान्ति प्रदान की और विशाल मुस्लिम समुदाय में शामिल कर दिया।

□ □ □

30. श्रीमती ज़ैनब कारेन

(जर्मनी)

निम्नलिखित लेख पाकिस्तान में ईरानी दूतावास की त्रैमासिक पत्रिका "ईरान शनासी" अंक 13-14, 1997 ई० में प्रकाशित हुआ था। सोसन सिफ़ा वरदी ने यह इंटरव्यू लिया था, जिसका उर्दू में अनुवाद आबिद असकरी ने किया। अनुवादक और पत्रिका के शुक्रिये के साथ पेश है।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

जर्मनी की मुसलमान महिला श्रीमती ज़ैनब कारेन ईरान पधारीं। उनसे हमारी जो बातचीत हुई वह आपकी सेवा में प्रस्तुत है :

हम आपके ईरान आने का स्वागत करते हैं। हमारी आपसे गुज़ारिश है कि सर्वप्रथम हमें अपने बारे में बताएँ। उसके बाद हम बातचीत को आगे बढ़ाएँगे।

ज़ैनब कारेन : आपका शुक्रिया कि आपने मेरे विचारों को पाठकों तक पहुँचाने का एहतिमाम किया है।

मैं जर्मनी की 31 वर्षीय महिला हूँ। दस वर्ष पूर्व मैंने इस्लाम को अपनाया। मुसलमान होने पर मैंने अपना नाम 'ज़ैनब' चुना। मुझे बचपन ही से सर्वशक्तिमान स्रष्टा से गहरा लगाव रहा है। इस समय जब मैं सोचती हूँ तो अल्लाह को अपने बहुत क़रीब पाती हूँ। ख़ुदा को जानने के जज़्बे ने मुझे अपने हम उम्र दोस्तों से अलग कर दिया था। मेरा रहन-सहन और ख़यालात बिल्कुल बदल गए। मिसाल के तौर पर हमारे स्कूलों में छात्रों और छात्राओं से तैराकी ज़बरदस्ती कराई जाती थी और मैं इस काम से नफ़रत करती थी। अतः मैं अध्यापकों से बीमारी का बहाना बनाकर तैराकी और मिली-जुली महफ़िलों से बच जाती थी। समय बीतने के साथ-साथ अल्लाह के बारे में ख़यालात में बदलाव आ गया। तहक़ीक़ करने पर यह बात मेरे सामने स्पष्ट हो गई कि कलीसा (गिरजाघरों) के ख़ुदाओं की कल्पना किसी लिहाज़ से भी सही नहीं है। क्लास में यह सवाल प्रतिदिन मेरे दिमाग़ में कुलबुलाता था।

पन्द्रह वर्ष की उम्र में अपने परिजनों की ज़िद पर मुझे धार्मिक कक्षाओं में

शामिल होना पड़ा। चूँकि मेरी सोच बिल्कुल बदल चुकी थी इसलिए मैंने अपने माता–पिता से खुलकर कह दिया कि मुझे कलीसा वालों का धर्म पसन्द नहीं है, लेकिन मेरे माता–पिता ने कहा कि हमारी ख़ातिर तुम धार्मिक कक्षाओं के प्रोग्रामों में भाग लो। ये रस्में साल के अन्त में ईसाईयत को अपनाने के बारे में आयोजित की जाती थीं। अतः मैं माता–पिता की वजह से इस प्रोग्राम में भाग लेती थी। पादरी दुआ पढ़ाता और उपस्थित लोग उसके शब्दों को दोहराते थे। जब वह मज़हब को स्वीकार करने की बात कहने पर आया तो मैं चुप हो गई। सभी लोग दुआ पढ़ने और गीत गाने में मगन थे। इसलिए मेरी ख़ामोशी की ओर किसी का ध्यान न जा सका।

शिक्षा प्राप्ति के समय तुर्की की कुछ लड़कियाँ मेरी दोस्त थीं। मेरा उनके यहाँ आना–जाना रहता था। उन्होंने मेरी रूहानी बीमारी को भांपते हुए इस्लाम की प्रारम्भिक शिक्षाओं के बारे में मुझे एक किताब दी। मैंने उसका अध्ययन आरम्भ कर दिया। जब एकेश्वरवाद के शीर्षक पर पहुँची तो मेरी नज़रें ठहर गईं। क्या ही अच्छी बहस थी। ज्यों–ज्यों अध्ययन करती, मेरी जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी। हज़रत आदम (अलै०) से लेकर हज़रत मसीह (अलै०) तक मुसलमानों का दृष्टिकोण प्रभावित करने वाला था। किताब का अध्ययन करने के बाद मैंने अपने माता–पिता से साफ़ कह दिया कि मुझे कलीसा वालों का मज़हब हरगिज़ क़बूल नहीं। आज से मैं मुसलमान हो रही हूँ। मेरी इस बात को सुनकर मेरे माता–पिता बहुत उदास हो गए कि अगर मैं इस हालत में मर गई तो मुझे कहीं भी दफ़न नहीं किया जाएगा। इसलिए उनकी कोशिश थी कि यह काम न करूँ और रजिस्टरों में मेरा नाम एक ईसाई लड़की के तौर पर रहे, लेकिन मैं इस पर हरगिज़ राज़ी न थी।

अठारह वर्ष की हुई तो मैंने इस्लाम के बारे में और अध्ययन आरम्भ कर दिया, ज्यों–ज्यों अध्ययन करती गई, मेरा दिल संतुष्ट होता गया। मेरा दिल चाहता था कि मैं अपना जीवन इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार आरम्भ करूँ, लेकिन मुझे पता नहीं था कि इसका आरम्भ कहाँ से करूँ ? शुरू–शुरू में मुझे दिमाग़ी एतिबार से कुछ तकलीफ़ महसूस हुई। लेकिन मैंने दिल में निश्चय कर लिया था कि मुझे इस्लाम ही को अपनाना है। अन्ततः मैंने इस्लाम की ख़ातिर अपना पिछला धर्म और माता–पिता को छोड़ दिया। आरम्भ में मुझे कुछ

परेशानियों का सामना करना पड़ा। लेकिन धीरे–धीरे तमाम मामले सुलझते चले गए। रमज़ान के दिनों में मुसलमानों की एकता देखने योग्य थी, बन्धुत्व और भाईचारे के इस जज़्बे ने मुझे बेहद प्रभावित किया। मैं हर समय ख़ुदा की इबादत में लगी रहती, यहाँ तक कि गर्मी की तेज़ी भी मुझे इस भले काम से न रोक सकी।

एक मुसलमान लड़की मुझसे कहा करती थी कि आप अभी पूरी मुसलमान नहीं हुईं। इसलिए आपके रोज़े और नमाज़ की क़बूलियत में शक है। परन्तु मैं दिल की गहराइयों से इस्लाम को पसन्द करती और उसे स्वीकार कर चुकी थी, इसलिए मेरी आत्मा और मेरा दिल सन्तुष्ट था। मैं हर रोज़ मज़हब के बारे में मुसलमानों से सवाल करती और इस्लाम के फ़लसफ़े के बारे में बहस और तहक़ीक़ करती थी। एक रोज़ एक मुसलमान औरत से मैंने पूछ ही लिया कि आप सिर पर दुपट्टा या चादर क्यों ओढ़ती हैं? उसने कहा : अगर इन्सान अच्छा मुसलमान बनना चाहे तो उसे यह काम करना पड़ेगा। इससे मैं संतुष्ट न हुई और इस्लाम में पर्दे के फलसफ़े के बारे में और अधिक खोज करने लगी। अन्ततः इस नतीजे पर पहुँची कि इसे महिलाओं की कामयाबी और उनके संरक्षण के लिए ज़रूरी क़रार दिया गया है। चूँकि महिलाओं को समाज में काम करना पड़ता है, इसलिए पर्दा उनके लिए एक संरक्षक का काम करता है। इससे औरत के सम्मान और आदर में बढ़ोत्तरी होती है। इसके महत्व का एहसास मुझे यूनिवर्सिटी में हुआ था। हम रोज़ देखते हैं कि औरतों की ज़ाहिरी सज–धज की ओर ध्यान दिया जाता है। मीडिया भी नित नए फ़ैशनों का प्रचार करता है। बनाव–श्रृंगार की संस्थाएँ भी औरत की सुन्दरता को मशहूर करती हैं। एक ओर तो इस क्षणिक सुन्दरता पर मोटी रक़म ख़र्च की जाती है, दूसरी ओर औरत को रूहानी और ज़ेहनी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। हमारे समाज में औरत को बहुत–सी समस्याओं का सामना करना पड़ता है, विशेष रूप से जहाँ औरत और मर्द एक जगह काम करते हैं। मैंने भी पढ़ाई के दौरान में इस प्रकार की परेशानियाँ देखी हैं। इस्लाम चूँकि औरत को सुरक्षा प्रदान करता है, उसके सम्मान को बढ़ाता है, इसलिए मैंने इस्लामी शिक्षाओं पर अमल करने को वरीयता दी। अगरचे इस्लाम को स्वीकार करने से मेरी रूहानी समस्याएँ दूर हो गईं फिर भी सामाजिक समस्याओं पर क़ाबू पाने के

लिए मैंने अपने अन्दर साहस पैदा किया, हालाँकि इस सम्बन्ध में पारिवारिक दबाव भी काफ़ी था।

सबसे पहला मसला तो पिता जी की नाराज़गी थी। वे बार–बार मुझसे तक़ाज़ा कर रहे थे कि मैं ईसाई धर्म पर क़ायम रहूँ। वे कहते थे कि एक धर्म को छोड़ना और दूसरे को अपनाना कोई आसान काम नहीं है। अपनी सहेलियों के कहने पर मैंने पिता जी से ज़्यादा बहस नहीं की और आदर के साथ शान्तिपूर्वक कहा कि कल मैं मस्जिद जा रही हूँ। वहाँ कलिमा पढ़ूँगी। अतः मैं तुर्की की दोस्तों के साथ मस्जिद में गई और कलिमा पढ़ा। उस समय मुझे ऐसा लगा जैसे कि मैं अभी–अभी संसार में आई हूँ। तुर्की औरतों ने मुझे बधाई दी और कहा कि तुम तुर्क हो चुकी हो। मैंने कहा ऐसा नहीं है, बल्कि इस्लाम तो सारी मानवता के लिए है।

अब मुझे ऐसी औरतों की दोस्ती की ज़रूरत थी जो मेरी तरह हाल ही में मुसलमान हुई हों। अन्ततः मेरा परिचय जर्मनी की मुस्लिम औरतों से हो गया। हमने मिलकर सबसे पहले पर्दा करना शुरू किया। आरम्भ में पर्दा करना बड़ा कठिन था। धीरे–धीरे हमें इसकी आदत पड़ गई। उसके बाद हमने महसूस किया कि पर्दे की बरकत से धीरे–धीरे मेरी सामाजिक परेशनियाँ दूर हो गई हैं। अब पर्दा मेरे जीवन के कार्यों में कोई रुकावट न था। लेकिन मेरी सहेलियाँ पर्दे को पिछड़ेपन की संज्ञा देती थीं। उनकी नज़र में पर्दे को अपनाना क़ैद होने के बराबर था। वास्तव में यह सब कुछ मुसलमान महिलाओं के ख़िलाफ़ विधर्मियों के प्रोपगंडे का नतीजा है कि पर्दे (जो महिलाओं के आदर–सम्मान का साधन है) को पिछड़ेपन का प्रतीक समझा जाता है। इस समय बहुत से देश नास्तिकों के ग़लत प्रोपगंडों से प्रभावित हैं। कारोबारी संस्थाओं और शैक्षिक केन्द्रों में भी इस प्रकार की समस्याएँ हैं। एक रोज़ मैंने यूनिवर्सिटी के प्रधानाचार्य से कहा कि मैं दुपट्टा ओढ़ कर यूनीवर्सिटी आऊँगी तो वह चुप रहे और किसी प्रकार की नकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, परन्तु यूनिवर्सिटी में अन्य मर्दों का व्यवहार मेरे साथ नीचतापूर्ण था। ऐसा लगता था कि मैं एक बेजान–सी चीज़ हूँ। एक दिन हॉस्टल के मेस में कुछ छात्र मुझे देखकर हँसने लगे और कहने लगे कि अब तो हॉस्टल की नौकरानियाँ हमारे साथ खाना खाती हैं। इस पर मुझे बहुत ग़ुस्सा आया, लेकिन इस्लाम की महानता और पवित्रता के कारण मैं

चुप रही। मैंने प्रण कर लिया कि इस्लाम की ख़ातिर सभी तकलीफ़ें सहन करूँगी।

एक बार मैं अपनी हज यात्रा के सम्बन्ध में मस्जिद गई। वहाँ पर मुझे मुसलमानों की जीवन-व्यवस्था को देखकर बहुत दुख हुआ। वे नाम तो इस्लाम का लेते थे, लेकिन उनके तौर-तरीक़े ग़ैर-मुस्लिमों जैसे थे। अफ़्रीक़ा की औरतें ग़ैर इस्लामी तौर-तरीक़ों और रस्मों को इस्लामी समझती थीं। फिर जिस युवक से मेरा विवाह हुआ उसका व्यवहार भी ग़ैर-इस्लामी था। उसने मुझ पर अनावश्यक और ग़ैर-इस्लामी प्रतिबन्ध लगा रखा था और मुझसे हर समय झगड़ता रहता था। मैं अपने भाई से भी मेल-जोल नहीं रख सकती थी। मेरे परिवार और मेरी सहेलियों का आना-जाना वर्जित था। मैं उसकी इजाज़त के बग़ैर एक क़दम भी न उठा सकती थी। एक बार मेरी एक दोस्त मुझसे मिलने आई। मैं उसको बस पर बिठाने के लिए उसके साथ बस स्टाप पर चली गई। घर आते-आते पन्द्रह मिनट देर हो गई। जब घर आई तो मेरे पति ने गमला उठाकर मेरे सिर पर मारा और गालियाँ देने लगा और मुझे ज़मीन पर घसीटने लगा। अगर ईमान की शक्ति मेरे दिल में न होती तो मैं भी किसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करती। लेकिन मैंने धीरज रखा और दिल में कहा कि यह इसके ईमान की कमज़ोरी है। अन्त में मैं उससे अलग हो गई। तलाक़ और कुछ तथाकथित मुसलमानों के व्यवहार को देखकर मेरा दिल टूट गया। वास्तव में वैवाहिक जीवन को सफल बनाने के लिए नम्रता को अपनाना चाहिए। एक-दूसरे की कमज़ोरियों को नज़र अन्दाज़ करना चाहिए। इस्लामी तहज़ीब के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि एक दिन ऐसा आएगा कि मुसलमान इस्लाम की हक़ीक़त से परिचित होंगे और अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में इस्लामी शिक्षाओं पर अमल करेंगे। वे स्थानीय और ग़ैर-इस्लामी संस्कृति को ठुकरा देंगे।

□□□

31. लेडी ज़ैनब कोब्बोल्ड
(Lady Zainab Cobbold)
(इंग्लैण्ड)

मुझसे अकसर पूछा जाता है कि मैंने कब और कैसे इस्लाम क़बूल किया ? इसका जवाब यह है कि अगरचे मैं 1991 ई० में इस्लाम को अपना चुकी थी, लेकिन मैं नहीं बता सकती कि सबसे पहले मेरे दिल पर इस्लाम का प्रकाश कब और कैसे पड़ा ? सोचती हूँ तो ऐसा लगता है जैसे मैं हमेशा ही से मुसलमान थी। इसका कारण यह है कि इस्लाम वाक़ई इन्सानी प्रकृति की आवाज़ है और जिस प्रकार एक बच्चे को बिल्कुल एकांत वातावरण में अलग–थलग छोड़ दिया जाए तो वह बड़ा होगा तो सारी बुनियादी इन्सानी ख़ूबियाँ अवश्य उसके अन्दर जन्म लेंगी, इसी प्रकार अगर एक इन्सान को, उसका परिवार शिक्षा और वातावरण कृत्रिम रूप से प्रभावित न करे तो उसके अन्दर नैतिक दृष्टि से वही गुण पैदा होंगे जो इस्लाम को अपेक्षित हैं। अतः जैसा कि एक यूरोपीय समीक्षक ने लिखा है कि इस्लाम साधारण बुद्धि (Common Sanse) का धर्म है और मेरी बुद्धि भी जब ईसाईयत पर ग़ौर करती थी तो सहसा पुकार उठती थी कि यह मानव–स्वभाव की आवाज़ नहीं है। त्रिवाद, हज़रत मसीह (अलै०) और मरयम की मूर्तियों की पूजा, जन्म से गुनाहगार होने की धारणा और कफ़्फ़ारा (प्रायश्चित) यह सब कुछ आत्मा की अपेक्षाओं के विपरीत था। अतः मैं ज्यों ही समझदार हुई इन धारणाओं से मैंने विद्रोह का ऐलान कर दिया।

लेकिन इसके बावजूद मैं नास्तिकता से दूर रही। मेरा दिल कहता था कि इस संसार का एक स्रष्टा और मालिक मौजूद है। लेकिन हम उसकी पहचान का रास्ता भूले हुए हैं। अतः सच्चाई की खोज के कारण मैंने धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का इरादा कर लिया और इस संदर्भ में जितनी किताबें मिलीं उनका अध्ययन शुरू कर दिया। इस प्रकार मैं जितना अध्ययन करती गई, उतना ही साथ–साथ विश्लेषण और चिन्तन–मनन भी करती रही फिर मैंने निष्कर्ष निकाला कि सभी धर्मों की तुलना में इस्लाम ही प्रकृति के क़रीब और व्यावहारिक है। वर्तमान काल में हर प्रकार की पेचीदा और कठिन समस्याओं

को हल करने की केवल इसी धर्म में क्षमता है और केवल यही रास्ता है जो इन्सान को शान्ति, वास्तविक आनन्द तथा सुख–शान्ति की मंज़िल तक पहुँचा सकता है।..........अतः इस्लाम के ये अक़ीदे मेरे दिल में बैठ गए कि ख़ुदा एक है, उसका कोई साझी नहीं। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०), हज़रत ईसा (अलै०), हज़रत मूसा (अलै०) और अन्य सन्देष्टा सब अल्लाह के भेजे हुए थे और संसार की कोई क़ौम अल्लाह की हिदायत से वंचित नहीं रही। मुझे इस्लाम का यह अक़ीदा भी प्रकृति के अनुरूप लगा कि हम पैदाइशी गुनाहगार नहीं, बल्कि इसके विपरीत बेगुनाह पैदा किए गए हैं और हमें अपनी मुक्ति के लिए कफ़्फ़ारे की नहीं, बल्कि शुद्ध व्यवहार की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में इस्लाम का यह अक़ीदा भी मेरे दिल में उतर गया कि ख़ुदा और बन्दे में सम्पर्क के लिए किसी माध्यम की ज़रूरत नहीं, ख़ुदा से हम हर जगह, हर समय सम्पर्क कर सकते हैं और अगर हमारे कर्म ठीक न होंगे तो बड़ी–से–बड़ी सिफ़ारिश भी मुक्ति के लिए पर्याप्त नहीं होगी, यहाँ तक कि हज़रत ईसा (अलै०) और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) भी हमें सज़ा से नहीं बचा सकेंगे।

इस्लाम शब्द का अर्थ है ख़ुदा के आगे झुक जाना, उसके आदेशों के सामने नतमस्तक हो जाना। इसका दूसरा अर्थ है शान्ति और चैन। अतः सच्चा मुसलमान वह है जिसकी मर्ज़ी संसार के स्रष्टा की मर्ज़ी से मेल खाए जिसके नतीजे में उसका व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन सच्ची अम्नो–शान्ति से भर जाता है। इस प्रकार इस्लाम दो बुनियादी सच्चाइयों का बेहतरीन संगम है : (1) एकेश्वरवाद और (2) विश्व बन्धुत्व।

इसमें बौद्ध मत या हिन्दू मत की तरह किसी प्रकार का अंधविश्वास या देवी–देवतावाद (Mythology) नहीं और सबसे बढ़कर यह कि यह पूर्णतः सकारात्मक धारणा(Positive Faith) है।

एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के लिए इस्लाम व्यक्ति के अधिकार की असाधारण रूप से सुरक्षा करता है। क़ुरआन किसी के चरित्र को आघात पहुँचाने वाली सुनी–सुनाई बातों को स्वीकार करने से मना करता है :

> और अगर एक व्यक्ति के पास किसी के ख़िलाफ़ हक़ीक़तों पर आधारित कोई इल्ज़ाम है तो भी उसे अवश्य ही ठोस गवाहियाँ प्रस्तुत करनी होंगी। (क़ुरआन, 24 : 6)

वरना ख़ामोश रहना होगा और ग़लत दावे और झूठी गवाही की सूरत में

उसे कड़ी सज़ा का सामना करना होगा।

इस प्रकार इस्लाम हर व्यक्ति को इन्साफ़ की गारंटी देता है और इस उद्देश्य के लिए अल्लाह के अधिकार और बन्दों के अधिकार का एक बाक़ायदा सिद्धान्त बनाया गया है। और इन्सानों के अधिकारों पर इतना ज़ोर दिया गया है कि इस्लामी शरीअत के अनुसार अल्लाह अपने अधिकारों में कुछ छूट दे सकता है, माफ़ कर सकता है, लेकिन जिस व्यक्ति ने इन्सानों के अधिकारों पर डाके डाले होंगे, उसे अल्लाह उस समय तक माफ़ नहीं करेगा जब तक वह आदमी ख़ुद माफ़ न करे, जिस पर अत्याचार हुआ है।

इस्लाम क़बूल करने के बाद मुझे इस्लाम की जिस चीज़ ने सबसे अधिक प्रभावित किया वह हज का हृदय स्पर्शी और मनोरम दृश्य है। सच्चाई के रूप में ढले, विनम्रता, सादगी और ग़ुलामी की पूरी तस्वीर बने दुनिया के कोने-कोने से लाखों लोग इस पाक सरज़मीन पर जमा होते हैं और पूरी सूझ-बूझ के साथ अल्लाह की हम्दो-सना (गुणगान) करते हुए एक ऐसा हृदय स्पर्शी, मनमोहक दृश्य पैदा करते हैं, जिसकी कोई मिसाल नहीं मिलती। इस अवसर पर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की वे सारी कोशिशें और सारी क़ुरबानियाँ मानस-मन में घूमने लगती हैं जो आप (सल्ल०) ने अल्लाह की राह में की थी और जिनकी वजह से मानव-जाति एक बेहतरीन क्रान्ति से अवगत हुई।

वास्तविकता यह है कि हज इस्लाम का बहुत ही महत्वपूर्ण और प्रभावशाली प्रतीक है और मुसलमानों की एकता और एकरंगी का बहुत बड़ा प्रदर्शन है। अत: अगर इस कर्तव्य की मूल भावना सामने रखी जाए और औपचारिकता नहीं बल्कि सूझ-बूझ के साथ उसके कृत्यों (मनासिक) का निर्वाह किया जाए, तो इसके आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। हर वर्ष मुसलमानों को हज के रूप में एक महत्वपूर्ण अवसर प्राप्त होता है, जब ये व्यावहारिक रूप से एक-दूसरे के क़रीब आते हैं, एक-दूसरे की समस्याओं को समझकर उनके समाधान के लिए प्रयास कर सकते हैं और डेढ़ महीने की मशक़्क़त से न केवल अपने आप को आध्यात्मिक और नैतिक रूप से प्रशिक्षित कर सकते हैं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अच्छाई और भलाई के प्रचार का ज़रिया (माध्यम) बन सकते हैं।

□ □ □

32. श्रीमती सारा जोज़फ़

(इंग्लैंड)

श्रीमती सारा जोज़फ़ इंग्लैंड की एक प्रसिद्ध पत्रकार महिला हैं और मुस्लिम यूथ मैगज़ीन ट्रेंड्स (Trends) की सम्पादिका हैं। इस्लाम को अपनाने के बाद उनकी विचारोत्तेजक प्रतिक्रियाएँ लन्दन की प्रसिद्ध पत्रिका इम्पैक्ट (Impact) में प्रकाशित हुईं। जहाँ से मुहम्मद हनीफ़ शाहिद ने अपनी किताब में शामिल कीं। नीचे उनका अनुवाद दिया जा रहा है।

■ ■ ■ ■ ■

यूँ तो मैं इस्लाम से कुल मिलाकर बहुत प्रभावित हूँ और यही चीज़ मुझे इस्लाम के साए में लाई है। लेकिन एक औरत की हैसियत से मैं हज़रत ख़दीजा, आइशा, सुमैय्या और नोसेबा (रज़ि०) जैसी औरतों को ख़िराजे-अक़ीदत (श्रद्धांजलि) पेश करती हूँ जो एक पाकीज़ा सोसाइटी बनाने और न्याय पर आधारित एक क्रान्ति लाने के लिए अपने मुसलमान भाइयों के साथ मिलकर असत्य की शक्तियों से संघर्ष करती रहीं। इस प्रकार मदीना के पुरुष एवं महिलाओं ने अल्लाह के दीन के विकास और उसकी मज़बूती के लिए एकजुट होकर प्रयास किया..........और आज इस ज़माने में हमें भी एक बेहतर, शान्तिप्रिय समाज की स्थापना के लिए मिल-जुलकर कोशिश करनी होगी। मर्दों को भी और औरतों को भी।

मैं ऐसी ब्रिटिश मुसलमान औरत की हैसियत से अपने अनुभव लिख रही हूँ, जो अपने परिवार, माता-पिता के हवाले से इस्लाम से परिचित नहीं हुई, बल्कि जिसका सम्बन्ध बिल्कुल दूसरी दुनिया से है, बल्कि सही शब्दों में आप कह सकते हैं कि मेरा सम्बन्ध फ़िरऔन के घर से है, जिस प्रकार फ़िरऔन के घर में एक ख़ुदा को पहचानने वाली ख़ातून भी थी और एक बच्चा भी जो बाद में मूसा (अलै०) के नाम से अल्लाह का सन्देशवाहक बना, जिन्होंने फ़िरऔन की सज़ा और उसके क्रोध का मुक़ाबला किया, लेकिन सत्य को त्यागने से इन्कार कर दिया। इसी प्रकार आज यूरोप के महलों में मेरी तरह बहुत-से लोग हैं जो वर्तमान काल में 'नई फ़िरऔनियत' का इन्कार कर रहे हैं, सख़्तियाँ झेल

रहे हैं, लेकिन सत्य की राह पर दृढ़ता से डटे हुए हैं........यहाँ अनगिनत लोग ऐसे भी हैं जिन तक अगर हिक्मत और सलीक़े के साथ इस्लाम की दावत पहुँचाई जाए तो वे उसे अपनाने में संकोच नहीं करेंगे, लेकिन अफ़सोस कि सत्य को उनसे छिपाया गया है..... और यह अफ़सोसनाक हरकत यूरोप के मीडिया ने नहीं, बल्कि ख़ुद मुसलमानों ने अंजाम दी है। काश वे इसका एहसास करें।

मैं अपने दृष्टिकोण की व्याख्या यूँ करूँगी कि नस्ली मुसलमानों ने अपने व्यवहार, रहन–सहन और अपने क्रोध पूर्ण मिज़ाज के कारण अपने और ग़ैर–मुस्लिम दुनिया के बीच ऐसी दीवार खड़ी कर दी है जो दावत और प्रचार–प्रसार के रास्ते की बहुत बड़ी रुकावट बन गई है।

मैं यह नहीं कहती कि ग़ुस्सा न किया जाए, ग़ुस्सा एक स्वाभाविक चीज़ है और जब माँओं, बहनों, बेटियों, वृद्धों और बच्चों और युवकों से क्रूरता का व्यवहार किया जा रहा हो ज़ुल्म–ज़्यादती का बाज़ार गर्म हो और दुराग्रह तथा तंगनज़री व पक्षपात का रवय्या जारी हो तो ग़ुस्सा अवश्य आएगा, लेकिन मैं कहना चाहूँगी कि ग़ुस्सा दावत और प्रचार–प्रसार के रास्ते की बहुत बड़ी रुकावट है। इस्लाम का प्रचार हर मुसलमान पर फ़र्ज़ है और क़ुरआन में जगह–जगह इसका बयान है और पैग़म्बरे–इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने इसकी बहुत ताकीद फ़रमाई है। क़ुरआन में है, ''लोगों को अल्लाह के रास्ते की ओर बुलाओ हिक्मत और अच्छे तरीक़े के साथ।'' (क़ुरआन 16 : 125) और मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया : ''हर मुसलमान के लिए एक सीमा है, जिसकी उसे अवश्य ही रक्षा करनी है।'' और मेरे नज़दीक दावत और तबलीग़ यूरोप में रहने वाले हर मुसलमान के लिए मानो एक सीमा है, जिसकी सुरक्षा करना उसके लिए आवश्यक है। यह हमारा मौलिक कर्तव्य है जिसे पूरा करने में हमसे कोताही कदापि नहीं होनी चाहिए।

अतः मेरे नज़दीक जो लोग उठते–बैठते यूरोप को बुरा–भला कहते हैं और 'इस्लाम बनाम पश्चिम' का नारा लगाते हैं, वे यूरोप में इस्लाम की मंज़िल को क्षतिग्रस्त करते हैं। वे बिना किसी फ़र्क़ व अपवाद के सारे यूरोप को इस्लाम का दुश्मन साबित करते हैं और ये नारे यूरोपवासियों के दिलों में नफ़रत और दुश्मनी पैदा करते हैं। वे ठीक ही जवाब देते हैं कि जब हमसे

खुली नफ़रत की जाती है तो हम इस्लाम को क्यों अपनाएँ ? उनका धर्म क्यों ग्रहण करें, जो हमसे विमुख और नफ़रत करने वाले हैं ?

अतः विश्वास कीजिए कि अगर इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व मैंने उपर्युक्त प्रकार के नारे सुने होते, इस प्रकार के लेखों से परिचित हुई होती तो कभी मुसलमान न होती। लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि मैंने नस्ली मुसलमानों के व्यवहार को नहीं देखा, बल्कि सीधे क़ुरआन और सुन्नत का अध्ययन किया और इस्लाम के चमत्कार ने मुझे अपना ग़ुलाम बना लिया.....और यह केवल मेरा ही एहसास नहीं, मुझे बहुत–से नवमुस्लिमों से मिलने का अवसर मिला है और उन सबकी यही राय है कि हम मुसलमानों की वजह से नहीं, बल्कि इस्लाम को देखकर मुसलमान हुए हैं। यह दर्दनाक दृश्य इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के चरित्र और आचरण से कितना भिन्न है कि अनगिनत लोग आप (सल्ल०) के पाकीज़ा और आदर्श चरित्र से प्रभावित होकर मुसलमान हो गए। आप (सल्ल०) के सब्र, दयानतदारी और बहुत सख़्त मुख़ालफ़त में भी आप (सल्ल०) की न्यायप्रियता और सन्तुलित नीति विरोधियों को प्रभावित किए बिना नहीं रहती थी।

अन्दाज़ा कीजिए कि एक मुख़ालिफ़ बुढ़िया पैग़म्बर (सल्ल०) के रास्ते में कांटे बिछा दिया करती थी और जब वे उधर से गुज़रते तो उन पर कूड़ा फेंक देती, लेकिन पैग़म्बर (सल्ल०) उससे उलझे बग़ैर चुपचाप और सब्र से आगे बढ़ जाते थे। यह बुढ़िया का रोज़ाना का काम था। लेकिन फिर यूँ हुआ कि एक–दो–दिन इस मामूल में फ़र्क़ आ गया। बुढ़िया घर से बाहर न निकली तो आप (सल्ल०) ने उसके बारे में मालूम किया। पता चला कि वह बीमार है तो आप (सल्ल०) उसके घर गए। उसकी ख़ैरियत पूछी और कुछ सहायता भी की। इस पर बुढ़िया का व्यवहार बिल्कुल बदल गया। उसकी नफ़रत मुहब्बत में बदल गई और वह मुसलमान हो गई।

लेकिन आह ! आज मुसलमानों का अपने पड़ोसियों और आम मुसलमानों के साथ कैसा व्यवहार है ? कोई मामूली से विरोध को व्यक्त कर दे तो हम क्रोधित होकर उससे सम्बन्ध तोड़ लेते हैं। हम यह कहते हुए कि ''अपना बचाव करना अत्याचार नहीं है'' दूसरों की मुख़ालफ़त में और अधिक मुख़ालफ़त के जवाब का प्रदर्शन करते हैं और भूल जाते हैं कि पैग़म्बर (सल्ल०) का

तरीक़ा ऐसे हालात में क्या था? यह सच है कि आत्मरक्षा अत्याचार नहीं होता, लेकिन फिर सब्र, बर्दाश्त, हिक्मत और इन्तिज़ार किस चीज़ का नाम है और आख़िर विरोधियों को हम किस प्रकार और क्योंकर इस्लाम के क़रीब लाएँगे? आप (सल्ल०) की जीवनी में तो सब्र......लगातार सब्र.... प्रमुख विशेषता के रूप में नज़र आता है। क्षमा कर देना आपका सबसे बड़ा हथियार था। हम ये विशेषताएँ क्यों छोड़ बैठे हैं? हमने इस हथियार को क्यों कुन्द कर दिया है?

याद रखिए हमने पश्चिम को सामूहिक रूप से अपना दुश्मन क़रार दे दिया है। यह बिल्कुल नकारात्मक रवैया है। हमारी नज़र केवल ख़राबियों पर है और ख़ूबियों को नज़रअन्दाज़ करके बहुत बड़ी ग़लती कर रहे हैं.... हमें यह हक़ीक़त सामने रखनी चाहिए कि इस्लाम पूरी मानव-जाति की पूँजी है। इस पर किसी ख़ास क़ौम का अधिकार नहीं और हमें यह पूँजी दूसरों तक स्थानान्तरित करने की अपनी हद तक कोशिश करनी है और यह कोशिश मुहब्बत, सब्र, हिक्मत, मेहनत और इन्तिज़ार ही से पूरी होगी.... नारेबाज़ी, नफ़रत की मुहिम और विरोधपूर्ण प्रोपगेण्डा उसके रास्ते में ख़तरनाक रुकावट बन जाएगा और हम नुक़सान के लिए जवाबदेह होंगे।

□□□

33. श्रीमती सईदा नामियर

(Mrs. Saeeda Namier)

(रूस)

मैं रूस के एक तातार गाँव में पैदा हुई। मेरी माँ का सम्बन्ध मुसलमान घराने से था, मगर उसने एक ईसाई डॉक्टर से शादी कर ली और इस्लाम को छोड़कर ईसाईयत इख़्तियार कर ली, क्योंकि उस समय रूस में कोई ईसाई दूसरे धर्म की औरत से विवाह नहीं कर सकता था..... धर्म छोड़ने के बावजूद मेरी माँ न तो कभी चर्च गई और न उसने ईसाईयत की रस्मों और अक़ीदों पर अमल किया, बल्कि मुझे बहुत अच्छी तरह याद है कि जब मैं बहुत छोटी थी तब मेरी माँ जब भी अकेली होती वह मुसलमानों वाली दुआएँ पढ़ती रहती। हमारे घर के क़रीब ही एक मस्जिद भी थी, जहाँ पाबन्दी से पाँच बार अज़ान होती और मैं लोगों को मस्जिद में नमाज़ पढ़ते हुए देखा करती...... मैंने अपने बचपन में यह भी देखा कि तातार मुसलमान साफ़-सुथरे, संजीदा और बावक़ार थे, जबकि पड़ोस के ईसाई देहात के लोग शराब के रसिया थे और अपनी बदज़ौक़ी और वहशत की वजह से बदनाम थे।

मेरी उम्र कुछ अधिक न थी, जब मेरे पिता का देहान्त हो गया था और मेरा पालन-पोषण रूस की एक सरकारी संस्था की देख-रेख में होने लगा। जहाँ किसी धर्म और नैतिक मूल्यों का कोई अमल-दख़ल न था और सच्ची बात यह है कि ख़ुद मुझे भी उस समय आध्यात्मिक या धार्मिक मूल्यों की कुछ भी परवाह न थी...... किन्तु यह मेरा सौभाग्य है कि जब रूस में क्रान्ति के बाद मैं इस देश से फ़रार होकर पहले इंग्लैंड, फिर अमरीका पहुँचा गई और आज़ाद माहौल में साँस लेने लगी और सोचने-समझने का मौक़ा मिला तो मैं इस नतीजे पर पहुँची कि जीवन बिना किसी उद्देश्य के नहीं व्यतीत होना चाहिए, इसके कुछ मार्गदर्शक सिद्धान्त होने चाहिएँ और किसी प्रकार का नैतिक सिद्धान्त भी। अत: मैंने ईसाईयत का अध्ययन आरम्भ किया, लेकिन बुद्धि के साथ-साथ अंधविश्वास की मिलावट ने मुझे बहुत परेशान किया और

यह धर्म मेरी आत्मा को अपील न कर सका। ईसाईयत के बुनियादी सिद्धान्त समझ से बाहर थे। हज़रत ईसा को पूज्य और (हर इन्सान के) पैदाइशी गुनाहगार होने का अक़ीदा और गुनाह स्वीकार करने का अनोखा फ़लसफ़ा.... ऐसा लगा जैसे ख़ुदा हज़रत मसीह की भारी-भरकम शख़्सियत के नीचे दब गया हो। मेरी समझ में नहीं आता था कि एक व्यक्ति की मौत आख़िर सारे इन्सानों के पापों का प्रायश्चित कैसे बन सकती है, चाहे वह शख़्सियत कितनी भी आदरणीय, पाक और महान क्यों न हो। जबकि स्थिति यह है कि इन्सान लगातार और नियमित रूप से गुनाह किए जा रहे हैं। मुझे यह फ़लसफ़ा बिल्कुल ही बेजान और बोदा नज़र आया।

ईसाईयत से मायूस होकर मैं प्राकृतिक रूप से इस्लाम की ओर मुड़ी— प्राकृतिक रूप से इस कारण कि माँ के सम्बन्ध से इस्लाम मेरे दिल के कोने में छुपा था। अतः जब मैंने इस्लाम का अध्ययन शुरू किया तो मानो अपनी खोई हुई मंज़िल की ओर पलटी और ज्यों-ज्यों मैंने क़ुरआन को ध्यानपूर्वक पढ़ा और इस्लाम के विषय में मुस्लिम लेखकों की पुस्तकों का अध्ययन किया, मैं इस्लाम की सुन्दरता और उसकी अनगिनत ख़ूबियों को मानने को बाध्य होती चली गई। मुझे विश्वास हो गया कि इस्लाम ही सच्चा दीन (सत्य धर्म) है और जो व्यक्ति भी निष्पक्ष रूप से आँखें खोलकर इसका अध्ययन करेगा, वह इसकी विशेषताओं से प्रभावित हुए बग़ैर नहीं रह सकता। अतः मैंने देखा कि इस्लाम जीवन के तथ्यों और वैज्ञानिक खोजों को स्वीकार करता है और इन्सानी मनोविज्ञान और प्राकृतिक आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखता है, जबकि ईसाईयत के बारे में चाहे जितनी डींगें मारी जाएँ यह धर्म असन्तुलन का शिकार है। इसी लिए मानो यह संन्यास (रहबानियत) की शिक्षा देता हुआ नज़र आता है और इन्सान के बुनियादी तक़ाज़ों की खुली मुख़ालिफ़त करता है या फिर उन इन्सानी ज़रूरतों और भौतिक आवश्यकताओं से समझौते की ख़ातिर कपटाचार और दोरुख़ेपन पर आधारित ऐसी नैतिक व्यवस्था प्रस्तुत करता है जो देखने में तो ठीक नज़र आती है, लेकिन अन्दर से झूठ, छल-कपट के अलावा कुछ नहीं। और इस अमल ने सारी ईसाई क़ौम को अत्याचार, छल-कपट, सिद्धान्तहीनता, बे-उसूली और अनाचार और भौतिकवाद से लथपथ कर दिया है। मानवता के लिए ये जातियाँ नासूर बन गई हैं और ज़ाहिरी

चमक–दमक के साये में इन्होंने संसार को अज्ञानता और युद्धों के अलावा कुछ नहीं दिया। इसके विपरीत इस्लाम का अध्ययन कीजिए। कितनी साफ़–सुथरी, स्वाभाविक और बेजोड़ हैं इसकी शिक्षाएँ। इनके अनुसार मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य अल्लाह की प्रसन्नता प्राप्त करना और उसकी शिक्षाओं पर अमल करते हुए चरित्र एवं आचरण के उच्चतम शिखर पर पहुँचना है। यहाँ न देवमालाई आस्थाएँ (Theological Dogmas) हैं न मुक्ति के लिए किसी जादूई मंत्रों (फ़ार्मूलों) का अमल–दख़ल है। यहाँ तो पूरे जीवन के मार्गदर्शन का एक साफ़–सुथरा सिद्धान्त और रौशन सीधा मार्ग है, जिसमें न इन्सानी बुद्धि का इन्कार है न मनुष्य की स्वाभाविक अपेक्षाओं का विरोध किया जाता है और मैं नहीं समझती कि किसी समझदार व्यक्ति के दिमाग़ की पहुँच से ये बातें दूर हैं। यही कारण है कि जब इस्लाम के यूरोपीय आलोचकों को और कोई एतिराज़ नहीं मिलता तो वे मुस्लिम देशों की जनता में कीड़े निकालते हैं और उन्हें इस्लाम के सर मढ़ देते हैं और जान–बूझकर इस हक़ीक़त से आँखें बन्द कर लेते हैं कि मुस्लिम जनता की नैतिक और सामाजिक बुराइयाँ इस्लामी शिक्षाओं के कारण नहीं, बल्कि अत्यधिक निर्धनता और अज्ञानता के कारण हैं, जिनमें बहुत–से अन्तर्राष्ट्रीय और राजनैतिक कारक क्रियाशील रहे हैं।

अल्लाह का शुक्र है कि मैंने ख़ूब सोच–समझकर शऊरी तौर पर इस्लाम को स्वीकार किया है— और अब उसकी बरकतों से फ़ायदा उठा रही हूँ...... किन्तु मुझे इस बात का बहुत अफ़सोस है कि मैं इस शुद्ध स्रोत पर बहुत देर के बाद पहुँची। काश, मैं इस्लाम धर्म को बहुत पहले पहचान जाती और मेरा वुजूद इस्लाम और इस्लाम के मानने वालों के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता। अल्लाह का शुक्र है, मैं बहुत ख़ुश हूँ और एक सच्चे मुसलमान का जीवन व्यतीत करने का प्रयास कर रही हूँ।

□ □ □

34. श्रीमती सकीना

भूतपूर्व जर्मन अभिनेत्री कारला बारटेल (जर्मनी)

प्रस्तुत लेख दैनिक ''इमरोज़'' लाहौर के जुमा मैगज़ीन (10 सितम्बर 1982 ई०) में प्रकाशित हुआ था। यहाँ हम अनुवाद और सारांश मुहम्मद मंशा साहब के शुक्रये के साथ पेश कर रहे हैं।

■ ■ ■ ■

कारला बारटेल फ़िल्म और स्टेज की बड़ी प्रसिद्ध जर्मन अभिनेत्री थी। उसके अपने देश जर्मनी के प्रत्येक भाग में उसके लाखों चाहने वाले मौजूद थे। लेकिन इस ख्याति और चमक-दमक के बावजूद यह प्रसिद्ध और सुन्दर अभिनेत्री ख़ुद को अत्यन्त असन्तुष्ट महसूस करती थी। उसे किसी खोई हुई चीज़ की तलाश थी, जो उसकी आत्मा और अन्तःकरण के ख़ालीपन को भर दे, जो उसके जीवन को सार्थक और उद्देश्यपूर्ण बना दे।

उसे यह खोई हुई वस्तु केवल इस्लाम में मिली। आज अस्सी वर्ष की उम्र में वह बताती है कि अल्लाह ने किस तरह उसकी रहनुमाई की और कैसे उसकी ज़िन्दगी के दिन-रात इस्लाम की रौशनी से रौशन कर दिए।

यूरोप की हर नवमुस्लिम औरत अपने बारे में बताती है कि उसने किस प्रकार इस्लाम क़बूल किया। इस्लाम की ओर से उनका जो सही मार्गदर्शन हुआ, उसके प्रति हर एक का अनुभव अलग और बेमिसाल है। यह अनुभव उन्हें वर्षों की उलझनों और तलाश के बाद प्राप्त हुआ और जिस शान्ति की तलाश उन्हें लम्बे समय से थी, वह आख़िर कई वर्षों बाद इस्लाम के रूप में मिल गई।

''अरब न्यूज़'' के एक समाचार पत्र ''अल-मुस्लिमून'' का प्रतिनिधि इस जर्मन मुस्लिम औरत से मिला, जिसने फ़िल्म और स्टेज की प्रसिद्ध अभिनेत्री की हैसियत से अपनी ख्याति के चरम बिन्दु पर होते हुए आत्मा की शान्ति की ख़ातिर ख्याति का ताज अपने सिर से उतार दिया था और इस्लाम स्वीकार करके घर में बैठ गई। उसके पास भौतिक सुख-सुविधा की सभी नाशवान

वस्तुएँ मौजूद थीं और वह लाखों लोगों की निगाहों का केन्द्र थी। यह सब कुछ होने के बावजूद वह अपने अन्दर किसी चीज़ की कमी महसूस करती थी, ऐसी कमी जिसने इस अभिनेत्री के अन्दर एक ज़बरदस्त रूहानी ख़ला पैदा कर दिया था।

अल्लाह ने किस प्रकार उसकी रहनुमाई की और किस प्रकार ईमान की रौशनी ने उसके दिल को रौशन करके उसके जीवन को सार्थक बना दिया, इस सम्बन्ध में वह अपनी कहानी इस प्रकार बयान करती है :

1924 ई० में मैंने बर्लिन में अभिनय-कला सीखी और कई ड्रामों में अभिनय किया। मैंने हॉलीवुड में चार फ़िल्मों और जर्मनी में दस फ़िल्मों से अधिक में काम किया था। इस प्रकार मेरे पास न दौलत की कमी थी, न शोहरत की। मेरे लाखों चाहने वाले थे। और मुझे हर प्रकार की सांसारिक सुख-सुविधाओं और उपभोग की वस्तुएँ प्राप्त थीं, परन्तु अजीब बात है कि इस सब कुछ के होते हुए मेरे जीवन में शान्ति और सच्ची ख़ुशी नहीं थी और अन्दरूनी बेचैनी और रूहानी बेकली (बेक़रारी) मुझे हर समय डँसती रहती थी। एक भयानक शून्य था, जिसमें मैं भटकती रहती थी।

तंग आकर मैंने धर्म की छाया में शरण लेने का प्रयास किया। रविवार को चर्च जाने लगी। परन्तु इस बेकली में तनिक भी कमी न आई और चर्च की उपासना रूहानी प्यास का कोई इलाज न कर सकी। बाईबल की शिक्षा, ईसाईयत के अक़ाइद और धार्मिक लीडरों का चरित्र, अपने धर्म की कोई बात भी तो मुझे मुत्मइन और सन्तुष्ट नहीं कर रही थी।

तब मैंने सोचा कि आख़िर सच्चाई की खोज मैं स्वयं क्यों न करूँ ? इसके लिए जो बेहतरीन तरीक़ा समझ में आया वह यह था कि दूसरे देशों की यात्रा करके मैं वहाँ के लोगों में घुल-मिल जाती और उनके जीवन का क़रीब से निरीक्षण करती थी। 1934 ई० में हिटलर ने जर्मनी में धनवान लोगों के लिए देश से बाहर जाने पर रोक लगा दी थी। इसके बावजूद मैंने अपने जानने वाले की सहायता से, जो जर्मन सरकार का कर्मचारी था, देश को छोड़ने का फ़ैसला किया। उसने मुझे मुसोलीनी के ज़रिए देश से बाहर जाने की अनुमति दिला दी, वरना मुझे जर्मनी से बाहर जाने का अवसर न मिलता....फ्रांसीसियों ने मुझे

ट्यूनिश में बन्द करके बहुत परेशान किया, लेकिन कुछ समय बाद मुझे शहर में घूमने–फिरने की इजाज़त मिल गई। कुछ दिनों बाद मैं मिस्र चली गई। क़ाहिरा में मस्जिदों की मीनारों से बुलन्द होती अज़ानों से मैं बहुत प्रभावित हुई। मेरे दिल में इस्लाम के बारे में अधिक–से–अधिक जानकारी प्राप्त करने की इच्छा पैदा हुई और बढ़ते–बढ़ते यह इच्छा एक तड़प का रूप धारण कर गई।

इस्लाम से परिचय हुआ तो मुझे महसूस हुआ जैसे मैं मुसलमान ही पैदा हुई थी, हालाँकि मेरे माँ–बाप ईसाई थे और उन्होंने मुझे बचपन से रोमन कैथोलिक मज़हब के सिद्धान्तों के अनुसार प्रशिक्षण दिया था। ईसाईयों के त्रिवाद के अनुसार मेरे माता–पिता, बाप बेटे और रूहुल क़ुदुस (पवित्र आत्मा) के एक होने पर यक़ीन रखते थे, जिस पर मुझे हमेशा भ्रम होता था, इसके अतिरिक्त मुझे इस बात पर भी यक़ीन नहीं आता था कि ख़ुदा का कोई बेटा हो सकता है। अतः इस्लाम की सच्चाई साबित होने पर मैंने मुसलमान होने का एलान कर दिया, जिससे मुझे सच्ची सन्तुष्टि प्राप्त हुई। मैंने अपने लिए सकीना नाम पसन्द किया। इसके बाद मैं मिस्री जनता के साथ घुल–मिलकर उनसे बातचीत करती और अज़हर विश्वविद्यालय में जाकर इस्लाम के बारे में अपनी जानकारी में वृद्धि करती। मुझे विश्वास हो गया था कि मैं मुसलमान पैदा हुई हूँ और मुझे एहसास हो गया कि इस्लाम ही प्राकृतिक धर्म है और मानव जीवन के सभी भौतिक और आध्यात्मिक मसलों का हल इस्लाम में मौजूद है।

मैंने सहरा–ए–सीना की यात्रा की और कुछ समय मिस्र के देहात में गुज़ारा। मैं मिस्र के किसानों के क़बीले फ़लाहीन के साथ भी रही। कुछ समय बाद मैं बर्लिन वापस आई और फिर मैंने फिनलैण्ड की यात्रा की और इस पर एक किताब लिखी। फिर मैं सऊदी अरब गई और वहाँ एक सऊदी परिवार के साथ छः महीने रही।

जब सकीना से उन चीज़ों के बारे में पूछा गया जिन्होंने उन्हें मिस्र और सऊदी अरब में निवास के दर्मियान (बीच) प्रभावित किया तो उन्होंने कहा कि मैंने इस विषय में एक किताब लिखी है जो अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। किन्तु मैं मिस्र के एक गांव में रहती थी तो ऐसा लगता था जैसे मैं स्वर्ग में रह

रही हूँ।

वे मिस्री किसान जिनके साथ मैं रहती थी। अपने सादा जीवन से बहुत ख़ुश थे। यह सच है कि वे पुराने ढंग से जीवन व्यतीत करते थे और अपनी इबादत के तरीक़े अर्थात् नमाज़ पढ़ने के लिए मस्जिद में जमा होकर बड़ी संजीदगी और वक़ार के साथ अल्लाह के आगे झुकते थे। जो कुछ मैंने अपने देश और अन्य देशों में देखा उसकी तुलना करते हुए मैं समझती हूँ कि पश्चिम में अधिकांश लोग हर प्रकार की भौतिक सुख–सुविधाओं के बावजूद अन्दर से ख़ुश नहीं हैं और उनका जीवन बहुत ही तारीक (अन्धकारमय) हो चुका है। लेकिन मैं जिन मुसलमान देशों में गई वे भौतिक रूप से इतने ख़ुश नहीं थे जितने आध्यात्मिक रूप से ख़ुश नज़र आते थे। वर्तमान काल की आरामदायक वस्तुओं की कमी पर वे कभी परेशान नहीं देखे गए। मैंने ख़ुद अपनी आँखों से संयुक्त परिवारों को एक साथ रहते देखा है और इस विशेषता का यूरोप में बिल्कुल अभाव नहीं है। मुसलमानों में दादा और दादी का पूरा परिवार बहुत आदर करता है और इन बुज़ुर्गों को परिवार में बड़ा सम्मान और महत्व प्राप्त है। ख़ानदान के सभी लोग अपने बुज़ुर्गों का आदर करते हैं, जबकि यूरोप में बूढ़े माँ–बाप को औलाद नहीं पूछती और ये बेचारे जीवन के अन्तिम दिन बहुत तन्हाई और तकलीफ़ें झेलकर मर जाते हैं।

मैंने यह भी देखा कि इस्लाम के दुश्मन जिस बात का दावा करते हैं वह इसके बिल्कुल विपरीत था। इस्लाम ने औरत को समाज में बुनियादी अधिकार दिए हैं। यूरोप में एक तो लोग इस बहुमूल्य धर्म के बारे में कुछ जानते ही नहीं और जो बुरा–भला जानते हैं तो केवल इतना कि यह वहशी और असभ्य लोगों का धर्म है। अफ़सोस कि ये लोग सदियों से इस्लाम के बारे में कितनी ग़लतफ़हमियों का शिकार हैं। हक़ीक़त यह है कि अगर इन पर इस्लाम की तमाम ख़ूबियाँ और बरकतें रौशन हो जाएँ तो ये एक क्षण भी इससे दूर नहीं रह सकते। ज़रूरत इस बात की है कि यूरोप और अमेरिका में इस्लाम का विस्तृत रूप में प्रचार–प्रसार किया जाए।

इस्लामी कला के सम्बन्ध में सकीना ने कहा कि इस्लामी संस्कृति बहुत महान है और इस्लामी कला का प्रदर्शन पुरानी मस्जिदों से होता है जो संस्कृति

एवं ज्ञान के केन्द्र हैं। मुसलमानों ने लकड़ी और शीशे पर नक़्क़ाशी के बड़े ठोस चिह्न छोड़े हैं। कला के जिस मैदान में वे रुचि लेते उसमें असाधारण महारत हासिल कर लेते। उन्होंने अरबी सुलेख की नई कला का विकास किया, यहाँ तक कि यूरोपीय शिल्पी भी इससे प्रभावित हुए और वे अरब चित्र कला को 'आराइश' के नाम से पुकारते हैं। इस्लामी कला(Art) अपनी रचनात्मकता की चरम सीमा को पहुँच चुकी है। जिसकी संज्ञा भवनों को गहनों से सुसज्जित करने से दी गई है। मस्जिदों और महलों में इस्लामी चित्रकारी की यह कला अपने चरमोत्कर्ष पर नज़र आती है और इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं, क्योंकि सच्चाई अपना प्रमाण स्वयं होती है।

□ □ □

35. सुमैया बार्टिन केली

(अमेरिका)

प्रस्तुत लेख कराची की साप्ताहिक पत्रिका "ख़त्मे-नुबुव्वत" (6 अक्टूबर 1992 ई०) में प्रकाशित हुआ था। वहीं से उद्धृत किया जा रहा है।

▪ ▪ ▪ ▪

बार्टिन केली एक सीधी-सादी और नेक तबीयत लड़की थी। वह अमेरिका की गुमराह सोसाइटी में ख़ुद को अकेली महसूस करती थी। जब बार्टिन केली की उम्र तेरह वर्ष की थी, उस समय उसने अपनी माँ से कई बार यह बात कही थी कि वह बड़ी होने पर अमरीका में नहीं रहेगी। उसकी माँ इसका कारण पूछती तो केली कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे पाती थी। वह सिर्फ़ इतना कहती थी कि उसकी अन्तरात्मा कहती है कि यह समाज उसके लिए नहीं है।

बार्टिन केली बड़ी पाबन्दी से गिरजा घर जाती थी, बाइबल का अध्ययन करती थी और बाइबल पर लेक्चर भी देती थी। वह गिरजा घरों और अन्य समारोहों में दुआइया नग़मे (प्रार्थना-गीत) भी गाती थी। केली के माता-पिता अपनी बेटी के धर्म के प्रति श्रद्धा एवं प्रेम से बहुत ख़ुश थे। वे कहते थे कि वर्तमान अमेरिकी माहौल में जहाँ नई उम्र के लड़के और लड़कियाँ जिन्सी आवारगी और मादक वस्तुओं के सेवन में डूबे हुए हैं। वहाँ एक लड़की ऐसी भी है, जो स्वयं को इस गन्दगी से अलग रखे हुए है और वह उनकी बेटी है। बार्टिन केली ने कभी शराब का एक घूँट भी नहीं पिया था हालाँकि शराब की नदी उसके चारों ओर बह रही थी। मादक वस्तुओं के सेवन का ख़याल तो उसके दिमाग़ के किसी कोने में भी पैदा नहीं हुआ था। वह अपने ईसाई धर्म पर बड़ी सख़्ती से क़ायम थी।

वह समझदार हुई तो उसके मन में अमेरिकी समाज की बहुत-सी बातों के ख़िलाफ़ सवाल उठने लगे। वह प्रायः यह सवाल करती थी कि अमेरिकी समाज में ऐसी बातों पर खुल्लम-खुल्ला क्यों अमल हो रहा है, जो बाइबल की शिक्षाओं के बिल्कुल ख़िलाफ़ हैं। उसने जब अपने माता-पिता और पादरियों से इस विषय में सवाल किए तो वे उनका जवाब नहीं दे सके और

उन्होंने कहा कि बाइबल की शिक्षाओं के विपरीत अमेरिकी समाज में जो कुछ हो रहा है, वह समय के बदलाव के कारण है। आज के हालात पिछले ज़माने के हालात से बहुत अलग हैं। बार्टिन ने ख़ुद से यह सवाल करना आरम्भ कर दिया कि क्या ऐसा मज़हब सच्चा मज़हब हो सकता है, जो हालात को बदलने के बजाए ख़ुद बदल जाए? वह इस सवाल पर बहस करती थी, लेकिन इन बहसों का कोई सन्तोषजनक नतीजा नहीं निकला और बार्टिन केली की बेचैनी बढ़ती गई। अपने सवालों का जवाब मालूम करने के लिए उसकी कोशिश जारी रही। उसको यक़ीन था कि एक न एक दिन उसको अपने सवालों का जवाब ज़रूर मिलेगा।

जब बार्टिन केली यूनिवर्सिटी में दाख़िल हुई तो उस समय तक उसे इन सवालों का जवाब नहीं मिला था। उसकी बेचैनी बहुत बढ़ गई थी और उसने यह कहकर स्वयं को अपने ख़ुदा के हवाले कर दिया था कि वह उसको रौशनी दिखाए। इसी बीच एक दिन बार्टिन केली यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी में अख़बारों का अध्ययन कर रही थी, तो उसकी नज़र एक अख़बार में प्रकाशित एक निबन्ध पर जाकर रुक गई। निबन्ध रमज़ान और रोज़े के बारे में था। बार्टिन केली ने इस्लाम और मुसलमानों के बारे में कभी कोई अध्ययन नहीं किया था। इस्लाम के बारे में उसका अपना कोई मत नहीं था। और अमेरिकी मीडिया के प्रोपगंडे के कारण उसके ज़ेहन में मुसलमानों के बारे में जो विचार बना था, वह यह था कि हर मुसलमान हिंसा को पसन्द करता है। रमज़ान और रोज़े के विषय में लेख पढ़ने के बाद बार्टिन केली के ज़ेहन में इस्लाम के विषय में कुछ और जानकारी हासिल करने का शौक़ पैदा हुआ। वह यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी में काफ़ी तलाश के बाद इस्लाम के बारे में दो किताबें हासिल करने में कामयाब हो गई। दोनों किताबों के लेखक ईसाई थे और दोनों में इस्लाम के ख़िलाफ़ नफ़रत का प्रचार था। लेकिन बार्टिन केली एक शिक्षित और बुद्धिमान लड़की थी। उसने इन लेखकों की राय को नज़रअन्दाज़ करके उन बातों पर विचार करना आरम्भ कर दिया, जिन पर वे आलोचना और हमले कर रहे थे।

बाद में बार्टिन केली ने इस्लाम के बारे में कुछ और लिट्रेचर हासिल कर लिया और उसका अध्ययन करने के बाद उसके दिल में यह ख़याल पैदा हुआ कि कहीं यही वह मंज़िल तो नहीं है जिसकी तलाश में वह वर्षों से भटक रही

है। कुछ समय के बाद केली का ख़याल पक्का हो गया कि उसको जिस मंज़िल की तलाश थी, वह इस्लाम ही है। अब उसके सामने यह समस्या खड़ी हो गई कि इस्लाम किस प्रकार स्वीकार किया जाता है। इस समस्या के समाधान के लिए वह वाशिंगटन स्थित स्टील नामक स्थान पर मौजूद इस्लामी सेंटर पहुँची। उसने पाँच पृष्ठों पर आधारित एक प्रश्न पत्र सेंटर के एक प्रभारी के सामने रखा और उसका जवाब माँगा। उसका एक महत्वपूर्ण सवाल हज़रत ईसा (अलैहि०) के बारे में था। केली को जब मालूम हुआ कि इस्लाम में हज़रत ईसा (अलैहि०) को अन्य नबियों और पैग़म्बरों के बराबर दर्जा हासिल है तो उसके दिल को बड़ी शान्ति मिली। कुछ दिनों बाद बार्टिन केली ने उसी इस्लामी सेंटर में इस्लाम को स्वीकार कर लिया और वह बार्टिन केली से सुमैया बार्टिन केली हो गई।

उसने इस्लाम स्वीकार किया तो यूनिवर्सिटी की छुट्टियाँ चल रही थीं। यूनिवर्सिटी की छुट्टियाँ आरम्भ होने पर वह ईसाई थी और जब यूनिवर्सिटी दोबारा खुली तो वह मुसलमान थी। यूनिवर्सिटी के दूसरे छात्रों को जब बार्टिन केली के इस्लाम क़बूल करने की सूचना मिली तो माहौल में सनसनी फैल गई। उसका सातिर (पर्दे वाला) लिबास देखकर छात्रों एवं छात्राओं को बड़ा दुख हुआ और उसका नमाज़ पढ़ना तो उनके लिए बिल्कुल ही असहनीय हो गया। सुमैया बार्टिन केली पर्देदार लिबास पहनने के साथ-साथ अपना सिर रूमाल से ढक लेती थी। उसको अधनंगेपन वाले लिबास की जगह पर्देदार लिबास पहनने में कोई कठिनाई नहीं होती थी, क्योंकि वह पर्देदार लिबास को इस्लामी अक़ीदे का हिस्सा समझ कर क़बूल कर चुकी थी।

मुसलमान बनने के पाँच वर्षों तक सुमैया अमेरिका में रही। उसने यह अवधि बहुत मुश्किल हालात में गुज़ारी। इस्लाम स्वीकार करने के कारण उसके मित्रों ने उसका बायकॉट कर दिया और पर्देदार लिबास के कारण उसको नौकरी से हटा दिया गया। सौभाग्य से उसकी मुलाक़ात एक सऊदी परिवार से हो गई, जो अमेरिका आया हुआ था। नव मुस्लिम सुमैया और उस सऊदी परिवार के बीच बहुत जल्द सम्पर्क स्थापित हो गया और सम्बन्ध मज़बूत हो गए। उस परिवार की एक औरत ने अंग्रेज़ी न जानने के बावजूद यह अन्दाज़ा लगाया कि सुमैया को बुनियादी इस्लामी शिक्षाओं की बहुत ज़रूरत

है। उस औरत ने इशारों की भाषा में सुमैया को यह बताया कि नमाज़ किस प्रकार पढ़ी जाती है और पर्दा किस तरह किया जाता है। उस औरत ने सुमैया को सही मानों में एक मुसलमान औरत बनाया और सुमैया उस सऊदी परिवार में उसके एक सदस्य की तरह घुल–मिल गई। वह सऊदी परिवार सुमैया के लिए एक बहुत बड़ा सहारा साबित हुआ। यह सहारा एक इस्लाम–विरोधी समाज में बहुत ज़रूरी था क्योंकि एक नव मुस्लिम औरत अकेले इस समाज में अपने धर्म का बचाव नहीं कर सकती थी। बाद में इस परिवार और सुमैया के बीच सम्बन्ध और निकटता में इतनी अभिवृद्धि हो गई कि उस औरत ने सुमैया से कहा कि वह उसकी बहू बन जाए और उसके साथ सऊदी अरब चले। सुमैया ने इस नेक दिल औरत की यह राय स्वीकार कर ली और वह आज आठ वर्षों से सऊदी अरब में रह रही है। अब वह एक पत्नी ही नहीं, माँ भी बन चुकी है। वह जिद्दा शहर के एक स्कूल में अंग्रेज़ी विभाग की इंचार्ज है। वह इस्लाम क़बूल करने वाले विदेशियों को अंग्रेज़ी में इस्लाम की प्रारम्भिक शिक्षा भी देती है। उसने कई नव मुस्लिमों को क़ुरआन मजीद हिफ़्ज़ (कंठस्थ) करने के लिए तैयार किया है। आज सुमैया एक सन्तुष्ट पत्नी, माँ और टीचर है। वह कहती है कि आज जो कुछ है केवल अल्लाह की कृपा है। अल्लाह ने उसको हिदायत दी और उसके दिल को अपने दीन की रौशनी से रौशन कर दिया।

□ □ □

36. श्रीमती सना

(मिस्त्र)

प्रस्तुत लेख अरबी पत्रिका ''अल फ़ैसल'' में प्रकाशित हुआ, जिसका ख़ालिद महमूद तिर्मिज़ी साहब ने उर्दू में अनुवाद किया और साप्ताहिक ''एशिया'' लाहौर, (2 अप्रैल, 1998 ई०) के अंक में प्रकाशित हुआ। यहाँ पर अनुवादक और ''एशिया'' के शुक्रिए के साथ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है।

■ ■ ■ ■

''मनुष्य के लिए इससे बड़ा और कोई सौभाग्य नहीं कि अल्लाह उसे हिदायत की राह और ईमान की दौलत से नवाज़ दे। ईमान ऐसी अमिट दौलत है, जिसकी स्थाई मिठास उसी को नसीब होती है जिसे ख़ुदा चाहे— और मुझसे अधिक भाग्यशाली संसार में और कौन होगा जिसे अल्लाह तआला ने सीधी राह अर्थात् इस्लाम और ईमान की राह सुझाई और मुझे गुमराही के अन्धेरे से और दोज़ख़ (नरक) की आग से नजात (मुक्ति) दी?''

शुक्रिये के इन शब्दों के साथ नव मुस्लिम सना कुफ्रो-शिर्क (नास्तिकता और बहुदेववाद) की गुमराही को छोड़कर अपने इस्लाम को स्वीकार करने की घटना बड़ी उत्सुकता के साथ बयान करती हैं।

सना मिस्त्र के एक ईसाई घराने में पैदा हुई। प्रत्येक ईसाई की तरह प्रत्येक रविवार को अपने माता-पिता के साथ नियमित रूप से गिरजा जाती थी। वहाँ वह पादरी के हाथ चूमती और सबके साथ मिलकर ईसा मसीह (अलैहि०) की प्रार्थना करती और प्रार्थना-गीत गाती। फिर पादरी सबको चारों इंजीलों की कुछ लाइनें सुनाता और यह बड़े ध्यान से सुनती। पादरी अक़ीदा-ए-तसलीस (त्रिवाद की अवधारणा) पर यहाँ तक जमे रहने की प्रेरणा देता कि त्रिवाद पर श्रद्धा और आस्था रखे बिना कोई मसीही पुण्य और भलाई का कोई काम भी करे, वह अल्लाह के यहाँ स्वीकार्य नहीं, बल्कि ग़ज़ब और ग़ुस्से का पात्र है, क्योंकि उसके अनुमान के अनुसार यह कुफ्र और नास्तिकता है।

सना पादरी की नसीहत को अन्य बच्चों की तरह लापरवाही से सुनती

और फिर जैसे ही गिरजा से निकलती अपनी मुसलमान सहेली हिना के साथ खेलने के लिए दौड़ पड़ती, क्योंकि बचपन में इन्सान का दिमाग़ साफ़ स्लेट या कोरे काग़ज़ की तरह होता है। उस पर पादरी की नसीहतें भी दूसरों से नफ़रत और भेदभाव की भावनाएँ पैदा नहीं कर सकतीं।

सना जब ज़रा बड़ी हुई तो स्कूल में दाख़िल कर दी गई, जहाँ उसका वास्ता कई मुसलमान लड़कियों से पड़ा। जो पादरी की नसीहत के विपरीत उसके साथ बहनों का–सा व्यवहार करतीं और कभी यह एहसास न होने देतीं कि वह एक ग़ैर मुस्लिम है। यहाँ उसके स्नेह, अपनत्व और प्रेमपूर्ण व्यवहार ने उसकी आँखें खोल दीं। उनमें से एक के साथ तो उसके बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध हो गए और इन दोनों में इतनी गहरी दोस्ती हो गई कि वह एक क्षण भी उसकी जुदाई बर्दाश्त नहीं कर सकती थी, सिवाय उस पीरियड के, जिसमें एक ईसाई टीचर उसे मसीही धर्म की शिक्षा देती थी। उस पीरियड में बार–बार सना के ज़ेहन में यह सवाल पैदा होता कि वह अपनी अध्यापिका से पूछे कि मुसलमान इतने चरित्रवान, सभ्य और भेदभाव से दूर होने के बावजूद आख़िर कैसे ग़ैर मोमिन, नास्तिक और काफ़िर हैं, जब कि वे हज़रत ईसा (अलैहि०) को भी मानते हैं? मगर अध्यापिका के ग़ुस्से के डर से वह सवाल न कर सकी। लेकिन एक दिन तो वह हिम्मत कर बैठी और इस अचानक सवाल ने टीचर को हैरान और परेशान कर दिया। उसने अपना ग़ुस्सा दबाने और छुपाने की कोशिश करते हुए इतना कहा, सना तुम अभी छोटी हो, कम उम्र हो, ये बातें अभी नहीं समझोगी। उनके अख़्लाक़ और उनकी नर्मी व उदारता तुम्हें धोखे में न डाल दे। जब बड़ी होगी तो हमारी तरह उनकी असली हक़ीक़त ख़ुद ही तुम पर ज़ाहिर हो जाएगी। सना को आध्यापिका का यह अनुचित और पूर्णतः अतार्किक उत्तर सन्तुष्ट न कर सका।

इसी बीच सना की घनिष्टतम सहेली हिना के पिता का तबादला क़ाहिरा हो गया और वह क़ाहिरा जाने की तैयारियाँ करने लगी। जिस दिन हिना को क़ाहिरा जाना था, दोनों सहेलियाँ जुदाई के ग़म में आपस में मिलकर ख़ूब रोईं। फिर अपनी दोस्ती की यादगार के तौर पर दोनों ने एक–दूसरे को तोहफ़े दिए। हिना ने एक ख़ूबसूरत डिब्बे में बड़े सलीक़े और सम्मान के साथ क़ुरआन मजीद का तोहफ़ा प्रस्तुत किया और कहा : ''मैंने बहुत सोच–विचार किया,

लेकिन मुझे इससे क़ीमती तोहफ़ा और कोई नज़र नहीं आया।'' सना ने बड़ी श्रद्धा और प्रेम के साथ इस अनमोल तोहफ़े को चूमा और हिना का बहुत-बहुत शुक्रिया अदा किया। ज़ाहिर है उसे यह तोहफ़ा अपने परिवार वालों की नज़रों से छुपाकर रखना था।

हिना के क़ाहिरा चले जाने के बाद यही तोहफ़ा इसका एक मात्र सहारा रह गया था। ज्यों ही पड़ोस की मस्जिद में मुसलमानों को नमाज़ की दावत देने के लिए अज़ान की आवाज़ गूँजती, सना क़ुरआन मजीद निकालती और उसे श्रद्धा से चूमती और साथ ही अपने आसपास जिज्ञासा की नज़र डालती कि घर का कोई सदस्य उसे ऐसा करते हुए देख तो नहीं रहा है ? ऐसा करके उसे एक प्रकार की ढारस-सी मिलती। दिन गुज़रते रहे, यहाँ तक कि सना की शादी कुँवारी मरयम के गिरजा के संरक्षक से हो गई। वह इस मूल्यवान तोहफ़े को लिए पिया के घर पधारी, जहाँ उसे इस तोहफ़े को पति महोदय की निगाहों से भी छुपाना था।

फिर सना को हराम या ग़ैर क़ानूनी वस्तुओं को रोकने वाले दफ़्तर में नौकरी मिल गई जहां पर्देवाली मुसलमान लड़कियाँ नौकर थीं। यहाँ सना की दोस्ती का दायरा और विस्तृत हो गया और हिना की दोस्ती का असर और गहरा हो गया। इन मुसलमान सहेलियों और पड़ोसियों के नैतिक घर्म, आचरण और प्रेमपूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर सना इस्लाम और मसीहियत की परस्पर तुलना करने लगी। वह गिरजा घर में पादरी और अन्य पक्षपाती ईसाईयों की ज़बान से मुसलमानों और इस्लाम के सम्बन्ध में जो कुछ सुनती, उसकी तुलना वह मुसलमान सहेलियों और पड़ोसियों के सदव्यवहार से करती, तो उनमें स्पष्ट टकराव नज़र आता। इसलिए न जाने क्यों जब भी क़रीबी मस्जिद से अज़ान गूँजती तो सना अपना दिल ख़ुद-ब-ख़ुद उसकी ओर खिंचता हुआ महसूस करती और इसका कारण उसे ख़ुद भी मालूम न था।

धीरे-धीरे उसके अन्दर इस्लाम की हक़ीक़त जानने की बड़ी तीव्र अभिलाषा पैदा हो गई। वह पति की अनुपस्थिति में रेडियों और टी. वी. पर शैख़ुल शोअरावी, शैख़ुल नज्जार और शैख़ुल नम्र जैसे विद्वानों के इस्लाम के विभिन्न विषयों पर भाषण सुनती, जिनमें उसके दिल और दिमाग़ में उभरने वाले जटिल

प्रश्नों का सन्तोषजनक जवाब मिलता था। इसके अतिरिक्त शैख़ मुहम्मद रफ़अत और क़ारी अब्दुल बासित, अब्दुस्समद की हृदयस्पर्शी तिलावते-क़ुरआन (क़ुरआन का पाठ) सुनती। जो उसे बहुत अच्छी लगी और वह दिल ही दिल में सोचती कि यह दिल मैं बैठ जाने वाला कलाम (वाणी) किसी इन्सान का नहीं हो सकता (जैसा कि पादरी लोगों का दावा था कि क़ुरआन मुहम्मद (सल्ल०) का अपना कलाम है), बल्कि यह अल्लाह का कलाम है। यह ईशवाणी है।

एक रोज़ जबकि उसका पति गिरजा में था, सना ने डरते-डरते कांपते हाथों से वह ख़ुफ़िया ख़ज़ाना यानी पवित्र क़ुरआन निकाला और उसे खोला तो उसकी नज़र इस आयत पर पड़ी : "बेशक ईसा की मिसाल अल्लाह के नज़दीक आदम जैसी है कि बनाया उसे मिट्टी से। फिर फ़रमाया उसे हो जा, तो वह हो गया।" (क़ुरआन, 3 : 59)

उसके हाथ काँप रहे थे और माथे से पसीना बह रहा था, बल्कि उसके सारे बदन पर कंपकंपी तारी थी। वह ख़ुद हैरान थी कि उसने बहुत बार पवित्र क़ुरआन रेडियो, टी. वी. पर और अपनी मुसलमान सहेलियों से सुना था, लेकिन ऐसी हालत उसकी कभी न हुई थी, जो आज क़ुरआन की यह आयत पढ़ने से हुई थी। वह और पढ़ना चाहती थी कि उसे पति के बाहरी दरवाज़ा खोलने की आवाज़ सुनाई दी। उसने जल्दी से क़ुरआन को छुपा दिया और किचन में चली गई, जहाँ वह उसके लिए सुअर के गोश्त से उसकी पसन्दीदा डिश तैयार कर रही थी।

इस घटना के अगले दिन जब वह अपने दफ़्तर गई तो कई सवाल उसके दिलो-दिमाग़ में एक अजीब हलचल मचाए हुए थे। क़ुरआन की इस आयत ने इस विवाद का समाधान कर दिया था कि क्या ईसा अल्लाह के बेटे थे? जैसा कि पादरियों का विश्वास था या अल्लाह के नबी थे जैसा कि क़ुरआन कहता है। इस आयत से यह साबित हुआ कि ईसा भी आदम की नस्ल से थे। फिर वह अल्लाह के बेटे कैसे हुए? अल्लाह तआला इन चीज़ों से पाक और मुक्त है। पवित्र क़ुरआन में है :

"कहो, वह अल्लाह यकता है (उस जैसा कोई नहीं) अल्लाह किसी का मुहताज नहीं (और सब उसके मुहताज हैं।) उसके

कोई औलाद नहीं, न वह किसी की औलाद है। उस जैसा
कोई नहीं।''   (क़ुरआन, 112 : 1–4)

अब सना के समक्ष यह हक़ीक़त स्पष्ट हो चुकी थी कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) भी अल्लाह के रसूल हैं। वह दिल में कलिमा तय्यबा पर ईमान ला चुकी थी— ला इला–ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर रसूलुल्लाह (अल्लाह के सिवा कोई इलाह अथवा उपास्य नहीं और हज़रत मुहम्मद सल्ल० अल्लाह के रसूल हैं।) लेकिन अपने दफ़्तर में बैठी वह यही सोच रही थी कि क्या इस मरहले पर वह अपने इस्लाम का एलान कर सकती है? वह इन्हीं सोचों में डूबी हुई थी कि वह, अपने इस्लाम का एलान किस प्रकार करे? अभी करे न करे या और प्रतीक्षा करे? हालात के अनुकूल होने तक इसे स्थगित कर दे? बज़ाहिर वह अपने कार्यों में व्यस्त थी, लेकिन उसके दिल और दिमाग़ इन्ही सोचों में व्यस्त थे कि इसका यह क़दम यानी इस्लाम के एलान का अमल उसके पति, गिरजा और उसके परिवार की ओर से कई प्रकार की प्रतिक्रियाओं को जन्म देगा।

कई सप्ताह वह इसी प्रकार के विचारों की उधेड़–बुन में फँसी रही। क्रिया और प्रतिक्रिया के डर में मुबतला रही, लेकिन आख़िर वह निर्णायक क्षण और घड़ी आ ही गई जब उसने गुमराही के कमर तोड़ बोझ से आज़ादी का फ़ैसला कर लिया। वह दफ़्तर में इन्हीं विचारों में खोई हुई थी कि उसने क़रीबी मस्जिद से अज़ान की आवाज़ सुनी जो मुसलमानों को अपने रब (पालनहार) से मुलाक़ात और ज़ुह्र की नमाज़ अदा करने की दावत दे रही थी। उस अज़ान ने उसके अन्दर एक तूफ़ान बरपा कर दिया। उसे ऐसा लगा कि वह गुमराही, मूर्खता और असत्यता के भारी बोझ तले दबी हुई है और हक़ को जान लेने के बाद और एक लम्बे समय से अपने रूएँ–रूएँ के अन्दर हक़ की तलब मौजूद होने के बावजूद हक़ को प्रकट करने से बचकर बड़ा गुनाह कर रही है। जब अज़ान देने वाले ने अश्हदु अल–ला–इला–ह इल्लल्लाह (मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई इलाह नहीं) के बाद अश्हदु अन–न मुहम्मदर्रसूलुल्लाह (मैं गवाही देता हूँ कि हज़रत मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं) कहा तो यकायक वह उठ खड़ी हुई और बिना झिझक ऊँची आवाज़ से बोल पड़ी— अश्हदु अल्ला इला–ह इल्लल्लाहु व अश्हदु अन–

न मुहम्दर्रसूलुल्लाह। उसके कमरे में मौजूद उसकी मुसलमान सहेलियाँ, जो अपने–अपने कामों में व्यस्त थीं, सना के मुख से इस्लाम का कलिमा सुनकर बे–इख़्तियार उसकी ओर बढ़ीं, 'मुबारक, मुबारक, मरहबा, मरहबा' की आवाज़ों से कमरा गूँज उठा। उनकी आँखों में ख़ुशी के आँसू छलक आए। हर एक ने बधाई देते हुए उसे गले से लगाया और वह भी ख़ूब भींच–भींच कर उनसे गले मिली। उसकी आँखें भी ख़ुशी से नम हो गईं। उसने उनसे कहा कि सब मेरे लिए दुआ करो कि अल्लाह दयावान मेरी पिछली कोताहियाँ और गुनाह माफ़ करे और मुझे इस्लाम पर जमाए रखे।

सना के इस्लाम को स्वीकार करने की सूचना आनन–फानन जंगल की आग की भाँति पूरे दफ़्तर में फैल गई और उसकी ईसाई सहकर्मी लड़कियों ने यह सूचना उसके पति और परिवार तक पहुँचाने में ज़रा देर न लगाई और ग़ुस्से से पेचो–ताब खाते हुए उन्हें राय दी कि इससे पहले कि वह न्यायालय में जाकर वह विधिवत अपने इस्लाम स्वीकार करने का एलान कर दे उसे इस हरकत से रोकें। इधर सना ने भी फ़ौरन अदालत में जाकर बाक़ायदा अपने इस्लाम स्वीकार करने का एलान कर दिया कि कहीं उसका पति और परिवार वाले जबरन इस्लाम के एलान से उसे रोक न दें। यह सब कुछ करके जब वह घर गई तो उसे यह मालूम करके कुछ भी तकलीफ़ न हुई कि उसके पति ने उसके कपड़े, ज़ेवरात और धन–दौलत पर क़ब्ज़ा कर लिया है। उसे अगर चिन्ता थी तो यह कि पति उसके बच्चों का पालन–पोषण गिरजा में दी जाने वाली त्रिवाद की अवधारणा के अनुसार न करे। उन्हें भी अपनी तरह दोज़ख़ (नरक) का ईंधन न बनाए।

दयावान अल्लाह ने उसकी यह दुआ क़बूल कर ली। मुसलमानों के एक संगठन ने उसकी ओर से अदालत में यह दरख़ास्त दी कि बच्चे चूँकि कम उम्र हैं, नाबालिग़ हैं तो माँ का हक़ है कि उनका पालन–पोषण करे। अतः उसके हक़ में फ़ैसला किया जाए। अदालत ने उसके पति को बुलाकर पूछा कि क्या वह भी इस्लाम स्वीकार करके सना के साथ रहना चाहता है या अपने बाप–दादा के धर्म पर रहकर सना से अलगाव चाहता है, क्योंकि क़ुरआन के अनुसार एक मुसलमान औरत ग़ैर–मुस्लिम पति के साथ निकाह में नहीं रह सकती। उसके पति ने हक़ को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, तो अदालत

ने दोनों के बीच जुदाई करा दी और नाबालिग़ बच्चों के पालन–पोषण का भी सना के हक़ में फ़ैसला कर दिया, क्योंकि वे फ़ितरी तौर पर माँ से ज़्यादा मानूस होने के कारण माँ के साथ रहना चाहते थे।

सना की तकलीफ़ों और कठिनाइयों, संघर्षों और परीक्षाओं का दौर अब शुरू होने वाला था। अगर उसका परिवार और पति फ़ैसला हो चुकने के बाद उसे अपने हाल पर छोड़ देते तो वह किसी न किसी तरह अपना और अपने बच्चों का पेट पाल लेती। लेकिन उन्होंने एक तरफ़ तो उससे नाता तोड़ लिया और दूसरी ओर उसे अपने बाप–दादा के धर्म पर लौटाने के लिए कई चालें चलीं और बड़े जतन किए तथा उनके जिन मुसलमान ख़ानदानों से सम्बन्ध थे, उन्हें धमकियाँ देनी शुरू कीं कि किसी प्रकार उसकी सहायता न करें, परन्तु शायद उन्हें यह मालूम नहीं था कि उसकी सहायता करने वाली तो सर्वशक्तिमान और दयावान अल्लाह की ज़ात है। सना ने अपने रब से दुआ की कि अल्लाह उसे संकट और परीक्षा की हर घड़ी में उसके क़दम जमाए रखे और विरोधियों के सभी कुप्रयासों को, जो वे उसे पिछले धर्म पर लौटाने के लिए कर रहे थे, नाकाम बना दे। दयावान अल्लाह ने अपनी ईमानवाली बन्दी की दुआ इस प्रकार क़बूल की कि एक बेवा ख़ातून जिसकी अपनी चार बेटियाँ थीं और उसका एक मात्र सहारा उसका एक जवान बेटा था, वह सना की साहस और दृढ़ता से बहुत प्रभावित हुई। उसने सना के सिर पर मुहब्बत का हाथ रखा और अपने बेटे मुहम्मद का निकाह सना से करने की पेशकश की, जो सना ने कुछ सोच–विचार के बाद स्वीकार कर ली और अब अल्लाह के करम से हँसी–ख़ुशी उसकी चार बहनों और बेवा माँ के साथ सुखद जीवन व्यतीत कर रही है और ख़ुदा से हर पल इस्लाम पर जमे रहने की दुआ करती रहती है।

□ □ □

37. सुहैर अलबाहिली

(मिस्त्र)

प्रस्तुत लेख किसी नव मुस्लिम औरत के बारे में नहीं है, बल्कि मिस्त्र की एक भूतपूर्व फ़िल्मी अभिनेत्री की जीवनी पर आधारित है। ये श्रीमती तीस वर्षों तक अश्लीलता और पापों में लीन रहीं। धन–दौलत, ख्याति और लोकप्रियता उन्हें सब कुछ हासिल थी, लेकिन उनका जीवन बिल्कुल ख़ुदा की बग़ावत, अधार्मिकता और दुराचार पर आधारित था, इसलिए शान्ति की दौलत से वंचित थीं। आख़िरकार अल्लाह ने उन पर कृपा की, उन्हें हिदायत मिल गई और वे फ़िल्मी जीवन त्याग कर सच्ची मुस्लिम औरत बन गईं। आशा है यह लेख हमारी युवा छात्राओं और सामान्य महिलाओं के लिए मार्ग दीप सिद्ध होगा। इसे मलिक सैफ़ुल्लाह शाहिद ने तरतीब दिया है और यह मासिक पत्रिका 'ख़वातीन मैगज़ीन' के अगस्त 1995 ई० के अंक में प्रकाशित हुआ है।

■ ■ ■ ■

क़रीब पन्द्रह वर्ष पहले ब्रिटेन के सर्वाधिक लोकप्रिय पॉप सिंगर केट स्टीवेंट (वर्तमान नाम यूसुफ़ इस्लाम) ने इस्लाम स्वीकार करके यूरोप में सामान्य रूप से और ब्रिटेन में विशेष रूप से तहलका मचा दिया था। केट स्टीवेंट ब्रिटेन का वह गायक था, जिसके प्रोग्रामों के तमाम टिकट कई सप्ताह पूर्व ही बिक जाया करते थे और उसके रिकार्ड लाखों की संख्या में बिकते थे। उसकी दौलत का कोई अन्दाज़ा नहीं था। ब्रिटेन की जनता विशेष कर नवयुवक उसके दीवाने थे। पश्चिम के इस महत्वपूर्ण व्यक्ति के इस्लाम को स्वीकार करने ने वहाँ के समाज पर बड़े गहरे असरात डाले हैं। कुछ इसी तरह का चमत्कार परन्तु इससे कुछ अलग नौइयत के साथ लगभग चार वर्ष पहले अरब जगत् के प्रसिद्ध देश मिस्त्र में घटित हुआ था, जिसमें मिस्त्र में फ़िल्म उद्योग से जुड़ी हुई एक अभिनेत्री मदीहा कमल ने इस "कला" से तौबा करते हुए फ़िल्म उद्योग को अलविदा कहकर मिस्त्री समाज को हैरान और आश्चर्य चकित कर दिया था। मदीहा कमल के तौबा के कुछ सप्ताह बाद एक–दो

और अभिनेत्रियों ने तौबा कर ली थी। बस फिर क्या था, तौबा करके ''कला'' को अलविदा कहने वाली अभिनेत्रियों की एक लाइन लग गई और मिस्र की फ़िल्मी दुनिया में मानो एक भूचाल–सा आ गया और फ़िल्म उद्योग के ज़िम्मेदार लोगों पर कंपकंपी तारी हो गई। उन्होंने तो कल्पना भी नहीं की थी कि ऐसा भी हो सकता है। परेशानी के इस आलम में उन्होंने नये चेहरे तलाश करना आरम्भ कर दिए, ताकि काम की रफ़्तार को बनाए रख सकें। लेकिन हक़ीक़त यह है कि मिस्र में फ़िल्म उद्योग की बुनियादें हिल चुकी हैं। फ़िल्म निर्माताओं, प्रोडयूसर्ज़ और डाइरेक्टरों ने तौबा करने वाली अभिनेत्रियों और गायिकाओं को धमकियों और ब्लैक मेलिंग के ज़रिए भयभीत करने के अलावा आकर्षक उपहारों, लोभ, लालच देकर राज़ी करने की भी बहुत कोशिशें कीं। तरह–तरह के इल्ज़ाम लगाए गए, लेकिन वे नाकाम रहे। अब तक जो अभिनेत्रियाँ और गायिकाएँ तौबा करके दीन की दावत के रास्ते को अपना चुकी हैं, उनमें मदीहा कामिल, लैला ताहिरा, सोसन बद्र, शहीरा, शादिया, अफ़ाफ़ शोऐब, फ़रीदा सैफ़ुन्नस्र, सहर हमदी, यासमीन अल–ख़ैयाम (भूतपूर्व प्रसिद्ध गायिका), शम्स अल–बारुदी, नसरीन, अमीरा, हाला फ़वाद, हाला उस्साफ़ी, मदीहा हमदी, कमीलिया अल–ग़ज़ाली, अब्दुर्रज़्ज़ाक़, हिना, शर्रत, माजिदा हमीद (एक भूतपूर्व प्रोडयूसर), तरूब (एक लेबनानी गायिका) और सुहैर अल–बाहिली शामिल हैं। ये वे फ़िल्मी अभिनेत्रियाँ हैं, जिन्होंने अपनी फ़िल्मों में हर प्रकार के रोल अदा किए— गन्दे और अश्लील किरदारों को अपनाने से भी गुरेज़ नहीं किया।— लेकिन तौबा के बाद उन्होंने अपने सभी सम्बन्ध तोड़ दिए और इन मामलों में फ़िल्म निर्माताओं की एक न सुनी इन अभिनेत्रियों ने उनके सभी तर्क और विचारों को मानने से इनकार कर दिया। सम्भव है कि इस पर कुछ लोगों को आश्चर्य हुआ हो। लेकिन असली बात यह है कि जब ईमान दिल में बैठ जाता है और जड़ें पकड़ लेता है तो फिर दिल की दुनिया ही बदल जाती है फिर मनुष्य के आचरण, व्यवहार, सोचने के ढंग, रहन–सहन में इंक़िलाब आ जाता है। तात्पर्य यह कि मनुष्य की काया पलट हो जाती है। अच्छी बात यह है कि मिस्र के फ़िल्म उद्योग में क्रमशः एक अच्छा बदलाव आ रहा है जिसके प्रभाव मिस्र के समाज पर पड़ने शुरू हो गए हैं।

हम तौबा करने वाली इन अभिनेत्रियों में से एक अभिनेत्री सुहैरा अल–बाहिली की तौबा की कहानी नीचे लिख रहे हैं, जिसे पढ़कर पाठकों को अन्दाज़ा होगा कि मिस्र के फ़िल्म उद्योग में कितनी बड़ी क्रान्ति आ चुकी है। सुहैरा अल–बाहिली सुन्दरता और आकर्षण और अभिनय–कला में हमारे यहाँ की अभिनेत्रियों से कहीं आगे थी। अरब दुनिया में उसकी सुन्दरता और अभिनय का डंका बजता था और उसका नाम ही फ़िल्म की कामयाबी की गारन्टी समझा जाता था।.....न केवल मिस्र, बिल्क पूरे अरब दुनिया के फ़िल्म देखने वाले उसकी अभिनय–कला के दीवाने थे। उसकी ख्याति और सुन्दरता का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि जब वह पर्दे पर आती थी, तो लोग दिल थाम कर खड़े हो जाते थे। मतलब यह कि वह अल्लाह से बहुत दूर रंग और बू के सैलाब में डुबी हुई थी।.....वह स्वर्ग, नरक और मृत्यु की कल्पना से अपरिचित और भोग–विलास, धन–दौलत की रसिया थी। लेकिन अचानक दृश्य इस प्रकार बदलता है कि शोहरत और दौलत की भूखी मौत के डर से कांपने लगती है और सांसारिक सुख–शान्ति की रसिया स्वर्ग की अभिलाषी बन जाती है।

यह बदलाव कैसे आया ? इस सम्बन्ध में मुस्लिम युवकों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, जिसे संक्षेप में वामी (WAMY) कहा जाता है, की अरबी पत्रिका में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिसमें सुहैर अल–बाहिली के तास्सुरात प्रकाशित हुए हैं। ये तास्सुरात पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं :

सुहैरा अल–बाहिली कहती हैं "जब मैं छोटी–सी बच्ची थी तो मुझे ड्रामे देखने का बहुत शौक़ था, यहाँ तक कि मैं अभिनेत्रियों की नक़ल किया करती थी, और उनकी चाल–ढाल, उनके खाने–पीने, उठने–बैठने, चलने–फिरने के ढंग और कपड़ों के स्टाइल अपनाने की कोशिश करती थी, यहाँ तक कि मैं जवान हो गई तब मैंने अपने शौक़ को विकसित करने के लिए आर्ट स्कूल में दाख़िला ले लिया और "कला" सीखने लगी। मेरी माँ ने मुझे इससे रोकने की बहुत कोशिश की, लेकिन मैंने उसकी एक न सुनी और "कला" की गन्दी दलदल में धँसती चली गई। मुझे अब ख़याल आता है कि काश, मैंने यह न किया होता, क्योंकि मेरे इस फ़ैसले ने मेरी माँ को रोग लगा दिया और वह मेरी गुमराही की वजह से बीमार हो गई।

मैं 'कला' की गन्दी दलदल से निकलकर ईमान के राजमार्ग पर कैसे चल पड़ी ? यह भी एक दिलचस्प कहानी है। वास्तव में मुझे ईमान की ओर प्रेरित करने में मेरी माँ और बहन ने बड़ा रोल निभाया है। उसकी मृत्यु मेरे अन्दर बहुत बड़ी क्रान्ति ले आई। मैं तीस साल से 'कला' से जुड़ी हुई थी, मगर मेरा दिल सुकून से ख़ाली था। दौलत और शोहरत की भूख थी कि मिटाए नहीं मिटती थी। शैतान हर समय मुझ पर हावी रहता था। मेरी इच्छा थी कि जब मुझे मौत आए तो किसी फ़िल्म के डायलॉग बोलते हुए या किसी 'स्टेज' पर अपनी 'कला' का प्रदर्शन करते हुए मौत आए। मेरी सोच यह थी कि मेरी 'कला' ही सब कुछ है। लेकिन मेरी सोच में बदलाव उस समय आया, जब मेरी बहन इस नाशवान संसार से चल बसी। मेरी बहन मुझसे छोटी, लेकिन अधिक स्वस्थ थी। उसे अल्लाह ने ख़ूबसूरती भी प्रदान की थी। उसकी मृत्यु के पश्चात् एक दिन मुझे ख़याल आया कि अगर उसकी जगह मैं होती तो क्या यह असम्भव था और क्या मुझे कभी मौत नहीं आएगी ? अगर मुझे मरना है और यक़ीनन मरना है और जब यह भी हक़ीक़त है कि यह दुनिया ख़त्म होने वाली है, जिसे बहरहाल एक दिन छोड़ना है, तो फिर यह सारा धन-दौलत, सज-धज, लोकप्रियता और ख्याति, हीरे-जवाहरात किस काम के ? क्या मैं इन्हें क़ब्र में अपने साथ ले जा सकूँगी ? क्या ये मुझे दोज़ख़ की आग से बचा सकेंगे ? इन विचारों और सोचों ने मेरी काया पलट दी और मैंने सोचा कि अब मुझे पारम्परिक मुसलमान के बजाए पक्का मुसलमान बन जाना चाहिए। इस बदलाव के बाद मैंने अज़हर विश्व विद्यालय क़ाहिरा में जाना शुरू कर दिया और वहाँ उलमा से जन्नत और दोज़ख़ (स्वर्ग और नरक) के बारे में सवाल शुरू कर दिए। इसी अवधि में 'मौत' के शीर्षक पर एक किताब मेरे हाथ लग गई। मैंने उसका अध्ययन किया तो मेरे दिल पर उसका इतना प्रभाव पड़ा कि मैं बीमार हो गई। एक सप्ताह बाद मेरी तबीअत कुछ संभली, तो मैं शैख़ मुहम्मद अब्दुल काफ़ी के पास गई और उनसे निवेदन किया कि वे मुझे धर्म की शिक्षाओं से अवगत करें। इस पर शैख़ ने कहा : "तुमने कभी क़ुरआन पढ़ा है और उसके अर्थ पर ग़ौर किया है ?" उत्तर में मैंने कहा : "क़ुरआन तो पढ़ा है, परन्तु उसके अर्थ और मतलब पर ग़ौर नहीं किया है।" तब शैख़ ने फ़रमाया : "क़ुरआन की हर आयत और हर शब्द को

पढ़कर उनके अर्थ पर ग़ौर करो और पर्दा किया करो।''

मैंने शैख़ से कहा : ''इस सिलसिले में मुझे एक साल की मोहलत दे दें'' तो शैख़ ने जवाब दिया, ''मोहलत अल्लाह से माँगो।'' जब मैंने क़ुरआन को समझना शुरू किया तो मैं क़ुरआन की गहराई पर हैरान रह गई। मुझे ऐसा महसूस होता था कि मानो क़ुरआन की सभी आयतें अपने मतलब के साथ मेरे दिल में उतरती जा रही हैं। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकती कि यह एक ऐसी मधुर वाणी है, जिसने मेरे दिल को बदल कर रख दिया है। मेरे दिमाग़ में तो यही था कि पर्दा दुनिया की तमाम राहतों और रंगीनियों से अलग हो जाने का नाम है। इसी लिए मैं इससे डर रही थी और झिझक महसूस कर रही थी। इसी बीच मैं उमरा के लिए चल पड़ी। मक्का में पहुँच कर मैं बैतुल्लाह में हर नमाज़ के बाद दुआ माँगा करती कि ऐ अल्लाह ! मेरे दिल में इस अदाकारी से नफ़रत पैदा कर दे और मुझे सीधी राह दिखा दे। वहाँ मैं ख़ूब रोती थी और मैंने संकल्प लिया कि मैं भविष्य में नाच-गानों, मिली-जुली महफ़िलों और अन्य शैतानी कामों से बचूँगी। वतन वापस आकर तमाम शैतानी कामों से तौबा कर ली और पर्दा करने लगी। मेरा यह काम लोगों के लिए आश्चर्यजनक था। बहुत से लोगों ने इस पर मेरा मज़ाक़ उड़ाया और कुछ लोगों को मेरा यह रोल इतना बुरा लगा कि उन्होंने मुझे बाक़ायदा गालियाँ दीं। वस्तुतः यह अल्लाह की तरफ़ से एक परीक्षा थी, जिससे मैं दोचार हो गई थी। कैसी अजीब बात है कि जब मैं नग्नावस्था में होती थी ये लोग आनन्दित होते थे और तालियाँ बजाते थे। मुझे उनकी इस सोच पर बहुत अफ़सोस होता।

कुछ लोग तो इस हद तक गिर गए कि उन्होंने इल्ज़ाम लगाया कि मैं उमरा करने तो एक बहाने से गई थी, वहाँ मुझे सऊदी शैख़ों ने कई मिलियन रियाल दिए, ताकि मैं 'कला' छोड़ दूँ। मुझे उनके इस इल्ज़ाम पर दुख भी हुआ और हैरत भी, क्योंकि मैं एक अभिनेत्री थी। अगर फ़िल्मों में काम करती रहती तो एक साल में कई मिलियन कमा सकती थी और ख्याति अलग थी। फिर यह इल्ज़ाम क्यों ?

जहाँ तक मैं समझती हूँ वह यह कि मेरा इस्लाम की ओर सोच-समझकर लौटना इन हवस परस्त (कामपूजक) लोगों को अच्छा नहीं लगा। हक़ीक़त यह है कि अल्लाह ही सर्वशक्तिमान है, जिसको चाहता है हिदायत

देता है और अपने एक आदेश से ज़िन्दगियों को बदल देता है। उसकी ओर से हर इन्सान को उसके जीवन में संभलने का एक बार अवसर ज़रूर मिलता है। किसी आज़माइश या दुख के कारण इन्सान या तो उसे खो बैठता है या फिर संभल जाता है।

मेरी बहन की मौत अगरचे मेरे लिए बड़े दुख का कारण बनी थी, लेकिन मेरे लिए हिदायत का ज़रिया बन गई। मेरे दिल के कोनों में यह एहसास पल रहा था कि रब (पूज्य-प्रभु) ने यह जो मुझे अवसर दिया है, इससे फ़ायदा न उठाया तो मेरे दुर्भाग्य की कोई सीमा नहीं। अब भी मैं न संभली तो शायद कभी न संभल सकूँ। इन्हीं एहसासों ने मुझे हिदायत की सीधी और साफ़-सुथरी राह पर चलने में मदद दी। हक़ीक़त में, जो लोग इस प्रकार के अवसर गँवा बैठते हैं, उनसे बढ़कर नादान और कौन हो सकता है? मैं आज भी सोचती हूँ कि अगर मेरे रब की तौफ़ीक़ मेरे साथ न होती तो मैं गुमराही के अंधेरों में ही भटकती रहती। कुछ समाचार पत्रों ने यह शोशा भी छोड़ा है कि मेरा यह निर्णय स्थाई नहीं है और मैं अधिक समय तक ग्लैमर और कला की दुनिया को छोड़ नहीं सकती। लेकिन मेरे मालिक ने मुझे अपने फ़ैसले पर जमे रहने की तौफ़ीक़ दी है और मैं यह बात स्पष्ट करती हूँ और अल्लाह को हाज़िर व नाज़िर जानकर कहती हूँ कि मैं इंशाअल्लाह (अगर अल्लाह ने चाहा तो) भविष्य में कभी भी और किसी भी रूप में इस गन्दे मैदान में वापस नहीं आऊँगी। जो द्वार बन्द हो चुका, सो बन्द हो चुका। अब उसे इंशाअल्लाह कभी नहीं खोलूँगी। क्या हरा-भरा और फलदार बाग़ पाकर भी कोई लम्बे-चौड़े रेगिस्तान की ओर देखना पसन्द करता है?

तौबा के बाद मैं समझती थी कि अगर मैं पर्दे में रहकर अभिनय करूँ, धार्मिक या बच्चों के प्रोग्रामों में भाग लेती रहूँ तो इसमें कोई हर्ज नहीं, लेकिन खोज और अध्ययन के बाद मालूम हुआ कि यह भी जायज़ नहीं है। अब मैं समझती हूँ कि मैंने तीस साल जो 'कला' में गुज़ारे, वह मेरे लिए अंधेरे का दौर था, रौशनी और अमन-शान्ति का दौर तो अब शुरू हुआ है। अब मैंने न केवल कला से बल्कि अश्लीलता, बेपर्दगी और अकेले यात्रा करने से भी तौबा कर ली है और जैसा कि में पहले भी उल्लेख कर चुकी हूँ कि इंशाअल्लाह मेरी तौबा सच्ची तौबा साबित होगी।

मेरी इच्छा यह है कि अल्लाह तआला सभी अभिनेत्रियों और अभिनेताओं को हिदायत और ईमान की ज़िन्दगी नसीब करे, जिस प्रकार उसने मुझे की है। मैं अभिनेत्रियों और अभिनेताओं से कहूँगी कि इससे पहले कि उनका हिसाब लिया जाए वे अपना हिसाब आप कर लें, ईमान की हक़ीक़त को अपनाएँ, न कि कला और ग्लैमर के पीछे भागें। ईमान का मज़ा चखकर शान्ति और सुकून की दौलत पा लें।

प्रिय पाठको! यह है भूतपूर्व मिस्री अभिनेत्री सुहैर अल–बाहिली की तौबा की कहानी, जिसने मिस्र के फ़िल्म उद्योग की हलचल में और बढ़ौत्तरी कर दी। तौबा करने वाली इन अभिनेत्रियों और गायिकाओं ने अपना एक दायरा बनाया है जो तौबा करके आने वाले नए साथी के सम्मान में एक प्रोग्राम का आयोजन करता है जिसमें पूरे क़ुरआन का सामूहिक पाठ किया जाता है। इसके साथ–साथ नए आने वालों (New Commer) का स्वागत किया जाता है। इस समारोह में मिस्र के विद्वान और बुद्धिजीवियों को आमंत्रित करके उनसे धार्मिक मार्गदर्शन (दीनी रहनुमाई) प्राप्त की जाती है। इस संगठन के द्वारा वे अब न केवल ख़ुद धार्मिक शिक्षाएँ ले रही हैं, बल्कि आगे भी फैला रही हैं। 'कला' से तौबा करने का यह अमल औरतों तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि अब बहुत–से फ़िल्मी अभिनेता भी तौबा करके इस्लामी जीवन–शैली को अपना रहे हैं। उन्होंने बाक़ायदा दाढ़ी रख ली है, जो सुन्नत के मुताबिक़ है।

मिस्र के समाज में पश्चिमी संस्कृति और इस्लामी संस्कृति के संघर्ष में दिन–प्रतिदिन वृद्धि हो रही है और इस मामले में इस्लामी संस्कृति और सभ्यता क्रमशः वर्चस्व और वरीयता प्राप्त कर रही है। जब से बहुत–सी अभिनेत्रियाँ तौबा करके जागरूक मुस्लिम महिला बन गई हैं तब से पश्चिमी संस्कृति के समर्थक और ध्वजावहक वर्ग हतोत्साह और सहमे हुए नज़र आते हैं। मिस्री जनता दिन प्रतिदिन इस्लामी शिक्षाओं और इस्लामी संस्कृति को अपना रही है।

□□□

38. प्रो.फ़ेसर शाहीन गुलफ़ाम

(हॉलैण्ड)

यह लेख मेरे बहुत प्यारे दोस्त और असाधारण प्रतिभा के धनी, प्रसिद्ध पत्रकार तनवीर क़ैसर शाहिद साहब ने लिखा है। उनके शुक्रिये के साथ किताब में शामिल कर रहा हूँ।

■ ■ ■ ■

शाहीन गुलफ़ाम जिस प्रकार इस्लाम के बुनियादी सिद्धान्तों और इस्लामी क़ानूनों पर सख़्ती से कार्यरत हैं, उसको देखकर उनकी पूर्व सहधर्मी सहेलियाँ यहाँ तक कि माता-पिता और सगे-सम्बन्धी भी उन्हें एक 'जुनूनी' मुसलमान के नाम से पुकारते हैं। लेकिन शाहीन गुलफ़ाम स्वयं उन लोगों की व्यंगपूर्ण बातों के जवाब में कहती हैं, ''मैं न तो जुनूनी मुसलमान हूँ, न अपने पूर्व सहधर्मियों की भाँति धर्म का मज़ाक़ उड़ाने वाली हूँ, मैं तो सीधी-सादी मुसलमान हूँ। क्योंकि इस्लाम तो एक जीवन-व्यवस्था है जिसमें कोई पेचीदगी नहीं। हर चीज़ अल्लाह और उसके रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने खोल-खोल कर बयान कर दी है। ये लोग मुझे जुनूनी मुसलमान शायद इसलिए कहते हैं कि ख़ुद उनका जीवन आध्यात्मिक आनन्दों और सुखों से ख़ाली है। बनावटी व्यवहार और ख़ुदा से दूरी ने वास्तव में उनके जीवन को अन्दर से खोखला कर दिया है।''

शाहीन गुलफ़ाम इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व ईसाई धर्म को मानने वाली थीं, क्रोनी उनका नाम था। इस्लाम को स्वीकार करने का सौभाग्य ख़ुदा ने उनकी क़िस्मत में लिख दिया था।.....वे प्राकृतिक रूप से सुन्दर स्वभाव की मालिक हैं। हर वस्तु को असली रूप में देखने की इच्छुक! ईसाईयत को पूरब और पश्चिम के पादरियों ने अपने हितों के लिए जिस प्रकार विकृत और प्रदूषित कर दिया है, उसकी वजह से वे बचपन ही से इस धर्म से विमुख रहने लगी थीं। वे सत्य की तलाश में भटकती रहीं। अपनी इन्हीं कोशिशों के बारे में शाहीन का कहना है, ''मैं कट्टर ईसाई घराने में पैदा हुई, जहाँ ईसा मसीह (अलैहि०) का नाम बहुतायत से लिया जाता था। इसलिए मैं बचपन ही से

कम से कम एक ख़ुदा की ज़ात पर पूरा यक़ीन रखती थी। सोलह वर्ष की उम्र को पहुँची, तो मुझे ईसा (अलैहि०) के बारे में जो कहानियाँ बचपन से रटाई गई थीं, उनके बारे में मेरे दिल में शंकाओं ने जन्म लेना शुरू कर दिया। ऐसा लगता था कि अन्तःकरण से आवाज़ें आ रही हैं कि ये कहानियाँ मात्र कहानियाँ हैं, यथार्थ से इनका कोई सम्बन्ध नहीं है। धीरे-धीरे ईसा मसीह पर से मेरा यक़ीन ही उठ गया। फिर मैं परेशान रहने लगी कि क्या मैं नास्तिक हो गई हूँ? ख़ुदा पर से मेरा ईमान उठ गया है? एक ना समझ में आने वाली बेक़रारी ने मुझे परेशान कर दिया। अतः मैंने अन्य धर्मों का अध्ययन शुरू कर दिया। हिन्दू मत, बौद्ध मत और सिख मत का बारीकी से अध्ययन किया। मगर मेरी न तो प्यास बुझी, न आत्मा को शान्ति मिली, लगता था इन सब धर्मों में कहीं न कहीं खोट ज़रूर है। इनका ख़ुदा से क्या सम्बन्ध?''

भूतपूर्व क्रोनी और वर्तमान की भाग्यशाली शाहीन गुलफ़ाम से जब पूछा गया कि आपने अध्ययन की सूची में इस्लाम को क्यों शामिल नहीं किया था? उन्होंने जवाब दिया, ''इस्लाम के बारे में जो थोड़ा-बहुत जानती थी और मुझे जो कुछ घर में सिखाया गया था, उसके कारण इस्लाम के सम्बन्ध में मेरे विचार ठीक नहीं थे। उन्हीं विचारों के कारण मैंने इस्लाम का अध्ययन करना ज़रूरी नहीं समझा। मैं समझती थी कि इस्लाम मूर्खों और असभ्य लोगों का धर्म है। ऐसा धर्म जिसमें औरतों को हमेशा पुरुषों की ग़ुलामी सहनी पड़ती है, उनके पीछे-पीछे चलना पड़ता है, सिर से पैर तक अपने आपको ढांप कर रखना पड़ता है और अगर कोई औरत के साथ अत्याचार कर बैठे तो जवाब में औरत के लिए ख़ामोश रहना ज़रूरी है। इन विचारों में मेरा कोई दोष नहीं था। मेरा पालन-पोषण ही ऐसे घराने में हुआ था, जहाँ सभी लोगों के दिलों में इस्लाम दुश्मनी कूट-कूट कर भरी हुई थी। फिर पश्चिम में जिस प्रकार इस्लाम को बदनाम किया जाता है, उसके प्रभाव भी मेरे मन-मस्तिष्क पर अंकित हो गए थे। इसके अतिरिक्त जिन मुसलमानों से मैं मिलती थी वे अमली और पक्के मुसलमान नहीं थे। इस्लाम उनके जीवन में पूर्ण रूप से नज़र नहीं आता था और मैंने जब कभी अपने परिचित मुसलमानों से इस्लाम के विषय में जानकारी प्राप्त करनी चाही, तो जवाब में उन्होंने इस्लाम के बारे में ऐसी अनैसर्गिक और अप्राकृतिक कहानियाँ मुझे सुना डालीं जिनकी वजह से

इस्लाम की ओर प्रेरित न हो सकी। यही कारण है कि जब मैंने आत्म शान्ति के लिए और ईसाईयत से मायूस होकर अन्य धर्मों का अध्ययन शुरू किया, तो इस्लाम मेरे अध्ययन की सूची में शामिल नहीं था। दुनिया के प्रसिद्ध धर्मों का अध्ययन मैंने कॉलेज की शिक्षा पूरी करने के बाद आरम्भ किया था। मैं यूनीवर्सिटी में उस समय तक प्रवेश नहीं चाहती थी, जब तक मेरा दिल और दिमाग़ साफ़ न हो जाता। कोई राह न मिली तो मैंने यूनीवर्सिटी में प्रवेश ले लिया। अन्य विषयों के साथ मैंने अरबी भाषा का भी एक विषय के रूप में चयन किया। इस सन्दर्भ में मैंने इस्लाम, इस्लामी इतिहास और इस्लामी संस्कृति का बड़े कठोर परिश्रम के साथ गंभीर अध्ययन किया। इसी बीच में मेरी मुलाक़ात एक लड़के से हुई जो पाकिस्तानी मुसलमान था। सौभाग्य से उस लड़के का सम्बन्ध इस्लामी जगत के उन अधिकांश नौजवानों से नहीं था, जो देखने में तो मुसलमान थे, मगर इस्लाम उनके जीवन में नज़र कहीं नहीं आता। यह पाकिस्तानी नौजवान जो एक अस्पताल में रिसेप्शनिस्ट (Receptionist) के पद पर काम कर रहा था, उसके अमली मुसलमान होने ने मुझे इतना प्रभावित किया कि मैंने उससे शादी कर ली। यह शादी वास्तव में इस्लाम को स्वीकार करने के लिए मेरा पहला दरवाज़ा साबित हुई।''

वह शुभ अवसर अन्ततः आ ही गया था, जिसके लिए शाहीन की रूह वर्षों से तड़प रही थी, परन्तु पूर्णता की घड़ियाँ अभी बहुत दूर थीं। शाहीन अभी तक क्रोनी के रूप में थी। उन्होंने अभी इस्लाम स्वीकार नहीं किया था। वे कहती हैं, ''मेरा पति कम बोलने वाला (मितभाषी) और बड़ा सन्तोषी व्यक्ति था। मैंने शादी की पेशकश की तो उसने स्वीकार कर ली। एक बार उसने बहरहाल ज़रूर कहा कि तुम मुसलमान हो जाओ तो बेहतर है। मगर मेरा उसे और उसके उन तमाम दोस्तों को जिनका विचार था कि मैं शादी से पहले इस्लाम अवश्य स्वीकार कर लूँ, केवल यही जवाब था कि मैं एक मुसलमान पति के साथ रहते हुए भी एक शुद्ध ईसाई पत्नी का रोल अदा करना चाहती हूँ और दूसरे यह कि जब तक मैं इस्लाम के सभी मौलिक सिद्धान्तों और इस्लाम के मूल दर्शन को न समझ जाऊँ, उसे मेरा दिल और दिमाग़ स्वीकार न कर ले, मैं इस्लाम को स्वीकार न करूँगी।'' क्रोनी ने एक पाकिस्तानी मुसलमान से शादी कर ली। उनकी शादी को दो वर्ष बीत गए। इस बीच में

शाहीन के कहने के मुताबिक़ एक क्षण भी ऐसा नहीं आया कि उसके पति ने उससे ज़बरदस्ती इस्लाम को स्वीकार करने की बात कही हो मगर हाँ इतना अवश्य था कि वह दुनिया के नामवर इस्लामी बुद्धिजीवियों और लेखकों की वे किताबें अपनी पत्नी को ज़रूर भेंट करता रहा, जिनमें इस्लाम की सच्ची तस्वीर पेश की गई थी और समस्याओं के समाधान के लिए किसी भी पेचीदगी से हटकर बहस की गई थी। शाहीन के पति ने उसे ऑडियो और वीडियो कैसिटें भी लाकर दीं, जिनमें इस्लाम के मौलिक कर्तव्यों के विषय में विस्तार के साथ बताया गया था। शाहीन गुलफ़ाम कहती हैं, ''उस दौरान में मुझे जिस किताब ने सबसे अधिक प्रभावित किया वह प्रसिद्ध विद्वान मुहम्मद असद की किताब 'The Road to Macca'[1] है। यह किताब ही वस्तुत: मेरे लिए शुभ घड़ियों का सन्देशा लेकर आई। मैंने एक बार फिर इस्लाम का पूर्ण रूप से अध्ययन आरम्भ कर दिया। ढाई वर्ष के लम्बे समय के बाद अन्तत: वह घड़ी आ ही गई जब मेरे दिल ने गवाही दी कि इस्लाम ही वास्तव में दुनिया का सच्चा, हक़ीक़ी और पूर्ण धर्म है। और मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के आख़िरी रसूल हैं और यह कि क़ुरआन मजीद अल्लाह की आख़िरी किताब है, जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। अत: एक दिन अस्र के बाद मैं अपने पति और उनके पाँच बाअमल मुसलमान मित्रों की उपस्थिति में कलिमा (इस्लाम का मूल मंत्र) पढ़कर बाक़ायदा इस्लाम के दायरे में दाख़िल हो गई। यह ख़ुदा का मुझ पर बड़ा एहसान था कि मुझे यह सौभाग्य प्रदान किया।

इस्लाम स्वीकार करने के बाद क्रोनी का नाम शाहीन गुलफ़ाम रखा गया। वे कहती हैं, ''मेरे नाम का दूसरा शब्द मुझे बहुत पसन्द है। मैंने नाम रखने के समारोह के बाद अपने पति से पूछा कि इसका अर्थ क्या है तो उसने कहा, 'फूल की तरह'। मुझे बचपन ही से फूलों के नाज़ुकपन और सुन्दरता से बड़ा लगाव रहा है। इस्लाम में दाख़िल होने के बाद मेरे व्यक्तित्व और मेरी आत्मा में अनगिनत परिवर्तन आना शुरू हो गए। मुझे ऐसा लगा जैसे मैं पतिंगे (Caterpiller) से तितली (Butterfly) का रूप धारण कर रही हूँ। मेरा अन्त:करण बदल रहा था और यह सब कुछ मेरे पति के कारण था, जिसके धीरज,

---

1. यह पुस्तक हिन्दी भाषा में 'इस्लाम की गोद में' नाम से उपलब्ध है। —प्रकाशक

आचरण और चरित्र ने मुझे इस पूर्ण वास्तविकता से परिचित कराया।

इस्लाम स्वीकार करने के बाद शाहीन गुलफ़ाम के दिल और दिमाग़ पर छाई अज्ञानता के दौर की धुंध ख़ुद–ब–ख़ुद छँट गई। यह शान्ति और सन्तुष्टि के क्षण थे। शाहीन गुलफ़ाम का सम्बन्ध नीदरलैंड से है, जिसके नागरिकों के बारे में कहा जाता है कि वे संसार की सबसे अधिक यथार्थ प्रिय जाति है। शाहीन से जब पूछा गया कि इस्लाम स्वीकार करने पर उसके माता–पिता की क्या प्रतिक्रिया थी तो उनका जवाब था, ''मेरे माता–पिता चूँकि कट्टर ईसाई थे, इसलिए उन्हें मेरी हरकत एक आँख न भाई। वे जहाँ भी मुझे मिलते ख़ूब कोसते। वे कहते थे कि इस्लाम स्वीकार करने के बाद तुम्हारा पति तुम्हारा शोषण करेगा। तुम्हें अपनी लौंडी बनाकर रखेगा। इस्लाम उनके लिए वास्तव में एक अजनबी धर्म था। वे इसके गुणों और श्रेष्ठताओं से परिचित ही नहीं थे। इसलिए उनकी असत्य आलोचना मुझे प्रभावित न कर सकती थी। उनके लिए यह बात भी लज्जाजनक थी कि लोग क्या कहेंगे कि इतने कट्टर ईसाई घराने की बेटी ने इस्लाम क़बूल कर लिया है। लेकिन धीरे–धीरे यह बात उनकी समझ में आने लगी कि उनकी बेटी ने जो क़दम उठाया है, वह ठीक ही था।''

शाहीन गुलफ़ाम से जब यह पूछा गया कि पहले वे ईसाई थीं और अब ख़ुदा की मेहरबानी से मुसलमान हैं। दोनों धर्मों का उन्होंने गहराई से अध्ययन और अवलोकन किया है, अगर दोनों की तुलना की जाए तो सामाजिक दृष्टि से दोनों धर्मों में उन्होंने क्या अन्तर महसूस किया है ? शाहीन का जवाब था— इस्लाम मानव–जीवन में एक सन्तुलन पैदा करता है, इसी लिए तो इस्लाम को सम्पूर्ण जीवन व्यवस्था कहा जाता है। जीवन का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं, समाज का कोई पहलू ऐसा नहीं जो इसकी परिधि में न आता हो। इस्लाम में मनुष्य के आध्यात्मिक और भौतिक जीवन में कोई विभाजक–रेखा नहीं खींची जा सकती। अगर मैं ईसाई रहती तो अब तक नन (संयासिनी) बन चुकी होती, क्योंकि ईसाईयत में औरतों के लिए आध्यात्मिक जीवन के विकास के लिए सिवाय नन बनने के और कोई रास्ता नहीं है। मगर इस्लाम में ऐसा नहीं है। इस्लाम में तो रोज़मर्रा का हर काम ही इबादत (उपासना) है, शर्त यह है कि नीयत ठीक हो और निस्स्वार्थ भाव से काम किया जाए। इस्लाम की किसी भी

दृष्टि से ईसाईयत से तुलना, मैं समझती हूँ, इस्लाम के साथ अन्याय का पर्याय होगा। केवल नमाज़ ही को ले लीजिए, इस्लाम से पहले मैं व्यायाम और आत्मा की शान्ति के लिए योगा किया करती थी। मगर अब मैं नमाज़ पढ़ती हूँ तो इससे कई फ़ायदे हासिल होते हैं। आध्यात्मिक विकास भी होता है, शारीरिक अंगों की थकन भी ख़त्म हो जाती है और अल्लाह की निकटता भी प्राप्त हो जाती है।

रमज़ान के अपने पहले रोज़ों के बारे में शाहीन की रूदाद भी दिलचस्प है। उन्होंने कहा : ''रमज़ान आया तो मेरे पति ने मुझे रोज़े रखने को कहा। मैं इससे पहले दो साल से अपने पति को रोज़े रखते देखती आ रही थी। इस बार ख़ुद भी रोज़े रखने का समय आया तो पहले तो मैं, सच्ची बात है, बहुत घबराई, मगर उस दौरान में मुझे हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और उनके साथियों सहाबा (रज़ि०) के रोज़ों की वह तारीख़ याद आ गई जब उन्होंने तपते हुए दिनों में रोज़ों के साथ अरब के इस्लाम-विरोधियों के साथ जिहाद किया था। इस चीज़ ने मेरी हिम्मत बँधाई और अल्लाह की कृपा से सारा रमज़ान मैं पूरी पाबन्दी से रोज़े रखती रही। ईद के दिन मेरे पति के चेहरे पर जो ख़ुशी थी, मैं कभी उसे भुला नहीं सकती। एक पश्चिमी और ईसाईयत पर अमल करने वाली लड़की का पश्चिमवादी पति उसे ऐसी ख़ुशी से कभी नवाज़ नहीं सकता। यह मेरा दावा है।

नवमुस्लिमों के लिए, विशेषकर नीदरलैंड में शाहीन गुलफ़ाम ने सात किताबें लिखी हैं। उन्होंने उसी सन्दर्भ में एक रोचक घटना सुनाई ''मैं 'इस्लाम में औरत का स्थान' पर एक किताब लिखना चाहती थी। मेरी एक सहकर्मी यूनीवर्सिटी प्रोफ़ेसर ने मुझे बताया कि मुझे इस सन्दर्भ में लन्दन की इण्डिया ऑफ़िस लायब्रेरी अवश्य जाना चाहिए। मैं लन्दन गई, किताब के लिए सारा मैटर तैयार कर लिया। जिस दिन मुझे वापस जाना था मुझे लायब्रेरी में पाकिस्तान के एक स्कॉलर शाह अब्दुल अलीम सिद्दीक़ी का लिखा हुआ वह किताबचा (पुस्तिका) मिल गया, जो उन्होंने कभी शायद बरनार्डशा को लिखा था। उनकी लेखन-शैली और अपने धर्म पर दृढ़ विश्वास ने मुझे बड़ा सहारा दिया। मैंने उसकी एक फोटो कॉपी बनवाई और वापस आकर डच भाषा में अनुवाद करके लोगों में बाँट दिया।''

श्रीमती शाहीन गुलफ़ाम के तीन बच्चे हैं और तीनों बेटियाँ, जिनकी उम्रें पन्द्रह और तीन वर्ष के बीच हैं। शाहीन का विचार है कि पश्चिम में रहकर इस्लाम पर चलना निस्सन्देह एक कठिन काम है, क्योंकि समाज का प्रदूषण क़दम–क़दम पर इन्सान की राह रोकता है। इस पहलू से वे अपनी बेटियों के बारे में वाक़ई चिन्तित हैं। शाहीन का कहना है : ''पश्चिम में माँ–बाप की औलाद की ओर से बेरुख़ी और लापरवाही ने इन्सान के आचरण पर बड़े नकारात्मक प्रभाव डाले हैं। प्रचलित घटिया आचरण के कारण बच्चों का शिक्षण–प्रशिक्षण एक बड़ी समस्या है। मेरी बड़ी बेटी कक्षा में सिर ढक कर नहीं जा सकती, हालाँकि वह ऐसा करना चाहती है। मैं अपनी बेटियों को प्रतिदिन यह पाठ पढ़ाती हूँ, ''देखो! मैं हर जगह तुम्हारी निगरानी नहीं कर सकती, मगर एक हस्ती ऐसी भी है, जो हर पल तुम पर, तुम्हारे कर्मों पर नज़र रखे हुए है और वह हस्ती ख़ुदा की है। तुम लोग मुसलमान हो और मुसलमान की सन्तान हो। तुम्हें ख़ुदा को हाज़िर–नाज़िर जानकर अपने धार्मिक और सांसारिक कर्तव्यों का निर्वाह करना होगा। ख़ुदा का ख़ौफ़ ही तुम्हें सीधी–सच्ची राह पर रखने का माध्यम होगा। इसके अतिरिक्त दुनिया की कोई ताक़त तुम लोगों को इस रास्ते पर चलने पर विवश नहीं कर सकती।''

बेटियों के सम्बन्ध में शाहीन ने पूर्वी देशों में एक घिनौनी समस्या की ओर इशारा करते हुए कहा— ''1988 ई० में अपने पति के साथ पाकिस्तान आई तो मेरी ससुराल विशेषकर ननदों की ज़िद थी कि मैंने अभी तक किसी बेटे को जन्म क्यों नहीं दिया? मुझे नहीं मालूम था कि पाकिस्तान में इस प्रकार के रुढ़िवादी विचार भी लोगों में पाए जाते हैं, जबकि आश्चर्यजनक बात यह थी कि मेरी जिन ननदों ने यह सवाल किया था, पेशे के एतबार से दोनों डॉक्टर थीं, मगर इस्लाम की सच्ची रौशनी उन तक नहीं पहुँच सकी थी और न ही ख़ुदा ने उनको व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया था।''

यूनीवर्सिटी की प्रोफ़ेसरशिप से पूर्व शाहीन गुलफ़ाम दस वर्षों तक एक अन्तर्राष्ट्रीय एयरलाइन में नौकरी करती रही हैं और इस बीच में उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया था। यह बात शायद प्रत्येक पाठक के लिए आश्चर्यजनक हो कि शाहीन दुनिया की पहली एयरहॉस्टेस थीं, जो उड़ान के दौरान भी अपनी नौकरी बुरक़े में करती थीं। इस राह में उन्हें बड़ी समस्याओं

का सामना करना पड़ा। मगर उन्होंने पर्दा छोड़ा नहीं। वे कहती हैं कि बुरक़ा पहने हुए उड़ान के दौरान जब मैं यात्रियों की सेवा करती तो सभी लोगों के लिए यह लिबास बड़े अचम्भे का कारण बनता। मेरा रंग–रूप देखकर उनका पहला अन्दाज़ा होता कि शायद यह मराकशीया तुर्की प्रवासी है। मगर जब यह बात उनके ज्ञान में आती कि मैं यूरोपीय हूँ तो उनके मुँह खुले के खुले रह जाते। इस पहलू से मैं बहुतों के नज़दीक शायद बेचारगी की प्रतीक थी। मगर इस्लाम की सच्चाई बहरहाल, मैंने अपने दृढ़ स्वभाव से सिद्ध कर दी।''

बुरक़े में नौकरी करते हुए जब समस्या बढ़ गई तो शाहीन गुलफ़ाम ने इस्तीफ़ा देकर डच यूनीवर्सिटी की नौकरी कर ली, जहाँ उन्हें पूर्वी विभाग का केवल तीन वर्ष की अल्पकालिक अवधि में अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया।

हॉलैंड में हाल ही में की गई गणना के अनुसार वहाँ लगभग चार हज़ार मुसलमान महिलाएँ हैं। मगर शाहीन गुलफ़ाम ने तेरह साल पहले इस्लाम क़बूल किया तो शाहीन के बयान के अनुसार— ''वहाँ मुस्लिम महिलाओं की संख्या बहुत कम थी। हम पाबन्दी से हर जुमा को किसी एक घर का चयन कर लेतीं और वहाँ बैठकर अपनी समस्याओं और अनुभवों पर विस्तृत बातचीत होती। हमारे प्रयासों से और भी महिलाएँ हमारे सेंटर में जमा होने लगीं, क्योंकि इस देश में डच भाषा में इस्लाम के विषय में बहुत कम किताबें उपलब्ध थीं। मस्जिदों की संख्या एक तो न होने के बराबर थी और जो थीं भी उनमें मुसलमान इमामों और ख़तीबों की बड़ी संख्या ऐसी थी जो अरबी, तुर्की और मराकशी भाषा तो बोल लेते थे, मगर हॉलैंड की भाषा पर उन्हें महारत हासिल नहीं थी कि सवाल करने वाले अपने मुख़ातिब की बात समझ कर उसकी क्षमता और योग्यता के अनुसार जवाब दे सकते और हमारे पास ऐसी महिलाएँ भी आती थीं जो मर्द इमामों के पास अपनी विभिन्न समस्याओं और सवालों के जवाब प्राप्त करना उचित नहीं समझती थीं। महिलाओं की संख्या में वृद्धि होने लगी तो हमें आत्मिक आनन्द का एहसास होने लगा कि हमारे प्रयासों से ख़ुदा का सन्देश और ख़ुदा के रसूल (सल्ल०) के पवित्र कथनों का प्रकाश इस गुमराह देश की अन्धेर नगरी में फैलने लगा था। अगरचे उसकी गति कितनी ही मद्धिम क्यों न थी एक दिन महिलाओं ने मेरे नाम पर्ची निकाल दी कि मैं हर जुमा को अस्त्र की नमाज़ के बाद उनके विभिन्न सवालों के

जवाब दिया करूँ और यह कि पहले से बताए हुए एक विषय पर भाषण भी दिया करूँ। सच बात यह है कि मैंने उसे अपने लिए एक शुभ अवसर समझा कि इस प्रकार मुझे प्रचार का अवसर मिल रहा था। अगरचे इसमें बहुत-सी कठिनाइयाँ भी थीं। मुझे इस मुहिम में कामयाब होने के लिए बहुत अध्ययन भी करना पड़ता था। ख़ुदा का शुक्र है कि उसने मुझे क़दम-क़दम पर अपनी मदद और अपना सहारा प्रदान किया। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमने एक संस्था ''अन-निसा'' (औरत) के नाम से भी स्थापित की है। पहले तो हमें आशा थी कि सरकार हमें इसके लिए कुछ मदद प्रदान करेगी। मगर मुसलमानों की संस्था समझकर इसे पूरी तरह नज़रअन्दाज़ कर दिया गया। हमने हिम्मत न हारी और 'अपनी मदद आप' के सिद्धान्त के अनुसार इसे अपने पैरों पर खड़ा कर ही लिया। हमारी सभी मुस्लिम महिलाएँ इस संस्था की सदस्य हैं और इस पर गर्व कर सकती हैं।'' शाहीन गुलफ़ाम को इस संस्था की अध्यक्षा बनाया गया। उनकी बेहतरीन कोशिशों के कारण इस संगठन ''अन-निसा'' की हॉलैंड में आठ शाखाएँ खुल चुकी हैं और वे इस्लाम की भरपूर सेवा कर रही हैं।

''अन-निसा'' का मुख्य काम शाहीन गुलफ़ाम के कहने के अनुसार यह है कि वह मुसलमानों के अतिरिक्त ग़ैर-मुस्लिम महिलाओं को भी इस्लाम और इस्लामी जीवन के सम्बन्ध में बुनियादी जानकारी प्रदान करे। इसके अतिरिक्त वह इस्लाम के बड़े कर्तव्यों अर्थात् नमाज़, ज़कात और रोज़े के बारे में भी लोगों को अवगत कराए। इसी संस्था के द्वारा इस्लाम के दार्शनिक उद्देश्यों के बारे में मासिक लेक्चरों का आयोजन भी किया जाता है, जिनमें महिलाएँ बड़ी उमंग और ईमानी भावनाओं से परिपूर्ण होकर शामिल होती हैं। शाहीन कहती हैं, ''ये इज्तिमा हमें अल्लाह की बन्दगी पर विवश कर देते हैं। महिलाएँ, जिनमें ग़ैर-मुस्लिम भी होती हैं, उनकी बड़ी संख्या से अन्दाज़ा होता है कि इस देश में इस्लाम के बारे में जानकारी प्राप्त करने की लोगों में कितनी तड़प मौजूद है। मगर इसके लिए बाअमल मुसलमानों को सामने लाने की सख़्त ज़रूरत है।'' लेक्चरों का आयोजन यूनीवर्सिटियों, कॉलेजों और स्कूलों में भी उनकी इच्छानुसार किया जाता है। नवमुस्लिमों को नमाज़ पढ़ना सिखाया जाता है और औरतों को इस बात का भी प्रशिक्षण दिया जाता है कि

मुस्लिम औरत की मृत्यु पर नहलाने और क़फ़नाने का तरीक़ा क्या है ? बच्चों और बच्चियों को क़ुरआन अनुवाद के साथ पढ़ाने की भी व्यवस्था की गई है।

अल्लाह के अन्तिम सन्देश को दूर–दूर तक फैलाने के लिए शाहीन गुलफ़ाम ने एक मासिक पत्रिका के प्रकाशन की भी व्यवस्था की है। वे कहती हैं, ''इस पत्रिका के जारी करने का एक मात्र उद्देश्य यह है कि वे महिलाएँ और लड़कियाँ जिन्होंने ताज़ा–ताज़ा इस्लाम स्वीकार किया है और जो हमारे केन्द्रों में किसी कारण उपस्थित नहीं हो सकती हैं, उनके इस्लामी प्रशिक्षण की व्यवस्था उनके घरों में कर दी जाए। शुरू–शुरू में यह सारा काम मुझे ही करना पड़ता था।

मैं इस पत्रिका में इस्लामी लेक्चरों और क़ुरआन की किसी सूरत का डच भाषा में अनुवाद करती थी। महिलाओं की ओर से आए हुए सवालों का जवाब भी लिखती थी। अरबी भाषा से अधिक से अधिक लगाव पैदा करने के उद्देश्य से इस्लामी कहानियों को अरबी और डच भाषा दोनों में अनुवाद करके प्रकाशित करती। अल्लाह का शुक्र है कि इस पत्रिका को ख़ुदा ने बड़ी लोकप्रियता प्रदान की और यह लाभ में जाने लगी। इससे होने वाले लाभ को हमने अपने केन्द्रों के अन्य ख़र्चों में प्रयोग करना आरम्भ कर दिया।''

शाहीन गुलफ़ाम की इस पत्रिका का नाम ''वाइस ऑफ़ इस्लाम'' है। उनकी इस पत्रिका की गूँज यूरोपीय बुद्धिजीवी–वर्गों में भी पहुँची तो शाहीन को डच रेडियो और टी. वी. पर इस्लामी जीवन व्यवस्था के विभिन्न विषयों पर भाषण के लिए बुलाया जाने लगा। शाहीन ने बताया, ''रेडियो और टी. वी. पर लोगों के एक छोटे से इज्तिमा से ख़िताब करना पड़ता था और उनके सवालों के जवाब देने पड़ते थे और इसके बाद इसी बातचीत को रेडियो और टी. वी. पर प्रसारित कर दिया जाता था। मुझसे अक्सर एक सवाल पूछा जाता कि इस्लाम स्वीकार करने के बाद महिलाओं को उनके पति पर्दे की चादरों में क्यों लिपटने पर विवश कर देते हैं ? और उनके इस सामूहिक सवाल के जवाब में मैं प्रायः यह कहती कि पर्दे के लिए हमें हमारे पति मजबूर नहीं करते बल्कि यह सब कुछ हम स्वेच्छा से करते हैं, क्योंकि ऐसा करने का ख़ुदा और उसके रसूल (सल्ल०) ने मुसलमान महिलाओं को आदेश दे रखा है। इस्लाम स्वीकार करने का उद्देश्य ही ख़ुदा की मर्ज़ी के सामने अपना सिर झुका देना है

और जब इस्लाम को स्वीकार करने के बाद भी हमने हर काम में अपनी ही मर्ज़ी चलाई और नाफ़रमानी को नहीं छोड़ा तो फिर इस्लाम को स्वीकार करने का फ़ायदा क्या ?'' इस जवाब पर लोगों की प्रतिक्रिया क्या होती है ? शाहीन ने कहा, ''कभी-कभी तो लोगों की समझ में आ जाता है और कभी वे इन बातों को मूर्खतापूर्ण विचार समझते हैं।''

साहसी, दृढ़ संकल्प और शाहीन गुलफ़ाम से जब यह पूछा गया कि आपने परिपक्वावस्था में इस्लाम को स्वीकार किया और उसकी ईसाईयत के अलावा संसार के अन्य धर्मों से भी तुलना की। आपके विचार में औरत को संसार के किस धर्म में सबसे अधिक आज़ादी और महत्व प्राप्त है ? शाहीन गुलफ़ाम ने कहा, ''कहा जाता है कि पश्चिम की औरत को बड़ी आज़ादी प्राप्त है। उसे समाज के प्रत्येक क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त हैं। वे पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर काम करती हैं और उनके बराबर वेतन पाती हैं। मगर मैं कहती हूँ कि पश्चिम ने इस आज़ादी की आड़ में औरत के मूल अधिकार पर डाका डाला है। पश्चिम में अर्थात् ईसाई जगत् में अगर औरत गृहिणी है, केवल घर के काम-काज के लिए ही ख़ास है तो उसे जूती की नोक के बराबर भी नहीं समझा जाता और अगर वह नौकरी पेशा है तो उसको सम्मान के कुछ योग्य समझा जाता है। मगर इस्लाम में ऐसा नहीं है। इस महान धर्म में औरत चाहे किसी भी रूप और सामाजिक श्रेणी में हो। उसे समान रूप से मान-सम्मान, प्रेम और प्रतिष्ठा प्रदान की जाती है। मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं कि इस्लामी दुनिया की महिलाओं पर अल्लाह के अन्तिम सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का यही उपकार क्या कम है कि उनके शुभागमन ने समाज के सबसे कमज़ोर वर्ग को सर्वाधिक शक्तिशाली बना दिया। मैं आज तक वह दृश्य कभी नहीं भूलती, जब मैंने अपने सेंटर में आई हुई ग़ैर-मुस्लिम महिलाओं को नबी (सल्ल०) का यह कथन ''स्वर्ग माँ के क़दमों तले है'' सुनाया था तो औरतों के मुँह खुले के खुले रह गए थे और जब मैंने उन्हें नबी (सल्ल०) के कुछ अन्य कथन सुनाए जिनमें आप (सल्ल०) ने औरतों की बड़ाई और महानता के बारे में खुलकर फ़रमाया है तो ''अन-निसा'' के सेंटर में आई हुई दस की दस महिलाएँ जब सेंटर से निकली हैं तो वे इस्लाम की दौलत से मालामाल हो चुकी थीं। यह 4 दिसम्बर 1986 ई० की बात है।

□□□

39. शहनाज़ ख़ान

(नार्वे)

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादक ने नवमुस्लिमों के लिए एक सवालनामा (प्रश्न पत्र) तैयार कर रखा है, जिसे दुनिया भर में फैलाने की कोशिश की जा रही है। नार्वे की श्रीमती शहनाज़ ख़ान तक यह सवालनामा पहुँचा तो उन्होंने इसके जवाब लिखकर भिजवा दिए। उनके शुक्रिये के साथ इसका अनुवाद पाठकों की सेवा में प्रस्तुत हैं।

■ ■ ■ ■

सवाल और उनके जवाब इस प्रकार हैं :

सवाल : आपका असली नाम और इस्लामी नाम ?

जवाब : मेरा असली पैतृक नाम तोव गन्न पेडरसन (Tove Gunn Pedersen) है। इस्लाम स्वीकार करने के बाद मैं अपने पति के सन्दर्भ से शहनाज़ ख़ान बन गई।

सवाल : आप कब और कहाँ पैदा हुईं ? अपने माता-पिता और ख़ानदान के बारे में आवश्यक जानकारी दीजिए ?

जवाब : मैं 12 जून 1963 ई० को अरेन्डल (Arendal) नार्वे में पैदा हुई। मेरे माता-पिता की शादी फ़रवरी 1962 ई० में हुई। शादी के समय मेरी माँ की उम्र अठारह वर्ष जबकि पिता की पचीस वर्ष थी। मेरी माँ का सम्बन्ध एक नास्तिक परिवार से था, जबकि पिता एक कट्टर धार्मिक परिवार से थे। मगर दोनों व्यावहारिक रूप से नास्तिक हैं।

मेरी माँ नर्स हैं, जबकि पिता समुद्री जहाज़ के कैप्टन हैं। अफ़सोस! कुछ समय पूर्व दोनों में जुदाई हो चुकी है। मेरी एक ही बहन है, वह भी नास्तिक है। इस प्रकार आप कह सकते हैं कि मेरा पूरा परिवार ही धर्म से दूर है।

सवाल : आपकी शिक्षा, शिक्षा के अतिरिक्त योग्यताएँ और व्यस्तता इत्यादि ?

जवाब : मैंने प्रचलित शिक्षा के बाद दो वर्षों तक एक प्रोफ़ेश्नल शिक्षा प्राप्त की। फिर दो साल तक एक नर्सिंग स्कूल में प्रशिक्षण लेती रही। आजकल मैं एक सरकारी चिकित्सालय में नर्स की हैसियत से सेवा कर रही

हूँ।

सवाल : आप सबसे पहले कब और कैसे इस्लाम से परिचित हुईं? क्या कोई किताब पढ़ी या किसी मुसलमान से मुलाक़ात हुई?

जवाब : जब मेरी उम्र चौदह साल हुई तो सामान्य परम्परा के अनुसार माता-पिता ने कहा कि मुझे Confirmation की तैयारी के लिए सम्बन्धित पादरी के पास जाना चाहिए। यह ईसाई समाज की केवल एक रस्म थी, इससे अधिक इसकी कोई हैसियत न थी। इसलिए नास्तिक माता-पिता भी अपनी सन्तान को उपर्युक्त सुझाव देते थे। सहसा मेरे मन में एहसास उभरा और मेरे दिल ने गवाही दी कि यह केवल ढोंग है। मैं ईसा मसीह को ख़ुदा का बेटा नहीं मानती। माता-पिता की नास्तिकता के बावजूद मेरा हमेशा से यह विश्वास रहा है कि ख़ुदा एक है, उसका कोई साझी नहीं। इसलिए मैंने पादरी के पास जाने से साफ़ इनकार कर दिया।

मैं अध्ययन-मनन की हमेशा से शौक़ीन रही हूँ और हर प्रकार की अच्छी किताबें पढ़ना मेरा प्रिय काम रहा है। अत: यह मेरा सौभाग्य है कि एक दिन मैं एक पुस्तकालय में गई और वहाँ मैंने इस्लाम के बारे में एक किताब देखी।.....मैंने वह किताब हासिल की और उसका अध्ययन किया, तो मानो वह मेरे दिल की बातें करने लग गई। उसमें बताया गया था कि संसार का एक ही स्रष्टा और मालिक है और किसी भी दर्जे में उसका कोई समकक्ष नहीं— मैं इस शिक्षा से बहुत प्रभावित हुई।

इसके अतिरिक्त मेरा यह सौभाग्य भी देखिए कि इन्हीं दिनों मेरा परिचय एक मुसलमान परिवार से हो गया। इस्लाम से दिलचस्पी तो पैदा हो ही गई थी, उनकी मुहब्बत और तवज्जोह ने और अधिक आकर्षण पैदा किया और मैंने इस्लाम के बारे में उनसे कुरेद-कुरेद कर जानकारियाँ हासिल कीं..... और जब मानसिक और हार्दिक रूप से पूरी तरह संतुष्ट हो गई तो सोलह वर्ष की उम्र में कलिमा पढ़कर मुसलमान हो गई।

सवाल : आपने कब अपने धर्म को छोड़ा और क्यों?

जवाब : चूँकि मेरे माता-पिता कभी भी धार्मिक नहीं थे और स्वयं मैंने भी कभी ईसाईयत पर यक़ीन नहीं किया था, इसलिए मैं इस धर्म को अपना पैतृक धर्म नहीं कह सकती। मैंने अल्लाह की कृपा से सकारात्मक रूप से

इस्लाम की नैतिक और सामाजिक शिक्षाओं से प्रभावित होकर इस धर्म को स्वीकार किया। मेरे दिल और दिमाग़ ने गवाही दी कि इस्लाम एक सच्चा धर्म है और इसे स्वीकार करना ही सबसे बड़ी बुद्धिमानी है।

सवाल : इस्लाम स्वीकार करने के बाद आपके मित्रों और परिवार की प्रतिक्रिया क्या थी ? आपने उसका कैसे सामना किया ?

जवाब : मेरे माता–पिता और परिवार के अन्य लोग बहुत नाराज़ हुए। उनका कहना था कि इस्लाम का स्वभाव ही अत्याचार पर आधारित है और विशेष कर इस धर्म में महिलाओं के साथ बड़ा अत्याचारपूर्ण जैसा व्यवहार किया जाता है। अतः जब मैंने इस्लामी लिबास पहना और सिर पर स्कार्फ़ बांधने लगी तो उन्होंने कड़ा विरोध किया। उनका कहना था कि इस प्रकार के व्यवहार से औरत की आज़ादी छिन जाती है, किन्तु मेरे मित्रों ने मेरे इस्लाम को स्वीकार करने पर किसी गम्भीर प्रतिक्रिया का प्रदर्शन नहीं किया। उनके विचार में यह मात्र भावनात्मक उबाल है, जो एक–आध साल में ठंडा हो जाएगा।

तीन वर्षों तक अपने परिवार और माहौल से मेरा कठिन संघर्ष रहा, यहाँ तक कि उन्नीस साल की उम्र में मैंने एक मुसलमान नौजवान से शादी करके अपना अलग घर बसा लिया।

सवाल : इस्लाम को स्वीकार करने के बाद आपने अपने दैनिक जीवन में कैसी तब्दीलियाँ महसूस कीं ?

जवाब : इस्लाम को स्वीकार करने के बाद मैंने अपने जीवन में अल्लाह की मेहरबानी से बहुत–सी तब्दीलियाँ पैदा कीं या स्वयं ही पैदा हो गईं। इस्लामी तौर–तरीक़े अपनाने और हलाल व हराम (वैध और अवैध) का ध्यान रखने के बाद सभी ग़ैर–मुस्लिम दोस्तों को त्याग कर मुस्लिम लोगों से सम्बन्ध स्थापित किए। मेरी ससुराल का पूरा परिवार मुसलमान था। उनसे बिल्कुल नए ढंग से सम्बन्ध स्थापित हुए।

मेरे अन्दर रहन–सहन के यूरोपीय ढंग में विशेष परिवर्तन तो यह है कि मैं पर्दे वाला लिबास पहनती हूँ। क्लबों में नहीं जाती, गृहिणी की हैसियत से घर पर ही जीवन व्यतीत कर रही हूँ। नमाज़ों के समय के साथ–साथ अन्य दैनिक कर्मों में भी सामंजस्य स्थापित हो गए हैं। मेरे आसपास लोग गर्मियों की

दोपहर में अर्द्धनग्न वस्त्र पहन कर समुद्री तट पर मस्तियाँ करते हैं। लेकिन मैं पूरा लिबास पहन कर सन्तुष्ट और प्रसन्नचित्त होकर अपने कामों में व्यस्त रहती हूँ।

सवाल : आपके विचार में आपके भूतपूर्व धर्म.....ईसाईयत.....और इस्लाम में मौलिक अन्तर क्या हैं ?

जवाब : वर्तमान ईसाईयत और इस्लाम में अन्तर यह है कि आप हर काम करने में उस समय तक पूर्णतया आज़ाद हैं जब तक आपका पड़ोसी परेशान न हो, विशेष रूप से लैंगिक दृष्टि से यह समाज पूर्णतः स्वतंत्र है। किसी प्रकार की कोई रुकावट नहीं और लैंगिक सम्बन्धों के पहलू से कोई दायित्व नहीं, जबकि इसके विपरीत इस्लाम सामाजिक और लैंगिक दृष्टि से बहुत–से प्रतिबन्ध लगाता है। इस्लाम में यौनाचार तो विशुद्ध रूप से पति–पत्नी तक सीमित है और इससे हटकर इसकी कोई अवधारणा नहीं है। इस्लाम स्त्री–पुरुषों के स्वतंत्र मेल–जोल की अनुमति नहीं देता, जबकि यूरोपीय समाज इसके बिना बिल्कुल अधूरा है। इस्लाम पारिवारिक व्यवस्था का संरक्षण करता है, जबकि यूरोप इससे वंचित हो चुका है। इस्लाम ने पारिवारिक व्यवस्था के संरक्षण के लिए अनेक सिद्धान्त बना रखे हैं, जबकि ईसाई समाज इस प्रकार के नियम–क़ानूनों से मुक्त है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मेरा अपना धर्म—इस्लाम—चौबीस घंटे का धर्म है, जबकि ईसाईयत सप्ताह में केवल दो घंटे के लिए जागती है, वह भी काहिली के साथ।

सवाल : आपके नज़दीक यूरोपीय समाज और उसके मूल्यों की क्या ख़ामियाँ हैं ? और इस्लाम के वे कौन–से उज्जवल पक्ष हैं जिन्होंने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया ?

जवाब : यूरोपीय समाज की त्रुटियाँ और इस्लाम की ख़ूबियाँ बयान करने के लिए तो मुझे बाक़ायदा एक किताब लिखनी चाहिए। इस बात को संक्षेप में इस प्रकार कह सकती हूँ कि पश्चिम में ''आज़ादी बिना ज़िम्मेदारी और पाबन्दी'' का प्रचार किया जाता है, जबकि इस्लाम इन्सानों को ''ज़िम्मेदारी के साथ आज़ादी'' का पाबन्द करता है और सही और ग़लत के मामले में पूरा मार्गदर्शन भी करता है।

सवाल : आपके विचार में वर्तमान समय में इस्लाम के प्रचार का सबसे सही तरीक़ा क्या है ?

जवाब : मेरे नज़दीक इस्लाम के प्रचार का सबसे मुनासिब तरीक़ा यह है कि हम समझ-बूझकर सहाबा (रज़ि०) और प्रथम शताब्दी के मुसलमानों की जीवनियों का अध्ययन करें और इस्लाम के प्रचार के सम्बन्ध में उनसे रहनुमाई हासिल करें। लोगों को बताएँ कि वे आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टि से बीमार हैं और इस्लामी नैतिकता और मूल्य ही इन बीमारियों का इलाज कर सकते हैं। उन्हें विश्वास दिलाएँ कि इस्लाम ही घर और समाज की समस्याओं का समाधान कर सकता है और इस्लामी क़ानून ही समस्त व्यक्तिगत और सामूहिक ख़राबियों को दूर कर सकता है।.....इसके साथ ही अत्यन्त आवश्यक है कि एकेश्वरवाद पर विशेष ज़ोर दिया जाए। यूरोपीय समाज में प्रचारात्मक गतिविधियों के दौरान सर्तकता बहुत ज़रूरी है कि अकारण पश्चिम की ख़ामियों और ख़राबियों पर बात न की जाए, बल्कि उनका उल्लेख कम किया जाए और सकारात्मक ढंग से इस्लाम की ख़ूबियों को अधिक उजागर किया जाए।

सवाल : इस्लाम के साथ पैदाइशी और नस्ली मुसलमानों ने जो रवैया अपना रखा है, उस पर आप क्या टिप्पणी करेंगी ?

जवाब : यह बात सचमुच कष्टदायक है कि बहुत-से नस्ली मुसलमान अपने रवैये से धर्म पर चलने वाले मुसलमानों के लिए परेशानी का कारण बनते हैं। अतः अक्सर लोग मुझसे सवाल करते हैं कि ये पुरानी मुसलमान औरतें तो नंगे सिर आज़ाद घूमती हैं, फिर तुम सिर पर स्कार्फ़ क्यों बाँधे रहती हो ? फिर यह बात भी बड़ी आश्चर्यजनक है कि बहुत-से नस्ली मुसलमान इस्लाम के विषय में कुछ भी नहीं जानते और जब किसी धार्मिक विषय पर उनसे कोई सवाल किया जाता है तो असमर्थता प्रकट करने के बजाए ऐसे ग़लत जवाब दे देते हैं, जो कभी-कभी धार्मिक शिक्षाओं के बिल्कुल विपरीत होते हैं। शायद इसी लिए हम जैसे लोग जो इस्लाम को शऊरी तौर पर समझते हैं और उसकी शिक्षाओं पर अमल करते हैं, उन्हें तो व्यंग्यात्मक रूप से कट्टरपंथी और संकीर्ण दृष्टि वाला कहा जाता है, लेकिन ये पुराने बेअमल मुसलमान 'मॉडर्न', 'लिबरल' कहलाते हैं।

□ □ □

40. सबीहा ख़ान

(उत्तरी अफ़्रीक़ा)

सबीहा ख़ान का पैतृक नाम कारोल बोट्स (Carole Botes) था। इनका सम्बन्ध उत्तरी अफ़्रीक़ा से है।

▪ ▪ ▪ ▪

मैं उत्तरी अफ़्रीक़ा के कैपटाउन शहर में कैथोलिक परिवार में पैदा हुई और होश संभालने पर कॉन्वेट स्कूल में दाख़िल कराई गई। यहाँ पर पारंपरिक विचारों वाली धार्मिक अध्यापिकाओं (Nuns) की निगरानी में मेरी शिक्षा–दीक्षा होती रही। लेकिन सच्ची बात यह है कि बहुसंख्य छात्र–छात्राओं की तरह मेरे भी मन–मस्तिष्क पर धर्म का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और मैंने कभी भी गंभीरता से ईसाई धर्म या बाइबल की शिक्षा प्राप्त करने की कोशिश नहीं की। धार्मिक शिक्षा बाइबल के विभिन्न पृष्ठों और उन्हीं के पदों पर आधारित होती। बार–बार उन्हीं की पुनरावृत्ति होती, जिनके कारण रुचि के बजाए उकताहट पैदा होती चली गई। स्कूल में जानबूझ कर इस बात की पूरी कोशिश की जाती कि इस्लाम धर्म या हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के नाम की भनक भी छात्रों के कानों में न पड़े।

उत्तरी अफ़्रीक़ा पर एक लम्बे समय तक अंग्रेज़ों का शासन रहा और उनके प्रभाव के कारण पूरे समाज पर यूरोपीय प्रभाव बहुत गहरे हैं, विशेषकर गोरे लोगों का रहन–सहन तो पूरे तौर पर यूरोपीयन है। इसलिए स्कूल की शिक्षा के दौरान सामान्य प्रचलन और वातारण से प्रभावित होकर मैंने भी भरपूर आज़ादी के वातावरण में जीवन व्यतीत किया। बेफ़िक्री के दिन थे, उमंग भरी रातें थीं और भोग–विलास के व्यापक अवसर प्राप्त थे। कभी भूलकर भी अपने स्रष्टा का ख़याल न आया, न कभी सोचने की मोहलत मिली कि भोग–विलास के अतिरिक्त जीवन का कोई और लक्ष्य भी है। किन्तु कभी–कभी दिल में हलकी–सी चाहत पैदा होती कि काश, ख़ुदा के साथ भी मेरा सम्बन्ध स्थापित हो जाता। लेकिन यह समझ में न आता कि यह कैसे हो सकता है ? यूँ भी मैंने इस इच्छा को अपनी वरीयता सूची के बिल्कुल आख़िर में रखा था।

जीवन पूरे भोग-विलास और आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था। लेकिन एक समय आया कि मेरे दिल और दिमाग़ पर उदासियों ने डेरे डाल दिए, जब भी अकेली होती सख़्त परेशानी और मायूसी मुझे घेर लेती। एक शून्य था जिसमें मैं क़ैद थी। यूँ लगता था जैसे कोई बहुत ही क़ीमती चीज़ खो गई हो। सहसा सोचने लगती कि मैं एक उद्देश्यहीन जीवन व्यतीत कर रही हूँ। मानव का जीवन तो सार्थक, भरपूर और गम्भीर होना चाहिए। मेरा और मेरी जाति के लोगों का व्यवहार तो जानवरों जैसा है। केवल शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति और आत्मा की माँगों से पूर्ण विमुखता—सहसा दिल से दुआएँ निकलने लगतीं कि ऐ ख़ुदा! मेरा मार्गदर्शन कर—मुझे सीधा रास्ता दिखा।

लेकिन मुश्किल यह थी कि अपने पैतृक धर्म ईसाईयत में रहते हुए किसी सीधे रास्ते पर चलने और मंज़िल पर पहुँचने की कोई गुंजाइश न थी। यह धर्म कुछ अंधविश्वासों और पुराने रस्म-रिवाजों के अलावा कुछ न था। और इसमें इतनी क्षमता ही न थी कि अपने अनुयायियों में कोई रूहानी या अमली बदलाव ला सके।

तंग आकर मैंने अन्य धर्मों का अध्ययन आरम्भ किया। पहले हिन्दू मत के बारे में किताबों का अध्ययन किया, फिर बौद्ध मत के बारे में किताबें प्राप्त कीं और उसके धार्मिक सिद्धान्तों को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयास किया। लेकिन इन दोनों ने मेरी बुद्धि और आत्मा को कुछ भी प्रभावित न किया। अंधविश्वास को फ़लसफ़े (दर्शन) का नाम देकर एक गोरख धन्धा तैयार कर लिया गया था।—यहूदियों के बारे में मेरा विचार यह बना कि यह केवल यहूदियों का नस्ली मज़हब है। कोई दूसरा व्यक्ति इसे स्वीकार कर भी लेगा तब भी यहूदी उसे इज़्ज़त की निगाह से नहीं देखेंगे। यहूदियत में भी इन्सानी मानव प्रकृति के अनुकूल वर्तमान काल की सभी समस्याओं का कोई समाधान नहीं है।—ईसाईयत के बाद इन तीनों धर्मों ने भी मुझे निराश कर दिया था और अब मैं हैरान और परेशान थी कि किधर जाऊँ और क्या करूँ?

तब अल्लाह ने अपनी विशेष कृपा से मेरी मदद की और सौभाग्य से मेरा इस्लाम से परिचय हो गया। एक पुस्तकालय में धार्मिक किताबों की खोज करते हुए इस्लाम के विषय में एक किताब मेरे हाथ लग गई, उसका अध्ययन किया तो मानो अन्धेरे में जुगनू चमक उठे और ज्यों-ज्यों आगे बढ़कर अन्य

किताबों और विशेषकर पवित्र क़ुरआन का अध्ययन किया तो मंज़िल क़रीब आती चली गई। मैंने देखा कि इस्लाम में अंधविश्वास या बहुदेववाद के लिए कोई स्थान नहीं। इस्लाम का झूठ और छल–कपट से दूर का रिश्ता भी नहीं है। और यहाँ बेकार घिसे–पिटे सिद्धान्तों का कोई गुज़र नहीं। हर बात बुद्धि और प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल है। फिर इसमें कमाल की सादगी है, सच्चाई है और किसी धार्मिक सिद्धान्त या अवधारणा में धुंध और उलझाव नहीं है और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यद्यपि यह चौदह सदियों पूर्व आया था, तथापि आश्चर्यजनक रूप से यह आज के आधुनिकतम और नवीनतम विकसित वैज्ञानिक युग की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं के पूरी तरह अनुकूल है।

क़ुरआन ने मुझे विशेष रूप से प्रभावित किया। यह धार्मिक पुस्तकों के इतिहास में एक मात्र पुस्तक है जो पूर्णतः शुद्ध और अपरिवर्तित है और जिस प्रकार हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर उतरी थी, उसी रूप में संसार में मौजूद है, हालाँकि अन्य धार्मिक किताबों में अनेक प्रकार के परिवर्तन कर दिए गए हैं, विशेषकर बाइबल का तो हुलिया बिगाड़ दिया गया है और वह असली किताब जो हज़रत मसीह पर उतरी थी, आज संसार में कहीं मौजूद नहीं है।

इस्लाम के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर लेने के बावजूद मैंने फ़ौरन ही इस्लाम को स्वीकार नहीं किया। बल्कि क़रीब एक वर्ष तक एकाग्रता से उसके बारे में पढ़ती रही और सोच–विचार करती रही। इस बीच इंग्लैंड के प्रसिद्ध संगीतकार केट स्टीवेंज ने इस्लाम स्वीकार किया और उसके जो कारण उन्होंने बयान किए, उन्होंने इस्लाम पर मेरे यक़ीन को और मज़बूत कर दिया और फिर एक दिन कलिमा (मूल मंत्र) पढ़कर मैं इस्लामी बिरादरी की सदस्या बन गई। इसके लिए मैं अल्लाह की शुक्रगुज़ार हूँ।

इस्लाम को स्वीकार करने के बाद सबसे पहला रहस्योद्घाटन मुझपर यह हुआ कि ईसाईयत और इस्लाम में ख़ुदा की अवधारणा के बारे में बहुत अन्तर है। ईसाईयों का ख़ुदा असामान्य नरमी का मालिक है, उससे किसी को नुक़सान नहीं है, वह कर्म और आचरण के सम्बन्ध में मनुष्य से कुछ भी अपेक्षा नहीं रखता और अपने मानने वालों को पूरी आज़ादी देता है कि वे जो चाहें करते फिरें और कभी मूड हो तो उसे थोड़ा बहुत याद कर लिया करें। यह उसकी विशेष कृपा है कि उसने अपने एकलौते बेटे को ख़ुद ही सूली पर चढ़ा

कर, क़ियामत तक समस्त ईसाईयों को पाप मुक्त कर दिया। ख़ुदा की इस विचित्र अवधारणा के बारे में जब भी मन में सवाल पैदा होते और मैं उनको व्यक्त करती तो जवाब में बहुत हिम्मत को पस्त करने वाली और दुखद प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ता। सख़्ती से डाँट दिया जाता कि ये बातें बुद्धि में आने वाली नहीं हैं। बस चुपचाप ख़ामोशी से उनपर यक़ीन रखना चाहिए।

लेकिन इस्लाम क़बूल किया तो पता चला कि सर्वोच्च अल्लाह की हस्ती संसार की सबसे बड़ी शक्ति है, वह जीवन्त और शाश्वत सत्ता है। वह अपनी सृष्टि के लिए बड़ा कृपालु और दयालु है। लेकिन उसने इन्सानों के लिए जो सिद्धान्त बनाए हैं, वह उनपर सबको सख़्ती से कार्यरत देखना चाहता है। और जो लोग इनकी पाबन्दी करते हैं, वह दुनिया और आख़िरत में सफल होते हैं, जबकि अवहेलना करने वाले न दुनिया में सुखी रहते हैं न परलोक की सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

फिर ईसाईयत के विपरीत इस्लाम के अनुसार अल्लाह स्पष्ट रूप में फ़रमाता है कि हर व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगेगा, कोई किसी का बोझ न उठाएगा और यह विचार सरासर मूर्खतापूर्ण है कि एक व्यक्ति को हमारे गुनाहों के बदले में मौत के घाट उतार दिया गया हो।

यह भी स्पष्ट कर दूँ कि इस्लाम का कोई एक ख़ास पहलू न था या कुछ अलग-अलग विशेषताएँ न थीं जिन्होंने मुझे प्रभावित किया, बल्कि यह इस्लाम का सम्पूर्ण सौन्दर्य और आकर्षण था, जो मेरे दिल में बस गया और मैं इस निर्णायक निष्कर्ष पर पहुँच गई कि संसार में इस्लाम के अतिरिक्त एक धर्म भी ऐसा नहीं जो आकर्षण, सौन्दर्य और सरलता की दृष्टि से इस्लाम से नाममात्र की भी अनुकूलता रखता हो। इस्लाम एक अष्ट पक्षीय और अष्टवर्णीय हीरा है, जिसका प्रत्येक रंग जीवन प्रदान करता है और जिसकी प्रत्येक किरण आत्मा को नई रौशनी प्रदान करती है।

किन्तु यह एक दुखद सत्य है कि एक नवमुस्लिम के लिए ग़ैर-इस्लामी माहौल में बाअमल मुसलमान बनना और धार्मिक शिक्षाओं को अपनाना बहुत ही कठिन है।

अल्लाह का शुक्र है कि उसने यह मरहला भी मेरे लिए आसान कर दिया और मेरी शादी एक बाअमल मुसलमान घराने में हो गई। यह मेरा

सौभाग्य था कि उपर्युक्त परिवार बहुत–से घरानों की तरह केवल नाम का मुसलमान नहीं था, न उन घरानों के जैसा था, जो इस्लाम के विषय में जोशीली बातें तो बहुत करते हैं, लेकिन कर्म की दृष्टि से शून्य होते हैं— अल्लाह का शुक्र है कि इस परिवार का हर सदस्य सच्चा और बाअमल मुसलमान है। इस्लाम उनके सीनों में बसा हुआ है। वे जो कुछ कहते हैं उस पर अमल भी करते हैं।

मुसलमान की हैसियत से, अलहम्दुलिल्लाह (अल्लाह का शुक्र है), मैंने अल्लाह की पहचान हासिल कर ली है और बदले के दिन का एहसास प्रति क्षण मेरे दिमाग़ में ताज़ा रहता है। चूँकि मैंने जीवन का असली मक़सद जान लिया है, इसलिए अब जीवन मेरे लिए अल्लाह की अमानत और रहमत बन गया है। मैंने यह भी समझ लिया है कि धर्म की आत्मा अल्लाह के बन्दों से प्रेम और उनकी सेवा में निहित है और इस्लाम का मुख्य शीर्षक है "मुझे अल्लाह की सम्पूर्ण स्त्रष्टि से प्रेम है।"

अल्लाह का शुक्र है कि मेरे दो बच्चे हैं, चार वर्षीय बेटी तसकीन और दो वर्षीय बेटा सिराज। मेरी इच्छा है कि दोनों इस्लाम के सच्चे और बाअमल अनुयायी बन जाएँ। मैं कोशिश करूँगी कि वे क़ुरआन से अपने सम्बन्ध बहुत मज़बूत बना लें। दिलों में अल्लाह का सच्चा ख़ौफ़ पैदा कर लें और इस्लामी शिक्षाओं पर इस ढंग से चलते रहें कि इस पश्चिमी ग़ैर इस्लामी माहौल के देश में दूसरों के लिए रौशन मिसाल बन जाएँ।

☐☐☐

41. डॉक्टर प्रोफ़ेसर सूफ़िया

(स्वीडन)

प्रस्तुत साक्षात्कार कुवैत की अरबी पत्रिका ''अल मुजतमा'' में प्रकाशित हुआ, जहाँ से अब्दुल वहीद साहब ने इसका उर्दू में अनुवाद किया और कराची 'फ्राइडे स्पेशल' (9 अप्रैल, 1996 ई०) में प्रकाशित हुआ।

■ ■ ■ ■

डॉक्टर सूफ़िया स्वीडन की लोंद यूनीवर्सिटी में धर्मशास्त्र की प्रोफ़ेसर हैं और स्वीडन में मुस्लिम महिलाओं के एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की अध्यक्षा हैं, जो लेक्चर्स, पठन-पाठन, टी. वी. के प्रोग्रामों और अख़बारों के द्वारा इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार का काम करती हैं। वे कई अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्सों में भाग ले चुकी हैं। इसके अतिरिक्त डॉक्टर सूफ़िया एक पूर्णतः गृहिणी महिला हैं। इनके दो बेटे और एक बेटी है, इनसे साप्ताहिक पत्रिका ''अल मुजतमा'' कुवैत ने एक साक्षात्कार लिया, जिसका अनुवाद प्रस्तुत है :

सवाल : आपके इस्लाम स्वीकार करने का कारण क्या है ?

जवाब : मैंने एक कट्टर ईसाई घराने में आँख खोली। मेरी माँ हमें प्रत्येक सप्ताह चर्च में ले जाने का प्रयास करती थीं, जबकि मेरे पिता मज़हबी नहीं थे। वे गणित के अध्यापक थे। मैं अपनी शिक्षा के दौरान हैरान व परेशान रहा करती थी, क्योंकि विशेष रस्म-रिवाजों पर चलने और चर्च में हाज़िरी के साथ-साथ मेरे दिमाग़ में धारणाओं और एकेश्वरवाद के सम्बंध में कुछ ऐसे सवाल आते थे, जिनका जवाब चर्च के पास नहीं था। फिर मैंने नार्वे की ओसलो यूनीवर्सिटी में धर्मशास्त्र के विभाग में प्रवेश ले लिया। वहाँ इतिहास और धर्मों के गहन तुलनात्मक अध्ययन के बावजूद इस्लाम के विषय में भ्रम का शिकार रही। इस्लाम को समझने के लिए मैंने जो किताबें पढ़ी थीं वे सही नहीं थी, क्योंकि वे पश्चिमी लेखकों की लिखी हुई थीं। अन्त में मुझे मौलाना मौदूदी की किताब ''दीनियात'' (इस्लाम धर्म) नार्विजियन भाषा में मिली और सैयद क़ुतुब की ''अल मआलिम फ़ित्तरीक़'' का अंग्रेज़ी अनुवाद मिला, जिनसे मुझे अपने सवालों का सन्तोषजनक जवाब मिला। इसके बाद मैंने उन

किताबों को पढ़ना शुरू किया, जिन्हें मुस्लिम लेखकों ने लिखा था। क़ुरआन मजीद का अंग्रेज़ी अनुवाद ख़रीदा और क़ुरआन की आयतों पर सोच–विचार शुरू कर दिया। जब मैं इस्लाम के सम्बन्ध में पूरी तरह एकाग्रचित और सन्तुष्ट हो गई तो इस्लामी सेंटर गई और कलिमा पढ़कर अपने इस्लाम का एलान कर दिया।

सवाल : आपके इस्लाम स्वीकार करने पर आपके परिजनों की क्या प्रतिक्रिया थी ?

जवाब : उन्होंने इसे सामान्य सी बात समझ कर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। लेकिन मेरी कुछ सहेलियों ने इसपर आश्चर्य प्रकट किया, विशेष रूप से जब मैंने यूनीवर्सिटी में हिजाब (पर्दा) अपनाना शुरू कर दिया, तो कुछ दोस्तों ने मेरे साथ बहस का सिलसिला आरम्भ कर दिया।

सवाल : क्या आपको पर्दा करने के कारण यूनीवर्सिटी में कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ा ?

जवाब : नई चीज़ हमेशा दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है और आरम्भ में निस्सन्देह कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, लेकिन अब तो पर्दा प्रचलित हो चुका है। मुझे परेशानियों की कोई परवाह नहीं है। हमें चाहिए कि लोगों की हिदायत के लिए दुआ करें और इस राह में आने वाली कठिनाइयों को धैर्य के साथ बर्दाश्त करें। अल्लाह का शुक्र है, इस सम्बन्ध में कोई ख़ास परेशानी नहीं है।

सवाल : आपने यूनीवर्सिटी में रहते हुए क्या दूसरों को भी इस्लाम की दावत दी है ?

जवाब : मैंने अपनी क़रीबी सहेलियों को इस्लाम की दावत दी है, और उनमें से कुछ ने इस्लाम स्वीकार भी कर लिया है। लेकिन मेरी शादी के बाद काफ़ी बदलाव आए। मेरे पति मुझसे कहते हैं कि जब तुमने भलाई को पा लिया है तो उसे दूसरों तक भी पहुँचाओ। अरबी सीखने में उन्होंने मेरी बड़ी मदद की। अल्लाह का शुक्र है कि मेरा दिन भर का प्रोग्राम पठन–पाठन, लेक्चर्स, टी. वी. प्रोग्राम और अन्य प्रोग्रामों में भाग लेने पर आधारित है।

सवाल : आप इस (पश्चिमी) समाज में रहते हुए अपनी औलाद की तरबियत किस प्रकार करती हैं ?

जवाब : औलाद की तरबियत सबसे अहम काम है और इसपर ध्यान देने की आवश्यकता है। अन्य छात्रों की भाँति हमारे बच्चे भी स्वीडिश स्कूल में जाते हैं। मैं उनके साथ बातचीत करती हूँ। इसके अतिरिक्त अरबी सीखने के लिए वीडियो कैसेट देखते हैं। नमाज़ों और ज़िक्र के साथ-साथ सोने से पहले हम उन्हें कोई एक इस्लामी कहानी सुनाते हैं और कुछ नसीहतें करते हैं। प्रत्येक सप्ताह के अन्त में अरबी पढ़ने और सीखने का अभ्यास करते हैं और अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं कि उनकी नैतिक और शैक्षिक हालत बहुत अच्छी है। और वे अरबी, स्वीडिश और नार्वेजियन भाषाओं में बात कर सकते हैं।

सवाल : इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए औरतों की राह में कैसी-कैसी रुकावटें खड़ी होती हैं ?

जवाब : औरत भी मर्द की तरह ही अल्लाह के सामने उत्तरदायी है इसलिए आवश्यक है कि औरत और मर्द दोनों ही घर-परिवार, संतान और इस्लाम धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए काम करें। वर्तमान काल में हमारी ज़िम्मेदारियाँ बहुत बढ़ गई हैं। औरत के लिए बुनियादी और अहम ज़िम्मेदारी उसका घर है। लेकिन अनपढ़ और आशीक्षित औरत कोई काम भी सही तरीक़े से नहीं कर सकती। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए ज़िन्दगी और समाज के अनुभव और निरीक्षण की ज़रूरत होती है, जिसके नतीजे में बच्चों की शिक्षा-दीक्षा और माता-पिता की सेवा करना सम्भव होता है। हमारी वर्तमान प्रशिक्षण व्यवस्था महिलाओं को शिक्षक और प्रचारक बनाने के बजाए, उन्हें बेकार और पिछड़ा बनाती हैं। हालाँकि वे आनेवाली नस्लों की शिक्षा-दीक्षा की ज़िम्मेदार हैं।

सवाल : भविष्य में आपके क्या इरादे हैं ?

जवाब : मैंने क़ुरआन का स्कैंडेनेवी भाषा में अनुवाद आरम्भ कर दिया है। इसके अतिरिक्त हज करने का इरादा है और मैं सहाबी औरतों का अनुसरण करते हुए मुसलमान औरत की मदद करना चाहती हूँ, ताकि वे अपना दायित्व सक्रियता के साथ अदा करें। अल्लाह मेरी मदद करे और हमारी तमाम कोशिशों को अपनी प्रसन्नता के लिए विशिष्ट कर दे। (आमीन)

सवाल : मुस्लिम महिलाओं का अन्तर्राष्ट्रीय संगठन बनाने का क्या उद्देश्य है ?

जवाब : स्वीडन में विभिन्न क़ौमों की मुस्लिम महिलाएँ रहती हैं, जिनका सम्बन्ध यूरोप, एशिया, अफ्रीक़ा, अमेरिका और अरब देशों से है। हमने महिलाओं की सेवा और इस्लाम की दावत के काम में तमाम मुस्लिम महिलाओं को भागीदार बनाने के लिए एक संयुक्त प्लेटफ़ार्म की आवश्यकता महसूस की, ताकि संगठन द्वारा महिलाएँ आसानी से हमारे साथ संपर्क कर सकें।

सवाल : आजकल आपके संगठन की क्या महत्वपूर्ण सरगर्मियाँ हैं ?

जवाब : महिलाओं, लड़कियों और बच्चों के लिए साप्ताहिक अरबी और स्वीडिश भाषा में पाठ होते हैं। औरत की समस्याओं और आवश्यकताओं के सम्बन्ध में सेमीनार और वर्कशाप आयोजित किए जाते हैं। प्रशिक्षण कैम्प और वार्षिक कॉन्फ्रेन्स की व्यवस्था की जाती है। औरतों की समस्याएँ, कठिनाइयों और उनके अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयास किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त मुहताजों और शरणार्थियों के लिए हम फण्ड जमा करते हैं।

सवाल : आपकी इन सरगर्मियों के मुस्लिम महिलाओं पर क्या प्रभाव पड़ते हैं ?

जवाब : प्रोग्रामों के प्रकार और महिलाओं के कार्यों और उनकी व्यस्तता की दृष्टि से प्रभाव पड़ता है। बोसनिया और यूरोप की महिलाएँ क़ुरआन और हदीस की शिक्षाओं को सीखने में रुचि लेती हैं। अरब महिलाएँ बच्चों की शिक्षा–दीक्षा और खाना–पकाने से सम्बन्धित लेक्चर में अधिक दिलचस्पी लेती हैं, जबकि सूमाली महिलाओं की कोशिश अरबी सीखने के लिए होती है। मेरे विचार में पति–पत्नी की शैक्षिक योग्यता और हैसियत उनके रुझानों की दिशा निश्चित करती है। लेकिन हमारी लगातार कोशिश होती है कि हम औरत की पूरी सहायता करें, ताकि वह धर्म के अपेक्षित स्तर तक पहुँच जाएँ। इसमें सन्देह नहीं कि इस काम के लिए बड़े धैर्य की आवश्यकता है।

सवाल : आप संगठन की आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करती हैं ?

जवाब : अभी तक हमारी ज़रूरतें अपने सदस्यों की सहायता और व्यक्तिगत सहयोग से पूरी की जाती हैं।

सवाल : आपका सम्बन्ध चूँकि यूरोप से है, इस परिदृश्य को सामने रखते हुए औरत की आज़ादी के बारे में आपकी क्या राय है ?

जवाब : औरत की आज़ादी का नारा ख़ुराफ़ात और अज्ञानता पर आधारित है। हाँ, यह ज़रूरी है कि हम महिलाओं को यह बताएँ कि इस्लामी सिद्धान्तों के अन्दर रहते हुए समाज के विकास में औरत का क्या रोल है, लेकिन औरत को उसकी नैतिक परिधि से बाहर लाकर आज़ादी की बात करना कि वह अपने आपको दूसरों के हाथ बेचने या अपनी सन्तान को ममता से वंचित करके उन्हें नौकरों के हवाले करे और स्वयं दूसरों की सेवा करे, यह हमें कदापि मंज़ूर नहीं है और यह ज़रूरी है कि मर्द और औरत अपनी इज़्ज़त की रक्षा करते रहें। इस प्रकार स्वाभाविक इच्छाओं की पूर्ति होती है और परिवार के सदस्यों में प्रेम और स्नेह जन्म लेता है और सम्पूर्ण समाज का सुधार होता है।

सवाल : तसलीमा नसरीन के स्वीडन आगमन पर आपने स्वीडन टी. वी. पर टिप्पणी की थी। उसके सम्बन्ध में आपकी क्या राय है ?

जवाब : तसलीमा नसरीन का कोई इल्मी मक़ाम नहीं है। उसने राजनैतिक शरण और सस्ती ख्याति की प्राप्ति के लिए पश्चिम का प्रयोग किया। हालाँकि वह अपने विरोधियों और समर्थकों दोनों की ओर से इस प्रकार के सम्मान की हरगिज़ पात्र नहीं थी। क़ुरआन मजीद इस युग का मोजिज़ा (चमत्कार) है और अल्लाह इसकी हिफ़ाज़त करेगा। अतः मुसलमानों को चाहिए कि वे इस प्रकार के लोगों को महत्व न दें और उन्हें राय की आज़ादी का हीरो न बनाएँ। क़ुरआन तो इसलिए आया है कि वह ग़ुलामों को आज़ादी की नेमत प्रदान करे, लेकिन मुसलमानों की कोताहियों का नतीजा है कि क़ुरआन को राय की आज़ादी के दृष्टिकोण के दुश्मन के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। दलील का जवाब दलील से दिया जाना चाहिए, न कि भावनाओं और उत्तेजना का प्रदर्शन किया जाए।

सवाल : क्या आपने अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्स में भाग लिया है और आपकी उनके सम्बन्ध में क्या राय है ?

जवाब : मुझे पाकिस्तान, सूडान और अलजज़ायर में महिला कॉन्फ्रेन्सों में भाग लेने की दावत मिली। इसके अतिरिक्त मैंने तीन अन्तर्राष्ट्रीय कॉन्फ्रेन्सों ओमान, लाहौर और इसतम्बोल में भाग लिया। अलजज़ायर में आयोजित होने वाली महिला कॉन्फ्रेन्स मुझे बहुत पसन्द आई, जिसमें इस्लाम धर्म की प्रसिद्ध धर्म–प्रचारिका ज़ैनब अलग़ज़ाली और उर्दुन से सुमैरा ने भाग लिया। यह मेरी

आरज़ू है कि सदस्यों की सक्रियता और उनकी सरगर्मियों को एक जुट और सक्रिय बनाने के लिए महिला कॉन्फ्रेन्सों का अधिक से अधिक आयोजन किया जाए, क्योंकि उनकी सरगर्मियों की मौजूदा सूरते-हाल बहुत कमज़ोर है और मेरे विचार में यह धर्म का प्रचार-प्रसार करने वाले लोगों का दायित्व है कि वे अपनी महिलाओं और बेटियों को इस मैदान में शीघ्र काम करने की प्रेरणा दें, ताकि वे इस्लामी दावत और प्रचार-प्रसार का काम इस प्रकार करें जिस प्रकार वे अपनी अन्य ज़रूरतों और मसलों के लिए करती हैं।

सवाल : इस्लामी देशों के संबन्ध में आपकी क्या राय है ?

जवाब : मुझे उमरा करने से बहुत शान्ति मिली। मैं मक्का और मदीना बार-बार जाना चाहती हूँ। जिद्दा शहर का विकास और नयापन बहुत पसन्द आया, जबकि उर्दुन में सामाजिक जीवन और विशेष रूप से महिलाओं की हालत अन्य इस्लामी देशों के मुक़ाबले में सन्तोषजनक है, जहाँ औरत समाज में अपना हक़ीक़ी रोल अदा कर रही है। ओमान एक ख़ूबसूरत शहर है, विशेष रूप से बसन्त ऋतु में और गर्मियों के आरम्भ में। हर शहर की अपनी विशेषताएँ हैं। मिस्र के लोग मुश्किल ज़िन्दगी और ग़रीबी के बावजूद बड़े धीरजवाले और सन्तोषी हैं। मराकश का वातावरण भी अन्य शहरों जैसा है। उसके प्राकृतिक दृश्य देखने योग्य हैं।

विचारणीय तथ्य यह है कि इनमें से अधिकांश देशों में धर्म बस परम्परा और रीति-रिवाजों का नाम है, सिवाय इसके कि युवाओं में इस्लाम के पुनर्जन्म और नैतिक जीवन में बदलाव नज़र आ रहा है। मैंने यह यात्रा इस्लाम स्वीकार करने के बाद ही की थी और अल्लाह का शुक्र है कि मैंने यह काम पहले नहीं किया था, क्योंकि अगर मैं अरब और इस्लामी देशों की यात्रा इससे पूर्व कर लेती तो शायद फिर मैं धर्म पर इतनी मज़बूती से अमल करने वाली न बन सकती, क्योंकि किताबों में अपने अध्ययन के दौरान उनके जो विचार, धार्मिक अवधारणाओं, सभ्यता और कल्चर का मैंने जो सुन्दर चेहरा देखा था, वह इन देशों के लोगों के जीवन से ग़ायब नज़र आया, बल्कि कुछ ऐसे दृश्य भी देखने में आए जो इस्लाम की आत्मा के बिल्कुल विपरीत थे, तो फिर यह बात सत्य को तलाश करने वाले पर किस प्रकार प्रभाव डालती ?

□ □ □

42. श्रीमती आसिमा

(नार्वे)

मैंने सुश्री आसिमा के पास एक सवालनामा भेजा। उन्होंने मेरे सवालनामे का जो जवाब भेजा, वह प्रस्तुत है :

▪ ▪ ▪ ▪

1. मेरा पैतृक नाम अन्ने सॉफ़िक रोयाल्ड(Anne Sofic Roald है। इस्लाम स्वीकार करने के बाद भी मैंने अपना नाम बाक़ायदा सरकारी स्तर पर नहीं बदला, किन्तु मुसलमान बहनों के बीच मुझे आसिमा कहा जाता है।

2. 25 अगस्त 1954 ई० को नार्वे के शहर अलेसार्ड (Alesard) में मेरा जन्म हुआ। मेरा सम्बन्ध एक मध्य वर्गीय परिवार से है। लेकिन मेरे दादा और नाना के ख़ानदान काफ़ी धनी थे। मेरे पिता जी एक सेकेंड्री स्कूल में काउंसलर थे, जबकि माँ एक संस्था में सेक्रेटरी थीं। अब दोनों नौकरी से रिटायर हो चुके हैं। मेरी दादी जो हमारे साथ ही रहती थीं, बहुत मज़हबी थीं। हर रविवार को पाबन्दी से चर्च जाया करती थीं और स्थानीय धार्मिक समारोहों में भी भाग लिया करती थीं। उनका संबन्ध प्रोटेस्टेंट समुदाय से था। मेरी माँ भी मुनासिब हद तक धार्मिक थीं और मुझे हर रविवार को प्रातः नौ बजे सनडे स्कूल में ज़रूर भेजती थीं— इस प्रकार सांसारिक और धार्मिक दृष्टि से मेरा पारिवारिक परिदृश्य बहुत मज़बूत था।

3. मैं आजकल उत्तरी स्वीडन कीLund यूनीवर्सिटी से 'धर्मों का इतिहास और उनका तुलनात्मक अध्ययन' पर पी. एच. डी. कर रही हूँ। शोध का यह काम स्वीडन की एक शोध–संस्थाSarel के तत्वावधान से हो रहा है। अध्यापिका की हैसियत से मेरी नौकरी सेकेंड्री शिक्षा के एक ऐसे विभाग से है जो प्रौढ़शिक्षा का काम करता है।

4. मेरा इस्लाम से प्रारम्भिक परिचय 1981 ई० में उस समय हुआ, जब मैंने नार्वे की ओसलो यूनीवर्सिटी में 'धर्मों की तुलना' के एक प्रोग्राम में भाग लिया। इस्लाम के विषय में सबसे पहले जो किताबें अध्ययन में रहीं वे सबकी सब ग़ैर–मुस्लिमों द्वारा लिखी गई थीं। इसलिए मेरी राय कुछ अच्छी न बनी—

बाद में शोध के लिए मैंने मुस्लिम लेखकों की किताबों का अध्ययन किया, तो सही तस्वीर मेरे सामने आई। इस सम्बन्ध में पहली किताब मौलाना मौदूदी की 'दीनियात' (इस्लाम धर्म) का नार्वेजियन अनुवाद था। उसके बाद सैयद क़ुतुब की किताब 'दीने-इस्लाम' (इस्लाम धर्म) का अध्ययन किया तो असली रूप सामने आया। इन दोनों किताबों ने मुझे बहुत प्रभावित किया और इस्लाम के विषय में मेरा दिमाग़ बिल्कुल साफ़ हो गया।

5. नार्वे की जातीय परम्परा यह है कि हर व्यक्ति जन्म से ही अपने आप चर्च का सदस्य बन जाता है। हालाँकि लोगों की बड़ी संख्या मज़हब या ख़ुदा पर यक़ीन नहीं रखती। फिर भी 95 प्रतिशत लोग रस्मी तौर पर चर्च से जुड़े हुए हैं— लेकिन मुझे यह दोरुख़ापन पसन्द न था। मेरी उम्र सतरह साल की थी, जब 1972 ई० में मैंने सम्बंधित दफ़्तर में जाकर चर्च से अपनी सदस्यता ख़त्म करा ली और इस उम्र में क़ानूनी तौर पर मैं ऐसा कर सकती थी। इस फ़ैसले का कारण यह था कि मैं चर्च की सरगर्मियों को तीसरी दुनिया के देशों और ग़रीब जनता के ख़िलाफ़ एक साज़िश समझती थी। चर्च धर्म के भेष में वास्तव में रंग और नस्ल के भेदभाव का शिकार था। इसलिए मैंने इससे नाता तोड़ लेने ही में राहत महसूस की। यूँ भी मुझे ईसाईयत के किसी एक अक़ीदे में भी बुद्धि का कोई रोल नज़र न आया। यह अंधविश्वास और बहुदेववाद का एक पिटारा है, जिसको कोई समझदार व्यक्ति मानने पर तैयार नहीं होता।

मैं 27 वर्ष की थी, जब 1982 ई० में मैंने इस्लाम स्वीकार कर लिया— इस प्रकार मैं दस वर्ष तक किसी धर्म के बग़ैर जीवन व्यतीत करती रही। यह अलग बात है कि ख़ुदा पर मेरा ईमान कभी डगमगाया नहीं।

6. इस्लाम को स्वीकार करने के सन्दर्भ में मैं जिन-जिन लेखकों और बुद्धिजीवियों की किताबों से प्रभावित हुई उनके नाम ये हैं, सैयद मौदूदी, सैयद क़ुतुब, इमाम हसनुल बन्ना शहीद, अल्लामा मुहम्मद इक़बाल, मुहम्मद ग़ज़ाली।

7. मेरे इस्लाम स्वीकार करने पर मेरे माता-पिता ने मुझे कुछ भी परेशान न किया। ख़ुदा का शुक्र है कि वे मेरे निश्चय को समझ गए और अब तक मेरे उनसे सम्बन्ध मामूल के मुताबिक़ अच्छे हैं। —मेरे मित्रों का दायरा बहुत बड़ा था। जब उन्हें पता चला कि मैं मुसलमान हो गई हूँ तो सबको बड़ा आघात पहुँचा और सबने मुझे अलग-अलग समझाने की कोशिश की कि मैंने जीवन

की बहुत बड़ी मूर्खता और ग़लती की है। इसलिए जब मैंने महसूस किया कि इन लोगों से दोस्ती मेरे अक़ीदे और धर्म के सन्दर्भ में हानिकारक और घातक है तो मैंने सबसे नाता तोड़ लिया। —इस प्रकार मैं थोड़े ही समय में अकेली रह गई और हर तरफ़ से विरोधी वातावरण का सामना करना पड़ा— लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि मैं परेशान न हुई और मज़बूती से अपने निर्णय पर डटी रही। नतीजा यह हुआ कि घर से बाहर सारी विरोधी मुहिम थोड़े ही समय में दम तोड़ गई।

8. इस्लाम को स्वीकार करने के बाद मेरे जीवन में पहला बदलाव यह आया कि चूँकि मैंने 'हिजाब' (पर्दा) अपना लिया था, इसलिए अपने ही देश और समाज में अजनबी बन गई। हर शख़्श मुझे अजीब निगाहों से देखता। लेकिन पिछले दस साल की अवधि में अब परिस्थिति बहुत बदल चुकी है। अब मैं अपने इस समाज में इस्लामी लिबास के साथ अपने को कहीं अधिक सुरक्षित और गौरवान्वित महसूस करती हूँ और आम लोग मुझे अधिक सम्मान देते हैं। मुझे यक़ीन है कि यह तब्दीली अल्लाह की कृपा, मेहरबानी और सहायता से हुई है। अल्लाह से सम्बन्ध और उसकी उपासना (इबादत) ने भी जीवन को आकर्षक क्रान्तिकारी परिवर्तनों से परिपूर्ण कर दिया है। इस्लाम स्वीकार करने के बाद जीवन जिस शान्ति और पवित्र उद्देश्य से परिचित हुआ वह भी पूर्व जीवन की तुलना में बिल्कुल नई चीज़ थी।

9. ईसाईयत तो केवल रविवार का धर्म (Sunday Religion) है। ईसाई दुनिया में मज़हब को इतने ऊंचे आध्यात्मिक स्तर पर सजाकर रखा जाता है कि दैनिक जीवन पर उसकी हलकी-सी छाया भी नहीं पड़ती— इसके विपरीत इस्लाम का सम्बंध चौबीस घंटे के मानव-जीवन से है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए यह मार्गदर्शक सिद्धान्त प्रस्तुत करता है।

ईसाईयत दलील और तर्क से दूर एक ऐसा धर्म है जो बेजान-सी रूहानियत का मालिक है। जबकि इस्लाम की एक-एक शिक्षा बुद्धि के अनुकूल है। आसानी से समझ में आती है और हर प्रकार के हालात और वातारण में व्यवहार के योग्य है।

10. पश्चिमी जगत् की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि यौनाचार की दृष्टि से यह नैतिक मूल्यों से बिल्कुल ही ख़ाली हो गया है और राजनैतिक

और आर्थिक क्षेत्रों में भी नैतिक मूल्यों की कुछ भी परवाह नहीं की जाती। तीसरी दुनिया के साथ पश्चिम वालों का व्यवहार इसका स्पष्ट प्रमाण है। पश्चिमी जगत् की दूसरी सबसे बड़ी त्रुटि उसका स्वार्थी व्यवहार है, जो परिवार से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हर जगह दिखाई पड़ता है। अतः ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें तो आज तीसरी दुनिया की अधिकांश समस्याओं के ज़िम्मेदार पश्चिमी देश हैं और वहाँ नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं के पीछे यूरोप का स्वार्थपूर्ण और क्रूर व्यवहार कार्यरत दिखाई पड़ता है।

यूरोप के सांस्कृतिक और वैचारिक जीवन की एक महरूमी यह भी है कि यहाँ कभी कोई जानदार और मज़बूत दृष्टिकोण (Ideology) प्रचलित नहीं रहा। एक नज़रिया प्रचलित होता है। दस–बीस साल उसे ख़ूब लोकप्रियता हासिल रहती है, फिर वह दम तोड़ देता है और उसकी जगह किसी नई आइडियोलॉजी को उन्नति मिलती है— और यूरोप की जातियाँ सदियों से यूँ ही यक़ीन और शंकाओं तथा भ्रमों के अन्धेरों में टामक टोइयाँ मार रही हैं।

इसके विपरीत इस्लाम की सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था ने मुझे बहुत प्रभावित किया। फिर इस्लामी सिद्धान्त सटीक और सर्वव्यापी हैं और हर ज़माने और माहौल की माँगों के पूर्णतः अनुकूल हैं। दुर्भाग्य से मुस्लिम जगत् में सामाजिक न्याय की दशा ख़तरनाक हद तक ख़राब और ख़स्ता है। इसके बावजूद इस्लामी बरकतें पूरे इस्लामी जगत् में नज़र आती हैं।

इस्लाम ने तानाशाही और अत्याचार के ख़िलाफ़ घृणा और तिरस्कार का जो पाठ पढ़ाया है और ख़ुदा के अलावा किसी से भी भयभीत न होने की जो भावना पैदा की है, मैं उससे भी बहुत प्रभावित हुई। इस्लाम केवल ख़ुदा के ख़ौफ़ पर ज़ोर देता है और हर हाल में ख़ुदाई क़ानून पर चलने और उसकी सुरक्षा करने की प्रेरणा देता है—इस्लाम की यह शिक्षा मानो मानव–स्वतंत्रता का उज्जवल चार्टर है। काश, इस्लामी जगत् में इस सिद्धान्त का ख़्याल रखा जाता और जीवन के हर क्षेत्र में इसे अपनाया जाता तो परिस्थिति बिल्कुल भिन्न होती। इस्लामी दुनिया में इस्लाम प्रचार का काम मेरे विचार में सेवा और नैतिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए। मिसाल के तौर पर मर्दों और औरतों के ग्रुप बनाए जाएँ और उन्हें पिछड़े और ग़रीब इलाक़ों में भिजवाया जाए,

जहाँ वे व्यावहारिक रूप से सफ़ाई का काम करें। लोगों को स्वास्थ्य और सफ़ाई के उसूल समझाएँ और उनकी दैनिक समस्याओं को दूर करने में मदद करें—विशेष रूप से औरतें इस सम्बन्ध में बहुत काम कर सकती हैं। पढ़ी-लिखी महिलाएँ अनपढ़ और ग़रीब महिलाओं को अनेक प्रकार से प्रशिक्षित कर सकती हैं, और उन्हें घर-ग्रहस्थी के कई उसूल समझा सकती हैं। धार्मिक शिक्षाओं से अवगत करा सकती हैं और निरर्थक रीति-रिवाजों के बारे में उनका मार्गदर्शन कर सकती हैं।

इसी प्रकार इस्लामी शिक्षाओं से अवगत शिक्षित युवकों के ग्रुप धार्मिक प्रचार-प्रसार की असाधारण सेवा कर सकते हैं। वे अगर लक्ष्य निर्धारित करके देहात में सफ़ाई का काम करें और विभिन्न देहातों के बीच सफ़ाई के मुक़ाबले हों और साथ ही ये नवयुवक व्यावहारिक और मौखिक तौर पर आम लोगों तक धार्मिक जानकारियाँ पहुँचाएँ तो विभिन्न इस्लामी देशों में सुखद क्रान्ति आ सकती है।

अतः धर्म के प्रचार-प्रसार का काम व्यावहारिक सहयोग के द्वारा किया जाना चाहिए। इससे आम लोगों के मन में व्यापकता आएगी और उन्हें अंधेरों और संकीर्णताओं से मुक्ति प्राप्त करने में सहायता मिलेगी। —अगर आम लोग ग़रीबी और गन्दगी के माहौल में बेचारगी की ज़िन्दगी गुज़ारते रहे तो वे इलाम की सुन्दरता और उत्कृष्टता से कैसे परिचित होंगे।

शिक्षित लोगों के बीच धार्मिक प्रचार-प्रसार का तरीक़ा इससे विभिन्न और आकर्षक होना चाहिए। इस वर्ग के सामने सारी वर्जित और निषेध कामों को एक ही बार प्रस्तुत न कीजिए। कठोरता से भी बचना चाहिए और कठिन की तुलना में सरल दृष्टिकोण को प्राथमिकता दीजिए। विशेषकर औरतों को ख़ुसूसी रियायतें दीजिए। इस्लामी शिक्षाओं का वर्णन करते समय आरम्भ में चेहरे के पर्दे, स्कार्फ़ और पूरे पर्दे वाले लिबास पर ज़ोर न दीजिए। इबादतों की बात आए तो केवल फ़राइज़ (अनिवार्य कर्तव्यों) की बात कीजिए। नफ़्ल कामों (पुण्य के वे काम जो अनिवार्य नहीं हैं) पर ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं। —पूरी तरह इस्लाम की परिधि में आने के बाद वे स्वयं ही उचित समय पर उन चीज़ों को अपना लेंगे या अपना लेंगी।

धर्म प्रचार के सम्बन्ध में यह बात भी हमें सामने रखनी चाहिए कि चाहे

हम कितने ही उच्च शिक्षा प्राप्त क्यों न हों अथवा आर्थिक दृष्टि से किसी धनी परिवार से सम्बंधित क्यों न हों, हमारे व्यवहार से किसी गर्व या बड़ाई का प्रदर्शन नहीं होना चाहिए। हमें शुक्र अदा करना चाहिए कि अल्लाह ने हमें एक ज़िम्मेदारी के लिए चुना है और इस ज़िम्मेदारी की नज़ाकतें और तक़ाज़े बड़े ही ग़ैर–मामूली हैं। हमें याद रखना चाहिए कि धर्म प्रचार फ़र्ज़ है और हमें एक–एक व्यक्ति तक दीन का पैग़ाम पहुँचाना है।

हमारा प्रयास होना चाहिए कि महिलाएँ अधिक से अधिक धर्म–प्रचार में सक्रिय हों। महिलाओं के द्वारा हम अधिक से अधिक लोगों से सम्पर्क कर सकते हैं। अतः बिल्कुल सही कहा है किसी ने कि अगर तुम एक पुरुष को पढ़ाते हो, तो इसका असर उसकी ज़ात ही तक सीमित रहेगा, लेकिन अगर तुम एक औरत को शिक्षित बनाते हो तो मानो एक परिवार में ज्ञान की रौशनी फैला देते हो।

एशिया.....के मुसलमानों के लिए मेरा सन्देश यह है कि इस्लाम की ओर पलट आइए। आपकी ज़िन्दगी तरह–तरह की ख़राबियों से पाक होकर संतुलित हो जाएगी। शिक्षा प्राप्त कीजिए, आपकी सभी समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

मेरा अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण निवेदन यह है कि कृप्या महिलाओं को उनका उचित स्थान दे दीजिए। उन्हें सामाजिक मामलों में भागीदार बनाइए। जब तक मुसलमान महिलाएँ इस्लामी शिक्षाओं को समझकर उन पर नहीं चलेंगी, मुस्लिम देश सही अर्थों में उन्नति नहीं कर सकेंगे।

43. श्रीमती आलिया स्टर्लिंग

(Aliya Sterling)

(अमेरिका)

श्रीमती आलिया स्टर्लिंग का पूर्व नाम मिस संड्रा स्टर्लिंग (Sandra Sterling) था। उनका सम्बन्ध अमेरिका की राजधानी वाशिंगटन के एक धनी घराने से है। वे बचपन ही से बड़ी बुद्धिमान और परिश्रमी थीं और उन्हें विभिन्न भाषाएँ सीखने का बड़ा शौक़ था। उन्होंने प्राइमरी स्कूल में फ्रांसीसी भाषा पढ़ी और उसमें ख़ूब महारत हासिल की। सेकेंड्री स्कूल में उन्होंने स्पेनी भाषा सीख ली।

मिस संड्रा स्टर्लिंग की नानी क़ाहिरा में अमेरिकी दूतावास में नौकरी करती थीं। वहाँ से उन्होंने अरबी भाषा और क़ुरआन से सम्बन्धित अंग्रेज़ी पुस्तकें ख़रीदी थीं और वे किताबें आलिया स्टर्लिंग की माँ के पास थीं। अमेरिका के अधिकतर छात्रों की तरह आलिया को भी अध्ययन का बड़ा शौक़ था और वे विभिन्न विषयों पर किताबों का अध्ययन करती रहती थीं। अतः जब उन्होंने उपर्युक्त किताबें अपने घर में देखीं तो उनका अध्ययन शुरू कर दिया और इस प्रकार अरबी भाषा और क़ुरआन से उनकी दिलचस्पी की शुरूआत हुई। उनका कहना है कि उन किताबों में क़ुरआन का एक अंग्रेज़ी अनुवाद भी था। मैंने उसे पढ़ना शुरू कर दिया और अगरचे अनुवादक का रुझान इस्लाम विरोधी था, फिर भी मैं उससे बहुत प्रभावित हुई और मैंने इस्लाम का पूरा परिचय प्राप्त करने का संकल्प कर लिया।

इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने वाशिंगटन के एक इस्लामी सेंटर से सम्पर्क किया और वहाँ से उन्हें इस्लाम, इस्लामी इतिहास और इस्लामी सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के बारे में कई पुस्तकें मिल गईं और उनके अध्ययन ने उनपर इस्लाम का दरवाज़ा खोल दिया।

स्कूल की शिक्षा पूरी करने के बाद मिस संड्रा ने एक स्थानीय यूनीवर्सिटी में चिकित्सा की उच्च स्तरीय शिक्षा के लिए प्रवेश ले लिया और साथ ही इसी यूनीवर्सिटी की कुछ अरबी कक्षाओं में प्रवेश की दरख़ास्त दे दी। वे लिखती हैं :

अरबी भाषा में मेरी असाधारण दिलचस्पी और शौक़ का यह हाल था कि कुछ ही समय बाद मैंने मेडिसीन के बजाए अरबी भाषा में विशेषज्ञता (Specialization) हासिल करने का इरादा कर लिया। सौभाग्य से मेरी सहपाठी एक ऐसी मुसलमान लड़की थी, जिसका सम्बन्ध कुवैत से था। मेरी उससे गहरी दोस्ती हो गई। मैंने उससे कुवैती स्वर में अरबी बोलना सीखा। कुवैती ढंग के खानों से परिचय हुआ और मुझे ये इतने पसन्द आए कि हम इकट्ठे खाना पकाते और फ़र्श पर बैठकर चमचे कांटे के बजाए हाथ से खाना खाते।

इस्लाम के विषय में संड्रा स्टर्लिंग का अध्ययन ज्यों-ज्यों बढ़ता गया वे इसके बारे में सन्तुष्ट होती चली गईं। उनके शब्द हैं : ''इस्लाम ने मुझे उन सब सवालों के जवाब दे दिए जो लम्बे समय से मेरे मन में कुलबुला रहे थे। मैं मांसिक तौर पर हमेशा से ख़ुदा को एक मानती रही थी और मैंने देखा कि यद्यपि दूसरे धर्म भी कहने की हद तक एकेश्वरवाद (तौहीद) के दावेदार हैं लेकिन इस विषय में इस्लाम के एकेश्वरवाद की अवधारणा शेष अन्य धर्मों से बिल्कुल भिन्न है। मिसाल के तौर पर यहूदियत भी एकेश्वरवाद का प्रचारक है, लेकिन इसको माननेवाले खुले आम कहते हैं कि अल्लाह ने अपनी तमाम मेहरबानियाँ और नेमतें एक जाति विशेष अर्थात् यहूदियों के लिए वक़्फ़ (ख़ास) कर दी हैं, इस पर मैं अकसर हैरान रहती थी कि सम्पूर्ण मानव-जाति के रचयिता ने भेदभावपूर्ण यह रवैया क्यों अपनाया है।

इसी प्रकार ईसाईयत निस्संन्देह एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म है, लेकिन यहाँ भी एकेश्वरवाद की जो स्थिति है उससे मन में कितने ही सवाल पैदा होते हैं। मैं यह जानकर परेशान हो गई कि हज़रत ईसा (अलैहि०) ख़ुदा के बेटे किस प्रकार हो सकते हैं? जो लोग यह विश्वास रखते हैं ज़ाहिर है वे अल्लाह के साथ साझी ठहराते हैं। फिर यह स्पष्ट है कि यह एकेश्वरवाद कहाँ रहा? इस दावे में सच्चाई का अंश कहाँ मौजूद रह सकता है?— इस विषय में केवल इस्लाम ही वह पवित्र धर्म है जो शुद्ध एकेश्वरवाद का ध्वजावाहक नज़र आता है—और रंग और नस्ल से ऊपर उठकर पूरी मानवता को अपील करता है।''

अरबी की उच्च शिक्षा ने सुश्री संड्रा स्टर्लिंग को अरब सभ्यता और कल्चर को समझने में बुनियादी रोल अदा किया। सौभाग्य से शिक्षा के दूसरे वर्ष अमेरिकी हुकूमत ने एक शैक्षिक यात्रा पर उसे ट्यूनिश भेजा, जहाँ उन्होंने

बहुत क़रीब से अरबों के कल्चर का निरीक्षण किया। उन्होंने देखा कि अरब बहुत सदाचारी, अतिथियों का सत्कार करने वाले और नियमों के पाबन्द हैं। भाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा पूरी जाति के स्वभाव और उसकी मानसिकता को समझा जा सकता है और अरबी भाषा तो संसार की वह अनुपम और उत्कृष्टतम शाहकार भाषा है, जो चौदह सौ वर्षों से अपने पूरे वैभव के साथ जीवित और प्रचलित है।''

इस्लाम के विषय में पूरी सन्तुष्टि हासिल करने के बाद सुश्री संड्रा स्टर्लिंग अपनी दोस्त के साथ कुवैत आईं और वहाँ उन्होंने बाक़ायदा इस्लाम को स्वीकार करने का एलान कर दिया। उन्होंने इस्लामी नाम आलिया स्टर्लिंग रखा। अरबी साहित्य की मास्टर डिग्री हासिल करने के बाद आजकल वह वाशिंगटन की उसी यूनीवर्सिटी में अरबी पढ़ा रही हैं, जहाँ से उन्होंने शिक्षा प्राप्त की थी।

सुश्री आलिया स्टर्लिंग से सवाल किया गया कि इस्लाम क़बूल करने का फ़ैसला उन्होंने जल्दबाज़ी में अचानक कर लिया या इसमें कुछ समय लगा? इसका जवाब उन्होंने दिया :

''वैसे तो मेरा दिल इस्लाम पर बिल्कुल सन्तुष्ट हो गया था, लेकिन मैंने अन्तिम निर्णय लेने में जल्दी नहीं की। बड़े चिंतन-मनन और सोच-विचार के बाद अन्त में मैंने मुसलमान होने का इरादा कर लिया और अल्लाह का शुक्र है कि मैं इस पर सन्तुष्ट और ख़ुश हूँ।''

इस सवाल पर कि इस्लाम को स्वीकार करने के नतीजे में उन्हें किसी प्रकार की समस्याओं का सामना तो नहीं करना पड़ा? सुश्री आलिया ने साहसपूर्ण शब्दों में कहा :

''आरम्भ में वाक़ई मुझे कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ा और उसका बुनियादी कारण वे विभिन्न ग़लतफ़हमियाँ हैं जो इस्लाम के प्रति अमेरिकियों के ज़ेहनों में बैठ चुकी हैं, बल्कि अमेरिका ही नहीं, पूरे यूरोप का रवय्या इस्लाम के सम्बन्ध में इसी प्रकार का है। उदाहरण के लिए यूरोप के लोग जानते ही नहीं कि इस्लाम अल्लाह के एकत्व का ध्वजावाहक है, न उन्हें इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की जीवनी का सही ज्ञान है और यह कोई ढकी-छिपी बात नहीं है कि पूरे अमेरिका में प्राइमरी और

सेकेंड्री कक्षाओं में सभी छात्रों को पढ़ाया जाता है कि इस्लाम एक घिसा-पिटा मज़हब है, जो तलवार के बल पर फैलाया गया। इसका संस्थापक एक धनी व्यापारी था। इस्लाम के बारे में इसी प्रकार की ख़ुराफ़ात यूरोप में भी पढ़ाई जाती हैं— इस परिदृश्य में मेरे लिए अपने संबंधियों और दोस्तों को इस्लाम के प्रति सन्तुष्ट करना बहुत मुश्किल था। उन्हें विश्वास ही नहीं हो रहा था कि मैं इस्लाम जैसे धर्म को स्वीकार कर सकती हूँ। उनका ख़्याल था कि मैंने भावावेश में आकर इस्लाम को स्वीकार कर लिया है और जल्द ही वापस आ जाऊँगी।

लेकिन दो साल बीत गए और मैं अपने निर्णय पर अडिग रही, बल्कि ज्यों-ज्यों मैंने इस्लाम के बारे में अध्ययन किया, मेरे ईमान में दृढ़ता आती चली गई—और अब मेरे संबंधियों और परिचित लोगों ने इस्लाम के विषय में गम्भीर सवाल पूछने शुरू कर दिए हैं— इससे मेरे यक़ीन में और अधिक दृढ़ता आई है।''

इस्लाम के ख़िलाफ़ पश्चिम के इस भेदभाव और संकीर्ण दृष्टिकोण से निपटने का आपके विचार में सही तरीक़ा क्या है ? इस सवाल का जवाब सुश्री आलिया ने यूँ दिया :

''इस्लाम के विषय में अमेरिकियों की नकारात्मक सोच को बदलने का पहला तरीक़ा यह है कि अमेरिका में अरब और ग़ैर-अरब जितने मुसलमान भी रहते हैं वे इस्लाम के प्रति गम्भीरता और सच्चाई का रवैया अपनाएँ। अमेरिका और यूरोप में आज लाखों मुसलमान निवास करते हैं, उन्हें व्यावहारिक रूप से इस्लाम का चलता-फिरता इस्लामी नमूना बन जाना चाहिए। उनका यह रचनात्मक रवय्या ही यूरोप और अमेरिका में इस्लाम के विषय में सभी ग़लतफ़हमियों को भी दूर करेगा और इस्लाम के प्रचार-प्रसार का प्रभावकारी साधन भी बन जाएगा।

अमेरिका में लाखों अरब और ग़ैर-अरब मुसलमान रहते हैं, लेकिन उनके प्रभावी न होने का एक उदाहरण देती हूँ। अमेरिका में मीडिया जनता की राय बनाने में महत्वपूर्ण रोल अदा करता है और इस सन्दर्भ में यहूदियों के संगठन अति सक्रिय हैं। मान लीजिए कोई समाचार पत्र एक ऐसा निबन्ध प्रकाशित कर दे या रेडियो और टी. वी. पर ऐसा प्रोग्राम दिखाया जाए जो

यहूदियों के हित के विरुद्ध हो तो उसकी प्रतिक्रिया में तो टेलीफोन कॉलों का तांता बंध जाता है और ज़िम्मेदार लोगों को पूरे अमेरिका से पत्रों और टेलीग्रामों का एक न ख़त्म होने वाला सिलसिला है, जो चलता रहता है।— यह उस जवाबी इलज़ाम तराशी के अलावा है जो सम्बन्धित समाचार पत्र और रेडियो स्टेशन को झिंझोड़कर रख देता है और उसका अस्तित्व तक ख़तरे में पड़ जाता है— लेकिन अफ़सोस कि इस्लाम के बारे में अख़बारात, जो चाहें छापते रहें और टी. वी.— रेडियों से जिस प्रकार से चाहें ग़लतफ़हमियाँ फ़ैलाते रहें। मुसलमानों की ओर से विरोध प्रदर्शन की कोई लहर नहीं उठती— एक दो मिसालों की बात अलग है— नतीजा यह है कि इस्लाम और इस्लामी जगत् के बारे में निराधार ग़लतफ़हमियाँ फैलाई जा रही हैं और उन पर रोक लगाने वाला कोई नहीं है।''

□ □ □

44. श्रीमती आइशा

(जर्मनी)

निम्नलिखित लेख दैनिक 'मशरिक़' लाहौर के 5 अक्तूबर 1976 ई० के अंक में प्रकाशित हुआ था।

▪ ▪ ▪ ▪

पच्चीस वर्षीया नवमुस्लिम आइशा का पहला नाम बर्जी हेंज़ था। उनके पति हरमो हेंज़ का इस्लामी नाम फ़सीहुद्दीन रखा गया।

आइशा कहती हैं कि जिस व्यक्ति को डूबने का मामूली अनुभव हो चुका हो या कुछ ग़ोते खा लिए हों तो वही जानता है कि नाव चाहे जितने ही पुराने तख़्ते से क्यों न बनाई गई हो, उसके लिए राहत का कितना बड़ा पैग़ाम है। आइशा ने यूरोप के सबसे बड़े औद्योगिक देश जर्मनी में जन्म लिया। उसकी माँ आम जर्मन माओं से अलग न थी या सम्भव है कुछ अलग हो, वह भरोसे के साथ नहीं कह सकती। उसे यह अनुभव नहीं हुआ कि माँ प्यार से सिर पर हाथ फेरती, रोती तो उसे चुप कराया जाता। बस इतना याद है कि माँ-बाप अपनी ड्यूटियों से फ़ारिग़ होकर आया करते और फिर कुछ देर बाद चले जाया करते थे। कभी उनकी उपस्थिति में कुछ खा लिया या उनसे जो कुछ बच गया वह खा लेती। उनका लापरवाही का यह ज़माना भी कम हो गया, क्योंकि उसे इतना याद है कि सात वर्ष की उम्र में उसे अनाथालय में डाल दिया गया था, जहाँ उसकी तरह के कई लड़के और लड़कियाँ थे, जिन्हें माता-पिता के होते हुए भी प्रबन्धकों के हवाले कर दिया गया था। महरूमी के एहसास के कारण वह कठोर मानसिक उलझनों और भावनात्मक पीड़ा से दोचार होती। अनाथालय में पालन-पोषण का ढंग बिल्कुल मशीनी था, किन्तु उसने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त कर ली और व्यावहारिक जीवन में क़दम रखा।

यह जीवन बड़ा कड़वा था। उसने नौकरी भी आरम्भ कर दी, क्योंकि अपना पेट ख़ुद पालना था। उसने इन्सान को जानवरों से भी ज़्यादा पस्ती में गिरते हुए देखा था। काम (यौनाचार) और अपराधों का जीवन बड़ा भयानक है। मनुष्य के मान-सम्मान के संरक्षण के लिए कोई व्यवस्था नहीं। शादी को,

जो नागरिक जीवन का मूलाधार और परिवार की मूल ईकाई है, कोई महत्व प्राप्त नहीं। तलाक़ लेने के लिए पति–पत्नी अदालत के सामने एक दूसरे पर इतने शर्मनाक आरोप–प्रत्यारोप लगाते हैं कि मानवता चिल्ला उठती है। समझदार होने के बाद आइशा को सात–आठ साल परिस्थितियों की लहरों की दया पर जीवन व्यतीत करना पड़ा, यहाँ तक कि उसकी मुलाक़ात हरमो हेन्ज़ (फ़सीहुद्दीन) से हो गई, जो पहली पत्नी को तलाक़ देने के बाद ऐसी जीवन साथी का इच्छुक था, जो उसकी सच्ची हमदर्द हो, उसकी दोस्त और शुभचिन्तक हो।

हरमो हेन्ज़ (फ़सीहुद्दीन) जर्मनी के आम पुरुषों से बिल्कुल अलग थे। उन्होंने न मेरे अतीत को कुरेदा और न मेरी त्रुटियों के बारे में कुछ पूछा। केवल यह कहा कि जिस समाज ने तुम पर इतने अत्याचार किए हैं क्या उसके ख़िलाफ़ बग़ावत करने को तैयार हो ? मैं पहले ही उकताई हुई थी। मुझे रौशनी की एक किरण नज़र आई। मैंने इसका साथ देने की हामी भर दी और ख़ुदा की मेहरबानी से इस्लाम को स्वीकार कर लिया। लाहौर में अपने मेज़बान तहव्वुर अली ख़ाँ के घर रहते हुए उन्हें पाकिस्तानी समाज को क़रीब से देखने का अवसर मिला। फ़सीहुद्दीन ने इस्लाम के बारे में जो कुछ भी कहा था उसकी पुष्टि हुई। उसने अपने मेज़बान समेत पच्चीस–तीस परिवारों की महिलाओं के साथ विचार–विमर्श किया। उसे यह मालूम करके सुखद आश्चर्य हुआ कि पाकिस्तान में पुरुष बाहर से कमाकर लाना अपना कर्तव्य समझता है। उसने मामूली–मामूली मज़दूरों को भी देखा कि जो कभी यह इच्छा नहीं करते कि उनकी पत्नियाँ भी कमाने में उनका हाथ बटाएँ। घर की चार दीवारी पत्नी की सल्तनत है। पति के बाद उसपर राज्य भी वही करती है। आइशा ने ज़रूरी सौदा–सुलफ़ ख़रीदने और नौकरी करने वाली महिलाओं को भी देखा। वे कहती हैं कि पाकिस्तानी महिलाओं को बाज़ार में भी सम्मान हासिल है। कोई शरारती ग़लत हरकत कर बैठे तो दस आदमी उसे बुरा–भला कहने वाले होते हैं और बढ़कर उसका गिरेबान पकड़ लेते हैं जबकि यूरोप में अगर किसी की सहायता कोई कर सकता है तो केवल वह पुलिसमैन ही होता है, लेकिन हर जगह तो पुलिसवाला मौजूद नहीं होता।

बुरक़े और पर्दे के बारे में एक सवाल के जवाब में आइशा ने कहा कि

यह औरत के मान–सम्मान की निशानी है। यूरोप के लोभी मर्द ने औरत को असुरक्षित बनाने के लिए सबसे पहले आपसी दूरी को ख़त्म किया और फिर उसको सच्ची शान्ति से वंचित कर दिया। मुसलमान औरतें इस लिहाज़ से बड़ी भाग्यशाली हैं कि उनके चारों ओर उनके रक्षक मौजूद हैं।

जब 'रक्षक' शब्द के बारे में पूछा गया तो उसने बाप, भाई, बेटे और पति वग़ैरह का हवाला दिया और कहा कि भौतिकता और नास्तिकता से परिपूर्ण संस्कृति ने यूरोप को इनके मूल्यों से वंचित कर दिया है। आइशा अपने पति के शिक्षण–प्रशिक्षण में इस्लाम के विषय में अधिक से अधिक जानकारी हासिल करने का बड़ा शौक़ रखती हैं।

□ □ □

45. श्रीमती आइशा ब्रिजेट हनी

(Aisha Bridget Honey)

(इंग्लैण्ड)

यह इंटरव्यू सबसे पहले दमिश्क की अरबी पत्रिका 'हज़ारतुल इस्लाम' में प्रकाशित हुआ। इसका उर्दू अनुवाद कराची की पत्रिका 'चिराग़े-राह' में छपा। यह अनुवाद 'Islam our choice' नामक पुस्तक से लिया गया है।

■ ■ ■ ■

सवाल : आपने कब और किस उम्र में इस्लाम क़बूल किया ?

जवाब : आज से साढ़े तीन वर्ष पूर्व अल्लाह ने इस्लाम का दीप मेरे दिल में रौशन किया। उस समय मैं इक्कीस वर्ष की थी।

सवाल : बताइए कि आपने इस्लाम क्यों और कैसे क़बूल किया ?

जवाब : मैंने जिस घराने में आँखें खोलीं और पली-बढ़ी वह अन्य अंग्रेज़ घरानों से कम न था। मेरी माँ ईसाई धर्म को मानने वाली थीं। परन्तु मैंने कभी उन्हें इबादत (उपासना) करते न देखा, न ईसाईयों के उसूलों की कभी उन्होंने पाबन्दी की। पिता जी की हालत इससे भी गई गुज़री थी। वह सिरे से किसी धर्म पर विश्वास ही न रखते थे। इसलिए हमारे घर का वातावरण पूर्णत: नास्तिकता (बेदीनी) का था। मुझे याद नहीं आता कि मैंने वहाँ किसी की ज़बान से ख़ुदा का नाम सुना हो।

बचपन में मुझे एक धार्मिक स्कूल में दाख़िल कराया गया। वहाँ वही पाठ्यक्रम चलता था जो आम चर्च स्कूलों में प्रचलित था। मगर यह अजीब बात है कि जल्दी ही ईसाईयत के बहुत से धार्मिक सिद्धान्त मन में खटकने लगे। विशेष रूप से त्रिवाद की अवधारणा से तो भय-सा होने लगा और पश्चाताप की अवधारणा (कफ़्फ़ारे का अक़ीदा) मूर्खतापूर्ण नज़र आने लगा कि हज़रत ईसा (अर्थात् ख़ुदा के बेटे) सभी इन्सानों के गुनाहों के बदले सलीब पर चढ़ गए और पूरी मानव-जाति अपने सभी कर्मों में मुक्त है। मैंने इन धार्मिक सिद्धान्तों के बारे में बहुत-सी दलीलें सुनीं। बहसें भी सुनीं। मगर साफ़ एहसास होता था कि तस्वीर का एक रुख पेश किया जा रहा है। मैं पूरी तस्वीर

देखना चाहती थी। मतलब यह है कि मैं पढ़ती तो एक धार्मिक स्कूल में थी, मगर जब उसे छोड़ा तो नास्तिक बन चुकी थी। स्कूल की शिक्षा को पूरी करके मैंने दर्शनशास्त्र का अध्ययन आरम्भ कर दिया। वास्तव में मेरे अन्दर सत्य को मालूम करने की प्यास बड़ी तेज़ थी। अत: जब मैंने पन्द्रह वर्ष की उम्र में प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक 'तॉव' की किताब 'Tao teaching' पढ़ी, तो बहुत प्रभावित हुई। फिर जब मैंने बौद्ध मत के बारे में कुछ प्रारम्भिक बातें मालूम कीं तो इन दोनों धार्मिक सिद्धान्तों के बारे में विस्तृत जानकारी हासिल करने की इच्छा बढ़ गई। मन में विचार आया कि चीनी भाषा सीखूँ और चीन जाकर उन धर्मों का क़रीब से अध्ययन करूँ। लेकिन ज़ाहिर है कि पन्द्रह वर्ष की एक लड़की, जिसके पास पैसे थे न साधन, यह इच्छा ख़ामख़याली से ज़्यादा कोई हैसियत न रखती थी। किन्तु मैं सत्रह वर्ष की उम्र में नौकरी के सम्बन्ध में कनाडा चली गई और दो वर्षों में एक बड़ी रक़म जमा कर ली। इरादा यह था कि सेकेंड्री स्कूल की डिग्री हासिल करके यूनीवर्सिटी में प्रवेश ले लूँगी, ताकि चीनी भाषा सीख सकूँ।

कनाडा में मेरा परिचय हिन्दू धर्म से हुआ और मैंने उनकी लगभग सभी धार्मिक किताबों का अध्ययन किया। इस प्रकार मैंने अन्दाज़ा किया कि 'टावइज़्म' बौद्ध मत और हिन्दू धर्म में सौन्दर्य भी है, गहराई भी है और ऊपर उठने का अन्दाज़ भी। मगर इनमें से किसी ने भी मेरे दिल और आत्मा को सन्तुष्ट न किया। इस लम्बी-चौड़ी दुनिया में जहाँ लोग एक-दूसरे के बहुत क़रीब आ गए हैं, ये तीनों धर्म दैनिक जीवन में कोई सन्तुलन या मज़बूती पैदा करने में पूरे तौर पर नाकाम हैं। वे किसी न किसी पहलू को पूरे तौर से नज़रअंदाज़ कर देते हैं। जैसे टॉव दर्शन का संस्थापक सूफ़ी सन्त बन गया और हर प्रकार का सुख छोड़कर दुनिया के दूर-दराज़ इलाक़ों में मारा-मारा फिरता रहा। बुद्ध ने सत्य की खोज में बाल-बच्चों से दूरी अपना ली। हिन्दू साहित्य का मूल आधार यद्यपि नैतिकता पर है, मगर इस धर्म में सामूहिक जीवन व्यतीत करने के सभी दृष्टिकोण निराधार और नज़र के धोखे के अतिरिक्त कुछ दिखाई नहीं देते। इस नतीजे ने मुझे बहुत उदास किया और मैं इनमें से किसी को ग्रहण न कर सकी। मैं प्राय: सोचती, सत्य मात्र संयोग है? क्या यह सारा कारख़ाना केवल घटना है? मानसिक तनाव और उलझन बढ़ती रही। यहाँ तक कि मैं रात-रात भर न सो सकी और आध्यात्मिक प्यास मुझे अंगारों

पर लिटाती रहती।

इन्ही हालात में सेकेंड्री स्कूल की परीक्षा पास करने के बाद मैंने लन्दन विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया और चीनी भाषा भी सीखने लगी। मगर यह सब समय की बरबादी लगती थी। यह अलग बात है कि मैं ख़ुद ही नहीं जानती थी कि ख़ुदा मेरी सत्य की खोज की कोशिशों को क़द्र की निगाह से देख रहा है और यूनीवर्सिटी में प्रवेश ही मेरे जीवन में क्रान्ति का कारण बन जाएगा।

यूनीवर्सिटी में मेरा परिचय कुछ मुसलमान छात्रों से हुआ। इससे पूर्व मैंने इस्लाम के विषय में कुछ न सुना था, न पढ़ा था और सच्ची बात तो यह है कि तमाम यूरोपियन लोगों की तरह मैं इसके बारे में भेदभाव और ग़लतफ़हमियों का शिकार थी। मगर यूनीवर्सिटी में मुसलमान छात्रों ने पूरी हमदर्दी के साथ अपने मौलिक धार्मिक सिद्धान्तों की व्याख्या की। मैंने जो आपत्ति भी की, उन्होंने उसका जवाब बड़े आदर और सलीक़े से दिया और पढ़ने को किताबें भी दीं। आरम्भ में मैंने इन किताबों के केवल पन्नों को उलटा-पलटा और छोड़ दिया। मेरे मन में यह था कि इनमें मूर्खता पूर्ण कहानियों और मानसिक भोग-विलास के अतिरिक्त और क्या हो सकता है? मगर जब मैंने वाक़ई गम्भीरतापूर्वक उनके कुछ अंशों का अध्ययन किया तो पता चला कि ये किताबें अन्य धर्मों की किताबों से बिल्कुल भिन्न हैं। इस्लाम के प्रति मेरी ग़लतफ़हमियाँ धीरे-धीरे दूर होने लगीं।

अब मैंने इन किताबों का अध्ययन बड़ी सतर्कता और ध्यानपूर्वक आरम्भ कर दिया। उनकी वर्णन-शैली और व्याख्या और स्पष्टीकरण के नए एवँ आकर्षक अन्दाज़ ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। संसार के स्रष्टा, सृष्टि और मरने के बाद के जीवन को जिन तर्कपूर्ण और वैज्ञानिक प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया गया था, उसने मुझे बहुत प्रभावित किया। इसके बाद उन मुस्लिम छात्रों ने मुझे क़ुरआन का एक अंग्रेज़ी अनुवाद भेंट किया। हक़ीक़त यह है कि चाहे मैं कितनी ही कोशिश करूँ, उस प्रभाव के परिणाम का वर्णन नहीं कर सकती जो क़ुरआन ने मेरे दिल में छोड़ा था। अल्लाह का शुक्र है, मैं उस समय से मुसलमान चली आ रही हूँ। इस्लाम से अवगत हुए मुश्किल से तीन महीने हुए थे कि मैं इसकी शरण में आ गई। अभी मैं इसके मौलिक सिद्धान्तों से बहुत

हटकर इसके विषय में कुछ नहीं जानती थी, इसके विभिन्न अंगों को विस्तारपूर्वक जानने का मरहला बाद में आया। और मैंने एक–एक मामले में अपने मुसलमान भाइयों से मार्गदर्शन प्राप्त किया, जिसमें मुझे किसी निराशा या सन्देह का सामना न करना पड़ा।

मुझसे अक्सर सवाल किया जाता है कि मेरे इस्लाम स्वीकार करने की सबसे बड़ी वजह क्या थी ? इस सवाल का जवाब इतना आसान न था। उसकी वजह यह है कि इस्लाम की मिसाल ज्यामिति की एक ऐसी आकृति की–सी है, जिसका हर भाग दूसरे भाग का पूरक होता है और आकृति की असली सुन्दरता सभी भागों के सन्तुलन और सम्बन्ध में होती है। इस्लाम की यही वह विशेषता है जो इन्सानों पर बहुत प्रभावी होती है। ज़रा दूर से देखें तो इन्सान इरादों, उद्देश्यों, कर्मों और साधारण वस्तुओं में इस्लाम गहरी सूझ–बूझ का सुबूत देता नज़र आता है। उसकी राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन करें तो बुद्धि हैरान रह जाती है। अगर सामाजिक और व्यक्तिगत रूप से देखें तो यह सच्ची नैतिकता की मशाल लिए एक–एक पहलू में ज़िन्दगी की साफ़ और सीधी राह की ओर रहनुमाई करता हुआ नज़र आता है और इन मामलों में दुनिया का कोई धर्म या जीवन–व्यवस्था इसकी बराबरी नहीं कर सकती। मुसलमान जब भी कोई काम करता है, अल्लाह का नाम लेता है, जब अल्लाह का नाम लेता है तो इस विषय में अपने ऊपर वह नज़र भी डालता है और इस प्रकार वह बहुत ऊँचे स्तर को भी पा लेता है। इस प्रकार दैनिक जीवन और धार्मिक अपेक्षाओं में कोई दूरी बाक़ी नहीं रहती, बल्कि दोनों में एक संतुलित सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जो सन्तुलित होने के साथ–साथ दोनों के लिए बेहद ज़रूरी भी है।

सवाल : आपके इस्लाम स्वीकार करने पर आपके परिवार और सगे–सम्बन्धियों की प्रतिक्रिया क्या थी ?

जवाब : जहाँ तक माता–पिता का सम्बन्ध है, उन्होंने मेरे इस्लाम क़बूल करने पर कोई ध्यान न दिया। उन्होंने यह सोचा कि चीनी भाषा सीखने के अतिरिक्त यह भी मेरा बेकार का शौक़ है, जो समय के साथ ठण्डा पड़ जाएगा, मगर जब उन्होंने देखा कि मेरे विश्वासों ने आगे बढ़कर मेरे जीवन को बदलना आरम्भ कर दिया है और मेरी आदतों और रहन–सहन में बदलाव आ

गया है, तो वे बहुत घबराए और पछताए भी। मैंने शराब और सुअर का गोश्त छोड़ा तो वे बहुत नाराज़ हो गए। उन्हें बिल्कुल पसन्द न था कि मैं एक चादर में लिपटी रहूँ और सिर पर हर समय दुपट्टा डाले रहूँ। वास्तव में उन्हें चिन्ता लोगों की कानाफूसियों की थी, वरना मेरे विश्वास या आस्था से उनका कोई सम्बन्ध न था। इसके विपरीत मेरे जानने वाले अंग्रेज़ों का व्यवहार काफ़ी अलग था। वे तर्कपूर्ण बातचीत और बहस से नहीं बिदकते थे और तार्किक रूप से उन्हें कोई बात भी समझाई जाती, वे उसे स्वीकार करने पर तैयार थे। अतः जब मैं इस्लामी धार्मिक सिद्धान्तों और इसके सामाजिक दृष्टिकोण की बात करती तो वे इस्लाम की हिकमतों को स्वीकार करते। मुझे याद है कि बहुपत्नित्व के बारे में इस्लामी दृष्टिकोण पर बात हुई और मैंने उसकी तुलना पश्चिमी संस्कृति के इन्हीं पहलुओं से की तो मेरे मित्रों ने स्वीकार किया कि पारिवारिक जीवन की समस्याओं का बेहतरीन समाधान यही है जो इस्लाम ने पेश किया है।

सवाल : क्या आपने इस्लाम स्वीकार करने के बाद कोई मुश्किल या उलझन महसूस की ?

जवाब : बात यह है कि इंग्लिस्तान के वे लोग जो सोच–समझ से ख़ाली हैं, इस्लाम के प्रति कठोर भेदभावपूर्ण व्यवहार करते हैं और मुसलमानों का साधारणतया मज़ाक़ उड़ाते हैं। भले ही ये हरकतें मुँह पर न करते हों, मगर पीठ पीछे इस्लाम के मानने वालों का मज़ाक़ उड़ाना उनका रोचक काम है। इसके विपरीत वे उन लोगों को कुछ नहीं कहते जो अधर्मी और नास्तिक हैं, बल्कि उनकी स्वतंत्रता एवं स्वच्छन्दता की वे जी भर के प्रशंसा करते हैं। मेरे देशवासियों के इस सामान्य व्यवहार के बावजूद कम से कम यह मामला मेरे साथ पेश नहीं आया। इसका कारण यह था कि मैं यूनीवर्सिटी में ओरिएंटल एंड अफ़्रीकन स्टडीज़ (Oriental and African Studies) की छात्रा थी और जिन लोगों से नया–नया परिचय होता था, वे आमतौर से धर्म और धार्मिक विश्वासों से अवगत होते थे। किन्तु मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि दूसरे मुसलमानों को किस प्रकार के व्यवहार का सामना करना पड़ता था।

सवाल : आपके विचार में क्या इस्लाम किसी तरीक़े से मौजूदा संस्कृति पर प्रभाव डाल सकता है ? अगर आपका जवाब हाँ में है तो कैसे ?

जवाब : आजकल यूरोप अन्धकार में भटक रहा है। यहाँ रौशनी की नन्हीं–सी किरण भी नहीं, जो आत्मा और व्यक्तित्व के इस अन्धकार में मार्ग दर्शन कर सके। हर वह व्यक्ति जो यूरोप की सही हालत को थोड़ा–सा भी समझता है वह जानता है कि उन्नति की झूठी चमक–दमक और भौतिकता की बनावटी शानो–शौकत के पीछे वास्तव में सर्वव्यापी पीड़ा और तीव्र व्याकुलता फुनकार रही है। लोग इन व्याकुलताओं से छुटकारा चाहते हैं, मगर उन्हें कोई रास्ता नहीं मिलता। इस बारे में उनकी सारी कोशिशें बेकार रही हैं। अब उनके सामने एक ही विकल्प रह गया है और वह सीधे नरक और बरबादी की ओर ले जाता है। इस्लाम शरीर की अपेक्षाओं और आत्मा की आवश्यकताओं के बीच जो सुन्दर संतुलन पैदा करता है, यूरोप में आज उसके लिए बहुत आकर्षण पाया जाता है। इस्लाम पश्चिमी संस्कृति की सच्ची सफलता और मुक्ति की ओर मार्गदर्शन कर सकता है। यह पश्चिम के इन्सानों में जीवन के सच्चे उद्देश्य की समझ और एहसास पैदा कर सकता है और उसे केवल अल्लाह की प्रसन्नता के लिए दौड़–धूप करने की प्रेरणा दे सकता है, जो उसकी सांसारिक सफलता के साथ–साथ परलोक की सफलता का कारण बनेगी। अल्लाह हमें लोक और परलोक की सफलता प्रदान करे।

सवाल : आपके विचार में धर्म के प्रचार का कौन–सा तरीक़ा उचित है ?

जवाब : अन्य लोगों में इस्लाम के प्रचार–प्रसार से पहले हमें अपने जीवन और कर्मों को परखना चाहिए। उन उच्चादर्शों को प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है जो इस्लाम ने सुनिश्चित किए हैं। वास्तव में यह मान लिया गया है कि इस्लाम का प्रचारक बनने के बाद हमें किसी चिंता की आवश्यकता नहीं, हालाँकि यह ज़िम्मेदारी बहुत–ही नाज़ुक और अहम है। इस्लाम के बारे में अच्छी जानकारी रखने के बाद ही हम अच्छे प्रचारक बन सकेंगे। इसमें कोई शक नहीं कि इस सम्बन्ध में विभिन्न किताबों का भी बहुत महत्व है और एक ग़ैर–मुस्लिम ज़बानी बातचीत के मुक़ाबले में किताब पर अधिक ध्यान दे सकता है, लेकिन दुर्भाग्य से इस्लाम पर अच्छी किताबें बहुत कम हैं, किन्तु मैं फिर कहूँगी कि एक जीती–जागती ज़िन्दा मिसाल ही इस्लाम के प्रचार–प्रसार के लिए लाभदायक रहेगी। अगर हम अपनी ज़िन्दगियों को अनिवार्य रूप से उसी सांचे में ढाल लें, जिसकी अपेक्षा क़ुरआन करता है, तो इस्लाम को फैलने से कोई शक्ति नहीं रोक सकेगी।

सवाल : बरतानवी मुसलमानों को सामाजिक जीवन में किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ?

जवाब : जहाँ पूरे का पूरा परिवार इस्लाम की गोद में आ जाता है, वहाँ कोई मुश्किल पेश नहीं आती। वे लोग इस्लामी मूल्यों को अपना लेते हैं और राहत और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। परन्तु जब कोई अविवाहित लड़का या लड़की या विवाहित पुरुष या महिला अकेले इस्लाम को स्वीकार करता है तो समस्याओं की भीड़ उसके स्वागत के लिए खड़ी होती है। उन्हें हर समय यह एहसास परेशान करता है कि यह समाज और यह माहौल उनका अपना नहीं है। उन्हें नमाज़ पढ़ने और रोज़ा रखने में सख़्त रुकावटों का सामना करना पड़ता है। ख़ुदा का शुक्र है कि मुस्लिम घराने इस सम्बन्ध में अपने कर्तव्यों को निभा रहे हैं।

ब्रिटेन में हमें ऐसे शिक्षकों की ज़रूरत है, जो इस्लामी सभ्यता का नमूना भी हों और नवमुस्लिमों को क़ुरआन और इस्लाम की शिक्षा भी दे सकें। बहुत–से नवमुस्लिम क़ुरआन समझना चाहते हैं, मगर वे ऐसी सुविधा नहीं पाते। मुझे यह कहते हुए अफ़सोस हो रहा है कि लन्दन का इस्लामिक कल्चरल सेंटर इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कर रहा है। मुस्लिम छात्र यह कर्तव्य बड़े अच्छे ढंग से निभा सकते हैं। मगर एक तो उन्हें अपनी पाठ्य पुस्तकों से फ़ुरसत नहीं मिलती, दूसरे वे पूर्ण रूप से अपने कर्तव्य की महत्ता का एहसास नहीं रखते। वास्तव में वे यूरोप की झूठी और बनावटी चमक–दमक से प्रभावित हैं। उनकी आँखें इन बनावटी रौशनियों से चौंधिया गई हैं और वे नहीं जानते कि यह सब कुछ मदारी का खेल है।

अन्त में मैं इस्लामी देशों की दृढ़ पारिवारिक व्यवस्था और साफ़–सुथरे सामाजिक जीवन को बधाई दिए बिना नहीं रह सकती। अगर हम इसकी तुलना यूरोप की सामाजिक और पारिवारिक बुराइयों से करें तो पता चलता है कि मुसलमान कितनी ऊँचाई पर हैं। इससे अन्दाज़ा होता है कि अगर वास्तव में इस्लाम की सामाजिक व्यवस्था प्रचलित हो जाए तो रहमत और बरकत का क्या हाल होगा।

□ □ □

46. आइशा भट्ठ

(इंग्लैंड)

प्रस्तुत साक्षात्कार लन्दन के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'गार्डियन' (8 मई, 1997 ई०) में प्रकाशित हुआ। इसका उर्दू अनुवाद जनाब शफ़ीक़ुर्रहमान फ़ारूक़ी साहब ने किया और यह 'एशिया' साप्ताहिक के अंक-21 जनवरी, 1998 ई० में प्रकाशित हुआ।

■ ■ ■ ■

आइशा भट्ट, जिनका भूतपूर्व नाम डेबी रॉजर्स (Debbi Rogers) था, वे एक संजीदा महिला हैं। जिस समय हम उनका इंटरव्यू ले रहे थे, वे ग्लास्को शहर की क़रीबी बस्ती कोडेन्स (Cowdaddens) के एक छोटे-से मध्य वर्गीय घर के एक कमरे में सोफ़े पर बैठी थीं। सामने दीवार पर क़ुरआनी आयतें लटक रही हैं। एक विशेष प्रकार की घड़ी भी सामने रखी है, जो पूरे परिवार को नमाज़ के समय की याद दिलाती है। कई जगह पर काबे शरीफ़ के पोस्टर साफ़ नज़र आते हैं। आइशा की नीली आँखों में बला की नूरानी चमक है। वे जब मुस्कुराती हैं, उनकी मुस्कुराहट में ईमान की रौशनी फूट पड़ती है। उनके चेहरे में रिवायती स्कॉटलैंड की लड़कियों की सुन्दरता है, जिसे हिजाब (पर्दे) ने एक बा-हया महिला के तौर पर परिचित कराया है।

एक नेक ईसाई लड़की का इस्लाम क़बूल करना और फिर एक मुसलमान से शादी करना ही अपने में एक असाधारण घटना है, लेकिन इससे कहीं बढ़कर उसका अपने माता-पिता और परिवार से बढ़कर अपनी सहेलियों और तीस के क़रीब पड़ोस के लोगों को इस्लाम की छत्र-छाया में लाना असाधारण काम मालूम होता है।

उसका पूरा परिवार ईसाई धर्म और उसकी आस्थाओं का मानने वाला था, जो नियमित रूप से मुक्ति फ़ौज (Salvation army) की सभाओं में शामिल होता था। जब ब्रिटेन में नव उम्र लड़के-लड़कियाँ अपनी श्रद्धा भाव से जॉर्ज माइकल के पोस्टरों को चूमते दिखाई देते थे, उनके अपने घरों में दीवारों पर

ईसा मसीह की तस्वीरें लटकती थीं, लेकिन इस पूरे ईसाई वातावरण के बावजूद अपनी अल्प आयु में वह ईसाईयत के बारे में दिल में एक शून्य महसूस करती थी। उसके मन में कई सवाल उभरते थे और कहीं से उसे सन्तोषजनक जवाब न मिलता था। वह कहती है :

''मैं महसूस करती थी कि केवल गिरजा में गिड़गिड़ाकर दुआ माँगने से दिल को शान्ति नहीं मिलती, बल्कि इससे बढ़कर किसी अन्य चीज़ की ज़रूरत है।''

इसी कैफ़ियत में उसे एक मुसलमान नवयुवक मुहम्मद भट्टा नज़र आया, जब उसकी आयु केवल दस वर्ष थी और वह उनकी दुकान का स्थाई ग्राहक था। वह देखती थी कि यह युवक भी अपनी नमाज़ पढ़कर आता है और इसके चेहरे पर नूर और सुकून बरसता है। उस युवक ने बताया कि वह मुसलमान है।

''मुसलमान क्या होता है ?'' मैंने सवाल किया। इसके बाद उस युवक की सहायता से मैंने इस्लाम को पूरी गहराई के साथ न केवल समझना शुरू किया, बल्कि 17 वर्ष की आयु तक अरबी में पूरे क़ुरआन को पढ़ने में सक्षम हो गई। उसका कहना था कि ''जो कुछ मैं पढ़ रही थी, दिल पूरी सन्तुष्टि के साथ उसे समझ रहा था।''

सोलह वर्ष की आयु में मैंने इस्लाम स्वीकार करने का फ़ैसला कर लिया : ''मैंने जब यह फ़ैसला किया तो महसूस किया कि एक लम्बे समय से मैं एक भारी बोझ अपने कन्धे पर उठाकर फिर रही हूँ। इस फ़ैसले से वह भारी बोझ फेंक कर बिल्कुल हलकी-फुलकी-सी हो गई हूँ और अब मेरी वह कैफ़ियत थी जो एक नवजात शिशु की होती है।''

मैं उसी व्यक्ति को अपने जीवन साथी के रूप में देखना चाहती थी जिसके ज़रिए मुझे इस्लाम की दौलत मिली थी अतः मेरे इस्लाम क़बूल करने के बाद भी मुहम्मद भट्टा के माँ-बाप हमारी शादी के ख़िलाफ़ थे। वे अब भी एक पश्चिमी लड़की से अधिक दर्जा देने को तैयार न थे और यह समझते थे कि इस शादी से जो पहला बच्चा होगा वह गुमराह होगा और बदनामी का कारण बनेगा। भट्टा के पिता अभी भी उसको 'सबसे बड़ी दुश्मन' कहने में

ज़रा भी संकोच न करते थे।

अपने पिता की नाराज़गी के बावजूद ये दोनों एक स्थानीय मस्जिद में निकाह करके दाम्पत्य जीवन से जुड़ गए। निकाह के अवसर पर नवमुस्लिम आइशा ने हाथ की कढ़ाई किया हुआ शादी का जोड़ा पहना था, जो उसकी सास और नन्दों ने उसके लिए तैयार किया था। भट्टा के पिता शादी के ख़िलाफ़ अड़े रहे और निकाह की रस्म में भी शामिल न हुए, लेकिन सास और नन्दें इसके बावजूद शरीक हुईं।

वास्तव में इस दाम्पत्य रिश्ते के लिए मुहम्मद भट्टा की दादी अम्मा ने असल रोल अदा किया और उन्हीं ने उसकी माँ और बहनों को राज़ी करने के लिए राह बनाई। वह ख़ुद पाकिस्तान से ब्रिटेन आईं। हालाँकि ख़ुद पाकिस्तान में इस प्रकार की शादियों की गुंजाइश नहीं, मगर उन्होंने इसमें कोई बुराई नहीं पाई। ब्रिटेन आकर वे सबसे पहले आइशा से मिलीं और जब उन्हें यह मालूम हुआ कि आइशा न केवल अच्छे ढंग से क़ुरआन की तिलावत करती है, बल्कि उनके साथ पंजाबी में बात करती है, तो क्या वजह थी कि उससे प्रभावित न होतीं।

दादी अम्मा के आगमन को शुभ कहा जाएगा। शादी तो होनी थी, लेकिन ख़ानदान की नेक ख़्वाहिशों और दुआओं से बढ़कर कोई अन्य रस्म नहीं हुई।

आइशा के माता–पिता माइकल और मारजोरी रॉजर्स भी अपनी बेटी की शादी में पूरी ख़ुशदिली से शरीक हुए। लेकिन जिस चीज़ से वे दोनों विशेष रूप से प्रभावित हुए वह हाथ से कढ़ी हुई क़मीज़–शलवार का शादी का जोड़ा था।

आइशा और मुहम्मद भट्टा के दाम्पत्य जीवन के छह साल बड़ी ख़ुशी से बीत गए और दोनों के ख़ानदान भी दूध और चीनी की तरह एक–दूसरे से घुले–मिले रहे। छह साल बाद आइशा के दिल में एक हलचल हुई और जो बाद में उसके जीवन का मिशन बन गई कि अपने माता–पिता, अपनी बहन और अपने परिवार को इस्लाम की शरण में लाकर उन्हें जहन्नम की आग से बचाऊँ। अभी मैं अपनी बहन पर काम किए जा रही थी, जबकि मैंने और मेरे

पति ने मेरी माँ और मेरे पिता में धीरे–धीरे कुछ बदलाव महसूस किया। इस्लाम के बारे में वे हमसे जो सवाल करते थे, हम बड़े अच्छे ढंग से उनका जवाब देते थे। माँ के बारे में कोई ख़ास परेशानी न हुई और उन्होंने जल्द ही इस्लाम क़बूल कर लिया। मारजोरी रॉजर्स के बजाय उन्होंने अपना नाम सीमा रख लिया और इस्लामी सिद्धान्तों की इतनी पाबन्द हो गईं कि सिर पर दुपट्टा ओढ़ने के साथ समय पर नमाज़ों की पाबन्दी को अपना तरीक़ा बना लिया और अल्लाह के साथ सम्बन्ध को अधिक से अधिक मज़बूत करना उनके जीवन का लक्ष्य बन गया। अब से कुछ समय पूर्व वे कैंसर की भयानक बीमारी का शिकार होकर पक्की ईमानवाली औरत के रूप में दुनिया से प्रस्थान कर चुकी हैं। लेकिन जाने से पहले अपने पति और मेरे पिता को मुसलमान बनाकर गईं। मैं और मेरी माँ दोनों बड़े शौक़ से उनको दीन की दावत देते रहते। विशेष रूप से जब हम किचन में सोफ़े पर बैठे होते तो इस्लाम ही हमारी बातचीत का मुद्दा होता। आख़िरकार ख़ुदा की रहमत जोश में आई और मेरे पिता पुकार उठे :

''अगर कोई शख़्स मुसलमान होना चाहे तो वह क्या अल्फ़ाज़ अदा करेगा ?''

यह बात सुनकर मैं और मेरी माँ ख़ुशी से उछल पड़े और कुछ ही क्षणों के बाद कलिमा–ए–शहादत की अदायगी के साथ वे मुसलमान हो चुके थे। तीन साल के बाद आइशा के भाई ने टेलीफोन पर अपनी बहन को यह ख़ुशख़बरी सुनाई :

''बहन मैं मुसलमान हो गया हूँ।''

इसके बाद उसकी पत्नी और बच्चे भी उसका अनुसरण करते हुए मुसलमान हो गए।

''इस पर मेरा काम ख़त्म नहीं हो गया था। अब मेरा ध्यान कोकेडेंज़ बस्ती के फ़्लैटों पर केंद्रित हो गया था।''

पिछले तेरह सालों से प्रत्येक सोमवार को आइशा ने बस्ती की महिलाओं में इस्लाम के लेक्चर का सिलसिला जारी किया हुआ है, जिसके नतीजे में अब तक तीस औरतें मुसलमान हो चुकी हैं।

महिलाएँ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में और विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त उसके लेक्चर में शामिल होती हैं। एक महिला ट्रूडी (ञ्ञह्लह्वस्न4) का मामला बिल्कुल अनोखा है। यह महिला ग्लास्को यूनीवर्सिटी में लेक्चरर थी और कैथोलिक मत को मानने वाली थी। उसने केवल शोध की ख़ातिर आइशा के लेक्चरों में आना शुरू किया, लेकिन छः माह तक लेक्चरों में शरीक हुई थी कि मुसलमान हो गई। यह कहते हुए कि ईसाई धर्म तार्किक विरोधाभास का संकलन है, जिन्हें पहेलियों का नाम दिया जा सकता है।

लेक्चर के सम्बन्ध में ऐसी मुसलमान लड़कियाँ जो पश्चिमी जीवन से प्रभावित होने के साथ आध्यात्मिकता की खोज में रहती हैं, शरीक होती हैं। कुछ ऐसी मुसलमान महिलाएँ भी लेक्चरों के इस क्रम में शरीक होती हैं जो धर्म की पाबन्द होती हैं, लेकिन स्थानीय मस्जिद में जिस पर पुरुषों का क़ब्ज़ा है, अपनी समस्याओं के बारे में उनसे बातचीत करना मुश्किल है। यह क्रम उन महिलाओं के लिए बड़ा आकर्षक है।

आइशा के पति मुहम्मद भट्टा, जिसकी आयु अब 41 वर्ष है, स्कॉटिश युवकों में इस अन्दाज़ से इस्लाम की दावत का काम नहीं कर सकते। वे फ़ैमिली रेस्टोरेंट में कुछ न कुछ हाथ बँटाते थे। उनका ज़्यादा ज़ोर इस पर है कि वे अपने पाँच बच्चों की तर्बियत इस्लामी सिद्धान्तों के अनुसार कर पाएँ। बड़ी बेटी सफ़िया, अलहम्दुलिल्लाह चौदह वर्ष की है। बुराई की जगहों से कोसों दूर है।

एक दिन गली में वह एक महिला से मिली जो अपना शापर लिए जा रही थी, सफ़िया ने उसका शापर उससे लेकर उसकी मदद की, जिससे वह महिला प्रभावित हुई। एक दिन सफ़िया के निमंत्रण पर वह आइशा के लेक्चर में शरीक हुई और अब वह एक मुसलमान है।

आइशा का अपने इस्लाम को क़बूल करने के बारे में कहना है : ''मैं सच्चे दिल से यह कहती हूँ कि इस्लाम स्वीकार करने के बाद मुझे कुछ भी दुख नहीं हुआ।''

दाम्पत्य जीवन में उतार–चढ़ाव आते हैं और कभी–कभी कुछ समस्याएँ परीक्षा का कारण बन जाती हैं, लेकिन नबी (सल्ल०) का कथन है कि हर

परीक्षा के बाद एक आसानी है। इस कथन की रौशनी में जब आप किसी परीक्षा से गुज़र रहे हों तो आप यह समझ लें कि आप किसी आसानी के लिए काम कर रहे हैं।

निस्सन्देह मुहम्मद भट्टा एक रोमानी व्यक्तित्व है। आइशा के विषय में उसका कहना है : ‘‘ऐसा लगता है जैसे हम सदियों से एक–दूसरे को जानते हैं और हम इन्शाअल्लाह, कभी एक–दूसरे से जुदा होने वाले नहीं। हम केवल इस दुनियावी जीवन में एक–दूसरे के साझी और जीवन साथी नहीं हैं, बल्कि स्वर्ग में भी एक–दूसरे के साथ स्थाई जीवन व्यतीत करेंगे। कितना सुन्दर जीवन होगा वह भी।’’

□ □ □

47. आइशा डिकरसन
(Aisha Dicherson)
(अमेरिका)

अमेरिका में जो लोग मुसलमान हो रहे हैं, उनमें अधिकतर ईसाई परिवार से सम्बन्धित हैं। यहूदी बहुत कम इस्लाम क़बूल करते हैं। अतः मेरा सम्बन्ध भी पैतृक रूप से ईसाई धर्म से था। हक़ीक़त पसन्दी से ग़ौर करें तो दोनों ही धर्म—इस्लाम और ईसाईयत—में बहुत-सी समानताएँ भी हैं। दोनों का सम्बन्ध हज़रत इबराहीम (अलैहि०) से है, दोनों मध्यपूर्व में स्थापित हुए और दोनों ही को आरम्भ में अनगिनत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। दोनों का सन्देश और उद्देश्य इन्हीं दो हस्तियों से सम्बद्ध है।

एक पैदाइशी ईसाई की हैसियत से मुझे शिक्षा दी गई कि हज़रत मसीह (अलैहि०) ख़ुदा के बेटे हैं। अतः जो सन्देश वे लाए और जो शिक्षाएँ उनसे सम्बद्ध हैं, उनपर उस अक़ीदे का गहरा असर दिखाई पड़ता है और इस प्रकार इस धर्म में 'सन्देश' पर 'सन्देष्टा' हावी हो गया। शिक्षाएँ जैसी भी थीं पृष्ठभूमि में चली गईं।

लेकिन इस्लाम में ऐसा नहीं है। इस्लाम के सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर वह्य (आसमानी सन्देश) उतरी। वे ईश्वरीय सन्देश पर हावी न हुए। इस्लामी सन्देष्टा का जीवन मिसाली जीवन है और इस एतबार से वे मुसलमानों के लिए बेहतरीन नमूना हैं कि उन्होंने अल्लाह के पैग़ाम को अपने जीवन में बेहतरीन ढंग से लागू करके दिखाया था। इस्लाम के सन्देष्टा की जीवन-शैली और विभिन्न परिस्थितियों और अवसरों पर उनका आचरण मुसलमानों के लिए एक ऐसा नमूना और आदर्श है जिसको वे विभिन्न सामाजिक और नैतिक सन्दर्भों से अनुकरणीय बना सकते हैं। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की जीवनी का अनुसरण बजाये ख़ुद अपेक्षित और अभीष्ट नहीं, बल्कि वह अल्लाह की प्रसन्नता को प्राप्त करने का एक साधन है।

मिसाल के तौर पर मेरे इस्लाम को स्वीकार करने में भी यद्यपि विभिन्न

कारक क्रियाशील हैं, लेकिन क़ुरआन की ठोस सच्चाई ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया। मैं कॉलेज में पढ़ रही थी, जब सर्व प्रथम क़ुरआन से मेरा परिचय हुआ। मैंने इसका अध्ययन किया तो उसकी सुन्दरता और विशिष्टता ने मुझे सम्मोहित कर लिया। इस्लाम एक जीवन व्यवस्था का नाम है और इस जीवन व्यवस्था का सर्वोत्तम व्यावहारिक नमूना इस्लाम के सन्देष्टा की पवित्र जीवनी है। अतः पहले मैंने इस्लाम को समझने के लिए जहाँ क़ुरआन का अध्ययन किया, वहीं मैंने इस्लाम के सन्देष्टा—हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की पवित्र जीवनी के बारे में भरपूर जानकारी हासिल की और मैं नबी (सल्ल०) के व्यक्तित्व, चरित्र और कारनामों से बहुत प्रभावित हुई और चार वर्ष पूर्व इस्लाम स्वीकार कर लिया। मैंने भली-भांति जान लिया कि इस्लाम अल्लाह का सच्चा दीन (धर्म) है और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के सच्चे नबी हैं, बल्कि इस धर्म की सर्वोत्तम व्यावहारिक छवि भी है। इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व मैंने समझ लिया था कि कलिमा पढ़ने के बाद मुझे अपनी ज़िन्दगी और सामान्य व्यवहार में बहुत-सी तब्दीलियाँ लानी होंगी और परिवार और मित्रों की ओर से मुझे बहुत-सी कठिनाइयों का भी अवश्य सामना करना पड़ेगा कि इस्लाम के सन्देष्टा और उनके साथियों को ऐसे हालात से गुज़रना पड़ा था। ख़ुदा का शुक्र है कि मुझे पहले ही इसका एहसास हो गया था और मानसिक रूप से मैंने अपने आपको इसके लिए तैयार भी कर लिया था।

अमेरिका में जो मुसलमान रहते हैं उनमें से अधिकतर विदेशी हैं। इनमें से अधिकतर की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ और स्थायी है और यद्यपि उनका घरेलू जीवन पूर्ण रूप से इस्लामी नहीं है, परन्तु इस्लाम धर्म से उनका थोड़ा-बहुत सम्बन्ध बना हुआ है। कोई अमेरिकी ईसाई उन्हें देखकर मुसलमान होने का सोच नहीं सकता। अल्लाह का शुक्र है कि मैं मुसलमानों को देखकर नहीं, बल्कि इस्लाम को समझकर मुसलमान हुई।

मैंने इस्लाम क़बूल किया तो मुझे अन्दाज़ा था कि इस्लाम के विषय में मैं तुरन्त ही पूरी जानकारी प्राप्त नहीं कर सकूँगी। परन्तु मुसलमान हुए मुश्किल से एक-आध दिन ही हुआ था कि ग़ैर-मुस्लिम मित्रों की ओर से सवालों की बौछार हो गई। इसी प्रकार मुझे पूरी उम्मीद थी कि लोकतांत्रिक परम्परा वाले इस देश में मुझे परेशान नहीं किया जाएगा। लेकिन पक्षपाती ईसाईयों ने मुझे

निरन्तर सताना आरम्भ कर दिया और उनमें से अधिकतर मुझे देखते ही शोर मचा देते : ''नरक में जाओ, नरक में जाओ।'' मैं इस ख़ुशफ़हमी में भी थी कि मुसलमान होने के बाद मुझसे तंग नज़री का व्यवहार नहीं होगा, लेकिन हुआ यह कि मुझे 'हिजाब' (पर्दे) में देखते ही बहुत-से लोग नफ़रत और घृणा का रवैया अपनाते और दुर्व्यवहार करते। इस प्रकार अन्दाज़ा हो गया कि ईसाईयत का एक समुदाय छोड़कर दूसरे को अपनाते ही जैसे आसपास भौंचाल आ जाता है और हर व्यक्ति काटने को दौड़ता है।

मुसलमान होते हुए मेरे वे दिन शान्तिपूर्वक गुज़रते हैं जब मैं मस्जिद में जाती हूँ। वहाँ जाकर पता चलता है कि अमेरिका में महिलाएँ इस्लाम स्वीकार करती हैं तो उन्हें मेरी ही तरह नाना प्रकार की कठिन परीक्षाओं से गुज़रना पड़ता है। अतः मस्जिद में अपनी नवमुस्लिम बहनों के वृत्तान्त और अनुभवों को सुनकर अन्दाज़ा होता है कि परेशानियों के इस मरुस्थल में मैं अकेली नहीं। दूसरी बहनों की बातें सुनकर बड़ी ढारस मिलती है और कठिनाइयों और समस्याओं का सामना करना आसान हो जाता है।

अतः जैसा कि मैंने बयान किया, मस्जिद से बाहर दैनिक जीवन अमेरिका में एक मुसलमान औरत के लिए बड़ा ही कठिन है। ग़ैर-मुस्लिम इस्लाम की बुनियादी बातों ही में नहीं, बल्कि गौण बातों में भी बाल की खाल निकालते और मज़ाक़ का अन्दाज़ अपनाते हैं। अतः मैं यह स्पष्ट करते-करते थक चुकी हूँ कि मैं 'हिजाब' क्यों ओढ़ती हूँ। मैं शराब क्यों नहीं पीती और मैं सुअर का गोश्त क्यों नहीं खाती। एक दिन तो मेरा बहुत ही बुरा हाल हुआ। जब ईसाईयों के मोरमन (Morman) समुदाय से सम्बन्ध रखने वाले मेरे बॉस ने पूछा कि तुम कौन-से चर्च में हाज़िरी देती हो ? और जब मैंने बताया कि मैं इस्लाम क़बूल कर चुकी हूँ और किसी चर्च में नहीं जाती तो वह दो घंटे तक मुझसे बहस करता रहा। उसने इस्लाम के बारे में जो मनगढ़न्त और व्यर्थ बातें सुन रखी थीं वह दोहराता रहा और मैं बेबसी से यह सब कुछ सुनती रही। सच्ची बात है, उनमें से अधिकांश आपत्तियों के मेरे पास उत्तर न थे।

इस प्रकार परेशान करने वाली परिस्थिति पैदा होती है तो मुझे अपने आप पर तरस आने लगता है। लेकिन ख़ुदा का शुक्र है कि दिल ज़्यादा घबराता है तो सहसा नबी (सल्ल०) और उनके साथियों (रज़ि०) के बारे में सोचने

लगती हूँ और वे असाधारण दुख और यातनाएँ नज़रों के सामने घूमने लगती हैं, जिनका उन्हें सामना करना पड़ा था और उन्होंने पूरे धैर्य, साहस और विवेक से उनका सामना किया था, तब मुझे अपनी परेशानी बहुत ही हलकी महसूस होने लगती है और शान्ति और सन्तुष्टि की एक ख़ास कैफ़ियत मेरे दिल और दिमाग़ पर छा जाती है। इस विषय में मैं यह भी सोचती हूँ कि मेरे सामने तो नबी (सल्ल०) और आप (सल्ल०) के साथियों (रज़ि०) का नमूना मौजूद है, जो मेरी हिम्मत बन्धा रहा है— उन्होंने केवल अल्लाह के भरोसे पर और ईमान और यक़ीन से हालात का सामना किया। इस प्रकार मेरी मुश्किलें उनके मुक़ाबले में कोई हैसियत नहीं रखतीं और अधिक सोचती हूँ तो नबी (सल्ल०) मानवता उपकारक ही नहीं, मुझे मेरे व्यक्तिगत उपकारक भी नज़र आते हैं उन्होंने अल्लाह की ओर से हिदायत (मार्गदर्शन) की रौशनी भी हम तक पहुँचाई और फिर आज़माइशों में ज़ेहनी सहारा भी। लाखों दरूद और सलाम हों नबी के महान व्यक्तित्व पर। अल्लाह आप पर रहमत और सलामती की बारिश करे!

□ □ □

48. आइशा अब्द

(ऑस्ट्रेलिया)

आइशा अब्द का सम्बन्ध आस्ट्रेलिया के एक बौद्ध परिवार से है। उन्होंने अगस्त 1994 ई० में इस्लाम स्वीकार किया, जिसके बाद उन्हें विभिन्न प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ा। उनके इस्लाम क़बूल करने का यह वृत्तान्त नई दिल्ली की अग्रेज़ी साप्ताहिक पत्रिका रेडियंस(Radiance) (9 मार्च, 1997 ई०) में प्रकाशित हुआ था।

▪ ▪ ▪ ▪

यह अल्लाह की मुझ पर विशेष कृपा है कि जब से मैंने होश संभाला और दिमाग़ ने सोचना आरम्भ किया, मेरा यक़ीन इस बात पर जम गया कि इस संसार का एक ही स्रष्टा है और दुनिया की हर चीज़ हर मामले में उसकी मुहताज है। यद्यपि मेरे माता-पिता का सम्बन्ध बौद्ध मत से है, लेकिन तेरह वर्ष की उम्र से मेरा यह स्थायी नियम है कि मैं पाबन्दी के साथ प्रतिदिन संसार के स्रष्टा से दुआ किया करती कि वह मेरा मार्गदर्शन करे। लेकिन आसपास का सारा वातावरण चूँकि ईसाई बहुसंख्यकों के रंग में रंगा हुआ था, इसलिए स्कूल में दाख़िल हुई तो सामूहिक वातावरण के कारण मैंने भी अपने आपको ईसाई घोषित कर दिया।

मुझे इस बात का बड़ा अफ़सोस है कि इस्लाम के बारे में मेरी मालूमात बड़ी ही नकारात्मक थीं। मैं समझती थी कि यह ऊट-पटाँग क़िस्म का एक वहशी-सा धर्म है, जो मध्य-पूर्व की कुछ क़ौमों तक सीमित है। इन क़ौमों की जीवन-शैली ख़तरनाक हद तक तंग नज़री और घुटन का शिकार है और विशेष रूप से औरतों से तो इनका व्यवहार बहुत ही कठोरतापूर्ण है। उन्हें सख़्ती से घरों में पाबन्द रखा जाता है। उनकी हैसियत जड़ ख़रीद ग़ुलामों की-सी है और उन्हें किसी भी प्रकार का मानवाधिकार प्राप्त नहीं। आसपास के माहौल में ऐसी बातें आम होती थीं कि मुसलमानों के हर घर में कम-से-कम चार पत्नियाँ अवश्य होती हैं और पति जब चाहता है किसी एक को धक्के देकर बाहर निकाल देता है और नई पत्नी ले आता है। प्रचलित बातों के अतिरिक्त टी. वी. पर सऊदी अरब और ईरान के विषय में ऐसी फ़िल्में भी

दिखाई गईं जिससे इस प्रकार का विचार पैदा होना स्वाभाविक बात थी।

तीन वर्ष पूर्व जब मैंने यूनीवर्सिटी में प्रवेश लिया तो वहाँ विभिन्न देशों से सम्बन्ध रखने वाले अनेक मुसलमान छात्रों से वास्ता पड़ा। चूँकि इस्लाम के विषय में उपर्युक्त अजीब-ग़रीब बातें सुनी थीं। इसलिए मात्र जिज्ञासा और आवश्यकता की ख़ातिर मैं छात्रों के क़रीब हुई ताकि उनके धर्म के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त कर सकूँ। लेकिन यह देखकर मैं हैरान रह गई कि वे आत्म-सम्मान, आत्म-निग्रह और धैर्य के विशिष्ट गुणों से परिपूर्ण हैं। यूरोपीय नवयुवकों की तरह औरत को देखते ही उनकी राल नहीं टपक पड़ती। इसके विपरीत मैंने औरत के लिए उनके अन्दर एक विशेष सम्मान देखा, जिसका इससे पूर्व कभी अनुभव नहीं हुआ था।

ये मुसलमान छात्र बहुत-सी ख़ूबियों के मालिक थे— निर्मल बुद्धि, सदाचारी और सच्चे। सबसे बढ़कर ये नवयुवक अपने धर्म पर गर्व करते थे। वे दावे से कहते थे कि उनका धर्म बुद्धि और विवेक के पूर्णतः अनुकूल है। हालाँकि हमारे यहाँ उनके धर्म का बड़ा ही भयानक चित्र प्रस्तुत किया गया था।

इस प्रकार मेरी आत्मा ने मुझे विवश किया कि मैं इस्लाम के बारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त करूँ। इस उद्देश्य के लिए मुझे इन छात्रों ने ज़रूरी लिट्रेचर उपलब्ध कराया और ज्यों-ज्यों मैंने इस धर्म का अध्ययन किया, इसकी असाधारण विशेषताओं को स्वीकार करती चली गई, यहाँ तक कि इसके सामने ईसाईयत भी मुझे तुच्छ नज़र आने लगी, हालाँकि इस धर्म से मुझे विशेष दिली लगाव हो गया था। मुझे यह जानकर बड़ा ही दुख हुआ कि इस्लाम के बारे में यूरोपियन क़ौमें कितना झूठ बोलती हैं और किस धड़ल्ले से इस झूठ को फैलाती हैं, विशेष कर यह पढ़कर कि इस्लाम औरत के बारे में असाधारण सम्मान और मुहब्बत का रवैया रखता है और माँ, पत्नी, बेटी और बहन की हैसियत से उसे कितना सम्मान और महत्व दिया जाता है, मेरी भावना का अजीब हाल हुआ। इस अध्ययन ने मुझे एक ओर इस्लामी जीवन-व्यवस्था से परिचित कराया और दूसरी ओर 'इस्लामी बुनियाद परस्ती' (रूढ़िवादिता) की वास्तविकता स्पष्ट हो गई, जिसे प्रोपगंडे के रूप में अमेरिकी मीडिया ख़ूब फैलाता और मुसलमानों को बदनाम करता है। हक़ीक़त यह है कि जिस व्यक्ति में थोड़ी-सी भी बुद्धि हो और उसके दिमाग़ की खिड़कियाँ

बन्द न हों, वह इन हक़ीक़तों को समझे बिना नहीं रह सकता।

ज्यों–ज्यों मैं इस्लाम के बारे में अध्ययन करती गई और ज्यों–ज्यों इसकी सुन्दरता मेरे सामने निखर कर आती गई, मैं इसकी प्रेमी बनती चली गई। जी चाहता है कि इस्लाम के बारे में हर चीज़ मालूम की जाए, उसकी सुन्दरता का हर रुख़ देखा जाए। अतः मैं इस नतीजे पर पहुँची कि इस्लाम वास्तव में पूर्ण जीवन व्यवस्था है और इसने जीवन के एक–एक मामले में इन्सानों को बेहतरीन मार्गदर्शन प्रदान किया है। यह बड़ा ही व्यावहारिक धर्म है और इसकी कोई शिक्षा ऐसी नहीं जिसे व्यावहारिक जीवन में अपनाया न जा सकता हो। इस प्रकार जब ईसाईयत की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक त्रुटियाँ भी मुझ पर स्पष्ट हो गईं और इस्लाम की सारी सच्चाइयाँ निखर कर सामने आ गईं तो 4 अगस्त 1994 ई० की दोपहर को मैंने क़रीब बीस मुसलमानों की एक सभा (इज्तिमा) में कलिमा पढ़ा और अल्लाह की दया और कृपा से मुसलमान हो गई। यह दिन मेरे जीवन का निस्सन्देह सबसे मुबारक दिन था और मैं अल्लाह का शुक्र नहीं अदा कर सकती कि एक ही वर्ष की अवधि में उसने मुझे इस्लाम की सबसे बड़ी नेमत प्रदान कर दी और बचपन की वह दुआ क़बूल कर ली कि ख़ुदा मुझे सीधा रास्ता दिखा, मुझे मार्गदर्शन प्रदान कर।

मुझसे कुछ लोग पूछते हैं कि इस्लाम स्वीकार करने के बाद मुझे किस प्रकार के हालात का सामना करना पड़ा तो गुज़ारिश है कि ज्यों ही मेरे माता–पिता को मेरे इस्लाम स्वीकार करने के बारे में पता चला, घर में मानो भौंचाल आ गया। उन्हें मेरे ईसाई होने पर तो कोई आपत्ति न थी, मगर इस्लाम स्वीकार करने पर वे सदमे से बेहाल हो गए। घर के सभी लोग मुझे खा जाने वाली नज़रों से देखते, व्यंग्य और हास–परिहास का निशाना बनाते, गालियां देते और धमकाते रहते। कई बार ऐसा हुआ कि मेरी अनुपस्थिति में मेरे कमरे को तहस–नहस कर दिया जाता। हर चीज़ तितर–बितर कर दी जाती, किताबें ग़ायब होतीं और मेरी सहेलियों और उनके माता–पिता को मेरे बारे में अपमानजनक टेलीफ़ोन किए जाते। अक्सर ऐसा होता कि घर से बाहर मुझे न जाने दिया जाता और रात को जान–बूझकर सुअर का गोश्त पकाया जाता, ताकि मैं डिनर में भी शरीक न हो सकूँ। इस प्रकार मैं भूखी–प्यासी सो जाती। मेरी डाक खोल ली जाती। मेरा जेब ख़र्च बन्द कर दिया गया। मेरी अनुपस्थिति में मेरे फ़ोन पर कोई सन्देश आता तो मुझ तक न पहुँचाया जाता और मस्जिद

से या किसी इस्लामी समारोह का कोई निमन्त्रण पत्र आता तो वह भी रोक लिया जाता। घर वाले प्रयास करते कि मैं किसी मुसलमान से न मिलूँ। उन्हें ख़तरा था कि इससे मेरी और अधिक ब्रेन वाशिंग हो जाएगी।

हालत यह थी कि किसी की मौजूदगी में मेरे लिए नमाज़ पढ़ना मुश्किल हो गया। लोग आवाज़ें कसते, शोर मचाते और गालियां देते। रमज़ान में रोज़ा रखना तो और भी कठिन हो गया। अल्लाह का शुक्र है कि मैंने एक रोज़ा भी नहीं छोड़ा। लेकिन घर के माहौल ने मुझे परेशान करने और इस इबादत में व्यावधान डालने में कोई कसर न उठा रखी। मेरी माँ ने रमज़ान में पूरा महीना मुझसे बात न की। प्रायः बड़बड़ाती रहतीं कि तुमने माता–पिता की नाक काट दी है और उन्हें कहीं मुँह दिखाने के लायक़ नहीं छोड़ा। मुझे सताने के लिए घर वाले ऐसी फ़िल्में लगा देते जिनमें मुसलमानों और इस्लाम के लिए अपमान और उपहास का सामान होता और इस्लाम की शक्ल बिगाड़ कर पेश की गई होती। घर के अधिकांश लोग प्रायः इस ख़तरे की ओर इशारा करते कि इस्लाम स्वीकार कर के मैंने सारे ख़ानदान की इज़्ज़त असुरक्षित कर दी है और अगर हमारे सम्बंधियों और क़रीबी मित्रों को मेरी इस हरकत का पता चल गया तो वे हमारा बाइकॉट कर देंगे।

आज़माइशों का यह आक्रमण था, लेकिन आश्चर्यजनक रूप से अल्लाह ने मुझे धैर्य और हौसले की असाधारण शक्ति प्रदान कर दी। मैंने घर के सारे सदस्यों के नकारात्मक रवैये के जवाब में सकारात्मक प्रतिक्रिया ही व्यक्त की, जिसके नतीजे में मैं हार्दिक सन्तुष्टि और सुकून की एक ऐसी कैफ़ियत से परिचित हुई जिसको शब्दों में बयान करना असम्भव है। मानसिक आनन्द का यह हाल था, मानो दुनिया भर के ख़ज़ाने मेरे क़दमों में ढेर हो गए हैं। इस ज़माने में अल्लाह ने मुझ पर बेहद व बेहिसाब कृपा की और मायूसी की कोई एक लहर भी मेरे निकट से न गुज़रने पाई। यूँ लगता था जैसे उसका कृपापूर्ण हाथ हर समय मेरे सिर पर मौजूद है। काश, मैं बता सकती कि परीक्षा की इस घड़ी में मैंने उसकी रहमतों के क्या–क्या मज़े लूटे हैं। अतः मैं बौद्धिक और व्यावहारिक रूप से जिस कैफ़ियत से आनन्दित हुई, पाठकों को इसका हल्का–सा अन्दाज़ा इस हदीस क़ुदसी से हो सकेगा :

सहीह बुख़ारी में हज़रत अबू हुरैरा (रज़ि०) उल्लेख करते हैं कि नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया कि अल्लाह फ़रमाते हैं :

"जो बन्दा मेरे बहुत क़रीब हो जाता है, मैं उसके कान बन जाता हूँ जिससे वह सुनता है, उसकी आँखें बन जाता हूँ जिससे वह देखता है और उसके हाथ बन जाता हूँ जिनसे वह पकड़ता है।"

परीक्षा के इस दौर में मुझे अल्लाह की कृपा को क़रीब से देखने के अलावा एक बहुत बड़ा फ़ायदा यह भी हुआ कि विभिन्न लोगों की मनोवृत्ति से परिचय हुआ और पता चला कि हठधर्मी, पक्षपात और संकीर्ण दृष्टि इन्सानों से क्या कुछ करवाती है और क़रीबी ख़ूनी रिश्ते किस प्रकार कंकड़-पत्थर का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

परीक्षा की अवधि क़रीब एक वर्ष तक जारी रही, यहाँ तक कि अल्लाह को अपनी बन्दी पर दया आ गई और मैं एक बाअमल मुसलमान युवक से शादी करके माता-पिता से अलग रहने लगी।

अल्लाह का शुक्र है इस एक वर्ष के दौरान मैंने इस्लाम के बारे में बहुत-सी और जानकारियाँ हासिल कर लीं और मेरा इस धर्म पर ईमान दृढ़ से दृढ़तर हो गया। मैंने क़ुरआन की बहुत-सी आयतें याद कर ली हैं और इस दौरान में न तो क़ुरआन की सच्चाई के बारे में मेरे दिल में मामूली-सा भ्रम पैदा हुआ है, न नए ज़माने और ज्ञान-विज्ञान के संदर्भ में इस्लाम के प्रति मेरे मन में किसी आपत्ति ने सिर उठाया है। समय बीतने के साथ-साथ मेरा ईमान मज़बूत होता जा रहा है।

इस्लाम स्वीकार करने के नतीजे में मुझे सांसारिक दृष्टि से कितने ही अतिरिक्त लाभ प्राप्त हुए हैं। मेरे अन्दर एक विशेष प्रकार का विश्वास पैदा हुआ है। मेरी एक पहचान बनी है और बहादुरी और दिलेरी की एक ख़ास कैफ़ियत मेरे अन्दर पैदा हुई है। अल्लाह पर मेरा भरोसा इतना अधिक बढ़ गया है कि किसी दूसरे का डर क़रीब भी नहीं फटकता। उसकी बड़ाई और महिमा का एहसास दिल पर इतना प्रभावी रहता है कि दुनिया की हर चीज़ तुच्छ नज़र आती है। क़ुरआन में है :

"अल्लाह जिससे ख़ुश होता है, उसे मार्गदर्शन प्रदान करता है।"

दुआ है कि वह मुझे इस हिदायत पर जमाए रखे और अपनी प्रसन्नता प्रदान करे।

□□□

49. डॉक्टर आइशा अब्दुल्लाह

(भारत)

मेरा पैतृक नाम चन्द्रलीला था। मेरा जन्म बंगलोर (दक्षिणी भारत) के एक हिन्दू परिवार में हुआ। परन्तु मेरे पिता ने मुझे हिन्दू धर्म के बारे में कुछ भी नहीं बताया था, बल्कि मेरे पिता सिरे से किसी मन्दिर में जाते ही न थे, किन्तु वे सिद्धान्त–प्रिय आदमी थे और मैंने उन्हें कभी झूठ बोलते हुए नहीं सुना। निस्सन्देह उनके नैतिक चरित्र का मैंने गहरा असर क़बूल किया। किन्तु मेरी माँ पाबन्दी से मन्दिरों में जाती थी और मैं भी कभी–कभी उनके साथ वहाँ चली जाया करती थी। विशेष रूप से परीक्षा के दिनों में मन्दिर में मेरी हाज़िरी बहुत बढ़ जाती और मेरी माँ को नारियलों और अगरबत्तियों पर बहुत कुछ ख़र्च करना पड़ता।

अधिकांश हिन्दुओं में मूर्ति पूजा का सम्बन्ध परम्परा से जुड़ा हुआ है और समस्त धार्मिक आस्थाएँ पूर्वजों और समाज के बन्धनों से जुड़ी हैं, जो सदियों से सोचे समझे बग़ैर एक ही अन्दाज़ में चली आ रही हैं। इसे आप 'अन्धानुकरण' नहीं कह सकते। दुर्भाग्य से यह एक तरह से उनकी प्रकृति बन चुकी है कि जिस पर सोच–विचार करने का कोई कष्ट गवारा नहीं करता।

मिसाल के तौर पर स्कूल के ज़माने में मैंने रामायण और महाभारत की कहानियां पढ़ी थीं। उनमें कुछ नैतिक पाठ भी हैं और ये दिलचस्प भी हैं लेकिन इनमें ऐसी घटनाएं भी हैं जिन पर कोई नासमझ छोटी बच्ची भी विश्वास नहीं कर सकती। जैसे यह कि रावण के दस सिर थे। मैं इस सम्बन्ध में बड़ों से सवाल भी करती कि ये कहानियां किस हद तक सही हैं, लेकिन कोई भी जवाब न देता। सब चुप रहने की ताकीद करते। अधिक कुरेदती तो डाँट पड़ती कि गुस्ताख़ (अशिष्ट) हो गई हो। मैंने अन्दाज़ा कर लिया कि वास्तव में ख़ुद बुज़ुर्गों के ज़ेहन भी इन सवालों के मामले में साफ़ नहीं हैं।

हिन्दू मत में ख़ुदाओं की असीम अधिकता ने भी मुझे बहुत परेशान किया। अगर यह कहा जाए तो अतिश्योक्ति न होगी कि इस धर्म में, सैकड़ों नहीं, बल्कि हज़ारों ख़ुदा बना लिए गए हैं। मैं जब भी इस सन्दर्भ में ग़ौर करती, उलझ कर रह जाती, लेकिन सवाल करने की हिम्मत न पड़ती, डाँट–

फटकार से डर लगता था।

इस परिस्थिति का अन्ततः परिणाम यह हुआ कि धर्म से मेरा विश्वास उठ गया। उस समय मैं कॉलेज में प्री मेडिकल की छात्रा थी। डार्विन के विकासवाद का सिद्धान्त कोर्स में था। इससे बहुत प्रभावित हुई और सब ख़ुदाओं से विमुख और विरक्त हो गई। अतः अगले कई वर्षों तक मैं पूरी तरह नास्तिक बनी रही। इसी बीच मैं हार्दिक रूप से एक मुसलमान सहपाठी से जुड़ गई और यह सम्बन्ध इतना बढ़ा कि हमने शादी कर ली। चूँकि मेरे नज़दीक धर्म की कोई अहमियत या हैसियत न थी, इसलिए मैंने परवाह ही न की कि वह किस धर्म से सम्बन्ध रखता है। मैं तो अब डार्विन की अनुयायी थी और नास्तिकता ही को एक स्वयं सिद्ध यथार्थ समझती थी।

मैं मेडिकल कॉलेज के तीसरे वर्ष में थी जब एक दिन एक मुसलमान क्लास फेलो डॉक्टर ज़ियाउल हक़ (इन दिनों सऊदी अरब में प्रवासी हैं) ने जिज्ञासा और आश्चर्य से सवाल किया : ''तुम एक मुसलमान की बीवी हो, लेकिन तुम्हारा नाम ग़ैर–इस्लामी है ?'' मैंने विश्वास के साथ जवाब दिया कि मैं उस समय तक इस्लाम को स्वीकार नहीं करूँगी जब तक मेरा ज़ेहन पूरी तरह साफ़ न हो जाए। इस समय कैफ़ियत यह है कि मैं केवल इस्लाम के बारे में भ्रमित हूँ, बल्कि किसी भी धर्म को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं हूँ। तब डॉक्टर ज़ियाउल हक़ ने मुझे अपनी माँ से मिलने का परामर्श दिया। उनकी माँ लतीफ़ुन निसा एक पढ़ी–लिखी धर्म प्रचारिका थीं। अल्लाह उस महान महिला पर रहमतें नाज़िल करे। वे मुझसे बड़ी ही मुहब्बत और अपनाइयत से पेश आईं और दलीलों के साथ एक माह के अन्दर ही मेरे दिमाग़ के सारे काँटे निकाल दिए। उन्होंने मुझे इस्लाम की एक–एक शिक्षा से अवगत कराया और दैनिक जीवन में इस्लाम की बरकतों से भी अवगत कराया। मैंने जो सवाल किया, जो भी आपत्ति व्यक्त की, उन्होंने बड़े ही स्नेहपूर्वक ढंग से उसका जवाब दिया और दलीलों से मेरे सन्देह ख़त्म किए। वह अथक धर्म प्रचारिका थीं। हर सप्ताह वे विभिन्न स्थानों पर लेक्चर भी दिया करतीं और वहाँ मुझे साथ ले जातीं। वे ख़ुदा की बन्दी बस्ती–बस्ती घूमतीं, किसी बस स्टॉप पर खड़ी हो जातीं या किसी पेड़ के नीचे ठहर जातीं और क़रीब से जो भी बुरक़ा पोश ख़ातून गुज़रतीं वे उसे रोक लेतीं और बड़े प्रेम से उसे इस्लाम के नियमों और आदेशों से अवगत करातीं। बुरक़ा पोश होने का अर्थ यह होता कि औरत

मुसलमान है। श्रीमती लतीफ़ुन निसा का ध्यान केवल मुस्लिम महिलाओं पर केंद्रित था। उनका विचार था कि अगर मुसलमान महिलाएँ सही अर्थों में इस्लामी शिक्षाओं को अपना लें तो इस्लाम को ग़ैर–मुस्लिमों में भी फैलने से कोई नहीं रोक सकेगा। इस तबलीग़ी मुहिम में कुछ औरतें हमें अपने घरों पर आने की दावत देतीं, ताकि वहाँ बहुत–सी दूसरी औरतों तक भी दीन (धर्म) की बातें पहुँच जाएँ।

मैं श्रीमती लतीफ़ुन–निसा के चरित्र, सच्चाई और धर्म के लिए उनके अनथक प्रयासों से बहुत प्रभावित हुई और अन्ततः दिसम्बर 1973 ई० में मुसलमान हो गई, याद रहे कि मैंने 1966 में एक मुसलमान युवक से विवाह कर लिया था।

मैं अल्लाह की कृपा से मुसलमान तो हो गई, मगर मैंने अपने इस्लाम को क़बूल करने की बात को सार्वजनिक न किया।

लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि ज्यों–ज्यों मैं चेतन रूप से इस्लाम से क़रीब होती गई और उपासना (इबादत) की आदत और पक्की हो गई, मेरा डर कम होता गया। इस एहसास ने मुझे नए भरोसे से परिचित किया कि मेरे हर अक़ीदे और अमल के साथ दलील मौजूद है। मेरा विश्वास दृढ़ हो गया कि क़ुरआन ख़ुदा की सच्ची किताब है और मेरी रूह यह सोच कर नए ज्ञान और विवेक से परिचित हुई कि मैंने सैकड़ों ख़ुदाओं के बजाए एक अल्लाह की रहमत की छाया में शरण ले ली है। एकेश्वरवाद की अवधारणा निस्सन्देह वह सबसे बड़ा उपहार है जो इस्लाम ने मुझे प्रदान किया है। अतः मैं कितनी ख़ुशनसीब हूँ कि अपने पालनहार से सीधे सम्पर्क कर सकती हूँ। मैं बहुत प्रसन्न हूँ कि इस्लाम में अन्धविश्वास को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। अब मैं बाहर जाती हूँ या किसी यात्रा की ज़रूरत पड़ती है तो किसी विशेष घड़ी या दिन की प्रतीक्षा नहीं करती। हिन्दू समाज में तो पग–पग पर निराधार हास्यास्पद, अन्धविश्वासों, रीति–रिवाजों और अवधारणाओं का जाल बिछा हुआ है, जबकि इस्लाम इस प्रकार की जकड़बन्दियों से पूर्णतः मुक्त है।

जहाँ तक हिन्दू धर्म में औरत की हैसियत का सम्बन्ध है तो स्थिति बड़ी ही दुखद है। इस्लाम में माशाअल्लाह औरत प्रत्येक दृष्टि से आदर और सम्मान की पात्र है और विशेष रूप से विधवा औरतों के लिए दया और शुभ चिंता का विशिष्ट व्यवहार किया जाता है। लेकिन हिन्दू समाज में विधवा के

साथ अपराधियों जैसा व्यवहार किया जाता है। वह सार्वजनिक समारोहों विशेषकर शादी–ब्याह के प्रोग्रामों से दूर रखी जाती है। अगर विधवा किसी राह चलते आदमी का रास्ता काट दे तो वह आदमी फ़ौरन रुक जाता है। इस काम को मनहूस (अशुभ) समझा जाता है और कुछ शगुन श्लोक पढ़कर दोबारा आगे बढ़ता है। तात्पर्य यह कि विधवा को प्रत्येक दृष्टि से मनहूस समझा जाता है और पूरी उम्र उसे घृणा और अपमान के अंगारों पर जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

मुझे इस्लाम में इबादतों की सादगी और एक रंगी ने भी बहुत प्रभावित किया है। हर वह व्यक्ति जो कलिमा पढ़ लेता है, बन्धुत्व और भाईचारे के रिश्ते से जुड़ जाता है। रंग और नस्ल से ऊपर उठकर एक ही पंक्ति में खड़े होकर, एक ओर मुँह करके इबादत (उपासना) करने लगता है। इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व मुझे बराबरी की यह हैसियत प्राप्त न थी और हालाँकि मैं अधिकृत डिग्री प्राप्त डॉक्टर थी, मेडिकल साइंस की उच्चतम डिग्री रखती थी, लेकिन ब्राह्मण न होने के कारण मैं सामाजिक दृष्टिकोण से निम्नतर श्रेणी में थी। अतः अब भी भारतीय समाज में यह दृश्य आमतौर पर नज़र आता है कि एक उदार और दयालु ब्राह्मण निम्नतर जाति के हिन्दू को उसके हाथों के प्याले में पानी पिलाएगा। अपने गिलास या बरतन में उसे पानी पीने की अनुमति कदापि नहीं देगा। इसी प्रकार केवल ब्राह्मण ही वेदों का ज्ञान प्राप्त करता और पुजारी बनने का सम्मान हासिल करता है। दूसरी जाति के हिन्दुओं को इस योग्य नहीं समझा जाता।

□ □ □

50. आइशा अदविया

(अमेरिका)

प्रस्तुत लेख 'जसारत' (21 जनवरी, 1986 ई०, कराची) में प्रकाशित हुआ। अनुवाद अतिया इक़बाल ज़ैदी ने किया।

■ ■ ■ ■

आइशा अदविया एक अमेरिकी नवमुस्लिम महिला हैं। उन्होंने एक मुसलमान से विवाह किया है और दोनों पति–पत्नी न्यूयार्क में आयात और निर्यात का कारोबार करते हैं। आइशा अदविया 'सिस्टर्स इन इस्लाम'(Sisters in Islam) संस्था की सदस्या हैं। इस संस्था की स्थापना कोलम्बिया यूनीवर्सिटी की मुस्लिम छात्राओं ने की है। यह संस्था मुसलमान छात्राओं और औरतों में धार्मिक सूझ–बूझ को उजागर करने और एक ग़ैर–मुस्लिम समाज में महिलाओं की धार्मिक शिक्षण–प्रशिक्षण की एक छोटी, मगर प्रभावशाली संस्था है। एक मुलाक़ात में आइशा अदविया ने इस्लाम क़बूल करने के बारे में एक सवाल का जवाब देते हुए कहा कि मैंने सोलाह वर्ष पूर्व इस्लाम क़बूल किया था। उन्होंने कहा कि मुझे अपने प्रारम्भिक जीवन में शान्ति हासिल नहीं थी। मैं ईसाईयत से सन्तुष्ट नहीं थी और मेरा दिल किसी और चीज़ की तलाश में था। मैं सच्ची शान्ति की तलाश में इधर–उधर भटक रही थी कि एक दिन मेरी नज़र एक अमेरिकी नवमुस्लिम मेलकम एक्स की किताब पर पड़ी। उस किताब में इस्लाम का परिचय कराया गया था। मैंने इस किताब को सरसरी तौर पर पढ़ा तो उससे बहुत प्रभावित हुई। मैंने इस्लाम को एक सादा और सरल धर्म महसूस किया। मैंने यह बात भी महसूस की कि इस्लाम मानव–प्रकृति के बहुत क़रीब है और वह जो कुछ कहता है वही असली जीवन और उसकी वास्तविकता है। मैंने इस्लामी शिक्षाओं का अध्ययन किया तो ऐसा महसूस हुआ कि तमाम रहस्य एक–एक करके खुलते जा रहे हैं और मैं एक नई रोशनी की ओर जा रही हूँ। धीरे–धीरे मुझ पर इस्लामी शिक्षाओं के प्रभाव पड़ने लगे और मेरे रहन–सहन और दूसरे तरीक़ों में आश्चर्यजनक बदलाव स्वयं प्रकट होने लगे। ऐसा महसूस होता था कि कोई अज्ञात सत्ता मेरा

मार्गदर्शन कर रही है और मुझे दिशा–निर्देश और रोशनी प्रदान कर रही है।

अदविया ने कहा कि मैं एक मॉडर्न और सरकश लड़की थी। मैं धूम्रपान की बड़ी शौक़ीन थी और शराब भी ख़ूब पीती थी। जब मैंने इस्लामी किताबों का अध्ययन किया और मैंने पढ़ा कि इस्लाम में शराब हराम है, औरत को नग्न लिबास पहनने से मना किया गया है और जीवन के हर क्षेत्र में सिद्धान्त और मानदंड निर्धारित हैं तो मैं किसी अज्ञात शक्ति के इशारे पर एक–एक करके अपनी सभी बुरी आदतें त्यागती चली गई। मैंने सिगरेट पीना छोड़ दिया और शराब को हाथ लगाने से परहेज़ करने लगी।

जब मैंने कलिमा पढ़ा तो इससे बहुत पहले मैं दिल से इस्लाम क़बूल कर चुकी थी। मुझ पर ख़ुदा की कृपा है कि उसने मुझे गन्दगी के ढेर से निकाल कर इस्लाम की पाकीज़गी और पवित्रता प्रदान की।

आइशा अदविया अपने कारोबार के सम्बन्ध में संसार के विभिन्न देशों का दौरा करती रहती हैं। वे बहुत–से मुस्लिम देशों के बारे में अपने विचार इस प्रकार व्यक्त करती हैं :

मुस्लिम देशों में जगह–जगह मस्जिदें और उन मस्जिदों से बुलन्द होती हुई अज़ान की आवाज़ें मुझे बहुत शान्ति प्रदान करती हैं। लेकिन मुझे मुस्लिम देशों की मुसलमान महिलाओं से बहुत निराशा हुई। मैंने देखा कि मुस्लिम देशों में अधिकांश मुसलमान औरतें पश्चिम की ओर झुकी हैं। वे स्वयं को मॉडर्न साबित करने के लिए शौक़ में पश्चिमी संस्कृति और पहनावा अपना रही हैं। जबकि पश्चिमी देश में जो औरत या लड़की इस्लाम की ओर बढ़ती और आकृषित होती है तो वह इस समाज की क़ैद से ख़ुद को सबसे पहले आज़ाद करती है, जहाँ मादक पदार्थ, शराब, अश्लीलता और पथभ्रष्टता सभी सीमाओं को पार कर चुकी है। यह एक बहुत कठिन काम होता है, मगर इस्लाम के रूप में संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु प्राप्त करने के लिए पश्चिम की औरत अपने समाज से पूरे तौर पर विद्रोह करती है। वह जानती है कि इस्लाम को स्वीकार करने के बाद उसका दरजा कितना ऊँचा हो गया है। वास्तव में इस्लाम ने औरत को जो दरजा और स्थान दिया है उसको ग़ैर–मुस्लिम औरत समझ ही नहीं सकती सिवाए इसके कि वह इस्लाम का ध्यानपूर्वक अध्ययन करे।

आइशा अदविया ने बताया कि मुस्लिम देशों के युवाओं और युवतियों

को इस्लामी शिक्षाओं का नमूना और आदर्श होना चाहिए। उन्होंने उलमा पर ज़ोर दिया कि वे अपने देशों की युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन करें और उनको पश्चिम के प्रभाव से छुटकारा दिलाएँ और उनको उस अमृत से परिचित कराएँ जिसकी तलाश में पश्चिम ख़ाक छान रहा है।

आइशा ने मुस्लिम देशों के अंग्रेज़ी समाचार पत्रों पर कड़ी आलोचना की और कहा कि वास्तव में यही समाचारपत्र युवा पीढ़ी के ज़ेहनों में भ्रम पैदा कर रहे हैं। मुस्लिम देशों में पश्चिमवादी औरतें अधिकार की बातें करती हैं। अगर उनकी माँगों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए और उसकी जाँच-पड़ताल की जाए तो मालूम होगा कि वे इन माँगों की आड़ में इस्लाम से फ़रार इख़्तियार करना चाहती हैं। क्या वे वह दर्जा हासिल करना चाहती हैं जो पश्चिम की औरतें अपनी मूर्खता से हासिल कर चुकी हैं और जहाँ से निकलने के लिए अब वे तड़प रही हैं।

आइशा अदविया से यह सवाल किया गया कि पश्चिम में इस्लाम स्वीकार करने वालों की रफ़्तार क्या है और इस्लाम क़बूल करने वालों में पुरुषों के मुक़ाबले में औरतें अधिक क्यों हैं ? तो उन्होंने कहा :

पश्चिम के तमाम देशों में इस्लाम क़बूल करने की गति काफ़ी तेज़ है। लेकिन इस्लाम क़बूल करने की सही गिनती बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इसलिए कि मेरे पास वे साधन नहीं हैं जिनसे मैं इस्लाम क़बूल करने वालों की सही तादाद बता सकूँ। लेकिन यह बात सही है कि पश्चिम में इस्लाम क़बूल करने वालों में औरतों का प्रतिशत अधिक है। इसकी सबसे बड़ी वजह वह स्थान, दरजा, आदर और सम्मान है जो इस्लाम औरत को प्रदान करता है।

सही संख्या तो मेरे पास भी नहीं, किन्तु यह बात भी अपनी जगह सच है कि हमारे यहाँ औरतें तेज़ी से इस्लाम की ओर आकर्षित हो रही हैं और इसके कारणों में सबसे महत्वपूर्ण इस्लाम में औरत का स्थान है। पश्चिम की औरत असुरक्षा और घोर शोषण का शिकार है। यक़ीन कीजिए कि तथाकथित अधिकारों की तलाश में जब औरत एक बार घर की चौखट पार कर जाती है तो इस मृगमरीचिका के पीछे घूमते-घूमते वह अपने आपको गँवा बैठती है।

मैं मुस्लिम देशों की महिलाओं को यह चेतावनी देना चाहूँगी कि हमारे अनुभव से लाभ उठाया जाए और उन्हीं रास्तों पर भटकने के बजाए, ठण्डे

दिल से उस मक़ाम पर चिंतन किया जाए जो इस्लाम ने हमें प्रदान किया है। अल्लाह हमारा आक़ा और मालिक है। मुंसिफ़ और न्याय करने वाला है।

ख़ुदा की क़सम, उसने हम पर ज़ुल्म नहीं किया। इस्लाम को मनमाना अर्थ पहनाने से बेहतर होगा कि हम उस भूमिका की गरिमा को समझने का प्रयास करें जो अल्लाह ने औरत को समाज में अदा करने के लिए भेजा है। औरत का मौलिक कर्तव्य नस्लों का पालन–पोषण है। वह महान काम है जिस पर जातियों और राष्ट्रों का भविष्य निर्भर करता है। इस कर्तव्य से नज़र न चुराएँ। इसे तुच्छ न समझें, इस पर गर्व करें कि इस महत्वपूर्ण पद पर अल्लाह ने औरत को नियुक्त किया है और पुरुष को आपकी सुरक्षा और नाज़बरदारी पर नियुक्त किया है। वह अधिकार अवश्य माँगिए जो इस कर्तव्य को ठीक ढंग से निभाने के लिए आपको अल्लाह ने प्रदान किए हैं, मगर ख़ुदा के लिए इस दायरे से बाहर ललचाई निगाहों से मत देखिए। वह केवल एक मृगमरीचिका है। औरत की सुन्दरता, उसका आत्म–सम्मान, उसका आदर, मर्दानगी में नहीं बल्कि प्राकृतिक सिद्धान्तों के अनुसार औरत बनकर रहने में है। औरत को बेहतरीन ढंग से शिक्षा दिलवाइए ताकि वह बेहतरीन माँ बन सके। औरत की शिक्षा–दीक्षा पर मर्द की शिक्षा से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, क्योंकि उसकी गोद में आने वाली नस्लों का भविष्य है।

□□□

51. आइशा किम

(Ayesha kim)

(दक्षिण कोरिया)

सुश्री आइशा किम का सम्बध दक्षिण कोरिया की राजधानी सियोल (Seoul) से है। उन्होंने अपने पति के साथ पचास वर्ष की उम्र में 1955 ई० में इस्लाम स्वीकार किया और उस समय से आख़िरी दम तक अपने देश में इस्लाम के प्रचार–प्रसार का कर्तव्य बड़े ही नियमित रूप से दृढ़तापूर्वक पूरा करती रहीं। अत: उनके प्रयासों के नतीजे में दक्षिण कोरिया की बीसियों शिक्षित महिलाएँ (ख़ासकर नौजवान छात्राएँ) इस्लाम की छाया में आईं। जो उनके बाद उस देश में इस्लाम का दीप जलाए हुए हैं। आदरणीया आइशा के पति इमाम मेहदी वून (Mehdi Woon) ने भी एक सक्रिय इस्लाम प्रचारक की हैसियत से जीवन व्यतीत किया। वे दक्षिण कोरिया में मुसलमानों की संस्था के अध्यक्ष भी थे।

1980 ई० में आदरणीया आइशा किम उमरे के लिए सऊदी अरब गईं। उनके साथ दक्षिण कोरिया की कई नवमुस्लिम छात्राएँ भी थीं। जिद्दा में कोरिया के इस्लामिक कल्चरल सेंटर में सऊदी अरब के एक पत्रकार ने उनसे इंटरव्यू लिया, जिसमें उन्होंने इस्लाम क़बूल करने की कहानी बयान की। उसका अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :

मेरा सम्बन्ध दक्षिणी कोरिया के एक ऐसे क़बीले से है जो एक पुराने चीनी धर्म का कट्टर अनुयायी है। मेरा पुराना नाम चाऊ योंग किम (Chou Young kim) है। कोरिया युद्ध की हालत में था, जबकि मेरी शादी हुई। मैंने भी उच्च शिक्षा प्राप्त की थी और मेरे पति ने जापान की विभिन्न यूनीवर्सिटियों से शिक्षा प्राप्त की थी और सौभाग्य की बात यह है कि हम दोनों अपने पैतृक धर्म से सन्तुष्ट न थे। इसे सौभाग्य कहिए कि मेरे पति ने जापान में प्रवास के दौरान इस्लाम पर किसी जापानी लेखक की किताब पढ़ रखी थी। वे उससे प्रभावित हुए थे और उन्होंने अपनी अनुभूतियों में मुझे भी शामिल कर लिया था।

दूसरे विश्व युद्ध के प्रभाव ने पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया। हम भी उससे प्रभावित हुए और दोनों पति–पत्नी चीन की ओर पलायन कर गए। वहाँ एक बार बातचीत के दौरान एक व्यक्ति ने हमें इस्लाम से परिचित कराने की कोशिश की और हमें एक मस्जिद में भी ले गया, जहाँ हमने लोगों को एक ख़ास अन्दाज़ में इबादत करते देखा और बाद में कुछ लोगों से हमारी बातें भी हुईं, लेकिन इस संक्षिप्त बातचीत ने हमें किसी नतीजे पर पहुंचने नहीं दिया और वतन से दूरी और अनिश्चित परिस्थिति के कारण हम कोई निर्णय न ले सके। इसी दौरान कोरिया जापान के क़ब्ज़े से आज़ाद हो गया और हम 1945 ई० में अपने वतन लौट आए।

कोरिया लौटकर आध्यात्मिक रूप से मैं तो बहुत परेशान रहने लगी। आत्मा की वास्तविकता को जानने के लिए बहुत बेचैन रहती, लेकिन डोर का सिरा हाथ नहीं आ रहा था। विश्व युद्ध के बाद जापान की तरह कोरिया पर भी ईसाई मिशनरियों ने ज़बरदस्त हमला कर दिया था और लिट्रेचर पहुँचाने के लिए आधुनिकतम तरीक़ा अपना रहे थे। अतः सबसे पहले ईसाईयत का अध्ययन किया गया तो उससे दिमाग़ को सन्तुष्टि न हुई। फिर बुद्धिज़्म, कनफ़्यूशिज़्म और शिंटोइज़्म (Shintoism) के बारे में ज़रूरी जानकारी प्राप्त की। लेकिन इसमें से कोई धर्म न बुद्धि को अपील करता था, न नये ज़माने के तक़ाज़ों से निपटने की क्षमता रखता था। जहाँ तक इस्लाम का सम्बन्ध है, यह सही है कि हम आंशिक रूप से इससे परिचित थे, मगर कोरिया की भूमि तक अभी इसका कोई अमली नमूना मौजूद न था और जो मालूमात हम तक पहुँची थीं, वे अधूरी और अपर्याप्त थीं।

इतिहास में ऐसी मिसालें मौजूद हैं कि कुछ मुसीबतें और घटनाएँ अपने साथ कुछ सुखद पहलू भी लेकर आती हैं। 1953 ई० में कोरिया का गृह युद्ध इस दृष्टि से शुभ सिद्ध हुआ कि इस सन्दर्भ से कोरिया इस्लाम से परिचित हुआ और ख़ुद हम दोनों पति–पत्नी को यह सबसे बड़ी नेमत मिल गई।

हुआ यूँ कि जब लड़ाई बन्द हुई और रण–क्षेत्र की सीमा में संयुक्त राष्ट्र संघ के दस्ते नियुक्त हुए तो दूसरे देशों के अलावा उनमें एक दस्ता तुर्क सैनिकों का भी था। दूसरे देशों के फ़ौजी तो अपनी रीति और स्वभाव के अनुसार ख़ाली समयों में स्थानीय लोगों के लिए समस्या बने रहते और

विशेषकर सीज़ फायर लाइन के निकट स्थानीय परिवारों की ज़िन्दगी दूभर हो गई। फ़ौजी जिस घर में चाहते घुस जाते और जिस औरत को चाहते उठा ले जाते, लेकिन तुर्की के सैनिकों का व्यवहार सबसे अलग था। वे अपने कमांडर की इमामत में पाँचों वक़्त की नमाज़ जमाअत से पढ़ते, जिसको स्थानीय लोग जिज्ञासा और रुचि के साथ देखते तथा वे किसी औरत की तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखते, न किसी की सम्पत्ति को उनकी ओर से कोई ख़तरा होता। स्थानीय लोग संयुक्त राष्ट्र संघ के फ़ौजियों के दो वर्गों के व्यवहार में इस अन्तर को लम्बे समय तक देखते रहे और ग़ैर–महसूस तरीक़े से तुर्कों से प्रभावित होते रहे, यहाँ तक कि कितने ही लोग उनके आचरण और जीवन–शैली से प्रभावित होकर मुसलमान हो गए। दक्षिण कोरिया में इन्हीं तुर्क सैनिकों द्वारा इस्लाम का परिचय हुआ। इनमें से कुछ तुर्क सैनिक संयुक्त राष्ट्र संघ के दस्तों की वापसी के बाद भी केवल प्रचार के उद्देश्य से दक्षिण कोरिया ही के निवासी बन गए।

उपयुक्त युद्ध के नतीजे में एक बार फिर हमें बेघर होना पड़ा, लेकिन इस बार हम घरबार छोड़कर पश्चिमी कोरिया के एक तटवर्ती शहर पूसान(Pusan) में चले गए और यहाँ मेरी आत्मा की प्यास असाधारण रूप से बढ़ गई। सच्ची ख़ुशी रूठ गई और सच्ची शान्ति कहीं पंख लगाकर उड़ गई। मेरी आत्मा बार–बार मुझे कहती कि दुनिया में सत्य तक पहुँचने का एक मात्र रास्ता है, और विभिन्न धर्मों के नाम पर अंधविश्वासों का जो गोरख धन्धा हमारे आसपास नज़र आता है यह बिल्कुल असत्य है। मैंने अपने पति से कहा कि हमें सच्चाई और हक़ीक़त की तलाश के लिए विशेष प्रयास करना चाहिए।

अल्लाह ने मेरी रूह की फ़रियाद सुन ली और पूसान में हमारा परिचय एक कोरियन मुस्लिम उमर किम (Umar Kim) से हुआ। उमर किम कुछ ही समय पूर्व तुर्क सैनिकों से प्रभावित होकर मुसलमान हुए थे। उन्होंने हमें इस्लामी शिक्षाओं से अवगत कराया और प्रेरणा दी कि हम मुसलमान हो जाएँ, तो मेरे पति ने मुझसे पूछा कि इस मामले में तुम्हारा क्या विचार है ? मैंने जवाब दिया कि क्या यह हक़ीक़त नहीं है कि इस्लाम का सत्य हमारे सामने उजागर हो चुका है ? फिर इसे स्वीकार करने में क्या चीज़ रुकावट बन रही है ? मगर मेरे पति कुछ अज्ञात ख़तरों से घबरा रहे थे। कहने लगे, अगर मैंने इस्लाम

स्वीकार कर लिया और तुम उसे न अपना सकीं तो हम एक साथ किस प्रकार रह सकेंगे ?

मैंने जवाब दिया कि अगर आपने इस्लाम स्वीकार कर लिया तो मैं आपसे पीछे न रहूँगी।

यह शब्द मेरे दिल की गहराइयों से निकले थे। इनसे मेरे पति को एक नया हौसला और जोश मिला और वे इस्लाम क़बूल करने की तैयारी करने लगे। अत: वे उमर के साथ प्रतिदिन बीस किलोमीटर की दूरी तय करके तुर्क सैनिकों से मिलने जाते और कई सप्ताह की बहस और बातचीत के बाद अन्तत: 1955 ई० की गर्मियों में एक जुमा को मेरे पति ने तुर्क इमाम जनाब अब्दुर्रहमान की उपस्थिति में एक अन्य तुर्क जनाब ज़ुबैर कोची के हाथ पर इस्लाम क़बूल कर लिया और जुमा की नमाज़ वहीं पढ़ी।

मेरे पति जिन्होंने अपना नाम मेहदी वून रखा, इस्लाम क़बूल करके घर आए तो ख़ुशी से निहाल हो रहे थे। उन्होंने मुझे बताया कि वह इस सबसे बड़ी नेमत को हासिल कर चुके हैं, तो मैंने उन्हें मुस्कुराते हुए बधाई दी। उन्होंने जवाब में पूछा कि इस मामले में मेरा फ़ैसला क्या है, तो मैंने फ़ौरन कहा : ''सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए हैं, मैं गवाही देती हूँ कि अल्लाह के अलावा कोई इबादत के लायक़ नहीं है और मैं यह गवाही भी देती हूँ कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के बन्दे और उसके रसूल हैं।''

यह मानो हमारे जीवन का वह इंक़लाबी दिन था, जिसके लिए हमारी आत्मा एक लम्बे समय से बेचैन थी। अल्लाह का शुक्र है कि इस सम्बन्ध में मैंने अधिक शौक़ का प्रदर्शन किया था, लेकिन चूँकि मेरे पति ने निर्णायक चरण में अधिक परिश्रम किया था और सत्य को स्वीकार करने के लिए वे काफ़ी समय तक एक लम्बी दूरी तय करके तुर्क धर्म प्रचारकों के पास जाते रहे, इसलिए अल्लाह ने मेरे मुक़ाबले में यह अवसर उनको पहले प्रदान कर दिया। अलहम्दुलिल्लाह (अल्लाह का शुक्र है) मैंने अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की आदरणीया पत्नी के नाम पर अपना नाम आइशा रखा और इस पर मुझे बड़ा गर्व है।

इस्लाम क़बूल करने के बाद सबसे पहले मैंने क़ुरआन की सूरा फ़ातिहा पढ़ी। इसे ज़बानी याद किया और इसके अर्थ पर विचार किया तो इस्लाम की

बड़ाई का और अधिक एहसास हुआ और अन्दाज़ा हुआ कि जीवन के दिन और रात को उसके अनुसार ढालने से इन्सान कैसी रूहानी तरक़्क़ी हासिल करता है। सूरा फ़ातिहा की रौशनी में जब मैंने कोरिया के प्रचलित धर्मों और ईसाईयत से इसकी तुलना की तो इस्लाम हर दृष्टि से मुझे उच्च और महान लगा। इसके विपरीत अन्य धर्म अप्राकृतिक, अपने धार्मिक सिद्धान्त, आस्थाओं और अंधविश्वास पर आधारित, रीति–रिवाजों की दृष्टि से बिल्कुल तुच्छ नज़र आए।

हम दोनों पति–पत्नी के इस्लाम क़बूल करने पर जैसे परिवार भर में भूचाल आ गया। हालाँकि पूरा क़बीला हमारा बहुत सम्मान करता था और हम हर एक के साथ सदव्यवहार करते थे। लेकिन धर्म बदलने की सूचना पाते ही सबका व्यवहार बिल्कुल बदल गया। मेरे पति के परिवार वालों ने उन्हें पागल कह डाला और सारी सम्पत्ति से वंचित कर दिया। हमारा पूर्ण रूप से सोशल बाइकॉट हो गया और सबने न केवल हमसे नाता तोड़ लिया बल्कि हमारे रास्ते में विभिन्न प्रकार की रुकावटें खड़ी करने लगे। लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि उसने हमारे क़दमों को जमाए रखा और कोई परेशानी या लालच हमें सीधे रास्ते से न हटा सका।

जब मैंने इस्लाम क़बूल किया तो मेरी दो बेटियाँ थीं और यही मेरी कुल औलाद है। बड़ी बेटी की उम्र पच्चीस वर्ष थी, जबकि छोटी बीस साल की थी। मुझे डर था कि इस्लाम स्वीकार करने के सम्बन्ध में मुझे उनकी ओर से मुश्किल पेश आएगी। किन्तु अल्लाह ने आसानी पैदा कर दी और जब मैंने बड़ी बेटी योंग से बात की तो उसने कहा कि ‘‘आपने इस्लाम के बारे में जो बातें की हैं, मुझे वे सही लगती हैं, लेकिन अभी मुझे ग़ौर करने दीजिए, जब इस्लाम के बारे में मेरी मालूमात पूरी हो जाएँगी तो फिर अपनी राय व्यक्त करूँगी।’’

अल्लाह का शुक्र है कि कुछ ही समय के बाद उसने इस्लाम स्वीकार कर लिया, जमीला नाम रखा और एक कोरियाई मुसलमान से उसका विवाह हो गया। अल्लाह का शुक्र है कि मेरी छोटी बेटी भी मुसलमान हो गई और उसका एक स्थानीय मुसलमान से निकाह हो गया। वह सियोल ही में हमारे क़रीब रहती है।

अल्लाह का शुक्र और एहसान है कि उसने इस्लाम स्वीकार करने के बाद मुझे तौफ़ीक़ प्रदान की कि मैंने अपनी सारी योग्यताएँ इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए वक़्फ़ (समर्पित) कर दीं। मैंने प्रयास किया कि हर शिक्षित महिला तक इस्लाम का पैग़ाम पहुँचा दिया जाए और मेरे प्रयास आशा से अधिक फलदायक सिद्ध हुए और महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या ने इस्लाम क़बूल कर लिया। विशेष रूप से यूनीवर्सिटी और कॉलेजों की छात्राओं से मैंने लगातार सम्पर्क बनाए रखा है और यह बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

मैं महिलाओं को बताती हूँ कि दूसरे धर्मों के मुक़ाबले में इस्लाम औरत को क्या स्थान और हैसियत देता है। पारिवारिक जीवन की किस प्रकार रक्षा करता है और पति-पत्नी दोनों को एक-दूसरे के अधिकारों का ख़्याल रखने पर ज़ोर देता है। जो महिलाएँ इस्लाम स्वीकार करती हैं, मैं समय-समय पर उनकी मीटिंग करती रहती हूँ और उन तक धार्मिक शिक्षाएँ पहुँचाने का काम जारी रहता है। सियोल की सतह पर हमने नवमुस्लिम महिलाओं की एक चैरिटेबल (धर्मार्थ) संस्था भी बनाई है, जो निर्धन और मुहताज नवमुस्लिम ख़ानदानों की आर्थिक सहायता करती है और उनकी समस्याओं के समाधान में सहायता करती है। इस संस्था के संरक्षण और उसकी प्रेरणा से कई नवमुस्लिम जोड़ों ने स्वयं को धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया है और दीने-हक़ (सत्यधर्म) की पाकीज़ा रौशनी शहरों से निकल कर देहात तक फैलती जा रही है।

□ □ □

52. फ़ातिमा तूते

(Fatima Tutay)

(फ़िलिपाइन)

मनीला के पड़ोस में रहने वाली एक स्कूल टीचर सिस्टर फ़ातिमा तूते ने इस्लाम क़बूल किया तो उन्हें असामान्य परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। सगे-संबंधियों ने बाइकॉट कर दिया। बड़ा बेटा बाग़ी होकर घर से चला गया और छोटे बच्चों को स्कूल से निकाल दिया गया। लेकिन फ़ातिमा तूते मज़बूती से सत्य की राह पर अडिग रहीं, यहाँ तक कि अल्लाह ने अपनी मेहरबानी से सारे मामलों को ठीक कर दिया। यह हृदयस्पर्शी कहानी उन्हीं की ज़बानी सुनिए :

▪ ▪ ▪ ▪

यद्यपि इस्लाम क़बूल करने के नतीजे में मुझे बड़े मुश्किल हालात से गुज़रना पड़ा, लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि इस्लाम क़बूल करना मेरे जीवन का सबसे बड़ा सौभाग्य है। एक मसीही की हैसियत से मेरा जीवन उलझावों से भरा हुआ था। मैं सिर से पैर तक भौतिकता में डूबी हुई थी और सत्य से कोसों दूर थी, लेकिन इस्लाम ने मुझे वास्तव में एक नए जीवन से परिचित कराया। —साफ़-सुथरा, शान्तिपूर्ण, संगठित और सुव्यवस्थित जीवन—यह मेरे छोटे-से जीवन की सबसे बड़ी घटना है। क्रान्तिकारी घटना और इस पर मैं अपने अल्लाह तआला का जितना भी शुक्र अदा करूँ, कम है। इस्लाम क़बूल करने के बाद मुझे जीवन के वास्तविक लक्ष्य की समझ प्राप्त हुई और पता चला कि एक औरत का वास्तविक स्थान उसका घर है और एक पत्नी और माँ की हैसियत से उसके कर्तव्य कितने नाज़ुक हैं और कितने महत्वपूर्ण हैं।

मैंने इस्लाम स्वीकार किया तो परिवार भर में मानो भूचाल आ गया और जब मैंने इस्लामी पहनावा अपना लिया, नमाज़ों की पाबन्दी शुरू कर दी और अपने दैनिक जीवन को इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार ढाल लिया अर्थात् मिली-जुली महफ़िलों से अलग हो गई और दूसरी शरारतपूर्ण बातों और चीज़ों

से मुँह मोड़ लिया तो सारा वातावरण मेरा विरोधी हो गया। मेरे बेटे स्थानीय कैथोलिक स्कूल में पढ़ते थे, जो चर्च के अधीन काम करता था। उन्हें वहाँ से निकाल दिया गया। मेरा बेटा इतना क्रोधित हुआ कि घर छोड़कर अपनी मौसी के घर चला गया और मुझे अपनी माँ मानने से इन्कार कर दिया। मेरे सगे-सम्बन्धियों, पड़ोसियों और दोस्तों ने गम्भीरता से समझ लिया कि मैं पागल और दीवानी हो गई हूँ। अतः मेरी एक बहन ने जो स्वयं डॉक्टर है, परामर्श दिया कि मुझे किसी मनोरोग विशेषज्ञ से इलाज कराना चाहिए।

लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि मैं दृढ़तापूर्वक अपने इस्लामी व्यक्तित्व पर जमी रही। मैंने किसी के लान-तान की परवाह की, न किसी मुख़ालफ़त का बुरा माना और धैर्य और आत्मसम्मान के साथ सबके साथ अच्छा व्यवहार करती रही। मेरे आसपास सारी औरतें स्कर्ट बल्कि मिनी स्कर्ट पहनती हैं। लेकिन जब मैं टख़नों तक लम्बी इबा पहन कर बाहर निकलती या चादर में लिपटकर बाज़ार में आती और चेहरे और हाथों के सिवा मेरा पूरा शरीर ढका हुआ होता तो जानने वाले हैरत की तस्वीर बन जाते, बल्कि दयाभरी निगाहों से मुझे देखने लगते मार्केट में जाती तो शुरू में कई दुकानदारों ने मुझे ईसाई राहिबा (Nun) समझा और पूछा कि मैं किस समुदाय से सम्बन्ध रखती हूँ? कोई व्यक्ति भी मुझे साधारण औरत समझने के लिए तैयार न था, जबकि यह चीज़ भी उन्हें परेशान करती कि मेरा लिबास पारम्परिक ननों से बहुत भिन्न है। अतः बस में, स्कूल में और सुपर मार्केट में हर जगह बार-बार मुझसे एक ही सवाल किया जाता कि आपका सम्बन्ध किस समुदाय से है? इसके जवाब में मैं उन्हें बताती कि मेरा सम्बन्ध इस्लाम धर्म से है या यह कि मैं मुसलमान हूँ। इस पर कुछ लोग बहस करते कि फिर मैं एक नन की तरह का लिबास क्यों पहनती हूँ? एक दिन स्कूल की लेडी डायरेक्टर ने भी आपत्ति कर दी कि मुझे स्कूल में इस प्रकार का लिबास नहीं पहनना चाहिए, जो ननों से मिलता-जुलता है। मैंने जवाब में स्पष्ट किया कि यह लिबास तो हज़रत मरयम के लिबास से मिलता-जुलता है और वे ख़ुदा पर ईमान रखने वाले सब लोगों की प्रिय और मिसाली महिला हैं। फिर यह बात कितनी अजीब है कि हम एक व्यक्तित्व को मिसाली और आइडियल भी मानें, उससे बेपनाह मुहब्बत का

दावा भी करें। लेकिन उसके चरित्र और पसन्दीदा तरीक़ों की मुख़ालफ़त करें। इसका तो साफ़ मतलब यह है कि हमारी मुहब्बत का दावा केवल खोखला है। इस मामले में हम न गम्भीर हैं, न अमल करना चाहते हैं।

मेरे स्पष्टीकरण से डायरेक्टर लाजवाब होकर ख़ामोश हो गईं। और फिर बहुत–से लोगों ने मेरी इस दलील को क़बूल भी किया और उनके दिलों में इस्लाम और इस्लामी लिबास के लिए नर्म गोशा पैदा हो गया। अतः अब जब भी मैं अपने माता–पिता और सगे–सम्बन्धियों के यहाँ जाती हूँ, वे हमारे लिए हलाल भोजन की व्यवस्था करते हैं और मेरे पिता हालाँकि अभी तक मुसलमान नहीं हुए, मेरे और मेरे बच्चों के लिए नमाज़ का इन्तिज़ाम करते हैं और मेरे बच्चों को याद दिलाते हैं कि तुम्हारी नमाज़ का समय हो गया है। स्कूल की डायरेक्टर ख़ुद एक नन हैं। अब अल्लाह का शुक्र है उनके व्यवहार में भी अच्छी तब्दीली आ गई है। उनका रवैया दोस्ताना है और उन्होंने आलोचना करने की बजाए जिज्ञासा का रूप धारण कर लिया है। अल्लाह की और अधिक कृपा यह हुई कि मेरे बच्चों को स्कूल में पुनः प्रवेश मिल गया है। मेरा बड़ा बेटा घर वापस आ गया है। वह अपनी पिछली हरकत पर शर्मिन्दा है। इस्लाम के बारे में सकारात्मक ढंग से सवाल करता है और जब हम नमाज़ के लिए खड़े होते हैं तो वह भी हमारे साथ शामिल हो जाता है।

अल्लाह की मदद और उसकी सहायता का अन्दाज़ा इससे लगा लीजिए कि निकट की मार्केट में एक दुकानदार हमेशा मुझे 'सिस्टर' कहता है। उसकी दुकान पर जाती हूँ तो बहुत ख़ुश होता है और मूल्यों में विशेष छूट दे देता है। उसका कहना है कि मैं जिस दिन उसकी दुकान से सौदा ख़रीदती हूँ, उस दिन उसकी बिक्री बहुत बढ़ जाती है और कारोबार में ख़ूब मुनाफ़ा होता है। और अधिक सुखद अनुभव यह है कि मेरे पड़ोसी और ख़ानदानी लोग मुझसे बहुत ही अधिक अप्नत्व और प्रेम का प्रदर्शन करते हैं। हर प्रकार की सहायता करते हैं और कभी–कभी घरों से बाहर जाते हुए बच्चों को मेरे यहाँ छोड़ जाते हैं। बाद में बताते हैं कि किस प्रकार उनके बच्चे उसी प्रकार इबादत करने का तक़ाज़ा करते हैं, जिस प्रकार हम नमाज़ पढ़ते हैं। इस सारे सुखमय वातावरण की एक ही वजह मेरी समझ में आती है कि मैं सारी मुख़ालफ़तों के

बावजूद दृढ़तापूर्वक क़ुरआन और सुन्नत की शिक्षाओं पर चलती रही, जिसके नतीजे में अल्लाह ने उन लोगों के दिल बदल दिए हैं। निस्सन्देह दिलों का मालिक तो अल्लाह ही है।

इससे मेरी समझ में यह बात भी आई कि एक मुसलमान अगर धैर्य, विवेक और प्रतीक्षा का रास्ता अपनाए, अपने आसपास के वातावरण और विरोधियों से झगड़े की बजाए प्रेम और क्षमा का अन्दाज़ अपनाए, अपने ख़ुदा से सम्बन्ध मज़बूत रखे और दृढ़तापूर्वक अपने विश्वास पर जमा रहे तो थोड़े ही समय में न केवल मुख़ालफ़तें दम तोड़ देती हैं, बल्कि अनुकूल वातावरण पैदा हो जाता है।

□□□

53. फ़ातिमा—काला हीरा

(अमेरिका)

अमेरिका की एक काली महिला के हवाले से एक ईमान को बढ़ाने वाली कहानी, इसको हिना ख़ैरी ने लिखा। यह 'उर्दू डायजेस्ट' के जनवरी, 1997 ई० के अंक में प्रकाशित हुई।

▪ ▪ ▪ ▪

ताशा से मेरी मुलाक़ात पार्टी में हुई। जिम ने दफ़तर के सब साथियों को बुला रखा था। सब लोग बैठे ख़ुशगप्पियों में व्यस्त थे। मेज़ पर खाने-पीने की चीज़ें रखी थीं। सलाद कटी हुई सब्ज़ियाँ, जैसे— गाजर, बन्द गोभी, खीरा, मूली, टमाटर, पनीर के टुकड़े, क्रेकर्ज़, केक, बिस्कुट, चिकन-विंग्ज़ और सॉफ़्ट ड्रिंक्स इत्यादि। मैंने पकौड़े बनाए थे, जो सब लोग बड़े शौक़ से खा रहे थे। मैंने अपनी प्लेट में चीज़ें रखीं और एक तरफ़ बैठकर खाने लगी।

''हाय रमीज़! क्या हालचाल है? क्या तुम मेरी दोस्त से मिले हो?'' केब्रीन ने मुझसे पूछा। उसके साथ एक अफ़्रीक़ी मूल की अमेरिकन लड़की थी, जो हिजाब पहने हुए थी। ''नहीं'' मैंने सिर हिलाया।

''यह ताशा है और यह जिम का रूममेट है। अब तुम दोनों बैठकर एक-दूसरे से परिचित हो। मैं अभी आती हूँ।''

''आपका सम्बन्ध कहाँ से है?'' ताशा ने पूछा।

''पाकिस्तान से'', मैंने जवाब दिया।

''ओह'', वह बोली, ''मुस्लिम।''

''हाँ'', मैंने सिर हिलाया।

''मैं भी मुस्लिम हूँ'', उसने गर्मजोशी से कहा। यह तो मैं उसके हिजाब को देखते ही समझ गया था कि वह भी मुसलमान है। इसके बाद बातों का सिलसिला चल निकला। पहली ही मुलाक़ात में ताशा ने अच्छा असर छोड़ा, वह बहुत सुलझी हुई तबीयत की लड़की दिखाई दी। मैं कुछ समय से अपनी पढ़ाई के सम्बन्ध में अमेरिका में रह रहा था और साथ ही छोटी-मोटी नौकरी भी कर रहा था। मैं जिम के साथ रह रहा था और उसके साथियों और दोस्तों

से परिचित था। जिम और उसके साथी प्रायः मुझे किसी न किसी के साथ दोस्ती करवाने के चक्कर में रहते, लेकिन मैं उनसे कहता, ''मुझे माफ़ करो। मैं यहाँ पढ़ने आया हूँ। दोस्तियां और प्रेम पालने नहीं।'' वैसे भी मैं जिस प्रेम पर विश्वास रखता था वह शादी के बाद का प्रेम था। मेरे विपरीत बहुत–से लड़के ऐसे थे जो एक समय में कई–कई लड़कियों से दोस्तियाँ करते थे, उनमें बहुमत ऐसे लड़कों की थी जो धनी माता–पिता के बेटे थे, जो माता–पिता के ख़र्च पर शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और ख़ूब ऐश कर रहे थे। वे भला गम्भीर होकर क्या पढ़ते।

कई लड़कियों ने मेरी तरफ़ दोस्ती का हाथ बढ़ाया। किसी ने सीधे–सीधे और किसी ने अन्य माध्यम से। लेकिन मैं साफ़ कतरा गया। जो लड़कियाँ मेरे साथ पढ़तीं या काम करती थीं या किसी के द्वारा मैं उन्हें जानता था, उनसे मेरी सलाम–दुआ थी और काम की बात भी होती, लेकिन किसी को मैंने अपने व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश की अनुमति नहीं दी। अधिकांश लोगों की इच्छा के बावजूद न किसी को डेट पर ले गया, न किसी के साथ लंच, डिनर किया। गोरे तो गोरे देशी लोग भी मेरे पीछे पड़े रहते कि मैं यहाँ किसी से विवाह कर लूँ। इनमें वक़ार भाई और शमा भाभी सबसे आगे थे। वक़ार भाई लम्बे समय से यहाँ आबाद थे। उनके दो बच्चे थे। प्रायः उनसे मुलाक़ात रहती। मुझसे उम्र में बड़े थे। ईद, बक़रीद के अतिरिक्त अक्सर उनके घर दावतें होती रहतीं, जिनमें मैं भी आमंत्रित होता। उनके कई मिलने वालों के यहां शादी के लायक़ लड़कियां थीं, जिनमें से कुछ पढ़तीं और कुछ नौकरी करती थीं। प्रायः बात हेर–फेर कर मेरी शादी के विषय तक जाकर रुक जाती।

''अब तुम्हारा एम० ए० पूरा होने को है। अच्छी–सी लड़की देखकर शादी कर लो,'' वक़ार भाई कहते।

''हाँ! मेरी नज़र में कई लड़कियां हैं। तुम किसी एक का नाम लो, बाक़ी काम मेरे ज़िम्मे'', शमा भाभी कहती।

''मुझे तो अभी माफ़ ही रखें'', मैं अन्दर ही अन्दर मुस्कुराता।

''अभी तो मेरा इस झंझट में पड़ने का कोई इरादा नहीं है। और फिर यहाँ की लड़कियां ख़ासी एडवांस भी होती हैं। मर्द को पाँव की जूती समझती हैं और यह कि उनसे शादी का मतलब यह है कि हमेशा के लिए यहाँ टिक

जाऊँ। सुख–सुविधाओं में पली बढ़ी कहाँ पाकिस्तान जाकर रहना पसन्द करती हैं ?''

''अरे, तुम हाँ तो करो, फिर देखो, सब एक–से नहीं होते'', भाभी कहतीं।

''हाँ'', वक़ार भाई बोलते, ''अब तुम ख़ुद ही सोचो, छात्र हो, लेकिन तुम्हारे पास गाड़ी है। यहाँ एक हज़ार डॉलर में ऐसी गाड़ी मिल जाती है जो वहाँ लाख डेढ़ लाख रुपये में मिले। अब बताओ।''

''हाँ यह तो है'', मैं कहने की कोशिश करता।

''अरे मियाँ वहाँ धरा क्या है ?'' वे कहते।

''यहाँ शाहाना जीवन–शैली और सभी सुविधाएँ उपलब्ध हैं। कितने मज़े की ज़िन्दगी है और वहाँ जूते घिस जाते हैं नौकरी तलाश करते–करते। नौकरी मिल जाए तो सारा जीवन घर बनाने के सपने देखते बीत जाता है।''

''मगर यहाँ भी सब कुछ आसानी से प्राप्त नहीं होता। क्रेडिट कार्ड के द्वारा सब सुविधाएँ उपलब्ध हो जाएँ तो भी पूरी उम्र क़र्ज़े अदा करने में बीत जाती है।''

''उतर जाते हैं क़र्ज़े भी'', वे कहते, ''किसी चीज़ के लिए तरसना तो नहीं पड़ता'', बहस लम्बी होते देखकर मैं चुप हो जाता।

मैंने एम० ए० कर लिया तो किसी ढंग की नौकरी की तलाश में लग गया। मेरा इरादा डबल एम० ए० करने का था। इसका शौक़ मुझे हमेशा ही से था। मैं किसी पार्ट टाइम काम की तलाश में था। जिम के द्वारा कैथ्रीन ने कहलवाया कि ताशा के दफ़्तर में कुछ लोगों की गुंजाइश है। मैं आज़मा के यानि (ट्राई करके) देखूँ। ताशा से मुलाक़ात हुए कोई छह–आठ महीने हो गए थे। मैं उसके दफ़्तर पहुँचा और एक जॉब के लिए दरख़्वास्त दी। ताशा उसी दफ़्तर के दूसरे डिपार्टमेंट में इन्ट्रेन्सशिप (Enteranceship) कर रही थी। कोशिश करने से मुझे यह नौकरी मिल गई जो इस दृष्टि से अच्छी थी कि मैं और कई छोटी–मोटी नौकरियाँ करने से बच गया। यहाँ तरक़्क़ी का अवसर भी था और केवल आधे दिन की नौकरी थी, बाक़ी समय मैं अपने एम० ए० में लगा रहता। ताशा से अब अक्सर मुलाक़ात होने लगी। आते–जाते, लिफ़्ट में, लंचब्रेक या कैफ़ेटेरिया में। यह सुलझी हुई तबीयत की लड़की मुझे गवारा

लगती। याद रहे अमेरिका में काले लोग अपने आपको अफ़्रीक़ी अमेरिकी कहलाते हैं।

अन्य काली लड़कियों के विपरीत ताशा में एक ठहराव और वक़ार था। वह अन्य काले लोगों की तरह चीख़-चीख़ कर बातें करती, न मुँह फाड़ कर बदतमीज़ी से हँसती। जान-पहचान को कुछ समय बीता तो उसके व्यक्तित्व के कुछ और पहलू मेरे सामने उजागर हुए। इसे बहुत-से अमेरिकी सामाजिक पहलुओं से मतभेद था। उसकी नज़र में फ़ैमिली की बड़ी अहमियत थी। वह संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था की पक्षधर थी, जबकि आम अफ़्रीक़ी और अमेरिकी आज़ाद पक्षी की तरह जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। ताशा की बहुत-सी ख़ूबियों का मैं प्रशंसक होता चला जा रहा था। इसका सम्बन्ध ''Nation of Islam'' से था जो अमेरिकी कालों का एक राजनैतिक संगठन है, जिसे मज़हब का लिबादा ओढ़ाकर कालों को एक प्लेट फार्म पर जमा करने की कोशिश की गई है और वह मुसलमान भी इसी संगठन की शिक्षाओं और प्रोपगंडे से प्रभावित होकर हुई थी। मैं सामान्यतः धर्म पर बात नहीं करता, लेकिन उस दिन बात चल निकली। हम सब लोग लंच ब्रेक में एक साथ बैठे थे। आतंकवाद और इस सन्दर्भ से एक दम इस्लाम की बात निकल आई। कुछ क्षण तो मैं चुपचाप लोगों की प्रतिक्रियाएँ और विचारों को सुनता रहा, जो कुछ इस प्रकार के थे कि मुसलमान अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आतंकवाद का सहारा लेते हैं। आख़िर मुझसे रहा न गया और मैंने अपने साथियों के समक्ष एक छोटा-सा धुआँधार भाषण दिया जिसका निचोड़ यह था कि आतंकवाद और इस्लाम दो अलग-अलग चीज़ें हैं। यह प्रोपगंडा पश्चिमी और अमेरिकी मीडिया का फैलाया हुआ है, जिसमें कुछ भी सच्चाई नहीं है। इस्लाम दुनिया का सबसे अधिक अमन और शान्ति वाला धर्म है, जो हर प्रकार के आतंकवाद की भरपूर निन्दा करता है और अगर कोई भी व्यक्ति आतंकवाद की राह अपना ले तो वह उसका व्यक्तिगत काम होगा न कि इस्लाम का तक़ाज़ा। लगे हाथों मैंने उन्हें इस्लाम की बुनियादी शिक्षाओं से परिचित कराया। इस दौरान सब चुपचाप मेरी बात सुन रहे थे। ताशा विशेष रूप से रुचि दिखा रही थी।

ब्रेक ख़त्म हुआ और सब उठकर जाने लगे तो ताशा मुझसे बोली, ''रमीज़! तुम्हारी बातें मुझे बहुत अच्छी लगी हैं और न जाने क्यों मेरा दिल

चाहता है कि तुम्हारी बात सुनें जाऊँ। इस संसार, जीवन और पुरस्कार और दण्ड के बारे में मेरे दृष्टिकोण इतने उलझे हुए हैं, बहुत–सी चीज़ें उझली हुई डोर की तरह हैं, जिन्हें सुलझाने की कोशिश करती हूँ तो और उलझती चली जाती हैं। मुझे नहीं मालूम किस डोर, किस तार को चुनूँ। कौन–सी डोर उलझी हुई पहेली को हल कर देगी। तुम्हारा धर्म इन सब चीज़ों के बारे में क्या कहता है ?''

मैंने कहा, मैं तुम्हें कुछ किताबें ला दूँगा। तुम्हें अपने तमाम सवालों और उलझनों का जवाब उनसे मिल जाएगा।

अगले ही दिन मैंने इस्लाम और पैग़म्बरे–इस्लाम के जीवन पर कुछ किताबें, जो अंग्रेज़ी में थीं, उसे पढ़ने को दीं। वे किताबें उसने दो–ढाई सप्ताह में ही पढ़ लीं और कहने लगी, ''मेरे अन्दर का संघर्ष बड़ी हद तक ख़त्म हो गया है और मुझ पर एक नई दुनिया के रहस्य खुल रहे हैं। क्या तुम मुझे क़ुरआन पढ़ने को दोगे ?''

''अवश्य'' मुझे क्या चाहिए था। मैं तो चाहता था कि वह असल और नक़ल का अन्तर देख ले। यह जान ले कि अब तक किस झूठे ईमान को इस्लाम समझकर क़बूल किए बैठी है और यह कि 'Nation of Islam' कहने को बेशक इस्लाम का नाम इख़्तियार किए हुए है, लेकिन वास्तव में इस्लाम से उसका दूर का भी सम्बन्ध नहीं है, बल्कि यह एक फ़ितना है जो धर्म और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को नबी या ख़ुदा का सन्देशवाहक समझे और मुक्तिदाता समझे और उसकी बुनियादी शिक्षाएँ ही इस्लाम से बिल्कुल भिन्न हों, वह फ़ितना नहीं तो और क्या है ?

इस बीच में ताशा के व्यक्तित्व में अनोखा बदलाव पैदा होता महसूस हो रहा था। वह प्रायः चुपचुप और खोई–खोई रहती। फिर एक दिन छुट्टी के बाद जब लगभग सभी लोग जा चुके थे और मैं काम समेट कर उठने ही वाला था, कि वह मेरे कमरे में आकर कहने लगी, ''रमीज़! मैं तुमसे एक बहुत महत्वपूर्ण बात कहना चाहती हूँ।''

''हाँ कहो'', मैं पूरी तवज्जोह से उसकी बात सुन रहा था।

''मैंने तुम्हारी दी हुई किताबों का और क़ुरआन का अध्ययन किया है'', वह बोली ''और मेरे दिमाग़ पर छाए हुए भ्रम और वसवसों के बादल छँट

चुके हैं। इन किताबों, विशेषकर अल्लाह की किताब ने मेरी आँखों पर से अन्धकार का मोटा पर्दा उठा दिया है और मैं जान गई हूँ कि अब तक किस अंधकार में पड़ी थी। ईसाईयत से निकल कर 'नेशन ऑफ़ इस्लाम' के तथाकथित इस्लाम में फँसी तो उसे मुक्तिदाता समझी। हालाँकि वह एक फ़ितना है। अब जबकि मैं इस्लाम का, जो अल्लाह का पसन्दीदा और तमाम नबियों का मज़हब है, अध्ययन कर चुकी हूँ। निस्सन्देह यह कह सकती हूँ कि क़ुरआन वाक़ई अल्लाह का कलाम है और यह किसी इन्सान का कारनामा हो ही नहीं सकता, और यह कि इस्लाम दुनिया का सबसे सच्चा मज़हब है, जिसमें कहीं कोई मिलावट नहीं और वह मेरे ज़ेहन में उभरने वाले तमाम शक और सन्देहों और भ्रमों को मिटा चुका है। अब एक ही इच्छा है कि मैं जल्दी से जल्दी कलिमा पढ़कर उसमें दाख़िल हो जाऊँ।''

उसकी बात सुनकर मुझे इतनी ख़ुशी हुई कि मैं बयान नहीं कर सकता। ताशा और मैं इस बीच एक–दूसरे से काफ़ी क़रीब आ चुके थे। मैं मुसलमान होने के नाते यह तो इच्छा कर सकता था कि एक ग़ैर–मुस्लिम ईमान के दायरे में दाख़िल हो जाए। लेकिन इतनी जल्दी वह इस नतीजे पर पहुँच जाएगी, इसका मुझे अन्दाज़ा न था। उसके इस हृदय परिवर्तन में मुश्किल से छह–सात महीने लगे होंगे।

मैं ताशा को मौलवी बशीर अहमद के पास ले गया, जो हमारे शहर की एक छोटी–सी मस्जिद और इस्लामी सेंटर में जुमा की नमाज़ की इमामत करते थे। ताशा ने उनके समक्ष कलिमा पढ़ा और उसका इस्लामी नाम फ़ातिमा रखा गया। हमारे दफ़्तर के कुछ लोगों ने फ़ातिमा के मुसलमान होने पर कोई ध्यान न दिया और कुछ ने आश्चर्य और दुख व्यक्त किया। उसके अपने सम्बन्धियों ने भी यह बात पसन्द न की। फ़ातिमा और मैं एक–दूसरे के काफ़ी क़रीब तो पहले ही आ चुके थे। मगर इस्लाम लाने के बाद मैं एक अजीब–सा बन्धन अपने और उसके बीच महसूस करने लगा। शायद वह भी ऐसा ही कुछ महसूस कर रही थी। इसी कारण अब हम दोनों ज़्यादातर समय साथ बिताने लगे और मेरा यह कहना कि लड़कियों से दूर ही रहा जाए और केवल काम की हद तक सम्बन्ध रखा जाए, रेत की दीवार सिद्ध हुआ। हमारे बीच दोस्ती और बेतकल्लुफ़ी पैदा होने लगी और मुझे पता भी न चला कि धीरे–धीरे

फ़ातिमा किस तरह मेरी ज़िन्दगी में दाख़िल होकर उस पर प्रभावी होने लगी। उसके व्यक्तित्व की गम्भीरता और आत्मसम्मान का तो मैं पहले से ही प्रशंसक था, अब उसके व्यक्तित्व का क़ैदी बनता जा रहा था। हम ग़ैर महसूस ढंग से एक-दूसरे के बहुत क़रीब आ चुके थे और मैं स्पष्ट रूप से महसूस करने लगा था कि फ़ातिमा के लिए मेरे दिल में नर्म गोशा पैदा हो चुका है।

फ़ातिमा ने अपने आपको काफ़ी हद तक इस्लामी शिक्षा के अनुसार ढाल लिया था। वह ऐसा लिबास पहनने लगी थी जो पूरी तरह से उसके शरीर को ढक लेता। शराब और सुअर के मांस का सेवन उसने फ़ौरन ही छोड़ दिया था और नमाज़ सीख रही थी। इस बीच एक आध बार मैं उसे वक़ार भाई के यहाँ भी मिलाने ले गया। वैसे तो उन लोगों ने उसकी बड़ी आवभगत की, लेकिन अकेले में मेरी टाँग खींची— "क्यों मियाँ यह क्या चक्कर है यह काली क्यों लिए फिर रहे हो?" वक़ार भाई ने पूछा।

"कोई चक्कर नहीं, वक़ार भाई। नवमुस्लिम है। मैं चाहता था कि आप लोगों से भी मिलकर और बहुत-सी बातें भाभी से और आपसे सीख ले।"

"अरे मियाँ! इन लोगों का क्या है, आज कुछ है, कल कुछ और। और देखो!" उन्होंने जैसे मुझे चेताते हुए कहा, "अभी तक बच रहे हो तो बचे ही रहना, इन कालियों-गोरियों के चक्कर में पड़ना बड़ा बुरा होता है। तुम्हारे लिए कोई लड़कियों की कमी है? एक से एक पाकिस्तानी, भारतीय ख़ानदानों की लड़कियाँ मौजूद हैं।"

"ऐसी कोई बात नहीं", मैंने उन्हें यक़ीन दिलाते हुए कहा, "वह केवल मेरी दोस्त है।"

यह था भी सच। मैंने अभी इतनी दूर तक की नहीं सोची थी। लेकिन लगता है वक़ार भाई ने आने वाले समय को भाँप लिया था। बीतते समय के साथ मैं और फ़ातिमा इतने क़रीब आ गए कि एक-दूसरे के बिना जीना मुश्किल लगने लगा। तब हमने शादी का फ़ैसला कर लिया। जैसे हम एक-दूसरे को पसन्द करने लगे थे, दफ़्तर के बाहर मिलते-मिलाते भी थे। इसके बावजूद एक विशेष हद हमने अपने दर्मियान बाक़ी रखी थी, जिस पर दोनों ही बड़ी सख़्ती से कारबन्द थे। घर वालों ने थोड़ी-सी बहस के बाद शादी की अनुमति दे दी। तय यही हुआ कि फ़िलहाल सादगी से निकाह कर लिया जाए

और बाक़ी रस्में और समारोह हमारे पाकिस्तान पहुँचने पर होंगे।

फ़ातिमा पर मैंने अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया था कि मैं केवल उस समय तक यहाँ हूँ जब तक एम० ए० नहीं कर लेता। उसके बाद जितना शीघ्र सम्भव होगा मैं पाकिस्तान चला जाऊँगा और उसे बाक़ी जीवन अपने वतन, अपने घर, और अपने लोगों से इतनी दूर अजनबी देश में व्यतीत करना पड़ेगा। अतः भली–भांति सोच–समझ ले। मैंने इसको अमेरिका और पाकिस्तान के बीच बुनियादी फ़र्क़ भी बता दिया कि हमारा देश विकासशील और तीसरी दुनिया से सम्बन्धित है, जहाँ वे सुविधाएँ और विलासिता की वस्तुएँ उपलब्ध नहीं, जिनकी वह आदी है। इसके अतिरिक्त वहाँ क़दम–क़दम पर पाबन्दियाँ होंगी। फ़ातिमा ने ये तमाम बातें धैर्य और शान्तिपूर्वक सुनीं और मुस्कुराते हुए कहा कि वह अपने निर्णय पर क़ायम है और इन सभी बातों से परिचित है कि मेरा उम्र भर का साथ उसे हर शर्त पर मंज़ूर है। रही पाबन्दियों की बात तो वह इनके लिए भी तैयार है।

मैं फ़ातिमा के घरवालों से भी मिल चुका था। वे सब मुझसे बड़े अच्छे स्वभाव से मिले। आरम्भ में उसके माता–पिता और भाइयों को यह आपत्ति थी कि उसे मेरे साथ पाकिस्तान जाने की आवश्यकता क्या है? बल्कि वह मुझसे कहते कि शादी करनी है तो यहीं रहो, लेकिन फिर उसके दृढ़ संकल्प को देखकर वह ख़ामोश हो गए। वक़ार भाई और शमा भाभी ने शादी की सूचना बहुत ही आश्चर्य और अफ़सोस की मिली–जुली प्रतिक्रिया के साथ सुनी। उनके चेहरे देखकर मुझे अन्दाज़ा हुआ कि उन्हें यह बात कितनी नागवार गुज़री है।

''आख़िर फँस ही गए मियाँ'', वक़ाई भाई बोले, ''मैंने तो पहले ही कहा था, मगर भाई यह शादी–वादी की क्या सूझी तुम्हें? ये लोग भी भला किसी के हुए हैं? इनका ईमान है न यक़ीन और यह भी तो सोचो, न जाने कितनों के साथ इसके सम्बन्ध रहे होंगे। वहाँ से लोग भाग–भाग के यहाँ आ रहे हैं और एक तुम हो कि ख़ुद भी वापस जाना चाहते हो और उसे भी ले जाओगे। भला इसका वहाँ गुज़ारा कहाँ? यह आज़ाद फ़ज़ाओं की पक्षी, वहाँ की पाबन्दियों में इसका दम घुटेगा। साल भर यह रह ले तो बहुत समझना।''

उनकी बातें मुझे बहुत नागवार लग रही थीं, लेकिन मैं सब्र से काम ले

रहा था। जानता था इतना बड़ा क़दम उठाया है तो ये बातें अवश्य सुननी पड़ेंगी। मैंने केवल इतना कहा, वक़ार भाई! वह आम अमेरिकी लड़कियों की तरह नहीं और अल्लाह का शुक्र है, अब तो वह मुसलमान हो चुकी है। मैं यह तो नहीं जानता कि इसके औरों से किस हद तक सम्बन्ध रहे होंगे, लेकिन इतना ज़रूर जानता हूँ कि सच्चे दिल से ईमान लाने के बाद चाहे पहाड़ बराबर भी गुनाह हों, तो अल्लाह वह भी माफ़ कर देता है। और इन्सान माँ के पेट से पैदा होने वाले बच्चे की तरह पाक और साफ़ हो जाता है और अगर आप यह बात कर रहे हैं तो यह भी जानते होंगे कि यह सब कुछ एक हद तक हमारे समाज में भी होता है, लेकिन ढके–छिपे। रही बात वहाँ की पाबन्दियों की तो उसके लिए वह सभी पाबन्दियाँ यहाँ की आज़ादियों से बेहतर हैं।''

निकाह के समारोह में वक़ार भाई और शमा भाभी के अतिरिक्त मेरे कुछ क़रीबी दोस्त शरीक थे। भाभी ने फ़ातिमा को दुल्हन बनाकर तैयार कर दिया था। उन्होंने फ़ातिमा को साथ ले जाकर इण्डियन स्टोर से एक सुन्दर हल्के काम का शलवार कमीज़ का जोड़ा दिलवा दिया था, जो दूल्हा अर्थात् मेरी ओर से था। कुछ समय बाद जब मेरा एम० ए० पूरा हो गया तो हम पाकिस्तान लौट आए। मेरे घरवालों और ख़ानदान वालों ने हमारा बहुत अच्छे ढंग से स्वागत किया। फ़ातिमा को नये सिरे से दुल्हन बनाया गया। ढोलक बजाई गई और एक शानदार वलीमे (प्रतिभोज) का समारोह आयोजित किया गया। आमतौर पर तो मुझसे किसी ने कुछ नहीं कहा, लेकिन मेरे पीठ पीछे बड़ी बातें बनीं। ख़ूब ठठोल बाज़ियाँ हुईं। कुछ बेतकल्लुफ़ दोस्तों ने मेरी टाँग खींची, किसी ने कहा :

''क्यों भई गोरी नहीं मिली थी, जो काली पकड़ लाए?'' कोई बोलता ''काली ही से करनी थी तो अपने यहाँ की लड़कियों में क्या ख़राबी थी?''

मैं हँस के चुप रहता। पीठ पीछे भी लोग इस प्रकार की बातें कहते थे, लेकिन मुझे परवाह थी न फ़ातिमा को। मैंने फ़ातिमा को इन तमाम बातों के लिए पहले ही तैयार कर रखा था। जानता था कि हम लोग किसी की ख़ुशी में तो कम ही शरीक होते हैं। मज़ाक़ उड़ाने और ठठोल बाज़ियों में आगे–आगे रहते हैं। हमारे यहाँ वैसे भी लोग रंग और नस्ल के बारे में संवेदनशील हैं। गोरे रंग पर मरते और काले से नफ़रत करते हैं। हालाँकि अगर रंग ही देखा जाए तो

फ़ातिमा का रंग–रूप हमारे यहाँ की लड़कियों ही की तरह था और नाक–नक़्शा भी ठीक–ठाक था, लेकिन बात वही थी कि वह एक काली अफ़्रीक़न लड़की थी।

मेरे घरवालों को अगर थोड़ा बहुत दुख था भी तो वह फ़ातिमा की सेवा, अपनत्व, सच्चाई और मुहब्बत ने दूर कर दिया और कुछ ही समय में सब उसकी ख़ूबियों के प्रशंसक बन गए और उसके गुन गाने लगे। मुझे एक कम्पनी में अच्छी नौकरी मिल गई थी। हमारी शादी को पाँच साल गुज़र गए थे। इस बीच फ़ातिमा दोबारा अमेरिका भी चक्कर लगा आई थी। उसने इस ख़ूबी से अपने आपको हमारे माहौल में ढाल लिया था कि वह उसी का एक भाग लगती। नमाज़–रोज़े की पाबन्द, मेहनती, सेवाभाव और सहानुभूति करने में आगे–आगे रहती। इसी बीच हम एक बेटे और एक बेटी के माँ–बाप बन चुके थे। वही लोग जो पहले हमारा मज़ाक़ उड़ाने में पेश–पेश थे, जिन्होंने शर्त लगा रखी थी कि यह शादी अधिक दिनों तक बाक़ी नहीं रह सकती, अब मेरी बीवी की ख़ूबियों की दिल से प्रशंसा करने लगे थे। और कहते थे कि मैं अमेरिका से एक हीरा ले आया हूँ।

एक दिन एक समारोह में आतिफ़ बेग से मुलाक़ात हुई जो अमेरिका में मेरे साथ था। मैं इतने समय बाद एक पुराने साथी को देखकर बहुत ख़ुश हुआ और हम पुरानी बातें लेकर बैठ गए। मैंने सब साथियों, दोस्तों की ख़ैरियत मालूम की और बातचीत का रुख़ वक़ार भाई की ओर मुड़ गया। मेरी इस बात के जवाब में कि वे लोग कैसे हैं, वह एक दम चुप हो गया। फिर कुछ क्षणों के बाद बोला ‘‘लगता है तुम्हें कुछ नहीं मालूम ?’’

‘‘क्या’’ मैंने आश्चर्य से पूछा ‘‘सब ख़ैरियत तो है ना ?’’

‘‘हाँ, वैसे तो ख़ैरियत ही है, लेकिन बड़ी ट्रेजडी हुई है बेचारों के साथ। उनकी बेटी देना बाप का घर छोड़कर अपने Boy Friend के साथ रहने लगी। वक़ार भाई ने बड़ी कोशिश की कि उसे रोक सकें, लेकिन वह न मानी। कहने लगी, ‘‘मैं अठारह वर्ष की व्यस्क और समझदार हूँ और आप मुझ पर ज़बरदस्ती नहीं कर सकते।’’ वक़ार भाई ने एक बार ज़बरदस्ती कोशिश की, उसे लाने की तो उसने पुलिस को रिपोर्ट कर दी और बेचारे वक़ार भाई हाथ मलते रह गए। अब वे बड़े निराश और बुझे–बुझे रहने लगे हैं। अब वे अपने

मिलने वालों से मुँह छुपाते फिर रहे हैं और रोज़ की दावतों और पार्टियों का सिलसिला ख़त्म हो चुका है।''

मैं गुमसुम बैठा था। मेरे कान साँय-साँय कर रहे थे। मुझे यक़ीन ही नहीं आ रहा था कि ऐसा भी हो सकता है। वक़ार भाई के घर की बरबादी पर मुझे बड़ा दुख हो रहा था। आश्चर्य है उनकी दूरदृष्टि ने मेरे और फ़ातिमा के बीच उभरता हुआ सम्बन्ध तो देख लिया था, लेकिन वह अपने घर में उमड़ने वाला तूफ़ान न देख सके। आज मैं तो फ़ातिमा के साथ सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा हूँ, जो एक मिसाली बीवी, माँ और बहू सिद्ध हुई और जिसके बारे में उनका कहना था कि इन लोगों का क्या भरोसा, इनका ईमान है न यक़ीन और यह आज़ाद फ़ज़ाओं की पंछी साल भर भी गुज़ार ले तो बहुत बड़ी बात होगी। लेकिन आज वे ख़ुद ज़िन्दगी के किस दोराहे पर खड़े हैं। शायद यही काल चक्र है।

□ □ □

54. फ़ातिमा ग्रीम
(Fatima Garimm)
(जर्मनी)

फ़ातिमा ग्रीम इस्लाम क़बूल करने के आरम्भ में फ़ातिमा हेरीन कहलाती थीं। जैसा कि आप उनकी आपबीती में देखेंगे, वे इस्लाम क़बूल करने के बाद अपने पति डॉ० उमर अब्दुल अज़ीज़ के साथ पाकिस्तान आकर कराची में रहने लगीं। लेकिन यहाँ के हालात से आहत होकर वापस चली गईं। दुर्भाग्य से डॉ० उमर अब्दुल अज़ीज़ ने फ़ातिमा ग्रीम के कथनानुसार ग़ैर इस्लामी जीवन–शैली अपना ली। शराब पीने और इसी प्रकार की अन्य बुराइयों में लिप्त हो गए और दो वर्षों के बाद अपने पैतृक स्थान बवेरिया चले गए। फ़ातिमा ने तलाक़ लेकर एक जर्मन मुसलमान से दूसरी शादी कर ली। आजकल वह जर्मनी के शहर हेम्बर्ग में रहती हैं।

फ़ातिमा अप्रैल 1987 ई० में अन्तर्राष्ट्रीय सीरत कान्फ्रेंस में भाग लेने के लिए इस्लामाबाद पधारीं, तो दैनिक 'जसारत' कराची की महिला मामलों की इंचार्ज अतिया इक़बाल ज़ैदी ने उनसे इंटरव्यू लिया। यह इंटरव्यू दिलचस्प भी है और जानकारी बढ़ाने वाला भी। 'जसारत' (10 अप्रैल, 1987 ई०) में प्रकाशित लेख का यहाँ सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

आरम्भिक जीवन

मेरे पिता एडोल्फ़ वोल्फ़ 'Adolf Woulf' (उन्होंने वूल्फ़ की स्पेलिंग पर ज़ोर देते हुए कहा) और माँ ने चर्च छोड़ दिया था और वे लोग सच्ची राह की तलाश में थे, लेकिन बाद में वे इस मामले में बहुत संजीदा नहीं रहे कि बस ऐसे ही ठीक है। लेकिन जब मैंने ज़रा होश संभाला तो मुझे उसी समय से एक बेचैनी और परेशानी महसूस होती थी। मैं अपनी माँ से सवाल करती रहती थी। मेरी माँ तंग आकर मुझसे कहती, "इसी दुनिया पर सन्तोष करो, तुम्हारे पहले क्या था और आगे क्या होगा? जो कुछ है उससे आनन्दित हो। तुम्हारे अन्दर बहुत ज़्यादा लालसा पैदा हो गई है, इसलिए परेशान हो।"

मेरा नाम उस समय 'हेरीन' था। फ़ातिमा कुछ देर के लिए चुप रहीं, तो हमने फ़ौरन दूसरा सवाल किया :

''आप इस्लाम कैसे लाईं ? हमारा मतलब है कोई विशेष घटना या बात थी कि जिससे आप प्रभावित हुईं या बाक़ायदा एक लम्बे अध्ययन के बाद इस नतीजे पर पहुँची ?''

फ़ातिमा : ''मैं बाक़ायदा अध्ययन करती थी। जब मैंने ईसाईयत का विस्तृत अध्ययन किया तो 'नास्तिक' हो चुकी थी। मुझे यह बड़ा अजीब लगता था कि ख़ुदा का बेटा है और औरत तो सदा की मुजरिम है कि उसने आदम को खाने के लिए सेब दिया था। औरत को वे लोग बहुत अधिक बुरा कहते हैं। मुझे यह बात बिल्कुल अच्छी नहीं लगती थी और यह बात तो और भी अधिक बुरी लगती थी कि अल्लाह ने अपने बेटे को फाँसी पर क्यों चढ़ा दिया, बचा क्यों न लिया ?''

और यह कि पोप के सामने स्वीकार किया जाए Ridiculus कितनी हास्यास्प्रद चीज़ है। यह मुझे बहुत बुरी लगी। एक इन्सान बिल्कुल हमारे जैसा इन्सान होते हुए हमारे गुनाहों को कैसे क्षमा कर सकता है ?

इसके बाद फिर मैंने इस्लाम का अध्ययन आरम्भ किया।

''इस्लाम से सबसे पहले आप कैसे परिचित हुईं ?''

''मैंने प्रसिद्ध विद्वान मुहम्मद असद की किताब 'Road to Makkah' (इस्लाम की गोद में) पढ़ी। इसका मैंने जर्मन भाषा में अनुवाद भी किया है। मैं इससे बहुत प्रभावित हुई थी। फिर मौलाना मौदूदी साहब की किताब 'Towords Understanding Islam' (इस्लाम धर्म) का अध्ययन किया और तब जाकर पहली बार मैं हक़ीक़त से परिचित हुई। मुझे पता चला कि यह ग़लत है, यह सही है। इस्लाम गुमराह नहीं करता।''

''जब आपको यह हक़ीक़त मालूम हो गई तो आपकी क्या कैफ़ियत थी ? क्या आप फ़ौरन ही धर्म बदलने के लिए तत्पर हो गई थीं ? हमारा मतलब है नास्तिकता से तौबा करके इस्लाम लाने के लिए तैयार हो गई थीं ?''

''हाँ, फ़ौरन तैयार हो गई थी, हालाँकि आशंकाएँ बहुत अधिक थीं कि मुझे बहुत अधिक सामाजिक दबाव का सामना करना पड़ेगा, क्योंकि हमारे यहाँ यूरोप में इस्लाम के बारे में लोगों की एक आम राय यह है कि इस धर्म के

मानने वालों में ग़रीबी बहुत अधिक है और यह धर्म तो इस प्रकार का है कि इसमें बैक वार्डनेस (पिछड़ापन) अधिक है। ये सारी बातें थीं, लेकिन इस्लाम के सत्य ने मुझे इतना प्रभावित किया कि मैं फ़ौरन मुसलमान हो गई।''

यह अब से पच्चीस वर्ष पूर्व की बात है। मुसलमान होने के बाद पाकिस्तान आ गई थी। उन्होंने मुस्कुराते हुए प्रसन्नचित होकर कहा :

''जब मैं यहाँ आई थी तो मैं सही मानो में 'मुस्लिम बेबी' थी। कुछ पढ़ ज़रूर लिया था, मगर न नमाज़ से परिचित थी न रोज़े से। सब बाद में सीखा। पाकिस्तान में कोई तीन साल रही। यहाँ मैंने नक़ाब वाला पर्दा भी किया (52 वर्षीय फ़ातिमा अब चेहरे पर नक़ाब नहीं लेतीं) लेकिन यहाँ की गर्मी के कारण हम मज़बूरन यहाँ नहीं रह सके और वापस चले गए।''

''आपको इस्लाम की किस चीज़ ने सबसे अधिक प्रभावित किया?''

''मैंने बहुत सारी चीज़ें पढ़ी हैं। बाक़ायदा अरबी भाषा भी सीखी है। सबसे पहले तो 'इस्लाम की गोद में' (The Road to makkah), फिर अमीर अली की किताबें पढ़ीं। इनका अनुवाद भी किया है। इन्होंने मेरे दिल को बहुत अधिक प्रभावित किया है। फिर मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी ने बहुत प्रभावित किया। मौलाना मौदूदी की दीनियात (इस्लाम धर्म) बहुत अच्छी लगी। जिसमें उन्होंने लिखा है कि संसार की तमाम चीज़ें पैदाइशी मुसलमान हैं, केवल इन्सान को यह इख़्तियार (Choice) मिला है कि वह ख़ुद मुसलमान बने। मुझे सैयद क़ुतुब शहीद की किताब 'इस्लाम भविष्य की आशा' (Islam the religion of Future) ने भी बहुत प्रभावित किया और इसका भी मैंने जर्मन भाषा में अनुवाद किया। इस प्रकार मैं अब तक मुहम्मद असद, मौलाना मौदूदी, सैयद क़ुतुब, मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी और सैयद अमीर अली की कई महत्वर्पूण किताबों का जर्मन भाषा में अनुवाद कर चुकी हूँ।''

''आपके ख़्याल में पश्चिम को इस्लाम की क्या चीज़ सबसे अधिक प्रभावित कर सकती है?''

''पश्चिम को सबसे अधिक इस्लाम की यही चीज़ प्रभावित कर सकती है कि हम वास्तव में वैसे ही बनें जैसा कि इस्लाम है।''

बहुत ही संक्षिप्त और सरल से इस वाक्य में विषय की एक दुनिया आबाद थी। हम कुछ देर ख़ामोश रहे, बातचीत फिर व्यक्तिगत जीवन की

ओर मुड़ गई। फ़ातिमा ने बताया कि उनके दूसरे पति का नाम करीम है। चार बच्चे हैं, अल्लाह का शुक्र है सब मुसलमान हैं।

फ़ातिमा ग्रीम ने पाकिस्तान के बारे में कहा :

''मुझे पाकिस्तानी छात्राएँ बहुत अच्छी नहीं लगतीं।''

''क्यों ?''

''हर समय ख़ुद को ख़ूबसूरत बनाने में लगी रहती हैं। ख़ूबसूरत पति तलाश करना और इसी विषय पर शुरू से आख़िर तक बात करते रहना ही उनका सबसे अहम और दिलचस्प काम होता है।''

हम शर्मिन्दा हो गए और बड़ी मुश्किल से इतना कहा :

''सब ऐसी नहीं होतीं।''

''हाँ, सब ऐसी नहीं होतीं, मगर अधिकतर।'' उन्होंने उंगली उठाई।

हमने स्वीकारते हुए गरदन हिला दी। तब फ़ातिमा अचानक फिर गम्भीर हो गईं और छात्राओं से कहा :

''अपने दोस्तों की मंडली में से लड़कियाँ चुन लीजिए, उनका विश्वास हासिल कीजिए। उनके सामने प्रभावी तरीक़े से इस्लाम की दावत पेश कीजिए। सदव्यवहार बहुत ज़रूरी है। नमाज़ की पाबनदी कीजिए, क़ुरआन मजीद से अपना सम्बन्ध बढ़ाइए और उसकी रौशनी में ग़ौर करते रहिए कि हम किस प्रकार लोगों को फिर से इस्लाम धर्म से क़रीब से क़रीबतर कर सकते हैं। केवल नमाज़ पढ़ने से मुसलमान होने का हक़ अदा नहीं हो जाता।''

(2)

यह लेख श्रीमती फ़ातिमा हेरीन ने 'चराग़े राह' के लिए ख़ुद लिखा, जिसका उर्दू अनुवाद अक्टूबर 1965 ई० के अंक में प्रकाशित हुआ।

जब 1945 ई० में जर्मनी में जंग ख़त्म हुई तो मैं केवल 11 वर्ष की थी और मैं एक स्कूल में पढ़ रही थी। मेरे पिता एक जरनल थे। इसलिए यह बिल्कुल स्वाभाविक बात थी कि उन्होंने हम सब भाई–बहनों (दो भाई, दो बहनों) की शिक्षा–दीक्षा कम्यूनिस्ट विचारधारा के अनुसार की। ख़ुदा के अस्तित्व के बारे में हम कुछ धुंधला और अस्पष्ट विश्वास रखते थे, लेकिन हमारे लिए उसकी हैसियत एक ऐसी हस्ती की थी जो अकाल्पनिक हद तक हम से दूर हो और जो इतनी महान हो कि इसे लोगों के दैनिक मामलात से कोई रुचि न हो। एक ऐसी

हस्ती जिसने लाखों साल पूर्व प्राकृतिक क़ानून बनाए और फिर यह क़ानून केवल संयोगवश और घटना स्वरूप इन्सान को अस्तित्व में लाए। हम यही यक़ीन रखते थे कि प्राकृतिक क़ानूनों द्वारा पौधों से जानवर बने हैं और इन जानवरों से, जिनका श्रेष्ठतम रूप बन्दर हैं, इन्सान पैदा हुए जो आरम्भ में पाषाण युग के जीव–जन्तु थे, लेकिन धीरे–धीरे उसने सूझ–बूझ हासिल की, सोचने–समझने वाले दिमाग़ पैदा हुए और इस प्रकार इन्सान ने उस समझदार इन्सान का रूप धारण किया, जिससे वह मानव–इतिहास की किताबों के प्रथम अध्याय की हैसियत से परिचित है। हमें यह सिखाया गया था कि हम केवल उस बात को सच और सत्य पर आधारित समझें जिसको हम अपनी आँख से देख सकें या हाथ से महसूस कर सकें या कान से सुन सकें। इसी लिए चूँकि हम अधिक से अधिक यही देख सकते थे कि मौत के बाद इन्सान जानवरों और पौधों की भाँति धरती का अंश बन जाता है, इसलिए यह बिल्कुल स्पष्ट बात थी कि मरने के बाद के जीवन और प्रलय के बारे में कहानियाँ उन लोगों की अपनी ख़ुशफ़हमी का आविष्कार हैं, जो मनुष्य के इस सांसारिक जीवन के अलावा भी कुछ पाने की इच्छा को सन्तुष्ट करके या कमज़ोर लोगों को हमेशा के नरक की आग का भय दिलाकर वास्तव में स्वयं ताक़त और शक्ति प्राप्त करना चाहते थे। हमारा अगर किसी धर्म से सम्बन्ध था तो वह ईसाईयत थी और उसकी तस्वीर हमारे सामने इस प्रकार पेश की जाती थी कि जैसे यह जनसाधारण की अफ़ीम है और ये उन लोगों के धार्मिक विश्वास हैं जिन्हें सिवाए मौत के कोई और ख़ौफ़ नहीं। जो न ख़ुद सोचते हैं, न समझते हैं बस भेड़ों के समूह की तरह चलते हैं। यह समझते थे कि हर आदमी ख़ुद अपने ही सामने उत्तरदायी है और वह अपने साथ जो कुछ करना चाहता है, उसके लिए पूरी तरह आज़ाद है, जब तक वह स्पष्ट रूप से दूसरों के लिए नुक़सान का कारण न बने। और यह कि हमारी अपनी आत्मा ही हमारा मार्गदर्शक है। राष्ट्रवाद की वह धारणा जिसका प्रचार युद्ध के बीच और उससे पूर्व किया जाता था जर्मन क़ौम को कठोरतम संघर्ष पर उभारने के लिए सबसे प्रभावी चीज़ साबित हुआ। हमारी बड़ी से बड़ी नैतिक और आध्यात्मिक इच्छा बस यह थी कि हम अपने देश के लिए बड़े–से–बड़े कारनामे अंजाम दें। अपनी क़ौम की ख़ातिर अपनी जानों की क़ुरबानी दें और जर्मनी की महानता और शान के लिए काम करने में एक–दूसरे से बढ़कर भाग लें।

जब युद्ध समाप्त हुआ तो केवल देश के मकानात और इमारतें ही धराशायी नहीं हो गई थीं, बल्कि उससे जुड़ी महानता की शानदार परम्पराएँ और उसके लिए उच्चतम लक्ष्य सभी टुकड़े-टुकड़े हो गए थे। जो लोग किसी प्रकार जीवित बच सके, उनके लिए इसके अलावा कोई उपाय न था कि जो कुछ अब किया जा सकता है उससे चिमटे रहें अर्थात् खंडहरों पर एक नई इमारत का निर्माण, अपने सर को छुपाने के लिए जगह की प्राप्ति, अपनी तकलीफ़देह भूख को मिटाने, शरीर के लिए चीथड़ों से अधिक भी कुछ हासिल करना, क्योंकि जर्मन एक ऐसी क़ौम हैं कि जब उनके सामने कोई लक्ष्य हो तो फिर वे समय बरबाद नहीं किया करते। इसलिए उन्होंने यह आर्थिक चमत्कार अच्छी तरह और आश्चर्यजनक रूप से बहुत कम समय में कर दिखाया।

आवश्यक है कि मैं उस देश की पृष्ठभूमि, जिससे मेरा सम्बन्ध है, बयान कर दूँ। बहुत-से लोग पारंपरिक क़िस्म के भोग-विलासपूर्ण जीवन पर सन्तुष्ट हैं और मैं जानती हूँ कि मेरा परिवार इस जीवन पर बिल्कुल सन्तुष्ट है। ऐसे लोग बहुत कम हैं जो ईसाई अक़ीदों में दिमाग़ी शान्ति पाते हैं, लेकिन बहुत से ऐसे भी हैं जैसे कि मैं ख़ुद भी जो केवल अपने को यह यक़ीन दिलाते हैं कि वह ऐसे समाज में सुखी और सन्तुष्ट हैं। अतः जब वे नाच-रंग, प्रेम-क्रीड़ा और मद्यपान से भरपूर एक रंगीन रात गुज़ारने के बाद जागते हैं तो उनके दिलों में एक ऐसा शून्य होता है जो बहरहाल अगली रात में पहले से ज़्यादा नाच-रंग और प्रेम-प्रसंग और शराब पीने से पूरा नहीं हो सकता। मुझे मालूम था कि ज़िन्दगी को सुख के इस ढंग से निकाल कर मैं किसी के साथ कोई अत्याचार नहीं कर रही, लेकिन फिर भी मेरी आत्मा सन्तुष्ट न थी। मालूम नहीं कि किस प्रकार, मगर मुझे यह एहसास था कि अपने जीवन को केवल मेरी आत्मा और मानवतापूर्ण समाज के सिद्धान्त पर्याप्त मार्गदर्शन नहीं दे सकते। दैनिक जीवन की सारी ख़ुशियाँ, जैसे एक सुन्दर चमकीला दिन, सुखद अवकाश, स्वादिष्ट खाने, किसी साफ़-सुथरी नीली झील में आनन्ददायक स्नान, किसी प्रेमी का मुहब्बत भरा पत्र, जिनके लिए मैं काम करूँ उनकी ओर से प्रशंसा और शाबाशी हासिल करने के बाद भी मुझे कोई सच्ची ख़ुशी नहीं मिलती थी। जब तक कि मैं किसी की भलाई न कर लेती या कम से कम उस ख़ुदा का शुक्र न

अदा कर लेती जिसकी कृपा से मुझे सब कुछ मिल रहा था। मुझे डायरी लिखने की आदत थी। अत: एक दिन मैंने बेख़्याली में यह लिख दिया :

''आज तो बड़ा ही सुन्दर और शादाब दिन था। ऐ मेरे ख़ुदा तेरा बहुत-बहुत शुक्रिया।'' यह पंक्ति पढ़कर मैं बहुत हैरान हुई और शर्मिन्दा भी। लेकिन मेरी आत्मा ने आवाज़ दी कि परेशान क्यों होती हो, ख़ुदा तो तुम्हारे वुजूद में हर समय मौजूद है। यह अलग बात है कि तुम उसे पहचानने की कोशिश नहीं करतीं। इसके साथ ही मेरे दिल से यह आवाज़ भी उभरी कि ख़ुदा को तो जीवन्त सत्ता होना चाहिए, सुनने और देखने वाला होना चाहिए। वह ख़ुदा कैसा जो केवल प्राकृतिक क़ानून से सम्बन्ध रखे और सृष्टि के मामले से कोई सम्बन्ध न रखे।

ईसाईयत से मायूसी : उस समय मेरे सामने जो रास्ता था वह केवल ईसाईयत का था। मैंने एक पादरी से सबक़ लिए, किताबें पढ़ीं और चर्च की इबादतों में भाग लिया। लेकिन मैं ख़ुदा से क़रीब न हो सकी। मेरे पादरी ने मुझे राय दी कि मैं ईसाईयत की राह पर आगे बढ़ूँ, गुनाह को स्वीकार करूँ और 'होली कम्यूनियन' की रस्म अदा करूँ। जब मैं इस तरीक़े पर चलूँगी तो अवश्य ख़ुदा की ओर जाने वाला रास्ता पा लूँगी। मैंने उसकी सलाह पर अमल किया, लेकिन मन की शान्ति से फिर भी वंचित रही। सच यह है कि बेटे और रूहुल-क़ुदुस (पवित्रात्मा) से गुज़रकर ख़ुदा तक जाने वाला रास्ता बहुत ही लम्बा था और प्रथम पाप का बोझ असहनीय था।

मैं समझती हूँ कि जिस चीज़ ने मुझे सबसे अधिक निराश किया था वह यह कि हमें अपनी सोसाइटी में रहने के लिए अपने अक़ीदों से क़दम-क़दम पर समझौता करना पड़ता था। चर्च अपने अधिकारों को बाक़ी रखने की ख़ातिर और समाज में अपने अस्तित्व को बचाने के लिए स्वयं ही समझौता करने के लिए हरदम तैयार रहता है। केवल एक उदाहरण काफ़ी होगा। चर्च कहता है कि ख़ुदा के नाम पर बाक़ायदा निकाह के बाद ही यौन सम्बन्ध स्थापित किए जाने चाहिएँ, लेकिन आज पश्चिम में स्थिति यह है कि शायद ही कोई पुरुष और केवल कुछ औरतें ही इस सिद्धान्त को मानती हैं। लेकिन इसके बावजूद भी पादरी बस एक या दो दुआएँ पढ़कर गुनाह को स्वीकार करने वाले व्यक्ति को माफ़ी का यक़ीन दिला देता है। मैं किसी चर्च को

स्वीकार करने के लिए किसी रूप में भी तैयार नहीं हो सकती, जो इतने महत्वपूर्ण मामलों तक में समझौते के लिए तैयार हों। मैं अपने जीवन के मार्गदर्शन के लिए किसी ऐसी हिदायत की तलाश में थी, जो वास्तव में हर दृष्टि से पूर्ण हो। इन भ्रमों के कारण मेरी कैफ़ियत यह थी कि जब मैं चर्च में घुटने टेक कर पूजा कर रही होती, तब भी अपने आपको सचमुच ख़ुदा के क़रीब महसूस न करती थी।

ईसाईयत से हटकर दूसरे धर्मों से परिचय हासिल करने का मुझे कभी ख़्याल तक न आया, क्योंकि ईसाईयत का धार्मिक टोला इन धर्मों को इस प्रकार बदनाम करता कि लोग उनके अनुयायियों को 'बदक़िस्मत काफ़िर' समझते हैं और भला इस उच्च विचार सोसाइटी में कौन यह चाहेगा कि पिछड़े और बदक़िस्मत लोगों की सोसाइटी से सम्बन्ध बनाए।

इस्लाम से पहला परिचय : मैं 23 वर्ष की थी जब पहली बार उस व्यक्ति (डॉ० उमर अब्दुल अज़ीज़) से मिली, जिसे दो वर्ष बाद मेरा पति बनना था। वह देखने में अन्य जर्मनवासियों की तरह था और जब उसने मुझे यह बताया कि उसने सात वर्ष पूर्व इस्लाम क़बूल किया है तो मैं बहुत आश्चर्य में पड़ गई। मैं यह जानने के लिए बेताब थी कि एक शिक्षित जिसने पी० एच० डी० कर लिया था, यह फ़ैसला क्यों किया?

उसने मुझे बताया कि अल्लाह केवल मुसलमान का 'ख़ुदा' नहीं, बल्कि ख़ुदा के लिए अरबी भाषा का शब्द है। मुसलमान ख़ुदा के एक होने पर पूर्ण विश्वास रखते हैं। वे अपने पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की इस प्रकार पूजा नहीं करते जिस प्रकार ईसाई लोग हज़रत ईसा की करते हैं। इस्लाम का अर्थ यह है कि एक और केवल एक ख़ुदा—अल्लाह—का पूर्ण रूप से आज्ञापालन किया जाए। उसने मुझे बताया कि इस्लामी धार्मिक विश्वासों के अनुसार सभी इन्सान, पशु, पक्षी और संसार की हर वस्तु 'मुस्लिम' है, क्योंकि उन्हें हर हाल में ख़ुदा के क़ानून के मुताबिक़ ही चलना पड़ता है, वरना वह ख़ुद अपने आपको नष्ट कर लेगें। वह जानवर जो ख़ुदा के तय किए हुए तरीक़े के अनुसार खाना नहीं खाता है, अन्ततः मौत से दोचार होगा। वह फूल जो रात को अपनी पँखुड़ियाँ समेटने की प्राकृतिक इच्छा को पूरा नहीं करता, मुरझा जाएगा। उसने मुझको बताया कि केवल इन्सान ही है जिसे शारीरिक

मामलों में मजबूरन आज्ञाकारी होने के साथ–साथ उसे स्वतंत्रता और स्वाधीनता से भी पुरस्कृत किया गया है कि वह यह तय करके कि वह नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अपने जीवन का निर्माण एक 'मुस्लिम' की तरह करना चाहता है या नहीं ? अगर वह यह फ़ैसला करे और फिर उसके तक़ाज़ों को भी पूरा करे तो उसका ख़ुदा और ख़ुदा की सारी सृष्टि से समन्वय होगा। इस संसार में उसे दिमाग़ी सुकून हासिल होगा और बाद के आने वाले जीवन में रहमत और बरकत उसका सौभाग्य बनेगी। अगर वह ख़ुदा के क़ानून से बग़ावत की राह अपनाए, तो ख़ुदा के वे क़ानून जो बड़े ही सुन्दर ढंग से और बहुत–ही स्पष्टता से पवित्र क़ुरआन के द्वारा हमको बताए गए हैं तो इस जीवन में भी और बाद के जीवन में भी नाकामी उसके लिए निश्चित है।

मुझे यह भी पता चला कि इस्लाम कोई नया धर्म नहीं है, जो पहली बार चौदह सौ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आया है, बल्कि सच यह है कि क़ुरआन ख़ुदाई वह्य के उस सिलसिले की जिसमें तौरेत और इंजील विशेष महत्व रखती हैं, सबसे आख़िरी, सबसे सही और बिल्कुल अपरिवर्तित कड़ी है।इस प्रकार डॉ० उमर अब्दुल अज़ीज़ ने मेरे लिए एक नई दुनिया के द्वार खोल दिए। उनके मार्गदर्शन में मैंने इस्लाम के सम्बन्ध में वे किताबें पढ़नी शुरू कीं, जो जर्मन भाषा में मौजूद थीं और जो ईसाई दृष्टिकोण से नहीं लिखी गई थीं।मुहम्मद असद की पुस्तक 'A Road to Makkah' मेरे लिए बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई।

ईमान की दौलत : शादी के कुछ महीनों बाद जब मैंने 1960 ई० में इस्लाम क़बूल किया तो मैं रोज़े रख चुकी थी। अरबी में नमाज़ पढ़ना सीख चुकी थी, और मैंने पवित्र क़ुरआन का अध्ययन भी कर लिया था। यह सब मैंने इसलिए किया ताकि मुझे सन्तुष्टि हो सके कि मैं अपने इस्लामी कर्तव्यों को सही ढंग से अदा कर सकूँ। क़ुरआन की तत्वदर्शिता और विवेकपूर्ण बातों ने मेरे अन्दर श्रद्धा और प्रेम की भावनाएँ जगाईं। लेकिन सबसे बड़ा सुख मुझे नमाज़ के द्वारा ही प्राप्त हुआ। जब मैं महान ख़ुदा के समक्ष विनम्रतापूर्वक झुकती या खड़ी होती तो मुझे ख़ुदा के अपने साथ होने का इतना मज़बूत एहसास होता था कि हरगिज़ कोई शक नहीं गुज़रता था कि मैंने बिल्कुल सही और सच राह अपनाई है।

मैं और मेरे पति इस बारे में सहमत थे कि एक पश्चिमी देश में मुसलमान

की हैसियत से रहने में भाँति-भाँति के समझौतों के लिए विवश होना पड़ता है। इस्लाम पर ठीक ढंग से अमल केवल मुसलमान समाज में ही हो सकता है। इसलिए कि इस्लाम सामान्य अर्थों में धर्म नहीं, बल्कि जीवन व्यतीत करने के लिए एक पूरी जीवन-व्यवस्था है। चूँकि हम दोनों ने इस जीवन-शैली को स्वयं ही अपनाया था, इसलिए हम किसी अधूरे कच्चे-पक्के इस्लाम पर सन्तुष्ट होना न चाहते थे। अतः एक लम्बे समय तक तलाश के बाद अवसर मिला और हमारे पास यात्रा के लिए रक़म जमा हुई तो 1963 ई० में हम पाकिस्तान पलायन करके आ गए।

पाकिस्तान आकर ही मुझे यह मालूम हुआ कि अगर कोई वास्तव में अपने ईमान के मुताबिक़ जीवन व्यतीत करना चाहता हो तो एक नवमुस्लिम को किस प्रकार अपने पूरे जीवन में बिल्कुल बदलाव लाना पड़ता है।

मैंने पाँचों नमाज़ों को बाक़ायदा से पढ़ना आरम्भ कर दिया। मुझे यह मालूम हुआ कि नमाज़ कोई ऐसी चीज़ नहीं कि जब मुनासिब हो और आसानी हो तो पढ़ ली जाए, बल्कि ऐसा मामूल है जिसके गिर्द पूरे दिन का कार्यक्रम घूमता है। मैंने पर्दा आरम्भ कर दिया। यह सीखा कि जब मेरा पति अपने धार्मिक भाइयों के साथ जोशीली बातचीत में व्यस्त हो तो मैं चाय बनाऊँ और बग़ैर यह जाने हुए कि किसके लिए बनाई है, दरवाज़े पर पर्दे के पीछे से हवाले कर दूँ और इस पर ख़ुश और सन्तुष्ट रहूँ। मैंने पूरा समय घर पर बिताना शुरू कर दिया और बाज़ारों में क्रय-विक्रय की बजाए अंग्रेज़ी भाषा में इस्लाम के बारे में किताबें लिखना आरम्भ कीं। मैं रोज़ा रखती और इसकी आदी हो गई कि सख़्त भूख और प्यास के बावजूद भी बग़ैर चखे खाना पकाऊँ। हदीस और सुन्नत की किताबें पढ़कर मैंने अपने रसूल (सल्ल०) और उनके सहाबियों से मुहब्बत करना सीखा। वे मेरे लिए जीते-जागते इन्सानी किरदार थे। केवल सराहनीय ऐतिहासिक महान लोग नहीं। अपने जीवन में उन्होंने सदव्यवहार, बहादुरी, क़ुरबानी और परहेज़गारी के जो नमूने पेश किए उनकी हैसियत रौशनी के मीनारों की थी जिनकी रहनुमाई में ज़िन्दगी के सफ़र की दूरियां तय की जा सकती हैं। क्या किया जाए और क्या न किया जाए? इस विषय में सन्देह एक दम ख़त्म हो गए। अब मुझे केवल अपनी आत्मा पर भरोसा न करना था, जो पहले ही बुज़ुर्गों और विद्वानों में एक सन्देहपूर्ण मार्गदर्शक है।

अब मुझे बिल्कुल स्पष्ट रूप से मालूम था कि अच्छा बनने के लिए और इस संसार में सन्तुष्ट रहने के लिए अपने जीवन को किस राह पर चलाना चाहिए। और इस संसार का व्यवहार ही वह आधार है जिस पर यह सुनिश्चित होगा कि बाद के जीवन में हमारा क्या अंजाम होता है।

आपत्ति करने वालों से दो बातें : इस्लाम के विरोधी क़ुरआन के आदेशों के विरोध में जो कुछ भी कहते हैं, वे इसलिए कहते हैं कि वे कभी द्वेष से ख़ाली होकर किसी समाज में रहे ही नहीं। उनका द्वेष उनको इन फ़ायदों का आंकलन ही नहीं करने देता जो मुसलमानों को हराम और हलाल के स्पष्ट और अच्छाई–बुराई की ख़ुदाई धारणाओं के ज्ञान से प्राप्त हैं। अगर वे यह कहते हैं कि एक आदमी का एक से अधिक विवाह करना बुरा काम है तो वे ज़रा यह तो बताएँ कि जब कोई पति अपनी पत्नी के अतिरिक्त छुपाकर रखैल रखे और यह एक ऐसा काम है जो इस्लामी देशों के बहुपत्नितव के मुक़ाबले में पश्चिमी देशों में कहीं ज़्यादा प्रचलित है, तो यह सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए किस प्रकार लाभदायक होता है ? वे यह कहते हैं कि शराब पीने में कोई नुक़सान नहीं, तो शराब पीने की आदत ने पश्चिम में जो तबाही फैलाई है उसकी वजह तो बताएँ ? वे कहते हैं कि रोज़े किसी क़ौम की शक्ति और स्वास्थ्य को कमज़ोर कर देते हैं, तो उन्हें चाहिए कि बाहौसला मुसलमानों के उन कारनामों पर नज़र डालें जो रमज़ान के पवित्र वातावरण में उन्होंने अंजाम दिए और उन याद्दाश्तों का अध्ययन करें जो मौजूदा मुसलमान डॉक्टरों ने अपने रोज़ेदार मरीज़ों के बारे में अपने अनुभवों और प्रयोगों के बाद लिखे हैं। अगर वे यह कहते हैं कि यौन–स्वच्छन्दता और आज़ादी ज़रूरी चीज़ है, तो ज़रा किसी मुस्लिम देश के युवकों की किसी पश्चिम देश के युवकों से तुलना करें। मुसलमानों में निकाह से पूर्व किसी लड़के और लड़की में यौन–सम्बन्ध का होना दुर्लभ चीज़ है और पश्चिमी देशों में ऐसी शादी जिसमें लड़का और लड़की उस समय तक यौन–सम्बन्धों से बचे रहें इससे भी दुर्लभ चीज़ है। अगर उनकी राय यह है कि पाँच वक़्त की नमाज़ और वह भी ऐसी जिसको मुसलमानों की बड़ी संख्या समझती ही नहीं, समय और ताक़त की बरबादी है, तो वे पश्चिम में किसी ऐसी रीति या तरीक़े का पता बताएँ जो मुसलमानों की इस नमाज़ से अधिक लोगों को मज़बूती से एक जुट करने वाला हो और शरीर और आत्मा दोनों के लिए लाभदायक हो। वे यही सिद्ध कर दें कि पश्चिमी

लोग अपने ख़ाली समय में इससे अधिक फ़ायदे वाला काम करते हैं जो एक मुसलमान करता है, जबकि वह दिन भर में एक घण्टा अपनी नमाज़ के लिए निकालता है।

अगर हर मुसलमान अच्छा मुसलमान न भी हो तो ऐसे बहुत–से पुरुष और महिलाएँ मिल जाएँगी जो बहुत बेहतर ढंग की इस्लामी ज़िन्दगी गुज़ारने का हर सम्भव प्रयास करती हैं। वह व्यक्ति जो गहराई में जाकर मानव–जीवन की इन ख़ामोश तहों में इन अच्छे आदमियों को तलाश करने का कष्ट ही न करे, बल्कि जीवन की सतह पर पाई जाने वाली इन रंग–बिरंगी लहरों को देखकर फ़ैसला कर दे, वह इस्लाम के साथ एक बहुत बड़ी नाइन्साफ़ी कर रहा है। कुछ सौ साल पहले भी इस्लाम अच्छा था और आज यह उतना ही अच्छा है। अगर उसको ख़राब करने वाली मिलावटों से अलग करके अपनाया जाए तो कोई भी अक़ीदा और कोई भी जीवन व्यवस्था इस्लाम से बेहतर नहीं। बहुतों को इसका आज भी एहसास है और अल्लाह ने चाहा तो वे सुव्यवस्थित होकर इस बिलकती, कराहती असन्तुष्ट और परेशानियों में फँसी दुनिया को भी यह बतला देंगे कि इस्लाम आज भी सारे भौतिक और आध्यात्मिक कष्टों एवं दुखों का एकमात्र इलाज है।

मुझे इन सब बातों का एहसास पाकिस्तान आकर हुआ। इन अनुभवों ने मुझे मालामाल कर दिया, सुखी बना दिया, सन्तोष और सन्तुष्टि की दौलत प्रदान की, आशाओं से मेरे दामन को भर दिया। मुझे एक क्षण के लिए भी कभी इन चीज़ों का ख़्याल न आया जो मैं जर्मनी में छोड़कर आई थी। अच्छे वेतन पर मेरी सेक्रेटरी की हैसियत से नौकरी, अपनी कार, अवकाश, बाहर का सैर–सपाटा, रेडियो, टीवी और फ़र्नीचर से सुसज्जित हमारा फ़्लैट किसी चीज़ का भी अफ़सोस नहीं। मुझे यह महसूस होता है कि अगर जर्मनी में अपने ख़ानदान के साथ मुझे बात करने का अवसर मिला तो मेरी समझ में नहीं आएगा कि मैं उनसे क्या बात करूँ? जबकि अपने धर्म–भाइयों और बहनों का साथ मुझे नया जज़्बा प्रदान करता है। मुझे मुहब्बत का एहसास देता है। मुझे बिल्कुल घर का–सा अपनत्व महसूस होता है। इसलिए कि मैं जानती हूँ कि अब मैं उन्हीं में से एक हूँ।

□□□

55. मैडम फ़ातिमा मिक डेविडसन

(Madame Fatima Mik Davidson)

(त्रिनिदाद)

कुछ वर्ष पूर्व तक मैडम फ़ातिमा मिक डेविडसन गणराज्य त्रिनिदाद टोबेगो में सामाजिक विकास और स्थानीय हुकूमत की मंत्री थीं। उन्होंने 1975 ई० में ईसाईयत त्याग कर इस्लाम क़बूल किया। उनका पुराना नाम मिसेज़ मॉडल डोना फ़ामिक डेविडसन था। क़ाहिरा के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'मिमबरुल–इस्लाम' को इंटरव्यू देते हुए उन्होंने अपने इस्लाम क़बूल करने के कारण बयान किए। इस इंटरव्यू का अंग्रेज़ी अनुवाद कराची के 'यक़ीन इण्टर नेशनल' (22 जनवरी, 1984 ई०) के अंक में प्रकाशित हुआ। जिसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है :

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

कहने को तो मैंने 1975 ई० में ईसाईयत को छोड़कर इस्लाम स्वीकार कर लिया, लेकिन सही बात यह है कि मैं बहुत समय पहले इस्लाम के क़रीब आ गई थी। किन्तु यह स्पष्ट करने में असमर्थ हूँ कि ऐसा किस प्रकार हो गया था।

मुझे ख़ूब याद है कि 9 मार्च, 1950 ई० की तारीख़ थी। घर में यह फ़ैसला हो गया था कि मैं आजीवन राहिबा (Nun) की हैसियत से एक मठ (ख़ानक़ाह) में दाख़िल हो जाऊँगी। लेकिन जब मैं उस सुबह को जगी तो रहस्यपूर्ण ढंग से मेरे कानों में यह आवाज़ गूँजने लगी "अल्लाहु अकबर" और उसने मेरी आत्मा को पूरे तौर पर हिलाकर रख दिया। मैंने मसीही मठ में प्रवेश से साफ़ इनकार कर दिया।

उसके बाद मैं लगातार हक़ की खोज में चक्कर लगाती रही, यहाँ तक कि सौभाग्य से मेरी मुलाक़ात पाकिस्तान से सम्बन्ध रखने वाले आलिमे दीन मौलाना सिद्दीक़ साहब से हो गई और इसी सन्दर्भ से मेरा परिचय एक भारतीय आलिम शैख़ अन्सारी साहब से भी हो गया। मैंने उन दोनों से सम्पर्क कर

लिया। उनसे बराबर बातचीत होती रही। विशेष रूप से प्रकृति के बारे में मेरे दिमाग़ में जो ख़्याल थे उन पर विस्तार से बातें हुईं, यहाँ तक कि दोनों विद्वानों ने एक दिन फ़ैसला कर दिया, ''अल्लाह का शुक्र है आपके विचार पूर्णतः इस्लामी शिक्षाओं के मुताबिक़ हैं और हमारी राय में आप मुसलमान हैं। अपने आपको मुसलमान समझिए और मस्जिद में जाकर नमाज़ पढ़िए। हम आपको मुसलमान समझते हैं और जब आपका जी चाहे हम आपसे बातचीत करने में ख़ुशी महसूस करेंगे।''

इस प्रकार मेरे जीवन का एक नया दरवाज़ा खुल गया। मैंने इस एहसास से बेहद ख़ुशी महसूस की कि मेरे विचार इस्लाम के बिल्कुल मुताबिक़ हैं और इस पर मुझे सुखद आश्चर्य हुआ कि इस्लाम इन्सानी प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल है। उस दिन के बाद अलहम्दुलिल्लाह (अल्लाह का शुक्र है) मेरा सीना ईमान की रौशनी से चमक उठा और इस्लामी सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के लिए तो मेरे दिल में बेपनाह मुहब्बत और श्रद्धा बैठ गई। मैं कह सकती हूँ कि यद्यपि औपचारिक रूप से मेरे इस्लाम क़बूल करने की तारीख़ 1975 ई० का कोई दिन है, लेकिन मानसिक रूप से मैं 1950 ई० से मुसलमान हूँ अर्थात् उस दिन से जब मैंने सर्वप्रथम अल्लाह की बड़ाई की रहस्यमय और मुबारक आवाज़ सुनी थी ''अल्लाहु अकबर, अल्लाहु अकबर'' और जब मैंने ईसाई धर्म स्थल पर जाने से इनकार कर दिया था।

त्रिनिदाद में गोरे लोगों के ख़ानदान की मैं पहली लड़की थी, जिसने इस्लाम क़बूल किया और इबादत के लिए मस्जिद में दाख़िल हुई और उसके बाद अल्लाह का शुक्र है रास्ता खुल गया और अनगिनत शिक्षित नौजवान लड़कियाँ इस्लाम की छाया में आ गईं और ये नवमुस्लिम महिलाएँ नमाज़ के लिए बड़ी तादाद में मस्जिद में जाने लगीं। विशेष रूप से त्रिनिदाद के शहर फ्रांस की मस्जिद जामे-सन्ताल में तो इबादत करने वाली महिलाओं की भीड़ लग जाती थी। यह मस्जिद डॉक्टर शैख़ अन्सारी ने बनवाई थी। अब इसके चेयरमैन शफ़ीक़ मुहम्मद हैं।

इससे पहले त्रिनिदाद के लोग इस्लाम के बारे में यह समझते थे कि यह धर्म भारतीयों का है, जो कई प्रकार के क़िस्मों में बँटा हुआ है। वह इस्लाम के मुक़ाबले में क़ादियानियत को कहीं अधिक महत्व देते थे और त्रिनिदाद में

क़ादियानियों का प्रचार बड़े सुव्यवस्थित ढंग से हो रहा था।

यह अल्लाह का विशेष उपकार है कि मेरे इस्लाम क़बूल करने के बाद अफ़्रीक़ी नस्ल के असंख्य लोगों ने इस्लाम क़बूल किया, यहाँ तक कि शीघ्र ही इस राज्य में मुसलमानों की संख्या तेरह प्रतिशत तक जा पहुँची। जबकि कैथोलिक 31 प्रतिशत, प्रोटेस्टेंट 27 प्रतिशत और हिन्दू 6 प्रतिशत हैं, बाक़ी लोग नास्तिक हैं।

इस्लाम अपने अनुयायियों से विभिन्न कर्तव्यों में शुद्धता और उस पर आचरण करने की माँग करता है और अल्लाह का शुक्र है कि मैं ईमान के तक़ाज़ों को पूरी गम्भीरता से पूरा करने का प्रयास करती हूँ। अतः चाहे सरकारी मामलात हों या व्यक्तिगत स्तर की कोई बात, मैं किसी हालत में झूठ नहीं बोलती। इसी प्रकार मैं भरपूर कोशिश करती हूँ कि सरकारी या निजी स्तर पर कोई काम इस्लामी शिक्षाओं के ख़िलाफ़ न होने पाए।

जहाँ तक मेरे सरकारी और राजनीतिक कर्तव्यों का सम्बन्ध है, हर जगह अल्लाह की कृपा मेरे साथ है और मेरी कारकर्दगी का स्तर बहुत ही ऊँचा है। नतीजा यह है कि मेरे भूतपूर्व प्रधान मंत्री ने मुझसे स्वयं कहा कि मिस्र का एक चक्कर लगा आओ। वह देश इस्लामी सभ्यता का एक महत्वपूर्ण केन्द्र है। वहाँ अज़हर विश्वविद्यालय से भी फ़ायदा हासिल कर लेना। अतः मैंने इस पेशकश से फ़ायदा उठाया और मिस्र के विभिन्न ज्ञान केन्द्रों और धार्मिक संस्थाओं का निरीक्षण करके अपनी जानकारी में इज़ाफ़ा किया।

मैंने कई बार पार्लियामेंट के चुनाव में भाग लिया है और मुसलमान होने के बावजूद हर बार कामयाब हुई हूँ। मैंने एक शिक्षा और संस्कृति के मंत्री की हैसियत से भी सेवा की है और हर क्षेत्र में कामयाबी ने मेरा स्वागत किया है। विशेषकर त्रिनिदाद के प्रधान मंत्रियों ने और मेरे साथियों ने भेदभाव मुक्त और असीम उदारता के साथ मेरा साथ दिया है। अन्दाज़ा कीजिए कि अन्य राष्ट्रीय दिवसों के साथ-साथ हमारे देश में ईदुलफ़ित्र और ईदुलअज़हा पर बाक़ायदा और सरकारी तौर पर अवकाश होता है और रमज़ाने-मुबारक में मुसलामनों को घरों और मस्जिदों में हर प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध कराई जाती हैं, ताकि वे रोज़े के कर्तव्य को ठीक ढंग से पूरा कर सकें।

अन्त में मैं सभी इस्लामी देशों के हुकमरानों से अपील करती हूँ कि वे

अपने आपको एकता की मज़बूत लड़ी में पिरो लें। बनावटी प्रतिबन्धों को हटा दें और इस्लाम जैसे महान धर्म के झण्डे तले भाई-भाई बनकर रहें। मैं उन्हें याद दिलाती हूँ कि इस्लाम ने बराबरी और भाईचारे का सबक़ दिया है और हमारे सारे मामले और सम्बन्ध इसी के आधीन स्थापित होने चाहिएँ। इस सन्दर्भ से यह अफ़सोसनाक दृश्य बड़ा कष्टदायक है कि कुछ इस्लामी राज्य आपस में झगड़ते दिखाई देते हैं। आख़िर यह मतभेद क्यों? इस्लाम के स्थाई और शाश्वत सन्देश की रौशनी में आपसी मुहब्बत, क्षमा और त्याग से काम लेकर समाप्त नहीं कर दिए जाते।

अल्लाह ने अपनी कृपा से मुझे इस्लाम की रौशनी प्रदान की और उसी से प्रार्थना करती हूँ कि वह अपनी विशेष कृपा से मुसलमानों को भाई-भाई बना दे, उनके टकराव ख़त्म हो जाएँ, उनके देश अमन और शान्ति के केन्द्र बन जाएँ, जो क़ुरआन के शब्दों में ऐसी बेहतरीन क़ौम है जो मानव-जाति की भलाई के लिए पैदा की गई है, जो नेकी का हुक्म देती है और बुराई से रोकती है।

(**नोट :** त्रिनिदाद और टोबेगो दक्षिण अमेरिका के उत्तर में अटलांटिक महासागर में दो टापू हैं।)

□ □ □

56. फ्रांसिस सिट्रीन

(Frances Citrine)

(हॉलैण्ड)

प्रस्तुत आध्यात्मिक यात्रा एक ऐसी नौजवान यूरोपीय महिला की है, जिसने अपनी कहानी में न तो अपने देश का उल्लेख किया है, न अपने इस्लामी नाम को स्पष्ट किया है और न अपने परिवार और माता-पिता का ब्योरा दिया है—लेकिन लेखक का अनुमान है कि महोदया का सम्बन्ध हॉलैण्ड से है। वास्तव में जैसा कि प्रसिद्ध लेखक और साहित्यकार स्वर्गीय क़ुदरतुल्लाह शहाब ने लिखा है (श्रीमान कई वर्षों तक हॉलैण्ड में पाकिस्तान के राजदूत की हैसियत से रहे हैं) कि हॉलैण्ड में इस्लाम के ख़िलाफ़ भेदभाव का यह हाल है कि जब बच्चा पैदा होता है तो माता-पिता पंजीकरण पुस्तिका में उसके धर्म का ख़ाना ख़ाली छोड़ देते हैं और लिख देते हैं कि बड़ा होकर यह जिस धर्म को पसन्द करेगा अपना लेगा, सिवाय इस्लाम के। अत: शहाब साहब के उल्लेख के अनुसार हॉलैण्ड में कितने ही लोग थे जो इस्लाम क़बूल कर चुके थे, लेकिन इस भय से कि उन्हें नौकरी से हटा दिया जाएगा, वह इस्लाम को स्वीकार करने का मामला किसी पर व्यक्त नहीं करते थे। अब मोहतरमा की प्राणवर्धक और ईमान को बढ़ाने वाली कहानी सुनिए :

▪▪▪▪▪

यूरोप में कितने ही ऐसे लोग हैं जो इस वजह से मुसलमान हो गए कि उन्होंने किसी इस्लामी देश का सफ़र किया और मुसलमानों की सच्चाई, उनके प्रेम और सादगी की अनुभूति की और फिर यूरोपीय समाज की भौतिकता, भव्य मगर सच्चाई और प्रेम रहित जीवन से उसकी तुलना की तो वे मुसलमान हो गए, लेकिन जहां तक मेरा सम्बन्ध है, मैंने न तो किसी इस्लामी देश की यात्रा की और न इस्लाम क़बूल करने तक किसी मुसलमान से मेरा परिचय हुआ। यह मेरा व्यक्तिगत अध्ययन है जिसके सहारे मैंने आत्मा की दुनिया का सफ़र किया। उसके विभिन्न चरणों को तय किया यहाँ तक कि उसके आख़िरी

सिरे पर सीधी इस्लाम के आँगन में दाख़िल हो गई।

मैं एक रोमन कैथोलिक परिवार में पैदा हुई और उसी माहौल में पली-बढ़ी। मेरी शिक्षा भी एक कॉन्वेंट स्कूल में हुई। लेकिन स्कूल की शिक्षा पूरी होने तक मैं ईसाईयत के मौलिक धार्मिक सिद्धान्त और अवधारणाओं के बारे में सन्देह और भ्रम में घिर चुकी थी, अर्थात् त्रिवाद, हज़रत मसीह की प्राथमिकता, जन्म से गुनाहगार होने की धारणा और कफ़्फ़ारे का अक़ीदा मेरी विकासशील बुद्धि को अपील न कर सका था और न केवल ये अवधारणाएँ बुद्धि के विरुद्ध थीं और बाइबल से उनके पक्ष में कोई सबूत नहीं मिलते थे, बल्कि अपने परिणाम की दृष्टि से यह हानिकारक भी थीं। फिर प्रायः मैं यह भी सोचती थी कि ख़ुदा अगर मौजूद है और वह नेकी और सच्चाई का उद्गम है, तो फिर यह कैसे सम्भव है कि उसने केवल एक ही वर्ग को हक़ और सच्चाई प्रदान कर दी और बाक़ी पूरी मानव-जाति को ग़लती और गुमराही के अंधेरों में झोंक दिया। यह काम तो न्यायपूर्ण नहीं है। अतः इसी हवाले से मेरे मन में दो सम्भावनाएँ लहराने लगतीं या तो सारे धर्म अपने उद्गम एवं मूल की दृष्टि से सच्चे हैं या तो सभी आधारहीन और असत्य हैं।

यह बात तो स्पष्ट है कि सभी धर्म इस यक़ीन का एलान करते हैं कि केवल शरीर मृत होता है, जबकि आत्मा ज़िन्दा और बाक़ी रहती है और आत्मा की ज़िन्दगी के समर्थक उसके सुबूत पेश करने का दावा करते हैं। इसलिए मैंने इन दावों का अध्ययन आरम्भ कर दिया। अन्य विभिन्न शोधकर्ताओं ने भी इस हवाले से अपने अनुभवों को बयान किया है और इस हवाले से अय्यारी और मक्कारी की भी मिसालें मौजूद हैं। मगर प्रसिद्ध वैज्ञानिक सीवररॉज ने तो अपनी सारी योग्यताएँ इस विषय को समर्पित कर दी हैं। इसलिए मैंने उनकी उपलब्धियों को विशेष ध्यान से पढ़ा और वाक़ई मान गई कि शारीरिक मृत्यु के बाद आत्मा जीवित रहती है।

आत्मा के बारे में सन्तुष्ट होने के बाद मैंने पूर्वी धर्मों का अध्ययन आरम्भ कर दिया, चूँकि यूरोप में हिन्दू वेदान्त और योग का परिचय आम था, इसी कारण मैंने भी आरम्भ इसी से किया और हिन्दू वेदान्त और धर्म के बारे में अध्ययन करने लगी और शीघ्र ही उपनिषद, योग, पातंजलि के नियम और सबसे बढ़कर भगवद् गीता से मैंने विशेष आत्मिक शान्ति और सन्तुष्टि प्राप्त

की। अतः अगले कई वर्षों तक मैं इसी वातावरण में खोई रही। हिन्दू दर्शन का अध्ययन करती और दिन का एक भाग ध्यान में लगा देती। मैं मानती हूँ कि यद्यपि हिन्दू धर्म ज़ात–पात की कठोर जकड़बन्दियों का मिश्रण है, उसमें असंख्य अंधविश्वास भी हैं और मूर्ति पूजा भी, लेकिन मैंने महसूस किया कि कम से कम वैचारिक दृष्टिकोण से बहुत दूर जाकर इस धर्म में आध्यात्मिक शान्ति और संतुष्टि की गुंजाइश बहरहाल मौजूद है।

किन्तु दर्शन और विचारधारा चाहे कितना ही अच्छी और पवित्र क्यों न हो, वह अमल (कर्म) का बदल नहीं हो सकती, इसलिए मैं अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँची कि वेदांत दर्शन एक मनुष्य के दैनिक जीवन में व्यावहारिक मार्गदर्शन का साधन नहीं बन सकता। विशेष रूप से जब मेरा विवाह हो गया और नन्हे बच्चों ने मेरे काम बढ़ा दिए तो वह अवकाश और एकान्त समाप्त हो गया, जो ध्यान के लिए आवश्यक था। यूँ भी इतने वर्षों के कठोर अभ्यास के बाद मेरा मन इस स्थिति पर सन्तुष्ट न था और मैं केवल भावना और आस्था के सहारे आख़िर कब तक इससे चिमटी रहती। तंग आकर मैंने वेदान्त और योग को त्याग दिया और बौद्ध मत का अध्ययन करने का निश्चय किया।

हिन्दू मत के विपरीत बुद्धिज़्म एक अन्तर्राष्ट्रीय धार्मिक विचारधारा है और यूरोप में इसके लिए हमदर्दी पाई जाती है। अतः मैंने बुद्धमत के बारे में ज़रूरी किताबें ख़रीदीं। उसकी मौलिक शिक्षाओं के बारे में लिट्रेचर हासिल किया और देखा कि इस दर्शन में भी बड़ी पेचीदगियाँ हैं, मानसिक उलझनें हैं और उपासना का मशीनी अन्दाज़ है। लेकिन मैंने महसूस किया कि अगर सादा क़िस्म का बौद्ध मत अपना लिया जाए और कभी–कभी ध्यान कर लिया जाए तो भी एक गरिमापूर्ण धार्मिक जीवन व्यतीत किया जा सकता है। लेकिन मुश्किल यह थी कि ईसाईयत की तरह बौद्ध मत में भी आध्यात्मिक विकास केवल मठ की व्यवस्था और अवैवाहिक जीवन के साथ जुड़ा था और पूर्ण रूपेण सामाजिक जीवन व्यतीत करते हुए कोई व्यक्ति भी, चाहे वह कितना ही पवित्र और बाअमल क्यों न हो उसके मुक़ाबले में कोई हैसियत नहीं रखता। अतः यह दृश्य मेरी समझ से बाहर था कि यद्यपि मठ में रहकर धार्मिक जीवन के तक़ाज़ों को पूरा करना कुछ आसान है लेकिन यह उस आध्यात्मिक पवित्रता से बेहतर और अधिक मूल्यवान कैसे हो सकता है जो

एक व्यस्त और भरपूर सामाजिक जीवन की समस्याओं में रहते हुए प्राप्त की जा सकती है, जबकि यह हक़ीक़त भी अपनी जगह मौजूद है कि ब्रह्मचर्य और मठ के मिज़ाज से मानव जीवन और समाज को नस्लों के सन्दर्भ से अपूर्णीय क्षति पहुँचती है। और व्यावहारिक दृष्टि से उसकी अपेक्षाओं को पूरा करना प्रकृति और मानव–स्वभाव के बिल्कुल ख़िलाफ़ है।

बुद्धमत से खिन्न होकर मैंने धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन का इरादा किया। इस सम्बन्ध में सबसे पहले विभिन्न धर्मों के दर्शनों का अध्ययन शुरू किया और विशेष रूप से Duysbroeck Eckhart, जलालुद्दीन रूमी और ताओती चिंग से बहुत प्रभावित हुई। चूँकि मैं ध्यान से गहरा सम्बन्ध स्थापित कर चुकी थी, इसलिए इन सभी लोगों के विचारों और दृष्टिकोणों ने मुझे आध्यात्मिक दृष्टि से संतुष्टि और राहत प्रदान की और इन लोगों के अनुभवों ने मेरे चिंतन को बड़ी व्यापकता प्रदान की।

उपर्युक्त महापुरुषों के अध्ययन ने मेरे इस विश्वास को ज्योति प्रदान की कि संसार में जितने भी बड़े धर्म हैं, मूल रूप से उनका स्रोत एक है। चूँकि मैं उपर्युक्त लोगों में सबसे अधिक जलालुद्दीन रूमी से प्रभावित थी और रूमी की मसनवी मुझे नैतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ऊँचाइयों पर नज़र आ रही थी, इसलिए मैंने इरादा कर लिया कि इस व्यक्ति के धर्म की पूर्ण रूप से जानकारी हासिल कर लेनी चाहिए। यद्यपि यह कड़वी सच्चाई भी अपनी जगह बाक़ी थी कि यूरोप में इस्लाम का परिचय बहुत ही नकारात्मक, बल्कि भयावह रूप में कराया गया था और इसके बारे में अध्ययन को सोचते हुए मैं भय और भ्रम से दोचार थी कि यूरोप में जब भी इस्लाम की बात आती थी तो अरब के असभ्य क़बीलों और उनके भोग–विलासी शासक अपनी सभी दानवता और क्रूरता के साथ, मेरे विचार को भयानक बना देते थे।

लेकिन यह क्या........ ? इस्लाम के अध्ययन ने तो मुझे आश्चर्य चकित और मोहित कर दिया। मैं ईसाईयत के त्रिवाद और मूर्ति पूजा से बहुत खिन्न थी, जबकि इस्लाम के अद्वितीय और अनुपम एकेश्वरवाद की अवधारणा ने मुझे बेहद प्रभावित किया और ख़ुदा से इसकी घनिष्ट शुद्धता और सर्वांगीण सम्बन्ध मुझे बिल्कुल नई चीज़ मालूम हुई। यह भी मालूम हुआ कि इस्लाम ईसाइयत, हिन्दू मत और बौद्ध मत की तरह एक दर्शन नहीं, बल्कि अपने मानने

वालों को एक पूर्ण और व्यावहारिक जीवन व्यवस्था भी प्रदान करता है और यह जीवन व्यवस्था आश्चर्यजनक रूप से धार्मिक भावना को गहराई भी देती है और इसमें विकास और दृढ़ता भी लाती है। फिर यह देखकर और भी सुखद आश्चर्य हुआ कि इस्लाम की शिक्षाएँ बड़ी सरल हैं और वे ज़माने के हेर–फेर से पूरी तरह सुरक्षित रही हैं, अर्थात् अन्य धर्मों की तरह न इनमें कोई संशोधन और परिवर्तन हुआ है, न वह इतनी पेंचदार और मुश्किल बना दी गई हैं कि उन पर अमल न किया जा सके।

इस्लाम के इस पहलू ने भी मुझे बेहद प्रभावित किया कि यहाँ सभी पैग़म्बरों का एक समान आदर किया जाता है और किसी एक पैग़म्बर के ख़िलाफ़ मामूली–सी बदगुमानी असहनीय है। यह मेरे लिए एक सुखद सूचना थी कि ईसाईयत, यहूदियत दोनों इस ख़ूबी से वंचित हैं और दोनों न केवल जनाब हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के ख़िलाफ़ सख़्त नफ़रत और भेदभाव में फंसे हैं बल्कि बाइबल में विभिन्न पैग़म्बरों के चरित्र और हैसियत को बुरी तरह बिगाड़ दिया गया है। इस्लाम का दावा मुझे बहुत अच्छा लगा और प्रकृति के बिल्कुल क़रीब लगा कि सबसे महान सच्चाई एक ही है। सारे सन्देष्टा उसी की दावत देने वाले और प्रतिनिधि थे, तथा जनाब हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर यह सच्चाई पूर्ण कर दी गई।

फिर इस रहस्योद्घाटन से भी मुझे बड़ी ख़ुशी हुई कि इस्लाम की शिक्षाएँ अपने मूल की दृष्टि से यथार्थपरक और रचनात्मक भूमिका अदा करने वाली हैं और अन्य धर्मों की तरह ये शिक्षाएँ शरीर और आत्मा के बीच कोई टकराव नहीं पैदा करतीं, न आम मानव जीवन के हवाले से इसका झुकाव किसी अनुचित सुविधा पर आधारित है और सबसे बढ़कर यह कि इन शिक्षाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करके आध्यात्मिक दृष्टि से परिश्रम और प्रगति के अनगिनत अवसर प्राप्त हो सकते हैं और साफ़ नज़र आ रहा था कि जीवन अपने सभी पहलुओं और क्षेत्रों सहित इन अवसरों से फ़ायदा उठा सकता है और मनुष्य भरपूर सामाजिक जीवन व्यतीत करते हुए भी अपने ख़ुदा से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर सकता है और इस उद्देश्य के लिए न किसी विशिष्ट धार्मिक समुदाय की आवश्यकता है, न दुनिया को त्यागकर रस्मी क़िस्म के योग–ध्यान की।

इस्लाम का भरपूर और पूर्ण परिचय हासिल हो गया तो मैंने अन्दाज़ा किया कि वास्तव में मैं तो हमेशा ही से मुसलमान थी। विशेष रूप से उस समय से जब मैं इस नतीजे पर पहुँची थी कि सभी सन्देष्टा मानव-जाति के लिए एक ही पवित्र सन्देश लेकर आए थे। उनकी भाषा और शब्दावली भिन्न-भिन्न थी, लेकिन उनका केन्द्र और स्रोत एक ही था और यह सन्देश अन्त में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर पूरा हो गया और अपने सुरक्षित स्वरूप में ज्यों का त्यों आज भी विद्यमान है।

वर्तमान समय में, जबकि संचार के अत्यन्त तीव्र गति के साधनों के कारण दुनिया के फ़ासले सिमट गए हैं और विभिन्न जातियाँ और देश एक-दूसरे से बहुत ही क़रीब आ गए हैं, मुस्लिम संस्कृति और पश्चिमी संस्कृति भी आपस में एक-दूसरे को प्रभावित कर रही हैं। यह परिस्थिति निस्सन्देह लाभप्रद साबित हो सकती है। शर्त यह है कि अमल का अन्दाज़ सही दिशा में हो। लेकिन दुर्भाग्य से देखने में आया है कि मुसलमानों की युवा पीढ़ी यूरोपीय संस्कृति से इतना अधिक प्रभावित और उसकी आसक्त है कि वह इसका अनुसरण और सराहना का कोई अवसर नहीं खोती। यहाँ तक कि कभी-कभी अनीश्वरवादी संस्कृति के लिए इस्लामी शिक्षाओं तक को पीछे डाल देती है।

स्पष्टीकरण के लिए बता दूँ कि मैं उन लोगों में से नहीं हूँ जो यूरोपीय संस्कृति को पूर्णतः ख़राब कहते हैं। इस संस्कृति के निस्सन्देह रौशन पहलू भी हैं। वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा को अत्याधिक उन्नति मिली है। चिकित्सा, सामाजिक सेवाएँ और शिक्षा के हवाले से बहुत काम हुआ और मानवाधिकार की पहचान बनी है। लेकिन इस संस्कृति का दूसरा पहलू अंधकारपूर्ण भी है। धार्मिक और नैतिक मूल्य आहत हुए हैं और धन-दौलत, मनोरंजन, भोग-विलास सामान्य जीवन के अनिवार्य अंग बन गए हैं। उच्च जीवन स्तर को प्राप्त करने या बनाए रखने की एक होड़ लगी हुई है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति सम्मिलित है। शर्म-हया और इस्मत का खुले आम मज़ाक़ उड़ाया जाता है। शराब और व्यभिचार इस संस्कृति की पहचान बन चुकी है और पारिवारिक जीवन बिखर कर रह गया है। अतः मेरी दृष्टि में वर्तमान परिस्थिति में मुसलमानों को अपना रोल अदा करने का एक सुनहरा मौक़ा मिल गया है। काश, वे अमल के मैदान (कर्मभूमि) में उतरें और नैतिक और सांस्कृतिक

दृष्टि से संसार का मार्गदर्शन करें। यह केवल उसी परिस्थिति में हो सकता है कि इस्लाम पर उनका ईमान पक्का हो। इस्लामी शिक्षाओं को दैनिक जीवन का अनिवार्य अंग बना लें और शैक्षिक उन्नति और परिश्रम को अपनी पहचान बनाएँ और सही इस्लामी परिदृश्य में आगे बढ़ने का प्रयत्न करें और सबसे बढ़कर यह कि यूरोपीय संस्कृति की मानसिक और व्यावहारिक दासता से बचते हुए उससे समझौते और मेल मिलाप का अन्दाज़ अपना लें। तत्वदर्शिता (हिकमत), सूझबूझ और समझौते से वातावरण में क्रान्तिकारी बदलाव आ सकता है और न केवल यूरोप में इस्लाम की रफ़्तार तेज़ हो सकती है, बल्कि संसार का भविष्य एक सुखद माहौल में ढल सकता है।

□ □ □

57. करीमा बर्निस
(Karima Buris)
(अमेरिका)

मैं स्पेन की सैर करने में व्यस्त थी और उस समय ग़रनाता के क़सरुल हमरा की मस्जिद में बैठी हुई दीवारों पर लिखी इबारतों (ख़त्ताती) को देखती ही जा रही थी। मेरी नज़रें इस अजनबी भाषा की केलीग्राफ़ी से हटती ही नहीं थीं। मैंने किसी भाषा का इतना सुन्दर लेखन देखा ही नहीं था। शब्द आँखों द्वारा मेरे दिल में उतरते जा रहे थे।

''भला ये किस भाषा के शब्द हैं ?'' मैंने एक गाइड से पूछा।

''अरबी के'', उसने जवाब दिया।

और दूसरे दिन जब ''टूर अटेंडेंट'' अर्थात् पर्यटन विभाग के सम्बंधित कर्मचारी ने मुझसे पूछा कि मैं किस भाषा की टूर बुक लेना चाहूँगी, तो मैंने जवाब दिया ''अरबी में।''

''अरबी में ?'' उसने आश्चर्य से पूछा : ''क्या तुम अरबी पढ़ना जानती हो ?''

''नहीं...... परन्तु अरबी मुझे पसन्द है। चलिए इसके साथ अंग्रेज़ी का लिट्रेचर भी दे दीजिए'', मैंने जवाब दिया।

और अब तो यह सूरत बनी कि मैं स्पेन में जहाँ भी गई मैंने वहाँ से पर्यटन से सम्बंधित अरबी किताबें अवश्य लीं। इसलिए मेरा बैग अरबी किताबों से इतना भर गया कि मुझे इसमें से अपने कुछ कपड़े निकालने पड़े। मुझे ये किताबें सोने–चाँदी से अधिक क़ीमती महसूस हो रही थीं। आश्चर्यजनक रूप से मैं हर रात सोने से पूर्व इन किताबों को बैग से निकालती और देर तक उनके शब्दों को देखती रहती। दिल में बेपनाह इच्छा पैदा होती कि काश, मैं इस लिपि को सीख लूँ और इसी ढंग से लिखने में सक्षम हो जाऊँ। प्राय: सोचती कि जिस भाषा की लिपि इतनी सुन्दर, आकर्षक और सम्मोहक है, उसका कल्चर कैसा होगा ? दृढ़ निश्चय कर लिया कि कॉलेज में प्रवेश लिया तो इस भाषा की शिक्षा अवश्य हासिल करूँगी।

मेरे माता–पिता आयोवा (Iowa) में रहते थे और दो माह पूर्व मैट्रिक की परीक्षा देते ही मैं सोलह वर्ष की उम्र में अकेली ही यूरोप की सैर पर चल निकली थी। विचार था कि परिणाम घोषित होने के बाद तो मुझे नार्थ वेरिस्टन यूनीवर्सिटी में प्रवेश ले लेना है, फिर इससे पूर्व क्यों न कुछ सैर–सपाटा कर लिया जाए। यह मामले का बाह्य रूप था और अपने माता–पिता और दोस्तों को मैंने पर्यटन का कारण यही बताया था। लेकिन असली बात कुछ और थी। वास्तव में मैंने कुछ महीने पूर्व चर्च से अपना नाता तोड़ लिया था और रविवार को भी मैं इबादत के लिए नहीं जाती थी, जबकि मिड वेस्ट में, जहां मैं रहती थी यह रवैया बड़ा घातक सिद्ध हो सकता था। इसलिए मैं नियमित रूप से चर्च जाया करती, लेकिन चूँकि मुझे ख़ुदा ने समझ प्रदान की थी और मैं सोच–विचार की आदी थी, इसलिए ईसाईयत के अक़ायद (धार्मिक सिद्धान्त और अवधारणाओं) के बारे में जितना सोचती थी दिमाग़ उतना ही उलझता जाता था।

मेरी आत्मा कहती थी कि पूज्य एक ही है, वही हर जगह विद्यमान है। लेकिन चर्च में ख़ुदा के बजाए केवल हज़रत मसीह की पूजा होती थी और समझा जाता था कि उनके माध्यम से हम ख़ुदा तक पहुँचेंगे। किन्तु मैंने चुपके–चुपके केवल ख़ुदा ही से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था और इसमें जहाँ सन्तोष और शान्ति महसूस करती थी, वहाँ इस टकराव पर सख़्त परेशान भी थी। मेरा मन बचपन ही से धार्मिक प्रवृत्ति का था। मैं बड़े शौक़ से रविवार को चर्च जाया करती। बड़े ही ध्यान से, अमानत और दयानत, दया और कृपा तथा दोस्ती और वफ़ा की बातें सुनती। लेकिन चर्च में पाबन्दी से हाज़िरी देने वालों को जब मैं सामाजिक जीवन में इन शिक्षाओं के बिल्कुल विपरीत व्यवहार करते देखती तो बहुत परेशान होती। क्या हमारा धर्म केवल सप्ताह में एक दिन और वह भी थोड़ी देर के लिए लाभदायक है? क्या इसका सम्बन्ध केवल रविवार तक सीमित है? प्रायः सोचती कि सप्ताह के बाक़ी दिन मुझे किस प्रकार बिताने चाहिएँ। क्या इसके लिए हमारे धर्म में कोई व्यवस्था नहीं है? कभी–कभी दस धर्मादेशों (Ten Commandments) की चर्चा भी सुनने में आती थी, जिनके हिसाब से क़त्ल, चोरी, झूठ, शराब, व्यभिचार आदि गुनाह थे, लेकिन व्यावहारिक रूप से समाज में इन धर्मादेशों का कहीं गुज़र न था।

यह ठीक है कि कुछ देर के लिए चर्च की हाज़िरी के दौरान मिनी स्कर्ट पहनना अप्रिय हो जाता था, मगर बाक़ी दिनों में यह नौजवान लड़कियों का प्रिय लिबास बन गया था और मर्द इसकी सराहना करते थे। आख़िर ऐसा क्यों है ? ईसाईयत नैतिक रूप से समाज पर प्रभावी क्यों न हो सकी ?

इस प्रकार के बहुत–से सवाल थे जो मन में पैदा होते थे, लेकिन कहीं से उनका जवाब नहीं मिलता था। पादरियों से, धार्मिक रहनुमाओं से बात करती तो वे डाँट देते कि बुद्धि और धर्म का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं। इसलिए इन बातों को सोचे–समझे बिना मानना होगा।

मुझे याद है कि एक बार मैं अपने एक टीचर के घर गई। देखा कि शेल्फ़ बाइबल की विभिन्न प्रतियों से भरा हुआ है, मगर हर एक दूसरे से अलग थी। मैं परेशान हो गई। पूछा तो उन्होंने लापरवाही से कहा, "इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है ?" हालाँकि मैंने बाद में अध्ययन और विश्लेषण किया तो इन प्रतियों की इबारतों में आपस में अनगिनत टकराव थे, बल्कि कुछ अध्याय इनमें से निकाल दिए गए थे। तब ग़लत क्या है और सही क्या है ? मैं चकरा कर रह गई।

और वर्तमान पर्यटन–यात्रा वास्तव में इस उद्देश्य से थी कि इन सवालों का जवाब हासिल कर सकूँ। ख़्याल था कि यात्रा के दौरान विभिन्न लोगों से पूछताछ करके ज़ेहनी उलझन से छुटकारा पाने की कोशिश करूँगी, लेकिन अफ़सोस कि ईसाईयत और चर्च से सम्बन्धित मेरी आपत्तियों या उलझनों का मुझे कहीं से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिल सका, बल्कि इस सफ़र ने मेरी ज़ेहनी परेशानी में और अधिक वृद्धि कर दी।

वापस अमेरिका आकर मैंने कॉलेज में प्रवेश लिया, तो ऐच्छिक विषय के रूप में अरबी का चयन किया। इस 'नापसन्दीदा' विषय का चयन मेरे साथ केवल तीन छात्रों ने किया था। इस सिलसिले में मेरे शौक़ को देखकर मेरे टीचर परेशान (Confused) हो गए। मैं अरबी होमवर्क सुलेखन (Calligraphy) क़लम से किया करती। इस उद्देश्य के लिए मैं एक बार शिकागो के मुस्लिम इलाक़े में भी चली गई ताकि कोका कोला बोतल पर अरबी में लिखे हुए इन शब्दों को देख सकूँ। मैंने अपने अध्यापक से भी अरबी किताबें उधार लीं, ताकि अरबी लिपि से अच्छी तरह परिचित हो सकूँ। साथ ही यह इच्छा भी बढ़

गई कि किसी तरह अरबों के कल्चर और उनकी परम्पराओं से भी परिचय हासिल किया जाए। अतः कॉलेज के दूसरे वर्ष में पहुँची तो मैंने "middle Eastern Studies" मध्य–पूर्व के अध्ययन पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित कर दिया और कुछ ऐसी क्लासों में जाने लगी जहाँ मध्य–पूर्व के हवाले से ख़ास लेक्चर होते थे। एक क्लास में तो क़ुरआन का विशेष अध्ययन भी शामिल था।

होमवर्क करने के लिए एक रात मैंने क़ुरआन खोला और उसे पढ़ने बैठी तो पढ़ती ही चली गई। मैंने उसे इतने ध्यान और दिलचस्पी से पढ़ा, जैसे कोई नॉवेल पढ़ता है और अध्ययन के दौरान मेरे दिल से बेइख़्तियार आवाज़ें निकलती रहीं, ''वाह! यह हुई न बात, ख़ूब! कितनी बड़ी हक़ीक़त है यह! मैं तो पहले ही इन अक़ायद पर यक़ीन रखती हूँ। वाह! यह किताब तो मेरे उन सारे सवालों का जवाब दे रही है, जिन्होंने लम्बे समय से मुझे परेशान कर रखा है। ख़ूब! मुझे पता चल गया कि रविवार के अलावा सप्ताह के शेष दिन मुझे कैसे बिताने है और एक पूज्य प्रभु की धारणा तो मेरे दिल की आवाज़ है। ख़ूब! बहुत ख़ूब!''

मैं तो ख़ुशी से निहाल हो गई, ऐसा लगा जैसे अब तक अंधेरों में भटक रही थी, लेकिन अब मंज़िल का सुराग़ मिल गया है। दिमाग़ सवालों से भरा हुआ था और उनका कहीं से जवाब नहीं मिलता था, लेकिन इस किताब के अध्ययन से दिमाग़ पूरे तौर पर सन्तुष्ट हो गया। आत्मा का सारा मैल दूर हो गया।

दूसरे दिन कक्षा में गई तो मैंने अपने अध्यापक से पूछा कि मुझे इस लेखक की अन्य पुस्तकें भी चाहिएँ। मैं इनका अध्ययन करना चाहती हूँ लेकिन टीचर ने बताकर मुझे हैरान कर दिया कि यह मुसलमानों की धार्मिक किताब है और उनका विश्वास और अक़ीदा है कि यह ख़ुदा की वाणी है, मानो इस किताब का लेखक ख़ुद ख़ुदा है और यह जिस किताब का तुमने अध्ययन किया है यह क़ुरआन का अंग्रेज़ी अनुवाद है और जिस व्यक्ति को तुम इसका लेखक समझ रही हो यह वास्तव में इसका अनुवादक है।

टीचर ने बताया कि मुसलमानों के अक़ीदे के मुताबिक़ यह किताब उनके पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर उतरी थी और उस समय से अब तक

इसमें मामूली–सी भी कोई तब्दीली नहीं हुई। यह अपने असली रूप में अब तक मौजूद है। दुनिया भर के मुसलमान इसका पाठ (तिलावत) करते हैं और इससे मार्ग पाते हैं। यह मालूमात मेरे लिए बिल्कुल नई थीं। कुछ न पूछिए जज़्बात का क्या हाल हुआ? ख़ुशियाँ और हैरतें दिलो–दिमाग़ पर अजीब तरह से छा गईं। अब मेरी रुचि अरबी तक ही सीमित नहीं रही थी, बल्कि जी चाहने लगा कि इस्लाम के बारे में सब कुछ पढ़ लिया जाए और इस्लाम के केन्द्र अर्थात् मध्य–पूर्व को आँखों से देखा जाए।

कॉलेज की आख़िरी क्लास में थी, जब मैंने अपने प्रिय विषय की पूर्ति के लिए मिस्र की यात्रा की। क़ाहिरा में मेरा प्रिय काम मस्जिदों को देखते रहना, उनकी दीवारों और मेहराबों पर अरबी सुलेख का ध्यानपूर्वक अध्ययन और निरीक्षण करना और मुसलमानों से इस्लाम के बारे में बात करते रहना था।

एक दिन एक मिस्री मुसलमान ने मुझसे पूछ लिया, ''जब आप इस्लाम और अरबी भाषा से इतनी गहरी दिलचस्पी रखती हैं तो मुसलमान क्यों नहीं हो जातीं?''

''मैं पहले ही मुसलमान हूँ'' मैंने तुरन्त जवाब दिया। लेकिन मेरे इस जवाब ने ख़ुद मुझे भी परेशान कर दिया। तब मैंने स्पष्ट किया कि ''इस्लाम प्रकृति और सामान्य बुद्धि के बिल्कुल मुताबिक़ है। इसकी कोई बात अक़्ल के ख़िलाफ़ नहीं। इसलिए में इससे बहुत प्रभावित हूँ और अपने को मुसलमान समझती हूँ। लेकिन मेरा ख़्याल है कि इसके लिए बाक़ायदा एलान करने की ज़रूरत नहीं है।''

''यक़ीनन ज़रूरत है'' मिस्री व्यक्ति ने जवाब दिया, अगर आप किसी मस्जिद में जाकर दो गवाहों की मौजूदगी में कलिमा पढ़ लें और मुसलमान होने की पुष्टि कर दें तो आप क़ानूनी तौर पर भी मुसलमान समझी जाएँगी। अतः मैंने मशविरा क़बूल करके मस्जिद में जाकर अपने आपको एक मुसलमान की हैसियत से रजिस्टर करा लिया और जब मस्जिद के इमाम की ओर से मुझे सर्टीफ़िकेट दिया गया तो मैंने उसे बिना जज़्बाती हुए बड़े सुकून से अपनी फ़ाइल में रख लिया। यह तो केवल एक क़ानूनी कार्रवाई थी, वरना मैं तो बहुत पहले इस्लाम की महानताओं की ग़ुलाम हो गई थी। अरबी ने और क़ुरआन ने मुझे वर्षों पहले सम्मोहित कर लिया था।

□□□

58. जॉर्जिना न्यूरी

(Georgina Nouiri)

(इंग्लैंड)

श्रीमती जॉर्जिना न्यूरी स्वान सी (Swan Sea) यूनीवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त कर रही थीं, जब वे मुसलमान हो गईं। वे कट्टरपंथी इंग्लेकन सम्प्रदाय से सम्बन्धित थीं, और तसलीस (त्रीश्वरवाद) के बजाए एक ख़ुदा पर विश्वास रखती थीं। अतः वह यूनीवर्सिटी में ज्यों ही एक लेबनानी मुसलमान से परिचित हुईं और उससे इस्लाम के बारे में मालूमात प्राप्त हुई, वे मुसलमान हो गईं। उनके इस्लाम क़बूल करने के सम्बन्ध में अधिक विस्तृत जानकारी देने के बजाए संक्षेप में कुछ महत्वपूर्ण बातें यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। उन्होंने नमाज़ और इस्लामी समाज के बारे में अपनी प्रतिक्रिया इन शब्दों में व्यक्त की :

■ ■ ■ ■ ■

मैं अनुशासन के हवाले से नमाज़ों से बहुत प्रभावित हुई। पाँचों नमाज़ें ख़ास समय में पढ़ी जाती हैं। दिन की पहली रौशनी में, दोपहर को जब सूरज पूरे यौवन पर होता है, साया ढलने पर, हल्के अंधेरे में और रात के अंधेरे में। मानो आधुनिकतम वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हम कह सकते हैं कि पाँचों नमाज़ें हमें प्रकृति के साथ पूरी तरह जोड़े रखती हैं। इससे ध्यान–ज्ञान और चिन्तन का रुझान पैदा होता है और दिमाग़ की बैट्री न केवल चार्ज होती रहती है, बल्कि यह अपने केन्द्र से भी जुड़ा रहता है।

मुझे इस्लामी समाज का यह पहलू भी बहुत अच्छा लगा और इसमें असाधारण फ़ायदे नज़र आए कि पुरुषों और महिलाओं की महफ़िलें मिली–जुली नहीं होनी चाहिएँ और इनके बीच पर्दे की मज़बूत दीवार खड़ी रहनी चाहिए। इस प्रकार मानो इस्लामी समाज शान्ति और हार्दिक आनंद का बड़ा ही सुन्दर दृश्य प्रस्तुत करता है। पत्नियाँ निश्चिन्त रहती हैं कि कोई अन्य औरत उनके पतियों को अपनी ओर आकर्षित नहीं करेगी। इस समय यूरोप और यूरोप से प्रभावित सोसाइटियों में परिस्थिति बड़ी ही गम्भीर है। मिश्रित

सोसाइटियों के कारण न तो पत्नियों को पतियों पर भरोसा है और न पति पत्नियों पर भरोसा करते हैं—एक अफ़रा–तफ़री और आपा–धापी का आलम है, जिसके कारण पूरे यूरोप और अमेरिका में पारिवारिक व्यवस्था छिन्न–भिन्न होकर रह गई है। जबकि इसके विपरीत मुस्लिम देशों में बहुत–सी कमज़ोरियों और ख़राबियों के बावजूद परिस्थिति इतनी ख़राब नहीं, बल्कि यूरोप की तुलना में कहीं बहुत अधिक सन्तोषजनक है।

वास्तव में अल्लाह तआला, जो हमारा वास्तविक सच्चा स्रष्टा है, जानता था कि सेक्स का मामला मानव–जीवन में कितना संवेदनशील है। इसलिए इसे जायज़ हदों में रखने के लिए पाबन्दियाँ लगाई गई हैं और अगर इन हदों की पाबन्दी की जाए तो कोई भी समाज उन बुरी परिस्थितियों से बच सकता है जिनसे आज का यूरोप और अन्य स्वछन्द (आज़ाद) समाज जूझ रहे हैं।

बहरहाल मैं जब भी घर से बाहर निकलती हूँ सिर पर स्कार्फ़ बाँध लेती हूँ और लम्बा कोट पहन लेती हूँ। पहले मुझे अपनी मानसिक और शारीरिक दृष्टि से यह काम बहुत कठिन लगा, क्योंकि मेरा सम्बन्ध एक ऐसे समाज से था जहाँ हर औरत आकर्षण और प्रदर्शन पर जान देती है, परन्तु धीरे–धीरे मन का सुधार होता चला गया, दिमाग़ का शैतान निकल गया और मेरी रूह ने पाकीज़गी और पवित्रता को इख़्तियार कर लिया।

अब अल्लाह का शुक्र है मैं ख़ुश और सन्तुष्ट हूँ। सड़कों और बाज़ारों में अपने आपको सुरक्षित समझती हूँ और मामूल के ख़िलाफ़ जब कोई लड़का या लफ़ँगा मुझे देखकर सीटी नहीं बजाता, न आवाज़ कसता है तो मैं बेहद ख़ुश होती हूँ, और ख़ुदा का शुक्र अदा करती हूँ, जिसके सदुपदेश और मार्गदर्शन ने औरत को आदर और सम्मान प्रदान किया और फ़ितनों और बुराइयों से बचा लिया।

□ □ □

59. मैडम लावरे

(Madam Laure)

(फ्रांस)

मेरी उम्र 24 वर्ष है। मेरा सम्बन्ध कम्बोडिया के एक चीनी नस्ल के परिवार से है, जो चौबीस वर्ष पूर्व कम्बोडिया से पलायन करके फ्रांस में आबाद हो गया था। मेरे माँ-बाप का सम्बन्ध बौद्ध धर्म से था, लेकिन यह सम्बन्ध केवल औपचारिक था। वे कभी-कभार बुद्ध की मूर्तियों के सामने कुछ रस्में अदा करते और बस। मैं इस सम्बन्ध में उनसे सवाल करती तो टाल देते। मानसिक रूप से उन्होंने मुझे सन्तुष्ट करने की कभी कोशिश नहीं की।

धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से फ्रांस एक ऐसा देश है जहाँ विभिन्न धर्म और संस्कृतियाँ पाई जाती हैं। धार्मिक रूप से जनता की बड़ी संख्या कैथोलिक ईसाई है। लेकिन यहूदियों और कम्यूनिस्टों के प्रभाव भी समाज पर बहुत गहरे हैं और यह हक़ीक़त भी अपनी जगह मौजूद है कि इस्लाम इस देश का दूसरा बड़ा धर्म है। उपनिवेशवादी दौर में मराकश, अल-जज़ायर, ट्यूनिश और मध्य अफ़्रीक़ा के लाखों मुसलमान यहाँ आकर बस गए और अब उनकी सन्तानें यहाँ बड़ी संख्या में मौजूद हैं। मुसलमानों पर यह निराधार आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने कई ऐसे संगठन बना रखे हैं, जो समय-समय पर बम धमाके करके देश में आतंकवाद का माहौल बनाए रखना चाहते हैं। इसी लिए स्थानीय फ्रींसीसी लोग उन्हीं के हवाले से इस्लाम की चर्चा डर और नफ़रत की मिली-जुली भावना के साथ करते हैं। मैं यूरोप की इसी नस्ल के बीच पली-बढ़ी जो समस्त धार्मिक मूल्यों से घृणा करती है और धर्म से दूर और विमुख है। यह नस्ल पूर्ण स्वछंदता की इच्छुक है और अच्छी-बुरी सारी सामाजिक परम्पराओं की धज्जियाँ उड़ाने पर तुली रहती है। यह नस्ल या पीढ़ी यूरोप के विशुद्ध भौतिकवादी स्वरूप की रक्षक भी है। यह समाज और मानव-आचरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों से दुखी और खिन्न भी है।

स्कूल और कॉलेज में मेरे सहपाठी विभिन्न देशों के थे कम्बोडिया से

अल–जज़ायर तक। हमें किसी की धार्मिक आस्थाओं से कोई सरोकार न था। इस माहौल में धर्म को निरर्थक चीज़ समझा जाता था। और इस मामले में बातचीत करना पूरी तरह मूर्खतापूर्ण था। इसलिए आसानी से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मेरा बौद्धिक और मानसिक प्रशिक्षण किस वातावरण में हुआ था। मैं किसी भी धर्म की मानने वाली न थी और इस्लाम के बारे में तो मेरा विचार बहुत ही बुरा था क्योंकि पूरे यूरोप मे विशेष रूप से फ्रांस में इस्लाम को हर पहलू से बदनाम किया गया था। किन्तु ज्यों–ज्यों समझ बढ़ी, मैं अक्सर एकांत में ग़ौर करती कि इस संसार में कोई सर्वोच्च शक्ति ज़रूर मौजूद है, जो पूरे ब्रह्मांड का संचालन कर रही है। ब्रह्मांड की यह आश्चर्यजनक एवं विशाल व्यवस्था अपने–आप अस्तित्व में नहीं आई है। ये सूरज, चाँद, मौसम, सागर, पहाड़ और अनगिनत जीव–जन्तुओं का स्वयं ही बिना किसी स्रष्टा के अस्तित्व में आ जाना असंभव है। प्रकृति की व्यापक व्यवस्था में इतना सामंजस्य और इतना एकत्व है कि एक सूक्ष्मतम परमाणु से लेकर विशालकाय तारों तक हर चीज़ अपने–अपने स्थान पर इतने बेहतरीन ढंग से कार्यरत और सक्रिय है कि इसे केवल संयोग कहना सही नहीं है। इस संदर्भ में मैं किसी सर्वोच्च सत्ता को मानने वाली तो थी, लेकिन किसी धर्म को मानना अक़्ल से दूर की बात समझती थी।

इसे मैं अपना सौभाग्य समझूँगी कि उच्च शिक्षा के लिए मुझे ऐसी यूनीवर्सिटी में प्रवेश लेना पड़ा जो घर से दूर थी और जहाँ मुसलमान छात्रों की काफ़ी संख्या भी मौजूद थी। चूँकि इस्लाम और मुसलमानों के बारे में मेरा विचार सकारात्मक न था, इसलिए आरम्भ में मैंने इन मुसलमान छात्रों से दूर रहने में राहत समझी, लेकिन मैंने महसूस किया कि उनकी बड़ी संख्या साधारण यूरोपीय छात्रों की तुलना में गम्भीर और गौरवपूर्ण व्यवहार की मालिक है। इसलिए न चाहते हुए भी इस्लाम के प्रति मेरे मन में रुचि पैदा होने लगी। पता चला की ख़ुदा अवश्य ही मौजूद है। वह अकेला है और अपनी विशेषताओं में बेमिसाल है। मालूम हुआ कि इस्लाम शब्द के दो अर्थ हैं 'ख़ुदा का पूर्ण आज्ञापालन और शान्ति और अमन–चैन'। जबकि पारिभाषिक शब्दावली में मुस्लिम उस व्यक्ति को कहते हैं, ''जो ख़ुदा की मरज़ी के समक्ष नतमस्तक हो जाए।''

इन मुस्लिम छात्रों से यह जानकर मैं बहुत हैरान हुई कि औरत को इस्लाम में असाधारण हैसियत और अधिकारों से नवाज़ा गया है। मुझे यह भी अन्दाज़ा हो गया कि यहूदियत, ईसाईयत और बौद्ध मत के मुक़ाबले में इस्लाम की कोई शिक्षा बुद्धि और कॉमन सेन्स (सामान्य ज्ञान) के ख़िलाफ़ नहीं। इसलिए मुस्लिम सहपाठियों की प्रेरणा पर मैंने इस्लाम के बारे में अध्ययन आरम्भ कर दिया और इस सम्बन्ध में फ्रांस ही के एक सर्जन और वैज्ञानिक मोरिस बोकले की किताब ''बाइबल, क़ुरआन और साइंस'' ने मुझे बेहद प्रभावित किया और पता चला कि साइंस और संसार की सृष्टि के हवाले से बाइबल ने जो दृष्टिकोण अपनाया है, वह सब ग़लत साबित हुआ है। जबकि क़ुरआन के सिद्धान्त और निष्कर्ष शत-प्रतिशत सही और ठीक सिद्ध हुए हैं।

मेरा स्वभाव साइंसी है। मैं अक़्ल और दलील के ख़िलाफ़ कोई बात स्वीकार नहीं करती। अतः आधुनिकतम साइंसी हवालों से क़ुरआन के रहस्योद्घाटन ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया। सूरज और चाँद जिस प्रकार अपने कक्ष में चक्कर लगाते हैं, समुद्रों में मीठे और खारे पानी के बीच जिस प्रकार दीवार बनती है और जिस प्रकार यह साबित हो गया है कि दुनिया की कोई चीज़ पानी के बिना जीवित नहीं रह सकती, (''और हमने हर जानदार वस्तु को पानी से बनाया है''—क़ुरआन) और जिस तरह इन वास्तविकताओं का क़ुरआन में उल्लेख है उससे साबित हो गया है कि क़ुरआन किसी इन्सान की रचना नहीं है। यह ख़ुदा का कलाम (वाणी) है और हर दृष्टि से स्थाई और शाश्वत हैसियत रखता है।

मैंने क़ुरआन का एक फ्रांसीसी अनुवाद हासिल किया और उसे एक तरफ़ से पढ़ने लगी। आरम्भ में कई बातें समझ में न आईं और परेशान भी हुई। जैसे, यह कि स्वर्ग में मर्दों को हूरें मिलेंगी। किन्तु मैंने ख़ूब दुआएँ कीं कि ख़ुदा मेरा दिमाग़ खोल दे। साथ ही मैं अपने मुसलमान दोस्तों से भी सवाल करती रहती। नतीजा यह हुआ कि मेरे सभी भ्रम दूर हो गए और मैं पूरी तरह सन्तुष्ट हो गई कि क़ुरआन की शिक्षाएँ भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टि से मानव-जाति का पूर्ण मार्गदर्शन करती हैं।

क़ुरआन ही से मुझे हज़रत मसीह का पूरा परिचय मिला और यक़ीन हो गया कि वह एक ऐतिहासिक हैसियत रखते थे, वरना बाइबल ने उनके गिर्द

अंधविश्वासों का जो जाल बुन रखा है, उससे उनका व्यक्तित्व सन्देहों में गुम होकर रह गया है। क़ुरआन के अध्ययन ही से पता चला कि ईसाईयत के सारे धार्मिक सिद्धान्त आधारहीन हैं, बुद्धि के ख़िलाफ़ हैं और कोई ऐतिहासिक हैसियत नहीं रखते, जबकि इस्लाम की एक-एक शिक्षा अक़्ल के बिल्कुल मुताबिक़ है। मानव की स्वाभाविक आवश्यकताओं के अनुसार है और ठोस ऐतिहासिक हैसियत रखती है।

इसी सम्बन्ध में मैंने इस्लाम के सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की पवित्र जीवनी का भी अध्ययन किया और मैं उनसे बेहद प्रभावित हुई। अन्दाज़ा हुआ कि यूरोप के धार्मिक उलमा और इतिहासकारों ने आपके बारे में किस प्रकार झूठ बोला है और कितना दोषारोपण से काम लिया है। हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का जीवन तो बेहद पवित्र था और मुहम्मद (सल्ल०) प्रत्येक दृष्टि से सम्पूर्ण मानव-जाति के महानतम उपकारक हैं।

इस प्रकार इस्लाम के विषय में मेरी जानकारी भी बढ़ती गई। मेरे सन्देह दूर होते गए और मेरा विश्वास दृढ़ होता चला गया। मुझे ख़ूब अन्दाज़ा हो गया कि इस्लाम अपने स्वभाव और शिक्षाओं की दृष्टि से बिल्कुल प्राकृतिक और स्वाभाविक है और अगर एक व्यक्ति अपने अन्तःकरण से काम ले, न्याय और संतुलन को सामने रखे और ध्यानपूर्वक नबियों की शिक्षाओं पर ग़ौर करे तो इस्लाम की ख़ूबियों को मानने लगेगा।

मैंने मानसिक रूप से इस्लाम की महानता को स्वीकार कर लिया था। लेकिन समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ? इस्लाम क़बूल करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया था, लेकिन इस अमल में असामान्य ख़तरे नज़र आ रहे थे। मेरे माता-पिता और बाक़ी परिवार मेरी इस हरकत को हरगिज़ बर्दाश्त नहीं करेंगे। फिर क्या होगा? मुझे क्या करना चाहिए, सोच-सोच कर मेरी भूख और नींद जाती रही। फिर एक रात मैं सजदे में गिर गई। मैंने अल्लाह से रो-रोकर ख़ूब दुआएँ कीं, ''ख़ुदाया, मेरी रहनुमाई कीजिए। मुझे सही राह सुझा दीजिए, मैं बहुत कमज़ोर हूँ मुझे साहस और शक्ति प्रदान कीजिए और अपनी कृपा से मेरी सहायता कीजिए। आपकी सहायता के बिना मैं माहौल का किसी प्रकार भी मुक़ाबला नहीं कर सकती।''

सजदे से सिर उठाया तो तबीयत बहुत शान्त हो गई थी। शंकाएँ और

भय दूर हो गए थे। मैं एकाग्र हो गई कि नतीजे चाहे कुछ भी हों, मुझे बहरहाल इस्लाम क़बूल करना है। सौभाग्य से यह रमज़ान का महीना था। अन्तिम अशरे की अन्तिम तारीख़ें थीं। मैंने सपने में अपने आपको नमाज़ पढ़ते हुए देखा और दूसरे ही दिन मैं अपने दोस्तों के सामने कलिमा–ए–शहादत पढ़कर मुसलमान हो गई।

मैंने एक वर्ष तक इस घटना को अपने माता–पिता से छुपाए रखा। दूसरा रमज़ान आया तो संयोगवश क्रिसमस की छुट्टियाँ भी इसी महीने के अन्दर आ रही थीं। मैं रोज़े रख रही थी, मगर मुझे छुट्टियाँ अपने माता–पिता के साथ ही गुज़ारनी थीं। अतः अब इसके अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया था कि यह रहस्य मेरे माता–पिता पर खुल जाए। मैं घर गई और रात में शराब पीने और सुअर का गोश्त खाने से इन्कार किया और उन्हें बताया कि मैं मुसलमान हो गई हूँ, तो इस पर सबने हंगामा खड़ा कर दिया। माँ–बाप, भाई–बहन, चचा सब बहुत ही क्रोधित हुए। बाक़ी परिवार को पता चला तो उनकी प्रतिक्रिया भी असाधारण थी। सबने जी भर कोसा, कुछ ने हाथ भी उठाया। माँ कहने लगी कि अगर तुमको बदलना ही है तो ईसाई हो जाओ। मैं तुम्हें ख़ुद अपने साथ चर्च लेकर चलूँगी।

मैंने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की कि इस्लाम के बारे में उनका दृष्टिकोण सही नहीं। इस्लाम की सभी शिक्षाएँ ईसाईयत और यहूदियत के विपरीत प्रकृति और बुद्धि के बिल्कुल मुताबिक़ हैं तथा यहूदियों ने और यूरोप के ईसाई रहनुमाओं और इतिहासकारों ने इस्लाम और मुसलमानों के ख़िलाफ़ जो कुछ लिखा है, वह सही नहीं है। लेकिन मेरे माता–पिता और परिवार वाले बड़े भावुक और उत्तेजित हो रहे थे। उन्होंने मेरी एक न सुनी। वे बार–बार कहते थे कि तुमने जाहिल, गँवार और आतंकवादियों का धर्म अपना कर हमें अपमानित करने की कोशिश की है और अगर तुमने इस फ़ैसले को नहीं बदला, तो इस घर में तुम्हारे लिए कोई जगह नहीं होगी।

लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि मैंने उनकी सारी धमकियों के जवाब में साफ़ कह दिया कि चाहे कुछ भी हो जाए, मैं अब इस्लाम का रास्ता त्याग नहीं सकती। नतीजा यह हुआ कि उन्होंने मेरी एक दिन ख़ूब पिटाई की और धक्के देकर घर से निकाल दिया।

मैं लौटकर यूनीवर्सिटी आ गई और अपने मुसलमान दोस्तों को परिस्थिति से अवगत कराया। सभी ने मुझे हक़ पर जमे रहने पर बधाई दी और पूर्ण रूप से सहायता का विश्वास दिलाया। ख़ुदा का शुक्र है कि उनमें से सबसे नेक, सज्जन और योग्य युवक ने मेरा हाथ थाम लिया और शादी की पेशकश कर दी। मैंने अल्लाह की ओर से नेमत समझकर इस पेशकश को स्वीकार कर लिया और आज मैं अपने नए धर्म के साथ, नए परिवार में, अपने बड़े दयालु पति के संग बड़ी सुख-शान्ति से जीवन व्यतीत कर रही हूँ और हर दम अल्लाह का शुक्र अदा करती हूँ।

□ □ □

60. लैला रमज़ी

(अमेरिका)

प्रस्तुत लेख दैनिक 'जसारत' (8 अगस्त, 1982, कराची) में प्रकाशित हुआ था। अनुवाद और सार–संक्षेप मुनीर मंसूरी का है।

■ ■ ■ ■ ■

इस्लाम अल्लाह का बताया हुआ वह धर्म है जिसमें ख़ुदा के बन्दों की भलाई और कल्याण है। यह महान धर्म अपनी सच्ची और रौशन शिक्षाओं से दिलों की सियाहियों और बुराइयों को दूर करता और दिल के मैल को धो डालता है। निस्सन्देह यही एक धर्म है कि जो इन्सान को उसके असली उद्देश्य तक पहुँचाता है, मगर ख़ुदा जिसको हिदायत दे। अतः जिसपर इस धर्म की सत्यता स्पष्ट हो जाती है वह इस्लाम के झण्डे तले आने के लिए बेचैन और सक्रिय हो जाता है। महानता और सच्ची समानता का सच्चा पैग़ाम, भाईचारे, बन्धुत्व, निस्वार्थ त्याग और वास्तविक समानता का एक मात्र धर्म है कि जिसके बाद कोई धर्म ख़ुदा के यहाँ स्वीकार योग्य नहीं है।

इस विशाल संसार के विभिन्न कोनों और देशों में प्रतिदिन किसी न किसी पर ख़ुदा का इनाम होता रहता है। अल्लाह दिलों को सत्य के लिए खोल देता है और शान्ति, अमन–चैन और सच्ची समानता का प्यासा दिल इस्लाम की शीलत छाया में आ जाता है। यह नौजवान अमेरिकी लड़की उन्हीं भाग्यशाली लोगों में से एक है जिसको अल्लाह ने हिदायत का रास्ता दिखाया। उसने अल्लाह के धर्म को समझने के बाद स्वीकार किया है, जिसके लिए उसे काफ़ी मेहनत करनी पड़ी। उसे क़ुरआन तक पहुँचने और इस्लामी किताबों को प्राप्त करने में काफ़ी दिक़्क़त उठानी पड़ी। उसने कई वर्षों तक विभिन्न ईश्वरीय धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया और अंततः वह इस्लाम की सत्यता को मान गई। आजकल वह अल–अज़हर विश्वविद्यालय में अरबी की शिक्षा प्राप्त कर रही है, ताकि अरबी में महारत हासिल करके क़ुरआन और हदीस पढ़ सके और वापस जाकर अपने सच्चे धर्म का प्रचार–प्रसार कर सके।

लीसा लूथ वेटमिन, जो बाद में लैला रमज़ी बन गई, का सम्बंध एक ऐसे ईसाई धार्मिक घराने से है जो 'चर्च के सेवक' कहलाते हैं और ईसाई सम्प्रदाय में इस परिवार को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। इसके दादा और पिता दोनों चर्च के सेवक हैं। 22 वर्षीय लैला रमज़ी का पालन–पोषण एक कट्टर ईसाई घराने में हुआ। परन्तु इस्लाम का सच्चा सन्देश सारी बाधाओं को तोड़ते हुए उसके दिल तक पहुँच गया। चर्च में जाकर इबादत करने और बाइबल पढ़ने वाली लैला रमज़ी ने इलैक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में डिग्री हासिल करने के बाद अमेरिका टीवी पर एनाउंसर की नौकरी कर ली।

लैला से जब इस्लाम क़बूल करने के बारे में पूछा गया तो उसने बताया कि उसका सम्बन्ध एक धार्मिक परिवार से था, जब से होश संभाला तब से कभी शराब नहीं पी। ज़्यादातर समय चर्च ही में गुज़रता था। विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा के दौरान मध्य–पूर्व उसका वैकल्पिक विषय था। इसी विषय के कारण क़ुरआन का परिचय हुआ और क़ुरआन के अध्ययन की इच्छा पैदा हुई, तो वह अपने कॉलेज की लाइब्रेरी गई, जहाँ से क़ुरआन के अंग्रेज़ी अनुवाद की एक प्रति मिल गई। लैला का कहना है कि क़ुरआन के अध्ययन से उसे एक अजीबो–ग़रीब कैफ़ियत का एहसास हुआ, ऐसा एहसास कि जी चाहता था कि कभी भी यह कैफ़ियत ख़त्म न हो। क़ुरआन के अध्ययन के बाद लैला ने इस पैग़ाम की सच्चाई की गवाही दी, तो उसने धर्म को बदलने का इरादा कर लिया। विशेष रूप से यह इरादा उस समय बना जब उसने क़ुरआन की ये आयतें पढ़ीं—

> ''ऐ किताब वालो! अपने धर्म में हद से आगे न बढ़ो और अल्लाह से जोड़कर सत्य के अतिरिक्त कोई बात न कहो। मरयम का बेटा ईसा मसीह इसके सिवा कुछ न था कि अल्लाह का एक रसूल था और एक आदेश था जो अल्लाह ने मरयम की ओर भेजा और एक आत्मा थी अल्लाह की ओर से (जिसने मरयम के गर्भ में बच्चे का रूप धारण किया) इसलिए तुम अल्लाह को और उसके सब संदेष्टाओं को मानो और न कहो कि अल्लाह तीन हैं। इससे रुक जाओ कि यह तुम्हारे

लिए ही अच्छा है। अल्लाह तो केवल अकेला पूज्य है और वह इससे पाक है कि उसकी औलाद हो। आकाशों और धरती में जो कुछ है उसी का है और अल्लाह कार्यसाधक की हैसियत से काफ़ी है।'' (क़ुरआन, 4 : 171)

लैला का कहना है कि जैसे–जैसे क़ुरआन का अध्ययन आगे बढ़ता रहा, नई हक़ीक़तें सामने आती गईं और दिल तक़ाज़ा करता गया कि जितना शीघ्र सम्भव हो इस्लाम को स्वीकार कर लूँ। इस्लाम के अध्ययन में कॉलेज की लाइब्रेरी में मौजूद किताबों के अतिरिक्त मुस्लिम स्टूडेंट्स सोसाइटी द्वारा प्रकाशित किताबों से भी काफ़ी लाभ उठाया। लैला ने इस्लामी किताबों के लिए सऊदी दूतावास से भी सम्पर्क किया, जहाँ से काफ़ी प्रोत्साहन मिला। इन सब मरहलों ने इस्लाम की सच्चाई को हर तरह से स्पष्ट कर दिया, तो दिल की एक ही पुकार थी कि मैं अपने मुसलमान होने का एलान कर दूँ और खुलकर इक़रार करूँ कि ''ला इलाह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह'' अर्थात् अल्लाह के अतिरिक्त कोई पूज्य नहीं और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं। लेकिन कुछ इन्सानी कमज़ोरियाँ सामने थीं। मेरे पिता ईसाई प्रचारक थे। अत: मैंने सोचा कि कहीं मेरे इस्लाम स्वीकार करने से उनकी इस हैसियत को धचका न लगे, जो उन्हें मसीही समाज और देश के लोगों में हासिल है...। लैला कहती हैं कि ''इस कठिन परिस्थिति में मैं तरह–तरह के विचारों में घिरी रही।''

यह वह मानसिक स्थिति थी जब लैला शिक्षा के सम्बन्ध में अपने घरवालों से दूर थी। वह कॉलेज के क़रीब अपने दोस्तों के साथ रहती थी, जहाँ क़रीब ही एक मस्जिद मौजूद थी। वे कहती हैं, ''इस्लाम की सच्चाई स्पष्ट होने के बाद अत्यन्त व्याकुलता के दिन बीते। आख़िरकार मैंने निर्णय कर ही लिया कि मैं मस्जिद में जाऊँ और मुसलमानों के सामने अपने मुसलमान होने का एलान कर दूँ।'' लैला की उम्र उस समय 22 वर्ष थी। मस्जिद में पहुँचकर उसने अल्लाह की वहदानियत (एकत्व) और मुहम्मद (सल्ल०) की रिसालत (ईशदूतत्व) की गवाही दी। लेकिन अपने घरवालों से अपने इस्लाम को छिपाए रखा। इस्लाम स्वीकार करने के एक वर्ष बाद लैला के पिता का देहान्त

हो गया। इस्लाम क़बूल करने के दो वर्ष बाद तक लैला के घरवालों को इसके बारे में कुछ भी पता न था। तीसरे वर्ष के शुरू में लैला ने क़ुरआन की एक प्रति (अंग्रेज़ी अनुवाद के साथ) अपनी माँ को भेंट की और इसके साथ ही उसे हज़रत ईसा के विषय में क़ुरआन के दृष्टिकोण को भी बताया। लैला कहती हैं कि क़ुरआन का तोहफ़ा स्वीकार करने के कुछ दिनों बाद उसकी माँ ने एक ऐसी बात कही जिसे वह कभी नहीं भूल सकेगी। उसने कहा "बहुत महान है यह धर्म।"

जब लैला से यह पूछा गया कि आपने किसी अन्य धर्म के बजाय इस्लाम ही को क्यों अपनाया तो उसने कहा : "क़ुरआन और इस्लामी किताबों के अध्ययन ने मुझपर इस सत्य को स्पष्ट कर दिया कि यह धर्म हर युग और हर क्षेत्र के लिए है और यही एक ऐसा धर्म है जो एक ईश्वरवाद का ध्वजवाहक है।

लैला कहती हैं कि इस्लाम स्वीकार करने से पूर्व मुझे पवित्र क़ुरआन की सूरा- 'इख़्लास' ने बहुत प्रभावित किया। इस सूरा में एकेश्वरवाद की वह पूर्ण परिभाषा मौजूद है कि इससे अधिक स्पष्ट और पूर्ण परिभाषा हो ही नहीं सकती। इसके अतिरिक्त इस्लाम सन्यास के बजाय अमली धर्म है इसका कोई अक़ीदा इंसान के साधारण जीवन से टकराता नहीं, बल्कि सामान्य जीवन के लिए भरपूर मार्गदर्शन करता है, इस्लाम बहरे, गूंगे और अंधे बनने के बजाये सोच-विचार करने और प्रकृति के कारख़ाने में चिन्तन करने का निमन्त्रण देता है "क्या लोग सोच-विचार नहीं करते" और "क्या लोग चिन्तन मनन नहीं करते" कहकर बुद्धि को सोचने समझने की और आकर्षित करता है।

लैला का कहना है कि इस्लाम नफ़रत और दुश्मनी की बजाए सच्चाई ओर भाईचारे का धर्म है। इसका कहना है कि मैं इस धर्म को क्यों स्वीकार न करती जो सरासर प्रेम, दया, कृपा, सच्चाई, सहानुभूति, त्याग और मानव-जाति में वास्तविक समानता की शिक्षा देता है। ऐसा धर्म कि जिसमें काले, गोरे, अरबी, ग़ैर-अरबी, राजा-रंक, धनी-निर्धन में कोई भेदभाव नहीं है। इस्लाम की इन महान शिक्षाओं ने मुझे ईसाई से मुसलमान बनाने में बड़ा महत्वपूर्ण रोल अदा किया है।

मस्जिद के इमाम के कहने पर लैला ने मिस्र की यात्रा की, ताकि अल-अज़हर में रहकर अरबी की शिक्षा प्राप्त करे और क़ुरआन और हदीस और इस्लाम की अन्य बड़ी किताबों का सीधे अध्ययन कर सके।

पूर्व शैख़ुल-अज़हर के कहने पर लैला की अरबी शिक्षा के लिए एक विशेष अध्यापक की व्यवस्था कर दी गई है। लैला के कहने के अनुसार, अमेरिका में अब भी बहुत बड़ी आबादी का यह विचार है कि इस्लाम केवल कालों का धर्म है, गोरों का नहीं। इसी प्रकार अमेरिका में मुसलमानों को नौकरियाँ हासिल करने में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

लैला दुआ़ करती है कि अल्लाह करे वह दिन आये जब इस्लाम सारी दुनिया का धर्म हो जाए और यही वह दिन होगा जब दुनिया सच्ची और वास्तविक शान्ति की मंज़िल को पा लेगी।

61. मीर यूला लैला ज़ीसनी

(पोलैण्ड)

यह लेख मासिक पत्रिका 'दावह' (इस्लामी यूनीवर्सिटी इस्लामाबाद) में प्रकाशित हुआ। अनुवाद तारिक़ अनीस साहब का है।

■ ■ ■ ■ ■

मैं पोलैण्ड के एक छोटे–से शहर में पैदा हुई। माँ–बाप सीधे–सादे और धार्मिक प्रवृत्ति के लोग थे, जिन्होंने अपनी शक्तिभर मेरा बेहतर पालन–पोषण करने की कोशिश की। मैं एक विशेष प्रकार के स्वभाव वाली मध्यम वर्ग की लड़की थी और कैथोलिक पंथ को माननेवाले लोगों में पली–बढ़ी, जो मेरे स्वभाव से मेल न खाता था। घर के धार्मिक वातावरण के कारण मुझ पर चर्च जाना अनिवार्य था। इसलिए परम्परा के अनुसार मैं प्रत्येक रविवार और अन्य दूसरे सभी विशेष समारोहों के अवसर पर चर्च जाया करती थी।

जहाँ तक मेरे व्यक्तित्व का सम्बन्ध है, मेरा स्वभाव ज़रा अलग तरह का था। मैं कम मेल–जोल रखनेवाली, शर्मीली और उदास प्रवृत्ति की लड़की थी। मैं अपने लड़कपन के वर्षों में व्यावहारिक रूप से एकान्तप्रिय लड़की थी। कोई बॉय फ्रेंड (Boy Friend) होना तो अलग बात है मेरी कोई सहेली तक न थी। बस मैं थी और धर्म पर चिन्तन–मनन। जीवन यूँ ही व्यतीत हो रहा था कि मैं अपने परिवार के साथ कनाडा चली आई। यहाँ एक नये जीवन का कठिन और असम्भावित माहौल मेरी प्रतीक्षा में था। मुझे हर चीज़ आरम्भ से सीखनी थी।

कनाडा में निवास के बाद शीघ्र ही मेरी मुलाक़ात एक लेबनानी छात्र से हुई, जो इस विशाल देश में मेरी भाँति नया–नया आया था। उसका स्वभाव भी सामान्य स्वभाव से ज़रा हटकर था। मुझे सबसे पहले इसी ने इस्लाम से परिचित कराया, जिसे उस समय तक मैं एक सनकी तरह का धर्म समझती थी।

हम एक–दूसरे से विरोधी दृष्टिकोण रखने के कारण अक्सर लम्बी–चौड़ी बात–चीत और बहस करते। इससे बिल्कुल भिन्न दृष्टिकोण रखने के

बावजूद एक वाक्य कि 'ख़ुदा केवल एक है' हर समय मेरे दिमाग़ में गूँजता रहता। किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास था कि ऐसी सोच रखनेवाला निस्सन्देह पागल है और कभी भूले से भी यह विचार न आया कि वास्तव में मैं ही ग़लती पर हूँ।

जब से मैं इस लेबनानी लड़के से मिली थी, जीवन बेचैनी का शिकार हो गया था, इस कारण नहीं कि वह मुसलमान था, बल्कि इस कारण कि मैं अब इस सोच तले पिसी जा रही थी कि हम दोनों में से कौन सही है और कौन ग़लत?

क़रीब दो-तीन महीने तक मैं इस उधेड़-बुन में रही, तब एक चमत्कार प्रकट होना शुरू हुआ। एक दिन मैं अपने घरवालों के साथ चर्च में थी, तो एकाएक मुझे ऐसा महसूस हुआ कि वह ठीक कहता है। मैंने अपने आपसे कहा, "कितनी बेतुकी बात है कि ये चर्चवाले कहते हैं कि ख़ुदा, उसका बेटा और रूहुल क़ुदुस तीनों मिलकर एक बनते हैं।" इन शब्दों ने मुझे झिंझोड़ दिया और मैं सोचने लगी कि अगर ख़ुदा एक है तो उसके बेटे और रूहुल-क़ुदुस का क्या मतलब है? यह त्रिवाद या त्रीश्वरवाद का मामला तो बौद्धिक दृष्टिकोण से बिल्कुल ही समझ में न आनेवाली बात थी। मुझे तो मुसलमान लेबनानी युवक की बात ही सही लग रही है कि ख़ुदा एक है। उसका कोई साझी नहीं।

जबसे मैंने इस सत्य को पाया था, मैंने शायद ही चर्च में किसी से कोई बात की हो। कुछ ही समय में मेरे माँ-बाप को एहसास हो गया कि मैंने चर्च जाना छोड़ दिया है और चर्च से दूर रहने के बहाने तलाश करने लगी हूँ। वे समझ गए कि अवश्य ही कोई गड़बड़ है। उन्होंने सारा आरोप उस बेचारे लेबनानी लड़के पर थोप दिया और उसके साथ न केवल कठोर रवैया अपनाया, बल्कि उसे अपमानित भी किया। मगर मेरे व्यवहार में बदलाव न आया।

मैंने गुप्त रूप से पोलैण्ड से क़ुरआन की एक प्रति मँगवाई। नमाज़ सीखी और चुपके-चुपके रोज़ा रखा कि कोई न जान सका। इधर माँ-बाप को ख़ुश रखने के लिए मैं दिखावे के तौर पर कभी-कभार चर्च भी चली जाती। परन्तु केवल अल्लाह जानता है कि यह सब कुछ मेरे लिए कितना दुखद था और मैं किस बेचैनी में थी।

मेरे लिए क़ुरआन का अध्ययन एक सुखद अनुभव था। रात को जब

सभी अपने अपने बिस्तरों में दुबके होते, मैं क़ुरआन का अध्ययन आरम्भ कर देती। मैं उसे पढ़ती जाती, इस दौरान आँखों से आँसू बहते रहे और मैं मुँह पर तकिया रखकर रोती रहती।

यह फ़ैसला करने में कि अब मुझे क्या करना चाहिए, क़रीब एक वर्ष लगा। इस बीच मैंने नमाज़ अदा करना और सही ढंग से रोज़ा रखना सीख लिया। अब मेरा जीवन पूर्णतः सुखी था।

यह सुख और आनन्द उस रौशन दरीचे (खिड़की) से छन–छन कर आ रहा था, जो मेरे पालनहार ने मेरे ऊपर खोल दिया था।

हर नया दिन एक नया अनुभव लेकर आता और पल–प्रतिपल व्यक्तित्व की पूर्णता की ओर जानेवाला था। मैं बहुत प्रसन्न और कृतज्ञ थी क्योंकि अल्लाह ने मुझे ज्ञान और बोध प्रदान किया था। लेकिन साथ ही जीवन इतना आसान भी न था। यद्यपि मेरा अन्तःकरण आशा से पूर्ण और शान्त था, परन्तु बाहर के संसार के जीवन को शेष रखने के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा।

क़रीब दो वर्ष हुए होंगे कि मैं पूरी तरह से मुसलमान हो चुकी थी और परिवारवालों और मेरे बीच अजनबीयत का पर्दा पड़ गया था। यद्यपि मैं अब भी उनसे प्रेम करती थी। मैं जानती थी कि ज्यों ही उनके कानों में मेरे ईमान लाने की भनक पड़ी, मुझे घर से निकाल दिया जाएगा। मगर मैं प्रतीक्षा में थी, जो कुछ अल्लाह ने मेरे लिए ग़ैब में छिपा रखा था।

क्रिसमस का अवसर आया, तो और अधिक सहन न कर सकी। मेरा दिल भर आया और मैंने सभी को अपने ईमान लाने के बारे में बता दिया। मुझे अन्दाज़ा था कि इससे वे बहुत दुखी हुए होंगे। मुझे यह भी विचार आया कि यह उनकी ख़ुशी का दिन था। मुझे कुछ और प्रतीक्षा कर लेनी चाहिए थी। मगर अल्लाह की यही मर्ज़ी थी कि मैं और अधिक प्रतीक्षा न करूँ। मैं अधिक समय तक अंधकार से समझौता न कर सकी और न ही व्यर्थ कामों और बेकार बातों से भरी इस महफ़िल में ठहर पाई।

आशंका के अनुसार मुझको घर से निकाल दिया गया। मैंने अपना बैग लिया और रहने के लिए एक जगह तलाश कर ली। दिल इस ख़्याल से मसला जा रहा था कि घरवाले छूट गए। मगर मन शीघ्र ही शान्त हो गया कि मैंने अपने पालनहार को पा लिया था।

पिता के अलावा परिवार के सभी सदस्यों ने मुझसे मुँह फेर लिया। केवल उन्होंने कहा कि मैं आज़ादी से अपना रास्ता चुन सकती हूँ। वह अब भी मुझ पर दयावान थे और इस कठिनाई की घड़ी में नैतिक और स्वाभाविक रूप से सांत्वना देते रहे। वह इस्लाम तो शायद ही स्वीकार करें, मगर उन्होंने मुझे यक़ीन दिलाया कि मैं उनकी उसी तरह बेटी हूँ जैसे पहले थी और बाप की हैसियत से वे मुझको अब भी चाहते हैं।

तब से मैं अलग रह रही हूँ और जीवन के हर दिन के लिए अल्लाह का शुक्र अदा करती हूँ, जिसने मुझे सबसे मूल्यवान चीज़ ईमान और क़ुरआन से पुरस्कृत किया है। उसने उस कृपा के द्वार मुझपर खोले जब मेरे घरवालों ने मुझपर अपने द्वार बन्द कर दिए थे। मेरी दुआ है कि ईमान की यह रौशनी उन सभी लोगों तक पहुँचे, जो अब भी उन अंधकारों में भटक रहे हैं जिनमें कभी मैं भी उनकी हमसफ़र थी।

मुस्लिम वर्ग से मेरे लिए मीरयूला के स्थान पर मरयम नाम रखा, मगर इस नाम से मुझे अपने पुराने अक़ीदे की याद आती थी। इसलिए मैंने इसकी बजाये अपने लिए लैला का नाम चुना। अरबी में इसका मतलब रात है ओर चूँकि यह रात ही का समय होता था जब मुझे क़ुरआन पढ़ने का मौक़ा मिलता और मैं अल्लाह के समक्ष गिड़गिड़ाती थी और जब उसने सूरे फ़ातिहा के ज़रिये मुझे ज्ञान और हिदायत से नवाज़ा था।

62. लीना विनफ़रे सैयद

(अमेरिका)

यह लेख मासिक 'बेदार डाइजेस्ट' लाहौर के अंक सितम्बर 1997 ई० में प्रकाशित हुआ। इसे उर्दू रूप मलिक अहमद सरवर साहब ने दिया है जिसका हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

■■■■■

इस सर्द और गर्म संसार में कष्टों और दुखों से भरपूर और व्यस्त जीवन में असंख्य लोग किसी अनदेखी चीज़ की तलाश में प्रयासरत दिखाई देते हैं। इनमें अधिकतर यह भी जानते कि उन्हें किसकी तलाश है, कुछ लोग अपनी समस्याओं का समाधान धर्म में तलाश कर लेते हैं। लोगों को किसी लक्ष्य की ज़रूरत है और हाँ वैचारिक रूप से विघटन और उतार–चढ़ाव में फँसी आज की दुनिया में सत्य की तलाश बहुत कठिन है। मगर मैं 'सत्य' को ढूंढने में सफल हो गई।

मैं अमेरिका में रहनेवाली एक ईसाई लड़की थी। मैं पाबन्दी से चर्च जाती थी, मगर मेरे दिल और दिमाग़ में यह एहसास छाया रहता कि जैसे मैं किसी बहुमूल्य चीज़ से वंचित हूँ। बहुत–से दूसरे लोगों की तरह मैं भी अपने दिल में किसी शून्य को महसूस करती थी। हममें बहुत–से लोग मुस्कुराते दिखाई देते हैं और उनके चेहरों पर प्रसन्नता भी दिखाई देती है, मगर अन्दर से वे वंचित और दुखी होते हैं। यही दशा मेरी भी थी।

मैं ईसाईयत के बारे में भ्रम में फँसी थी। परन्तु कोई मेरे सवाल का सन्तोषपूर्ण जवाब नहीं दे पाता था। इसलिए मैंने धर्म का कोर्स लिया, ताकि ईसाईयत का अध्ययन कर सकूँ। मैंने अपने चर्च के प्रोग्रामों में भी वृद्धि कर दी। मैं अल्लाह से विनती करती, 'ऐ अल्लाह! मुझे सच्चाई का रास्ता दिखा।'

मैं यूनीवर्सिटी में अरब छात्रों से मिली और उनकी दोस्त बन गई। मैंने उन्हें बहुत ही आकर्षक पाया। मुझे उनका खाना, संगीत और उनकी भाषा बहुत पसन्द आई। वे इस्लाम धर्म के बारे में बात करते तो मैं उनसे पूछती "यह इस्लाम क्या है?" मुझे इस्लाम के बारे में कोई अधिक जानकारी नहीं

थी। अमेरिका में बहुत बड़ी जनसंख्या इस्लाम के बारे में बिल्कुल नहीं जानती या बहुत कम जानकारी रखती है या फिर वह इस्लाम के बारे में मीडिया के माध्यम से फैलाए गए झूठ, अफ़वाह और मनगढ़त बुरी घटनाओं से अवगत है। मैं इस्लाम को जानने की इच्छुक थी, इसलिए मैंने इस्लाम के बारे में अध्ययन आरम्भ कर दिया। मैंने इस्लामी पुस्तकों और पवित्र क़ुरआन के अंग्रेज़ी अनुवाद को पढ़ा। मुसलमानों से मुलाक़ातें कीं। मैंने इस्लाम को एक आकर्षक, शान्तिपूर्ण धर्म और शान्तिप्रिय पाया। इस्लाम में मुझे अपने मन में उठनेवाले सभी सवालों का जवाब मिल गया। दिल और दिमाग़ को सन्तुष्टि मिल गई। इस्लाम ने एक अल्लाह की ओर मेरा मार्गदर्शन किया और मैं जान गई कि हज़रत ईसा (अलैहि०) केवल एक सन्देष्टा थे और मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के अन्तिम दूत हैं। मेरे दिल ने महसूस कर लिया कि मुझे वह सच्चाई मिल गई, जिसकी मुझे लम्बे समय से तलाश थी। 1989 ई० में 27 रमज़ान को मैंने इस्लाम क़बूल कर लिया और रमज़ान के आख़िरी तीन रोज़े भी रखे। मैं बहुत ख़ुश थी, क्योंकि मेरे दिल का शून्य सच्ची ख़ुशी और सन्तुष्टि से भर चुका था और मैं स्वयं को अल्लाह के बहुत क़रीब महसूस कर रही थी।

इस्लाम क़बूल करने के बाद मेरे जीवन में ईमान की परीक्षा आनेवाली थी। मुझे अपने ईसाई माँ-बाप को इस्लाम क़बूल करने के बारे में बताना था। लेकिन मैंने इसमें कुछ महीने देरी करने का निर्णय किया, ताकि मैं अपनी ईमानी शक्ति को और मज़बूत कर लूँ। यूनीवर्सिटी में अरब दोस्तों में से एक ने मेरे सामने शादी का प्रस्ताव रखा। मैंने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। बहुत से अन्य अमेरिकियों की तरह मेरे बाप को भी यह बात पसन्द न थी कि उनकी लड़की किसी दूसरे देश के नागरिक से शादी करे। मगर मैं अपने फ़ैसले पर मज़बूती से जमी रही और अपने माँ-बाप को विवश कर दिया कि वे मेरे पति को स्वीकार कर लें। यह युद्ध मैंने जीत लिया। अब मुझे उन्हें यह सच्चाई भी बताना थी कि मैं मुसलमान हो चुकी हूँ। उन्हें इस ख़बर से धचका लगा और वे बहुत परेशान हो गए। उन्होंने महसूस किया कि शायद उन्होंने मुझे ग़लत ढंग से पाला-पोसा है। उनका विचार था कि मैंने उनका दिल दुखाने के लिए इस्लाम स्वीकार किया है। उनकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि मैं उनसे अब भी पहले ही की तरह प्रेम करती हूँ और मैंने इस्लाम को अपनी

प्रसन्नताओं और हार्दिक सन्तुष्टि की ख़ातिर क़बूल किया है। मेरे माँ–बाप का विचार था कि मुसलमान भी हिन्दुओं की तरह होते हैं और सच्चाई से बहुत दूर हैं। वे धर्म के मामले में हर समय मुझसे झगड़ने लगे। मेरा दिल बहुत दुखता, मगर मैं अपने धार्मिक विश्वास पर मज़बूती से जमी रही।

इसके बाद हिजाब (पर्दे) का मसला आ गया। वे इसपर भी मुझसे नाराज़ हो गए। हिजाब उनके नज़दीक अनोखी चीज़ थी और वे नहीं चाहते थे कि लोग मुझे हिजाब में देखें। उनकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि हिजाब तो मैं अल्लाह के आज्ञापालन और अपने आदर के लिए कर रही हूँ। मुझे अपने मुसलमान होने पर बहुत गर्व है। माँ–बाप के साथ संघर्ष जारी रहा। अल्लाह की मदद व कृपा से अमेरिकी समाज में आने वाली हर कठिनाई का सामना करती रही। धीरे–धीरे ये कठिनाइयाँ मेरे लिए आसान होती गईं।

मैं अपने माँ–बाप के सम्बन्ध में बहुत सब्र से काम ले रही थी और मुझे उनके व्यवहार में बदलाव की प्रतीक्षा थी। तीन वर्ष बीत गए। पहले की तुलना में मेरे धर्म के प्रति उनका रवैया बेहतर होने लगा। अब आठ वर्ष बीत गए हैं वे अपनी आंखों से देखते हैं कि इस्लाम ने मुझे एक अच्छे इन्सान में बदल कर माँ–बाप का आज्ञापालन करनेवाली और सम्मान करनेवाली बेटी बना दिया है। निस्सन्देह वे मेरे धर्म पर विश्वास नहीं रखते, मगर कम से कम वे इस्लाम को पहले की तुलना में बेहतर समझते हैं और मेरे इस्लाम क़बूल करने को उन्होंने मेरा चुनाव समझकर स्वीकार कर लिया है। वे महसूस करते हैं कि इस्लाम ने मुझे सुखी बना दिया है।

□□□

63. श्रीमती डॉ० मारिया

(अमेरिका)

प्रस्तुत लेख सहरोज़ा (त्रिदिवसीय) 'दावत' देहली के अंक 10 फ़रवरी 1998 ई० में प्रकाशित हुआ था। अनुवाद मक़बूल अहमद नदवी का है। इसका हिन्दी अनुवाद आपकी सेवा में प्रस्तुत है।

■ ■ ■ ■ ■

अमेरिका की इस नौजवान लेडी डॉक्टर ने पवित्र क़ुरआन के अनुवाद का आलोचनात्मक अध्ययन किया है। अध्ययन के दौरान वह इसके अन्दर (पश्चिम की मनगढ़त) ग़लतियाँ तलाश करती थी, परन्तु उस समय इसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब उसे इस अमर पुस्तक में अपने हर उस सवाल का संतोषपूर्ण जवाब मिल गया, जो बचपन ही से उसके मन–मस्तिष्क में उठते रहते थे। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ माह बाद ही उसने इस्लाम को क़बूल करने का एलान कर दिया और अब उसका इस्लामी नाम मारिया है।

पच्चीस साल की युवा अमेरिकन डॉक्टर अपनी कहानी आप ही बयान करते हुए कहती हैं—

''अमेरिका के राज्य कलीवलैंड में मेरा पालन–पोषण एक धार्मिक कट्टर कैथोलिक परिवार में हुआ। मनोविज्ञान में मैंने बी०ए० की डिग्री हासिल की। उसके बाद मैंने मेडिकल कॉलेज में प्रवेश ले लिया। इस समय मैं एम०ए० का लेख तैयार कर रही हूँ। मैं अपने धार्मिक विश्वासों, विचारों और कल्पना से सन्तुष्ट नहीं थी। मुझे हमेशा एक धुंधली और अनजानी सी बेचैनी व व्याकुलता सताती रहती। और त्रिवाद के स्वरूप और उसकी वास्तविकता के सम्बन्ध में मेरे मन में नाना प्रकार के प्रश्न उठते रहते। कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट और आर्थोडॉक्स समुदायों में बँटकर मसीहियत का विचार क्यों बदल जाता है? और हर एक के अन्दर इसका एक विशेष अर्थ क्यों निर्धारित हो जाता है? मेरा ईमान तो केवल एक अल्लाह पर था। मैं ग़लती और सच्चाई और सत्य और असत्य के बीच अन्तर करने में सक्षम थी। मगर इस्लाम के सम्बंध में गंभीरतापूर्वक कभी इस दृष्टिकोण से न सोचा कि यह भी कोई

स्वीकार्य और अनुकरणीय धर्म है। इस्लाम के बारे में मेरी जो धारणा थी, वह केवल यह थी कि यह आतंकवाद, कट्टरवाद और रुढ़िवाद का धर्म है और यह कि मुसलमान हत्या, ख़ून-ख़राबा और अत्याचार को पसन्द करनेवाली एक जंगली क़ौम है।''

श्रीमती मारिया आगे कहती हैं—

''मेरे इस्लाम को क़बूल करने की कहानी का आरम्भ उस समय हुआ जब मैंने यूनीवर्सिटी में प्रवेश लिया और पवित्र क़ुरआन के अनुवाद का आलोचनात्मक ढंग से अध्ययन आरम्भ किया ताकि मुझे यह मालूम हो सके कि आया यह सच है या झूठ। लेकिन उस समय मैं आश्चर्य और ख़ुशी की मिली-जुली भावनाओं में डूबकर रह गई। जब मैंने देखा कि इस्लाम का अक़ीदा तो बड़ा स्पष्ट, रौशन और साफ़-सुथरा है और इसके अन्दर जो ख़ुदा की धारणा है वह भी धूमिल नहीं है। 'तुम्हारा माबूद (पूज्य) केवल एक ही माबूद है।' अध्ययन के बाद मुझे एक प्रकार की मानसिक तृप्ति, हार्दिक सन्तुष्टि एवं शांति प्राप्त हुई और जो-जो सवाल मेरे मन में उठ रहे थे क़ुरआन में मुझे हर एक का सन्तोषजनक जवाब मिल गया। इसके बाद तो मैंने पवित्र क़ुरआन और अन्य इस्लाम से सम्बन्धित विषयों के अध्ययन को अपना प्रिय काम बना लिया और इस्लाम को गहराई से समझने के लिए ख़ूब अच्छी तरह अध्ययन किया। अतः इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) और आपके पवित्र साथियों की जीवनी और इस्लामी इतिहास का भी अध्ययन किया। इस्लाम ने महिला को जो स्थान और पद और अधिकार सदियों से दे रखे हैं उसने मेरी निगाहों को चकाचौंध कर दिया। जबकि अमेरिका में औरतों के अपने अधिकारों की प्राप्ति और बराबरी की माँग का इतिहास कुछ वर्षों से अधिक नहीं।

इसके बाद दूसरा क़दम मैंने यह उठाया कि मुस्लिम मर्दों-औरतों और उनके पारिवारिक जीवन की जाँच-परख का आरम्भ किया और उनके सामाजिक जीवन की तुलना की और यह भी मेरा सौभाग्य है कि मेरी मुलाक़ात कुछ धार्मिक और सज्जन मुस्लिम घरानों से हो गई। उनकी जीवन-शैली, सामाजिक और पारिवारिक व्यवहार, बच्चों की देखभाल और उनके साथ स्नेह व प्रेम का बर्ताव देखकर मैं आश्चर्य चकित रह गई। मैंने देखा कि पति-पत्नी आपस में एक-दूसरे से प्यार और मुहब्बत का मामला करते हैं और एक-दूसरे के प्रति

अपनी ज़िम्मेदारियों को महसूस करते हैं और इसके विपरीत जो भी काम करता है उसका सम्मान करता है और यह वह बात है जो अमेरिका के ईसाई घरानों में पाई ही नहीं जाती।

इस्लाम में औरतों के लिए जो क़ानून और धर्मादेश विशेष रूप से दिए गए हैं उनमें कौन–सा क़ानून और धर्मादेश सर्वाधिक पसन्द आया? इसके जवाब में उन्होंने फ़ौरन कहा 'पर्दा' क्योंकि मुझे पूर्ण विश्वास और सन्तोष है कि औरत का अपने शरीर को ढके रखना इस कारण नहीं है कि वह पुरुषों से कमतर है, बल्कि यह उसकी सुरक्षा, आदर और सम्मान का विशेष अधिकार है। इस प्रकार इस्लाम तलाक़शुदा औरतों को एक विशेष अवधि तक ख़र्च देता है और इससे बढ़कर उसे पति के घर में रहने की अनुमति भी देता है। अगर अमेरिका में ऐसा होता तो हज़ारों तलाक़शुदा औरतें बेघर, दर–बदर मारी–मारी न फिरतीं। फिर यह कि इस्लाम ने औरतों की अस्ल ज़िम्मेदारियों का भी स्पष्टीकरण किया है, जैसे यह कि वह अपने घर और बाल–बच्चों की देख–भाल करे, क्योंकि बच्चों की शिक्षा–दीक्षा के लिए समय देना वास्तव में सांस्कृति और नागरिक जीवन के निर्माण और विकास के समान है। ऐसा न होने की सूरत में बच्चे बेलगाम ऊँट की तरह बग़ैर किसी प्रशिक्षण के पलेंगे–बढ़ेंगे, जैसा कि आजकल अमेरिका में आम तौर से देखने को मिलता है।

अमेरिकियों के नज़दीक इस्लाम की अवधारणा अत्यन्त घिनावनी और विकृत है जो बहुत हद तक राजनीति से सम्बद्ध है। मानसिक रूप से वे इस्लाम को लड़ाई–झगड़े का धर्म समझते हैं। जो हमेशा हत्या, ख़ून–ख़राबा, आतंकवाद और हिंसा के लिए उतारु रहता है। अतः वे कभी भी इस्लाम को एक जीवन व्यवस्था के रूप में नहीं देखते। इसलिए हमारे लिए जो सर्वाधिक आवश्यक काम है वह यह कि हम उन्हें इस्लाम का हर पहलू से परिचय कराएँ और उन्हें यह बताएँ कि इस्लाम एक पूर्ण एवं सार्वभौमिक जीवन–व्यवस्था है और उनके सामने व्यावहारिक जीवन में अच्छा नमूना पेश करें। यह तभी हो सकता है जब हम व्यावहारिक रूप से सच्चाई के साथ क़ुरआन और सुन्नत के आदेशों पर अमल करें और अपने सामाजिक और पारिवारिक जीवन को इस्लामी सिद्धान्तों पर ढालें।

☐☐☐

64. श्रीमती महमूदा कानोली

(Mrs. Mahmuda Cannoli)

(आस्ट्रेलिया)

जब भी मुझसे कोई पूछता है कि मैं मुसलमान क्यों हुई ? तो मैं जवाब देती हूँ कि इस्लाम क़बूल करने से पहले मैं मुसलमान ही थी, हालाँकि मैंने इस्लाम का नाम तक न सुना था। जब मैं सोचने–समझने की उम्र को पहुँची तो जल्द ही मैंने अपने पैतृक धर्म ईसाईयत को त्याग दिया, इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि जब भी ईसाई धर्म की किसी शिक्षा या चर्च के किसी लेक्चर के बारे में मेरे मन में कोई सन्देह या प्रश्न पैदा होता और मैं किसी धार्मिक व्यक्ति या साधारण व्यक्ति से इस बारे में प्रश्न करती तो एक ही रटा रटाया उत्तर मिलता कि चर्च के सम्बन्ध में कोई प्रश्न मत करो और बुद्धि को बीच में न लाओ। यह आस्था का विषय है, इसे बिना सोचे–समझे स्वीकार कर लो।

उम्र के इस हिस्से में अभी मुझमें यह कहने का साहस न था कि मैं उस आस्था को ग्रहण नहीं कर सकती जिसे मैं समझ ही नहीं सकती, और यह सोच मेरी ही न थी बल्कि अनगिनत ईसाईयों की यही सोच थी, वे नाम मात्र ईसाई थे और इसी धार्मिक रवैये के कारण वे ईसाईयत से बहुत दूर चले गए थे। बहरहाल, मैंने रोमन कैथोलिक चर्च को त्याग दिया और तसलीस अर्थात तीन ईश्वरों की धारणा को छोड़कर एक ईश्वर की धारणा को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मैंने ईसाईयत के अंधविश्वासी, रहस्यमय एवं चमत्कारिक शिक्षाओं से मुक्ति प्राप्त कर ली और मेरा जीवन सार्थक एवं असीम अर्थों से अवगत हो गया।

अब मैंने अपने आसपास फैले तथ्यों पर सोच–विचार शुरू कर दिया तो मुझे हर ओर ख़ुदा की क़ुदरतों के जलवे नज़र आने लगे। पेड़ों में, फूलों में, पक्षियों और जानवरों में मुझे ईश्वर के करिश्मे नज़र आते हैं। मैं उन्हें समझ तो न पाती, मगर उन्हें देखकर हैरान और स्तब्ध होकर रह जाती और मेरी आत्मा

सच्ची ख़ुशी से झूम उठती। चर्च की शिक्षा यह थी कि हर व्यक्ति जन्म से ही पापी है, लेकिन जब मैं नवजात शिशु को देखती तो मुझे यह बच्चा ईश्वरीय रचना का बेहतरीन नमूना नज़र आता और हुस्न और मासूमियत का एक अनोखा नमूना भी। तब मुझे ईसाईयत की इस शिक्षा में बड़ी बदसूरती महसूस होने लगती।

यह मेरा बड़ा सौभाग्य और ईश्वर की बड़ी कृपा है कि एक दिन मेरी बेटी इस्लाम धर्म के बारे में एक किताब ले आई। यही इस्लाम से मेरा सर्वप्रथम परिचय था। यह इतना भरपूर और व्यापक था कि हम माँ-बेटी दोनों बहुत प्रभावित हुईं और इस विषय पर जितनी किताबें उपलब्ध थीं, हमने प्राप्त कर लीं और पढ़ डालीं। हमें यह जानकर ख़ुशी हुई कि इस्लाम की मौलिक शिक्षाओं पर तो हम पहले से ईमान रखते हैं और यह सब हमारी आत्मा की आवाज़ थी। हालाँकि जब मैं ईसाईयत पर विश्वास रखती थी तो इस्लाम के बारे में जो कुछ मैंने सुन रखा था वह यह था कि यह एक ऐसा धर्म है जिसमें मानवता और गम्भीरता के लिए कोई स्थान नहीं है। इसका नाम आए तो क़हक़हा लगाकर इसे मज़ाक़ में उड़ा देना चाहिए।

परन्तु इन किताबों के अध्ययन से ऐसा लगा, जैसे बीच में कोई मोटा पर्दा था, जो उठ गया और ईश्वर स्वयं मुझसे वार्तालाप कर रहा है। इसके साथ चमत्कार यह हुआ कि मेरे मन में जो प्रश्न थे और जिनका मेरे माहौल में किसी के पास कोई उत्तर न था, एक-एक करके सब हल हो गए और मुझे और मेरी बेटी को पूरे तौर पर दिली इत्मीनान हासिल हो गया। फिर एक दिन हम दोनों ने इस्लाम की मुबारक चादर अपने सिर पर ओढ़ ली। मेरी बेटी ने रशीदा नाम पसन्द किया और मैंने महमूदा।

अगर आप मुझसे यह सवाल करें कि इस्लाम के किस पहलू ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया तो मैं कहूँगी कि नमाज़ ने। ईसाई धर्म की उपासना में हज़रत ईसा (अलैहि०) को माध्यम बनाकर ईश्वर से सांसारिक नेमतें माँगी जाती हैं, जबकि नमाज़ में ईश्वर से सीधे सम्बन्ध स्थापित होता है। बन्दा अपने पालनहार की महिमागान करता है। उसकी नेमतों पर उसका शुक्र अदा करता है और इस दुनिया और आख़िरत की भलाइयां माँगता है। और स्पष्ट है कि दोनों धर्मों में धरती और आसमान का अन्तर है।

इसका अर्थ यह नहीं कि इस्लाम ईसाई धर्म या दूसरे ईश्वरीय धर्मों का विरोध करता है। नहीं, ऐसा नहीं है, बल्कि इस्लाम ही वह एकमात्र धर्म है जिसमें सारे ईशदूतों को और उनपर उतरने वाली किताबों को सत्य मानना ईमान का एक हिस्सा है। और वह व्यक्ति मुसलमान ही नहीं जो ईसा मसीह (अलैहि०), मूसा (अलैहि०) और अन्य ईशदूतों एवं ईश्वरीय ग्रन्थों का इनकार करता है।

इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) का कथन है—

''हम समस्त ईशदूत मानो एक माँ के बेटे हैं और दूसरे ईशदूतों के मुक़ाबले में मेरी मिसाल ऐसी है मानो एक लम्बी-चौड़ी दीवार हो जिसमें एक ईंट की कमी हो। मैं वही आख़िरी ईंट हूँ।''

फिर भी इस्लाम और दूसरे धर्मों के बीच अन्तर यह है कि ईसाईयत और दूसरे धर्मों और उनकी पुस्तकों में तरह-तरह के फेर-बदल हो चुके हैं। वे शुद्ध ईश्वरीय धर्म और आसमानी किताबें नहीं रहीं, जबकि इस्लाम और पवित्र क़ुरआन में कोई मामूली-सा भी फेर-बदल नहीं हुआ है। यह उसी शुद्ध एवं मूल रूप में आज भी मौजूद है, जिस रूप में उतरा था। इसलिए इस्लाम धर्म को हर पहलू से दूसरे धर्मों पर वरीयता प्राप्त है।

अन्त में मैं अपने पाठकों से अनुरोध करूँगी कि इस्लाम प्रेम, मेल-जोल, एकता एवं अखण्डता की शिक्षा देनेवाला धर्म है। इस्लाम की दोटूक शिक्षा है कि सारे इनसान मर्द और औरतें एक बाप......आदम......और एक माँ.......हव्वा..... की संतान हैं और ईश्वर की नज़रों में वही व्यक्ति आदर एवं सम्मान के योग्य है जो ईश्वर की सृष्टि के लिए अधिक लाभदायक सिद्ध होता है।

□ □ □

65. श्रीमती मरयम

(इंग्लैण्ड)

प्रस्तुत लेख मासिक ''ख़वातीन मैगज़ीन'' लाहौर के अंक जनवरी 1997 ई० में प्रकाशित हुआ। इसे श्रीमती मेहनाज़ बिलाल ने लिखा है।

■ ■ ■ ■ ■

इस वर्ष जो मोरगाह में ईमान की लहर आई तो पूरी आबादी का ईमान ताज़ा हो गया। मोरगाह रावल पिंडी की एक पड़ोस की आबादी है। यहाँ की आफ़ीसर्स कॉलोनी में क़रीब सौ परिवार आबाद हैं। इनमें बहुत-से वर्तमान सर्विस और सेवा निवृत्त फ़ौजी अफ़सर हैं।

मोरगाह एक स्वास्थ्यवर्द्धक और सुन्दर इलाक़ा है। कॉलोनी हरी-भरी है। उबड़-खाबड़ होने के कारण यह पहाड़ी इलाक़ा मालूम होता है। नीचे गहराई में सौआन नदी बहती है। लोग पढ़े-लिखे और एक ही स्तर के हैं। इसलिए आपस में मेल-जोल दोस्ताना है।

इस वर्ष जून में एक नवमुस्लिम अंग्रेज़ औरत कुछ समय के लिए रहने आईं। कहने को तो वह यहाँ इस्लाम सीखने के लिए आईं, लेकिन वास्तव में हमें बहुत कुछ सिखा गईं और हमें शर्मिन्दा भी कर गईं। हम तो मुसलमानों के घरों में पैदा हुईं, इस्लाम विरासत में मिला मगर इसकी क़दर नहीं की, बल्कि नई संस्कृति की मूर्खतापूर्ण बातों से हम इतने प्रभावित हुए कि, ख़ुदा न करे, इस्लाम को आज के दौर में अव्यावहारिक समझा।

नवमुस्लिमों का मामला अलग है, इनमें से जो लोग सोच-समझकर मुसलमान होते हैं, उनकी काया पलट जाती है। वे इस्लाम पर इतना दृढ़ विश्वास रखते हैं कि स्वयं को बड़ी आसानी से बदल लेते हैं। फिर उस पर जमे रहते हैं। उन्हें इस्लाम की न्यायपूर्ण व्यवस्था में ऐसी शान्ति मिलती है जिसका हम अन्दाज़ा नहीं कर सकते। आश्चर्य इस बात पर है कि जिन कामों को हम असंभव समझते हैं उन्हीं कामों को वे कर दिखाते हैं। यह बदलाव केवल दृढ़ विश्वास से ही प्राप्त होता है।

किसी नवमुस्लिम ने पैदाइशी मुसलमान को सच कहा था :

"You are Muslim by chance.....I am muslim by choice"

काश, हममें भी ऐसा ही दृढ़ विश्वास पैदा हो जाए।

मोरगाह के सर्वप्रिय डॉक्टर जनाब सग़ीर अहमद राव के बेटे इमरान राव आज से चार वर्ष पूर्व ब्रिटेन और अमेरिका शिक्षा प्राप्त करने गए। शिक्षा पूरी करने के बाद अपना कारोबार ब्रिटेन में आरम्भ किया तो एक आइरिश महिला न्यूला मेरी (Neula Mary) उनके कारोबार में शरीक हुईं। मैरी का इस्लाम से परिचय इमरान राव के माध्यम से ही हुआ। इस्लाम के प्राकृतिक आकर्षण ने मैरी (Mary) को इस्लाम के अध्ययन की ओर आकर्षित किया। उन्होंने क़ुरआन पढ़ना आरम्भ किया तो दिल का ज़ंग उतरने लगा। मैरी क़ुरआन पढ़ती गई और उसका दिमाग़ बदलता गया। तीसरा पारा मुकम्मल किया तो इस्लाम लाने का फ़ैसला कर लिया। कैसी नेक रूहें हैं जो प्रकाश की पहली किरण पर ही स्वागतम कहती हैं। मैरी का इस्लामी नाम मरयम तय हुआ।

मरयम का इस्लाम लाना आसान न था। वह एक ऐसे परिवार से संबन्ध रखती है, जो अपने धर्म पर कठोरतापूर्ण अमल कर रहा है। इस्लाम लाने के बाद मरयम के लिए अपने रहन–सहन को इस्लामी सिद्धान्तों के अनुसार ब्रिटेन जैसे सेक्युलर देश में ढालना और भी अधिक कठिन था, लेकिन जिसको अल्लाह तौफ़ीक़ दे, उसके लिए कुछ कठिन नहीं।

मरयम की माँ ईसाई धर्म प्रचारिका है। उसके घर पर साप्ताहिक धार्मिक गोष्ठी होती है। ईसाईयत का प्रचार होता है। ऐसे उत्साही धार्मिक घराने की लड़की का इस्लाम को स्वीकार करना घरवालों को पसन्द न हुआ। उन्होंने इस घटना को अपना अपमान समझा, विशेष रूप से मरयम की माँ तो बहुत नाराज़ हुईं। मरयम ने स्कार्फ़ (हिजाब) पहनना आरम्भ किया, यह तो माँ के लिए और भी असहनीय हो गया। मरयम के सिर से स्कार्फ़ ज़बरदस्ती उतार लिया गया। मरयम की छोटी बहन माँ की देखा–देखी, बदतमीज़ी पर उतर आई। उसने आपत्तियाँ करनी आरम्भ कर दीं (कुफ्ऱ की नक़ल कुफ्ऱ नहीं है)। वह कहने लगी तुमने किसका धर्म अपनाया है ? जिसने ग्यारह शादियाँ कीं ? नौ वर्षीय लड़की से भी शादी की।

मरयम अब भी आयरलैंड में अपनी माँ के पास जाती है, तो पहला दिन सुखद रहता है। फिर अगले दिन से तक़ाज़ा शुरू हो जाता है कि चलो चर्च

चलें। धर्म से पलट जाओ, ज़िद का कोई निष्कर्ष नहीं निकलता तो माँ बेटी पर ग़ुस्सा निकालती रहती है।

Our Dialogue के अध्ययन से मरयम को पता चला कि मुसलमानों को हलाल गोश्त खाना चाहिए तो इस पर अमल शुरू कर दिया। माँ को हलाल गोश्त खाने पर मुश्किल से राज़ी किया। बाप मिस्टर शॉन(Mr. Shoun) हलाल गोश्त बाज़ार से ले आता है। उब इमरान ने होटल खोला है, जहाँ हलाल गोश्त इस्तेमाल होता है। मरयम इमरान की पार्टनर है।

जून में मरयम कुछ समय के लिए पाकिस्तान आई। मोरगाह में डॉक्टर राव साहब के यहाँ ठहरीं तो सारी कॉलोनी की औरतों का केन्द्र बन गई। वह इस्लाम सीखने आई है या हमें सिखाने आई है ? इस बात का फ़ैसला मुश्किल है। सम्भव है कि दोनों बातें सही हों। मरयम को जहाँ से भी इस्लाम के हवाले से कोई बात मालूम होती है बिला झिझक तुरन्त उसपर अमल शुरू कर देती है। कितनी भाग्यशालिनी 'सुना और माना' (आमन्ना व सद्दक़ना) का जीता-जागता उदाहरण है। न कोई स्पष्टीकरण, न कोई बहाना, न कोई तर्क-वितर्क, इधर इस्लामी शिक्षा का ज्ञान हुआ और उधर अमल शुरू हो गया। अल्लाह का शुक्र है।

मोरगाह की डॉक्टर श्रीमती फ़रहत के इस्लाम पर लेक्चर से बहुत प्रभावित हैं, डॉक्टर फ़रहत जामिया इस्लामिया इस्लामाबाद में पढ़ाती हैं। अलहुदा इंटरनेशनल के नाम से एक संस्था इस्लामाबाद में चला रही हैं, जो लड़कियों और औरतों के लिए ख़ास है। इसमें क़ुरआन की तजवीद (पाठन-विधि), अनुवाद और भाष्य (तफ़्सीर) के अतिरिक्त हदीस की शिक्षा दी भी जाती है। मरयम ने डॉक्टर फ़रहत से इस्लाम सीखा और सुबह की सैर में श्रीमती ताहिर के साथ बातचीत रही और बहुत-सी जानकारियाँ उन्हें इस प्रकार प्राप्त हुईं।

डा० फ़रहत रावल पिंडी में साप्ताहिक धार्मिक प्रवचन करती हैं, मोरगाह से बहुत-सी औरतें बड़े शौक़ से शरीक होती हैं। मरयम ने भी वहाँ जाना आरम्भ कर दिया। डॉ० फ़रहत के मार्गदर्शन में मरयम ने धर्म को समझा। डॉक्टर साहिबा ने उन्हें पढ़ने को किताबें दीं। मरयम को और क्या चाहिए था अध्ययन की बड़ी शौक़ीन है। दिन-रात अध्ययन में व्यस्त रही। अरबी सीखने

का भी शौक़ है, सही बुख़ारी का अंग्रेज़ी अनुवाद पढ़ रही है।

मरयम जो बात सीखती है उसपर सख़्ती से अमल करती है, पर्दे के आदेश मालूम हुए तो स्कार्फ़ पहनना शुरू कर दिया। डॉक्टर फ़रहत के लेक्चर में पहली बार शरीक हुईं तो बड़ी हैरान हुईं कि औरतों ने बुरक़े उतार दिए थे। मरयम ने आपत्ति की तो उसे समझाया गया कि महिलाओं की गोष्ठी में पर्दे के बारे में छूट है। यह सुनकर अब मरयम घर में भी इस मामले में कुछ नरम हुई है।

इस्लाम लाने के बाद मरयम किस प्रकार बदल गई है इसका अन्दाज़ा उसकी दिन–चर्या से लगाया जा सकता है, मरयम ने टी॰ वी॰ एक वर्ष से नहीं देखा। हमारे घरों में टी॰ वी॰ देखती है तो हैरान होती है। पाँच वक़्त नमाज़ पढ़ती है। नमाज़ पूरा मन लगाकर और समर्पण भाव से पढ़ती है। नमाज़ में रोती भी है। अस्त्र की नमाज़ के बाद पाबंदी से माँ–बाप के इस्लाम लाने की दुआ करती है। नमाज़ की आदत ऐसी पक्की हो चुकी है कि मरयम रात को अलार्म लगाकर नहीं सोती, सुबह समय पर आँख खुल जाती है।

मरयम जून के गर्म महीने में पाकिस्तान आई। उसे धूप बहुत पसन्द है। ब्रिटेन में तो सूरज ही नहीं निकलता। मरयम को धूप ऐसी पसन्द है कि कभी गर्मी की शिकायत नहीं की, कहती है पाकिस्तान बहुत पसन्द आया।

मोरगाह में मरयम की मंगनी इमरान के साथ हो गई। इमरान के दादा बहुत ख़ुश हुए, मरयम जुलाई में ब्रिटेन वापस चली गई। उसे वापसी पर उमरे का बहुत शौक़ था, मार्च में इमरान से उसकी शादी हो गई।

66. मरयम अहमद

(आस्ट्रेलिया)

पैतृक रूप से मेरा सम्बन्ध ईसाईयत से है लेकिन अनगिनत ईसाईयों की तरह मैं भी अपने धर्म से सन्तुष्ट न थी और सच्चाई की तलाश में परेशान थी। लेकिन इस्लाम के बारे में कुछ भी न जानती थी, बस धूमिल-सी जानकारी थी। इसी लिए मैंने गम्भीरता के साथ इसके बारे में कभी भी नहीं सोचा था।

सौभाग्य से मुझे एक ऐसी संस्था में नौकरी मिल गई, जहाँ कुछ मुसलमान भी काम करते थे। मैं उनके सामान्य व्यवहार से प्रभावित हुई और इस्लाम के बारे में जानना चाहा। लेकिन वे बेचारे कम जानकार थे और अपेक्षित जानकारी देने में सक्षम न थे। इसलिए मैंने स्थानीय पुस्तकालय से सम्पर्क किया और इस्लाम और इस्लामी इतिहास के हवाले से अध्ययन आरम्भ कर दिया और लाइब्रेरी में जितनी सम्बन्धित पुस्तकें थीं, सब पढ़ डालीं।

मेरी रुचि और प्यास का यह हाल था कि मैंने विभिन्न इस्लामी संस्थाओं से भी सम्पर्क किया, विशेष रूप से लाकम्बा (lakemba) में इस्लामिक वीमेन सेंटर से मुझे असाधारण सहायता मिली। मैंने बहुत-सी नवमुस्लिम औरतों से रहनुमाई हासिल की। इन औरतों का व्यवहार बहुत प्रोत्साहित करने वाला था। उन्होंने मुझे अपने घरों में बुलाया और कुछ परिवारों के यहाँ तो मैं कई कई दिन रही। इस प्रकार इस्लामी जीवन-शैली को समझने का स्वर्णिम अवसर मिला और मुझे यह फ़ैसला करने में देर न लगी कि इस्लामी जीवन-शैली प्रत्येक दृष्टि से स्वाभाविक, आरामदेह और शान्तिपूर्ण है। इस प्रकार मैंने इस्लाम क़बूल करने का इरादा कर लिया। नमाज़ पढ़ने का तरीक़ा सीखने लगी। इस उद्देश्य के लिए मैं अरबी भाषा भी सीखने की कोशिश करने लगी और पूरी सन्तुष्टि के बाद मैंने मुसलमान होने का एलान कर दिया।

मैं अपने पाठकों को बताना चाहती हूँ कि मेरे नज़दीक इस्लाम, सत्य और यथार्थ पर आधारित एक ऐसी पूर्ण जीवन व्यवस्था है जो वर्तमान काल की परेशान हाल (Confused) दुनिया को मानसिक शान्ति प्रदान कर सकती है और हर प्रकार के सामाजिक, भौतिक और नैतिक और आर्थिक समस्याओं का

व्यावहारिक समाधान भी प्रस्तुत करती है.......अतः मैंने उस पवित्र वाणी को जिसे अल्लाह ने अपने पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर उतारा था, बग़ैर किसी बहस और छान–बीन के क़बूल कर लिया और पश्चिमी जीवन–शैली को त्याग कर जो भौतिक हानि उठाई इस्लाम ने मुझे उससे बढ़कर प्रदान कर दिया। मेरा परिवार, सगे–सम्बन्धी और मित्र सब मेरे विरोधी बन गए। उन्होंने मेरा बाईकॉट कर दिया, लेकिन अल्लाह का शुक्र है कि नमाज़ और सब्र के साथ मेरा रिश्ता मज़बूती से क़ायम रहा। यहाँ तक कि स्थिति काफ़ी बदल गई। माशाअल्लाह, मेरे बच्चे इस्लाम में गहरी रुचि लेने लगे हैं और मेरी एक बेटी और उसके पति और बच्चों ने इस्लाम स्वीकार कर लिया है।

अल्लाह का शुक्र है कि परिस्थितियों के प्रतिकूल होने के बावजूद एक मुसलमान की हैसियत से मैंने अपनी व्यक्तिगत पहचान बनाए रखी है। मैं सिर पर स्कार्फ़ ओढ़ती हूँ, ढीला–ढाला पर्देवाला इस्लामी लिबास पहनती हूँ और फ़ैशन और दिखावे का हर तरीक़ा छोड़ चुकी हूँ। आम लोगों की बातचीत से अब भी मुझे भय होता है और उनके रंग–ढंग बिल्कुल मूर्खतापूर्ण लगते हैं। मैं सभी लोगों से सौहार्द के साथ मिलती हूँ, लेकिन उनके समारोहों में गपशप में शामिल नहीं होती। नतीजा यह है कि मैं जिस सोसाइटी में पैदा हुई और पली–बढ़ी थी, अब उसके लिए क़तई अनजान और पराई बन गई हूँ, लेकिन अल्लाह का शुक्र है, ख़ुश और संतुष्ट हूँ। मैंने जीवन का रहस्य पा लिया है और समझ गई हूँ कि एक मुसलमान की हैसियत से क्या करना है और एक मोमिन की जीवन–शैली कैसी होनी चाहिए।

मिसाल के तौर पर रमज़ान का महीना आता है तो आफ़िस में काम के बीच भोजनावकाश में हम कुछ लोग मुसलमान हैं। वे दूसरों से अलग हो जाते हैं, यहाँ तक कि ऑफ़िस पार्टियों में शामिल होते हैं, लेकिन खाने में शामिल नहीं होते। तब हम बताते हैं और स्पष्ट करते हैं कि रोज़े का फ़लसफ़ा (दर्शन) क्या है और इससे शारीरिक और आध्यात्मिक लाभ क्या है? लोग ध्यान से सुनते हैं और देखने में आया है कि प्रभावित होते हैं। इस्लाम और मुसलमानों के विषय में उनकी सोच और प्रतिक्रया में सकारात्मक परिवर्तन होता है।

इस प्रकार इस्लाम क़बूल करके अल्लाह का शुक्र है, मैंने बहुत कुछ

प्राप्त कर लिया है। आत्मिक और मानसिक दृष्टि से बाहरी शान्ति मिली है। सीधे रास्ते पर साबित क़दमी नसीब हुई है और मुसलमान भाइयों और बहनों से निष्कपट और विशुद्ध प्रेम पर आधारित स्नेह और बन्धुत्व की नेमत प्राप्त हुई है कि इस सोसाइटी में हमारी समस्याएँ और मुश्किलें एक समान हैं....... और सबसे बढ़कर मुझे एक जीवन साथी मिल गया है, जो बड़ा ही सच्चा साथी और बाअमल मुसलमान है, जिसने मेरे ईमान को पूरा कर दिया है और इस्लाम के दूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर उतरने वाले अल्लाह के कलाम अर्थात पवित्र क़ुरआन को समझने और उसपर अमल करने में मेरा सहायक है।

□□□

67. श्रीमती मरयम जमीला

(अमेरिका)

श्रीमती मरयम जमीला न्यूयार्क (अमेरिका) के एक यहूदी परिवार में पैदा हुईं। इस्लाम क़बूल करने से पूर्व ही से वे आम अमेरिकी और यहूदी औरतों की डगर से हट कर पवित्र आचरण और सम्मानित जीवन व्यतीत कर रही थीं।

मुसलमान होने के बाद वे पाकिस्तान आ गईं और उन्होंने असाधारण उल्लेखनीय ज्ञान एवं धर्म सम्बन्धी सेवाएं की हैं। अब तक उनकी एक दर्जन से अधिक अंग्रेज़ी किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं, जो अपने महत्त्व, प्रामाणिकता, विषयों और विचारों की गहराई, अर्थ और विस्तृत प्रभाव के कारण दुनिया भर के शैक्षिक केन्द्रों से प्रशंसा प्राप्त कर चुकी हैं। उनकी पुस्तकों में 'इस्लाम एंड मॉडर्निज़्म' (Islam and Mordernism), 'इस्लाम इन थिओरी एंड प्रेक्टिस' (Islam in Theory and Practice), 'वेस्टर्न सिविलाइज़ेशन कोंडेम्स इटसेल्फ़' (Western Civilisation Condemns itself Two Volumas) इत्यादि शामिल हैं। प्रस्तुत लेख श्रीमती के लेखों की रौशनी में तैयारी किया गया है।

▪ ▪ ▪ ▪ ▪

क़ुरआन से मेरा परिचय आश्चर्यजनक ढंग से हुआ। मैं बहुत छोटी थी, जब मेरे कानों को संगीत से असामान्य रुचि हो गई। विभिन्न गीतों और क्लासिकल ओपेरा के रिकार्ड पहरों मेरे कानों को लोरियां देते रहते। अतः मेरी उम्र लगभग ग्यारह वर्ष की थी, जब एक दिन संयोगवश मैंने रेडियो पर अरबी संगीत सुन लिया, जिसने दिल और दिमाग़ को ख़ुशी के एक अजीब एहसास से भर दिया। नतीजा यह हुआ कि मैं फ़ुरसत के क्षणों में बड़े चाव से अरबी संगीत सुनती, यहाँ तक कि एक समय आया कि पसन्द और रुचि की धारा ही बदल गई। मैं अपने पिता के साथ न्यूयार्क के शामी दूतावास में गई और अरबी संगीत के बहुत–से रिकार्ड ले आई। उन्हीं में सूरे मरयम की अत्यन्त मनमोहक तिलावत भी थी, जो उम्मे कुलसूम की बेहद सुरीली आवाज़ में रिकार्ड की गई थी (याद रहे उम्मे कुलसूम बुनियादी तौर पर क़ारिया थी, उसने गायिका का

तुच्छ पेशा बाद में अपनाया)। अगरचे मैं उन गीतों के अर्थ से बेख़बर थी, मगर अरबी भाषा की आवाज़ों और सुरों से मुझे बेपनाह मुहब्बत हो गई थी। सूरे मरयम की तिलावत तो मुझपर जादू कर देती थी।

अरबी भाषा से इस गहरे लगाव ही का नतीजा था कि मैंने अरबों के बारे में किताबें पढ़नी शुरू कीं, विशेष कर अरबों और यहूदियों के सम्बन्ध में ढूंढ–ढूंढकर किताबें हासिल करती और देखकर बहुत हैरान हुई कि अगरचे अक़ीदे के एतबार से यहूदी और अरब एक दूसरे से बहुत क़रीब हैं, मगर यहूदी इबादतख़ानों में फ़िलिस्तीनी अरबों के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त ज़हर उगला जाता है। साथ ही ईसाईयों के व्यवहार ने मुझे बहुत मायूस किया। मैंने ईसाईयत को पेचीदा और जटिल समस्याओं के गोरख धन्धे से अतिरिक्त कुछ न पाया, और चर्च ने विभिन्न नैतिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विसंगतियों के साथ जिस असीम समझौते का सिलसिला शुरू कर रखा है उसने विशेष रूप से मुझे परेशान किया। मैंने यहूदी और ईसाई धर्म स्थलों को बहुत क़रीब से देखा और दोनों को कपटाचार और बुराई के दलदल में डूबे हुए पाया।

मैं नस्ल की दृष्टि से यहूदी थी। इसलिए यहूदियत का अध्ययन करते हुए जब मैंने महसूस किया कि इस्लाम ऐतिहासिक रूप से उसके बहुत क़रीब है तो स्वाभाविक रूप से इस्लाम और अरबों के बारे में जानने का शौक़ पैदा हुआ। अरबी भाषा की मुहब्बत ने इस शौक़ को बढ़ा दिया।

1953 ई० की गर्मियों के मौसम में मैं बहुत बीमार पड़ गई। मैं बिस्तर पर थी, जब एक शाम मेरी माँ ने पब्लिक लाइब्रेरी जाते हुए मुझसे पूछा कि मैं कोई किताब तो नहीं मँगाना चाहती हूँ। मैंने क़ुरआन की एक प्रति के बारे में अनुरोध किया और वे आते समय जॉर्ज सेल का एक अनुवाद ले आईं और इस प्रकार क़ुरआन से मेरे सम्पर्क का आरम्भ हुआ।

जॉर्ज सेल अठारहवीं शताब्दी का एक ईसाई विद्वान और प्रचारक था, मगर भेदभाव पूर्ण और संकीर्ण दृष्टिकोण वाला आदमी था। उसके अनुवाद की भाषा अस्पष्ट और कठिन है और हाशियों पर अनावश्यक और संदर्भ से कटकर ऐज़ावी और ज़महशरी के हवाले दिए गए हैं, ताकि ईसाई दृष्टिकोणों से इन्हें ग़लत साबित किया जा सके। अतः एक बार तो मैं इसे बिलकुल न समझ सकी। क़ुरआन मुझे बाइबल की बेहंगम कहानियों के असंबद्ध संग्रह से

कुछ ही बेहतर नज़र आया। मगर मैंने इसका अध्ययन छोड़ा नहीं और इसे तीन दिन और रात क़रीब लगातार पढ़ती रही यहाँ तक कि थक कर दुबली हो गई।

इसी बीच सौभाग्य से किताबों की एक दुकान पर मैंने मुहम्मद मारमा ड्यूक पिकथॉल का एक क़ुरआन का अनुवाद देखा। ज्यों ही मैंने इस किताब को खोला एक ज़बरदस्त खोज मेरे सामने आई। भाषा की सुन्दरता और शैली की उत्कृष्टता मुझे अपने साथ बहा ले गई। प्रक्कथन के पहले ही पैराग्राफ़ में अनुवादक ने बड़े सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया है कि यह क़ुरआन के अर्थ को......जैसा कि आम मुसलमान इसे समझते हैं अंग्रेज़ी भाषा में प्रस्तुत करने की एक कोशिश है और जो व्यक्ति क़ुरआन पर विश्वास नहीं रखता, इसके अनुवाद का हक़ अदा नहीं कर सकता। संसार का कोई अनुवाद अरबी क़ुरआन की जगह नहीं ले सकता.....आदि। मैं फ़ौरन समझ गई कि जॉर्ज सेल का अनुवाद नागवार क्यों था? अल्लाह स्व० पिकथॉल को असीम रहमतों से नवाज़े। उन्होंने बरतानिया और अमेरिका में क़ुरआन को समझना आसान बना दिया और मेरे सामने भी रौशनियों के दरवाज़े खोल दिए। अतः पहली बार मैंने तौरात की संकीर्ण और जड़तापूर्ण जातिवाद के मुक़ाबले में क़ुरआन की व्यापक अन्तर्राष्ट्रीयता का अवलोकन किया। अमिट और शाश्वत मूल्यों के लिए मेरी बेक़रारी को शान्ति मिल गई। मुझे इस्लाम में हर वह अच्छी, सच्ची और हसीन चीज़ मिल गई, जो जीवन और मृत्यु को सार्थकता और उद्देश्य प्रदान करती है, जबकि अन्य धर्मों में सत्य बिगड़कर रह गया है। उसको टुकड़ों में बांट दिया गया है। उसके चारों और कई प्रकार के घेरे बना दिए गए हैं। क़ुरआन और उसके बाद मुसलमानों के इतिहास के अध्ययन से मुझे विश्वास हो गया कि अरबों ने इस्लाम को उच्चता प्रदान नहीं की, बल्कि यह इस्लाम है जिसके द्वारा अरब सारे संसार में सफल और विजयी हुए।

मेरी बीमारी का सिलसिला वर्षों चलता रहा, यहाँ तक कि 1959 ई० में पूरी तरह स्वस्थ होकर मैंने अपने समय का अधिकांश भाग पब्लिक लायब्रेरी न्यूयार्क के प्राच्य विभाग (Oriental Division)' में बिताना शुरू किया। यहीं पर मुझे पहली बार हदीस की मशहूर किताब 'मिश्कातुल मसाबीह' के अंग्रेज़ी अनुवाद की चार मोटी किताबों का परिचय हुआ। यह कलकत्ता के मौलाना फ़ज़्लुर्रहमान के प्रयासों का फल था। तब मुझे अन्दाज़ा हुआ कि हदीस के

सम्बन्धित भागों से परिचय के बग़ैर पवित्र क़ुरआन का उचित और विस्तृत बोध सम्भव नहीं। स्पष्ट है कि पैग़म्बर (अलैहि०), जिनपर सीधे ईश्वरीय वाणी (वह्य) उतरती थी, के निर्देश और व्याख्या के बग़ैर ईश्वरवाणी को किस प्रकार समझा जा सकता है, इसीलिए इस बात में कोई संदेह नहीं कि जो लोग हदीस को नहीं मानते वे वास्तव में क़ुरआन का भी इनकार करते हैं।

मिश्कात के विस्तृत अध्ययन के बाद मुझे इस हक़ीक़त में तनिक भी संदेह न रहा कि क़ुरआन ईश्वर वाणी है। इस बात ने इसको बल दिया कि क़ुरआन ईश्वर वाणी है और यह मुहम्मद (सल्ल०) की दिमाग़ी कोशिश का नतीजा नहीं। यह एक शाश्वत सत्य है कि क़ुरआन जीवन के बारे में तमाम बुनियादी सवालों का ऐसा पूर्ण ठोस और सन्तोषपूर्ण जवाब देता है जिसकी मिसाल कहीं और नहीं मिलती।

मैं बचपन में मौत की कल्पना से डरी हुई रहती थी। ऐसा भी होता कि आधी रात को मैं मौत के डर से ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगती थी। प्रायः माँ-बाप से पूछती रहती कि मुझे मौत क्यों आएगी ? और मरने के बाद क्या होगा ? तो वे जवाब देते कि मौत बहरहाल एक अटल सच्चाई है, मगर मेडिकल साइंस जिस प्रकार से तरक़्क़ी कर रही है बहुत मुमकिन है कि इससे तुम्हारी उम्र सौ साल से अधिक हो जाए, किन्तु वे मौत के बाद के जीवन को सख़्ती से रद्द कर देते और क़ियामत या जन्नत और दोज़ख़ को केवल एक अंधविश्वास कहते। इसकी एक वजह तो यह थी कि मेरे माता-पिता संशोधित (संशोधन को पसन्द करनेवाले) यहूदी थे जो बड़ी हद तक मसीही समाज में घुल-मिल चुके थे। अमेरिका में रहनेवाले यहूदियों की अधिकांश जनसंख्या रूसी प्रजाति की है, मगर हमारा घराना जर्मन था, हम लोग रूसियों की तरह अत्याचार व हिंसा के द्वारा बलपूर्वक नहीं निकाले गए थे। बल्कि सौ, सवा सौ वर्ष पूर्व आर्थिक सम्पन्नता की तलाश में स्वेच्छा से अमेरिका आए थे। अतः मेरे माता-पिता और सगे-सम्बंधी अपने इबादतघरों (उपासना स्थलों) को Cynagogue की बजाए Temple कहा करते थे, जहाँ इबादत भी प्रोटेस्टेंट ईसाईयों की तरह हुआ करती थी। संक्षिप्त यह कि शादी-ब्याह की रस्मों के अतिरिक्त हमारे घराने में पक्का अक़ीदा रखसनेवाले यहूदियों वाली कोई भी वैचारिक या व्यावहारिक बात न थी और अमेरिकी समाज की नास्तिकता इस

पर भी हर दृष्टि से प्रभावी हो चुकी थी।

इस विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण का दूसरा कारण यह था कि तौरात, तलमूद और बाइबल में परलोक की धारणा बहुत ही धुंधली है और तमाम पैग़म्बरों, वलियों (बुज़ुर्गों) और नेक लोगों को उनके कर्मों का बदला इसी संसार में मिलता हुआ नज़र आता है, मिसाल के तौर पर हज़रत अय्यूब (अलैहि०) पर आज़माइश आती है, उनके बेटों का देहान्त हो जाता है, उनकी जायदाद और माल सब तबाह हो जाता है और वह स्वयं तकलीफ़देह बीमारी का शिकार हो जाते हैं, तो सब्र का दामन हाथ से छोड़ देते हैं और निराशा की स्थिति में ख़ुदा से शिकायत करने लगते हैं कि वह नेक लोगों को मुसीबत में गिरफ़्तार कर देता है। इस क़िस्से का परिणाम यह होता है कि अंततः उनकी बीमारी भी दूर हो जाती है और बच्चे और माल-दौलत भी दोबारा मिल जाते हैं, गर परलोक के संभावित परिणामों का कहीं कोई वर्णन नहीं मिलता। तलमूद तो खुले आम इसका प्रचार करती है कि 'बदतरीन ज़िन्दगी मौत से अच्छी है।'

इन्हीं कारणों के आधार पर मेरे माता-पिता भी आम लोगों की तरह जीवन के केवल सांसारिक और आर्थिक रूप के मानने वाले थे। जीवन का उद्देश्य ख़ुश रहना और ऐश करना है। वे मेरी बातों के जवाब मे कहा करते, "सुन्दर आरामदायक आवास हो, बुनियादी सुविधाएँ हों, मित्रों की एक मंडली और मनोरंजन के विभिन्न सामान हों, तो जीवन मिसाली है और बस।" सोचने का यही वह सतही दृष्टिकोण था जो पूरे समाज में प्रचलित था। मगर मेरी सोच इस आम धारे से हटकर थी, बहुत बचपन ही से मैं अहम और बुनियादी चीज़ों को पूरा करने की चिन्ता करती थी यहाँ तक कि मौत से पहले इस बात का यक़ीन चाहती थी कि मैंने अपना जीवन व्यर्थ कामों या गुनाहों में नहीं गुज़ारा है। मैं हमेशा से गम्भीरतापूर्वक सोच-विचार करती रही हूँ। अतः उस समय की अपनी जीवन-शैली पर हावी छिछोरेपन से मुझे सख़्त नफ़रत थी। मैं आरम्भ में ही इन बहुत-सी बातों से नफ़रत करती थी, जो मेरी सोसाइटी में बड़े आदर से देखी जाती थी। मेरी प्रतिक्रिया हर उस बात के ख़िलाफ़ बड़ी तीखी होती थी जो मूर्खतापूर्ण और सतही हो, असत्य, असभ्य या बनावटी हो। मैं धन के दिखावे, और ऐशो इशरत की ज़िन्दगी को हमेशा

गिरी नज़र से देखती रही। मेरे दिल में यह विचार धीरे–धीरे बड़ा ताक़तवर हो चुका था कि विज्ञान और तकनीक को मानव जीवन में वरीयता प्राप्त नहीं है, बल्कि दोनों के सिरे अमानवीय सरहदों से मिलते हैं। स्कूल की पढ़ाई के दौरान मेरे प्रिय विषय इतिहास और भाषा विज्ञान रहे और दोनों में मैंने बड़ी महारत हासिल की। व्यस्क होने के समय मेरी सहपाठी लड़कियों के प्रिय काम फ़ैशनेबल लिबास, बनाव–सिंगार, लड़कों के साथ नाच, पार्टियाँ या हम उम्र लड़कों से तनहाइयों में मुलाक़ातें थीं, मगर मैंने इन हालात में अपने ऊपर जब्र करके अपनी सुरक्षा की। शराब या सिग्रेट पीने से इनकार किया। यथासंभव सादा लिबास पहना, ताकि पुरुष जाति के लिए मेरे अन्दर आकर्षण कम से कमतर हो जाए। स्वयं को रिज़र्व रखा, परिणामतः किताबों और विभिन्न प्रकार के गहरे फ़िक्री कामों के प्रति मेरी रुचियां बढ़ती गईं।

मेरे पिता ने एक बार मुझे बताया कि संसार में कोई मूल्य स्थाई नहीं होता, इसलिए हमें बदलते हुए हालात के साथ ख़ुद को बदल लेना चाहिए, तो मेरे दिल ने इसे स्वीकार करने से इनकार कर दिया और मेरी यह प्यास बढ़ती ही चली गई कि मुझे वह चीज़ मिले जो हमेशा बाक़ी रहनेवाली हो और ख़ुदा का शुक्र है कि जब मैंने पवित्र क़ुरआन का अध्ययन किया तो मेरी प्यास बुझ गई और मुझे मेरी वांछित वस्तु मिल गई। मुझे पता चल गया कि अल्लाह को ख़ुश करने के लिए जो भी नेक और भला काम किया जाएगा, वह कभी बरबाद नहीं होगा और संसार में इसका कोई बदला न मिले, फिर भी आख़िरत में इसका इनाम निश्चित है। इसके मुक़ाबले में, क़ुरआन ने बताया कि जो लोग किसी नैतिक सिद्धान्त के बग़ैर जीवन व्यतीत करते हैं और ख़ुदा की प्रसन्नता को नज़र के सामने नहीं रखते। सांसारिक जीवन में वे चाहे कितने ही सफल हों, परन्तु आख़िरत में खुले घाटे में रहेंगे। इस्लाम की शिक्षा यह है कि हमें हर वह निरर्थक और व्यर्थ काम त्याग देना चाहिए जो अल्लाह के हक़ और बन्दों के हक़ के रास्ते में रुकावट बनता हो।

क़ुरआन की इन शिक्षाओं को मेरे सामने हदीस और अल्लाह के दूत मुहम्मद (सल्ल०) के जीवन–चरित्र ने और अधिक स्पष्ट कर दिया, जैसा कि हज़रत आइशा (रज़ि०) ने एक बार फ़रमाया, "आप (सल्ल०) के आचरण क़ुरआन के बिलकुल अनुरूप थे।" अतः वह क़ुरआनी शिक्षाओं का

मुकम्मल नमूना (पूर्ण आदर्श) थे। मैंने देखा कि मुहम्मद (सल्ल०) के पवित्र जीवन का एक एक पहलू मिसाली है। एक बच्चे की हैसियत से एक बाप के रूप में, एक पड़ौसी, एक व्यापारी, एक प्रचारक, एक मित्र, एक सिपाही और एक फ़ौजी जनरल की दृष्टि से, एक विजेता, एक न्यायकर्ता, एक क़ानून निर्माता, एक शासक और सबसे बढ़कर अल्लाह के एक सच्चे प्रेमी की दृष्टि से वह ख़ुदा की किताब की बिलकुल सच्ची मिसाल थे।

फिर नबी (सल्ल०) की दिन भर की दिन-चर्या के विवरण ने मुझे बहुत प्रभावित किया। वह दिन का एक क्षण भी बरबाद न करते और सारा समय अल्लाह और उसके सृष्ट जीवों की सेवा में समर्पित किए रहते। आप (सल्ल०) का अपनी पत्नियों के प्रति व्यवहार अत्यन्त न्यायपूर्ण और अनुपम था। न्याय और इंसाफ़ तथा ईश्वर के प्रति समर्पण और उससे डरने का हाल यह था कि उनकी लाडली बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) ने जायज़ ज़रूरत के लिए एक सेवक का निवेदन किया तो उन्हें अल्लाह से डरने का उपदेश दिया और अपने परिवार पर दूसरे मुसलमानों की ज़रूरतों को प्राथमिकता दी।

इस्लाम के सन्देष्टा मुहम्मद (सल्ल०) ने जीवन का उद्देश्य सांसारिक भोग-विलासिता को नहीं, बल्कि परलोक की सफलता को ठहराया। अत: आप (सल्ल०) की शिक्षा के अनुसार जो व्यक्ति आख़िरत की कामयाबी के लिए सचेत होकर अल्लाह का आज्ञापालन करता है, उसे इस भावनात्मक शान्ति के नतीजे में ख़ुशी और आनन्द स्वयं प्राप्त होता है, जो हज़ार आर्थिक सुविधाओं के बाद भी नहीं मिलता। इसका यह अर्थ नहीं कि आप (सल्ल०) सांसारिक जीवन से अलग-थलग थे, वे दैनिक जीवन की आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखते थे। ख़ुश मिज़ाज और ख़ुश बयान थे। बच्चों के साथ खेल भी लेते थे, लेकिन परलोक के जीवन को ही उन्होंने मूल रूप से ध्यान देने योग्य समझा और भौतिक और आध्यात्मिक जीवन में अत्यन्त सन्तुलन पैदा कर दिया।

क़ुरआन और हदीस के अलावा मैंने इस्लाम के विषय पर अन्य पुस्तकें भी पढ़ीं, जैसे किताबुल हिदाया, जो इस्लामी फ़िक़्ह (क़ानून) की व्याख्या है। इमाम ग़ज़ाली की 'एहयाउ उलूमिद्दीन' के विभिन्न भाग, मुक़द्दमा इब्ने ख़ुल्दून, अल्लामा इक़बाल की कविताएँ और मुहम्मद असद की स्वलिखित जीवनी

'रोड टू मक्का' (Road to macca)। अन्तिम किताब ने मेरी भावनाओं को निर्णायक चरण तक पहुँचाने में बड़ा महत्वपूर्ण रोल अदा किया है। इस किताब में बताया गया है कि आस्ट्रिया के एक यहूदी ने पश्चिमी संस्कृति के खोखले मूल्यों को किस प्रकार ठुकराया और इस्लाम में उसको किस प्रकार अपनी प्यास का सामान मिला।

अध्ययन एवं खोज का यह सिलसिला जारी था कि मेरी मानसिक स्थिति बड़ी तेज़ी से ख़राब होने लगी। मैं बिस्तर पर जा पड़ी, और पूर्णतः निष्क्रिय हो गई, हर इलाज आज़माया गया, एक साल तक मनोवैज्ञानिक और डॉक्टरी दोनों प्रकार का इलाज हुआ, मगर बेफ़ायदा। दूसरे वर्ष केवल मनोवैज्ञानिक चिकित्सा पर ही भरोसा किया गया, मगर बीमारी बढ़ती ही गई। अंततः मुझे दिमाग़ी बीमारियों के एक अस्पताल में भर्ती करा दिया गया, जहाँ मुझे दो वर्षों से अधिक समय तक रहना पड़ा, मेरी बीमारी ने डॉक्टरों को बिल्कुल बेबस कर दिया और एक अवस्था में उन्होंने मेरा निरीक्षण भी बन्द कर दिया, निष्कर्ष यह कि मैं उस समय डॉक्टरी के दृष्टिकोण से लाइलाज हो चुकी थी। परन्तु कुछ ही समय के बाद मैं चमत्कारिक रूप से स्वस्थ होने लगी। मेरे स्वस्थ होने को डॉक्टरी इलाज का कृतज्ञ नहीं कहा जा सकता, न मेरा आत्मविश्वास बहुत अधिक था, मेरा स्वस्थ होना केवल अल्लाह की कृपा का नतीजा था।

जब मैंने अपने माता-पिता को इस बात पर तैयार किया कि वे मुझे अस्पताल से वापस ले जाने की व्यवस्था करें और उसके बाद मैं घर आ गई तो मैंने तय कर लिया कि अब इस्लाम के प्रभावों को व्यावहारिक रूप से अपने जीवन पर लागू करूँगी। आरम्भ में मैंने अपने तौर पर न्यूयार्क के इस्लामी केन्द्र में मुसलमानों से मुलाक़ात और विचार-विमर्श की राहें पैदा कीं और बड़ी ख़ुशी हुई कि जिन लोगों से मेरा सम्पर्क हुआ वे बेहतरीन लोग थे। इस्लामी केन्द्र की मस्जिद में मैंने मुसलमानों को नमाज़ पढ़ते हुए देखा और इस अवलोकन ने मेरे इस यक़ीन को पक्का कर दिया कि केवल इस्लाम ही सम्पूर्ण आकाशीय धर्म है, शेष धर्मों में सच्चाई के केवल विभिन्न अंश मौजूद हैं।

अब मैं इस निर्णायक नतीजे पर पहुँच गई थी कि इस्लाम बहरहाल सत्य धर्म है और इस्लाम ही में वर्तमान युग की सांस्कृतिक बुराइयों का सामना करने और उनपर विजय प्राप्त करने की क्षमता मौजूद है। अतः मैंने जो नए दृष्टिकोण

अपनाए थे उनको प्रकट करने के लिए लेखों का एक सिलसिला आरम्भ किया, यह लेख इंग्लिस्तान, दक्षिणी अफ्रीक़ा, तुर्की स्वीटज़रलैंड, श्रीलंका, भारत और पाकिस्तान की विभिन्न अंग्रेज़ी पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए, सबका शीर्षक और केन्द्रीय विषय–वस्तु एक ही था अर्थात् इस्लाम और पश्चिमी संस्कृति के विभिन्न पहलुओं से बहस करके दोनों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया था। विशेष रूप से मैंने उन तथाकथित आधुनिक सुधारों को बेनक़ाब करने की कोशिश की, जिनका उद्देश्य इस्लाम की बुनियादों को हिलाना है। उन निबन्धों में मैंने यह साबित किया कि पश्चिम की नई–नई संस्कृति किस प्रकार वैचारिक और व्यावहारिक पहलुओं से इस्लाम से टकरा रही है और इन दोनों में किसी चरण में समझौता नहीं हो सकता। मैं मुहम्मद असद की एक और किताब 'इस्लाम एट दी क्रॉस रोड' (Islam at the Cross road) से बहुत प्रभावित हुई। मेरा विचार है यह किताब अपने विषय पर कृति अत्युत्तम की हैसियत रखती है।

बहरहाल, मेरे लेख मुहम्मद असद साहब की किताब से कुछ अधिक स्पष्ट और सरल थे और इनमें मैंने भौतिक समस्या पर कुछ विस्तार से बहस की थी। मेरे लेखों के प्रकाशन ने दुनिया के हर भाग के मुसलमान रहनुमाओं से पत्राचार की राहें पैदा कर दीं। इन्हीं हज़रात में मौलाना सैय्यद अबुल आला मौदूदी (रह०) भी शामिल थे। उन्होंने मेरे एक पत्र के जवाब में लिखा—

"आपकी मानसिक परेशानियों और सद्मों की कहानी में मेरे लिए कोई असम्भावित बात नहीं, अगर कोई व्यक्ति अपने आसपास के सामाजिक वातावरण से निरन्तर टकराता हुआ गुज़र रहा हो और उसे कहीं से मामूली सी हमदर्दी और हौसला न मिले तो ऐसे हालात में उस आदमी की, चाहे वह मर्द हो या औरत, हिम्मत हौसले का बाक़ी रहना असाधारण और अप्राकृतिक बात होगी। आपकी रूचियां, आपकी अभिरूचि, आपके विचार और दृष्टिकोण और आपका आचरण, व्यवहार सारी चीज़ें आपकी सोसाइटी से टकरा रही हैं, जिन परिस्थितियों ने आपको मनोचिकित्सकों या मानसिक रोगों के अस्पताल तक पहुँचाया वह आपके अन्दर किसी मानसिक गड़बड़ी का नतीजा नहीं, बल्कि आप और आपके माहौल के बीच जो खुला हुआ टकराव और विरोध चला आ रहा है। उनसे ऐसे हालात का पैदा होना बिल्कुल प्राकृतिक बात है।

जिस सोसाइटी में आप रह रही हैं, वह आपको उस औरत की हैसियत से कभी क़बूल नहीं कर सकती जो हैसियत आपके विचार में है। वहाँ तो आपकी हर अच्छाई को बुराई ही समझा जाएगा।''

इसी पत्र में मौलाना ने लिखा :

''अगर आप पाकिस्तान आ जाएँ तो यहाँ आप अपने आपको बहुत-से हमख़्याल लोगों के बीच महसूस करेंगी। इसके अतिरिक्त यहाँ लाहौर में कुछ नेक नवयुवक भी मिल सकते हैं जिन्हें आप स्थाई जीवन साथी बना सकती हैं। आप निश्चय ही किसी ऐसे ''संतुलन मय'' व्यक्ति से शादी करना पसन्द नहीं करेंगी जो पाश्चात्य-सभ्यता से प्रभावित हो बल्कि आपको सच्ची ख़ुशी किसी मुस्लिम युवक को जीवन साथी बनाने से ही हासिल होगी। मैं उम्मीद करूँगा कि आप अपने माता-पिता पर यह स्पष्ट कर देंगी कि क्यों आपके लिए अमेरिका में और अधिक रहना सम्भव नहीं और यह बात भी कि आपकी भलाई और कामयाबी इसी में निहित है कि आप पाकिस्तान में स्थाई रूप से रहने लगें। आप अपने माता-पिता को यह भी बता दें कि जिस व्यक्ति ने आपको यह नाज़ुक क़दम उठाने की राय दी है उसने केवल यह राय देने को काफ़ी नहीं समझा है बल्कि वह भविष्य की सभी ज़िम्मेदारियों को उठाने के लिए भी तैयार है। अगर आप और आपके माता-पिता मुझ पर भरोसा करें तो अल्लाह ने चाहा आपके इस भरोसे को कभी ठेस नहीं पहुँचेगी।''

मैंने मौलाना को निम्नलिखित जवाब दिया :

''यह ख़ुदा की कृपा है कि आप सरपरस्ती कर रहे हैं, ख़ुदा का शुक्र है कि अब मैं अकेले संघर्ष करने पर मजबूर नहीं हूँ। मैं आपकी पेशकश क़बूल करती हूँ और दिल की गहराई से आपका शुक्रिया अदा करती हूँ। अल्लाह आपको बेहतरीन बदला दे।''

इसके बाद मैंने न्यूयार्क से एक यूनानी मालवाहक समुद्री जहाज़ से कराची तक का सफ़र किया। गन्तव्य स्थान तक पहुँचने का यही सस्ता सम्भव साधन था। यह सफ़र क़रीब छह सप्ताह तक जारी रहा। जहाज़ के मुसाफ़िर और कर्मचारियों के लोग चूँकि नैतिक और आध्यात्मिक रूप से बड़े गिरे हुए लोग थे। इसलिए सफ़र के दौरान मुझे जीवन के कुछ कड़ुवे अनुभवों से गुज़रना पड़ा। पोर्ट सूडान में तो मुझे इतना ख़तरा महसूस हुआ कि अपनी

सुरक्षा की ख़ातिर पुलिस की निगरानी की दरख़्वास्त करनी पड़ी। बहरहाल इस्कन्दरिया पोर्ट सूडान और जद्दा में मेरे साथ मुसलमान भाइयों ने जो सद्व्यवहार किया, वह बड़ा ही सुखद और शान्तिवर्धक था। इससे मेरी मानसिक पीड़ा बड़ी हद तक कम हो गई।

जब मैं कराची पहुँच गई तो वहाँ मौलाना मौदूदी के श्रद्धालुओं और मित्रों ने मुझे हाथों हाथ लिया और बड़ी आव-भगत की। कुछ दिन बाद जहाज़ के ज़रिये कराची से लाहौर आ गई और मौलाना साहब के घर ठहरी। मौलाना की बच्चियाँ मेरी उम्र की थीं, इसलिए मुझे इस घर में अजनबीयत महसूस न हुई। कुछ समय के बाद मेरा निकाह जमाअत इस्लामी के एक सक्रिय और सत्यनिष्ठ सदस्य मुहम्मद यूसुफ़ से हो गया। ख़ाँ साहब पहले से शादी-शुदा और औलादवाले थे। मगर मैंने इस रिश्ते को ख़ुशी से क़बूल कर लिया कि जाहिलियत के हर निशान का इनकार और नबी (सल्ल०) की हर सुन्नत की पैरवी मेरे जीवन का उद्देश्य है। अल्लाह का शुक्र है मैं अपने नए घर में सुखद और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही हूँ और आज तक किसी उलझन और परेशानी का शिकार नहीं हुई।

□ □ □

68. मरयम मुतवक्किला

(कनाडा)

मरयम मुतवक्किला का सम्बंध टोरंटो (कनाडा) से है। उनका ईसाई नाम Mary Oughtred था। उन्होंने 1974 ई० में सूफ़ीइज़्म या तसव्वुफ़ (सन्तमत) के हवाले से इस्लाम क़बूल किया। इस्लाम क़बूल करने के विभिन्न चरणों की कहानी उन्हीं की ज़बानी प्रस्तुत की जा रही है।

▪ ▪ ▪ ▪

इस्लाम क़बूल करने से पहले मेरी ज़िन्दगी एक पश्चिमी भौतिकवादी औरत की ज़िन्दगी थी, जो आनन्द की प्राप्ति के लिए हर साधन अपना सकती थी और हर काम को जायज़ समझती थी। यह समझिए कि मेरे जीवन के दिन और रात अंधकार में डूबे हुए थे। वह कौन–सा पाप था जो मैंने नहीं किया था और वह कौन–सी बुराई है जो मैंने न की हो...... लेकिन अजीब बात है कि ख़ुशी का यह एहसास बिल्कुल क्षणिक होता था और कुछ ही देर के बाद मेरे अन्तर्मन में एक ऐसी उदासी और ग़म छा जाता था, जो बयान से बाहर है। मायूसी ऐसी जो दिल और दिमाग़ की गहराइयों तक उतर जाती थी और उसका ज़ाहिरी कारण नज़र नहीं आता था।

मेरे दोस्तों में बहुत–से ऐसे लोग थे जो इसी हालत से दोचार थे। किसी ने बताया कि इस उदासी और डिप्रेशन का इलाज एक विशेष प्रकार की साधुआना ज़िन्दगी और विशेष प्रकार के व्यायाम में है। अतः 1972 ई० में तीन साथियों ने फ़ैसला किया कि शहर का जीवन त्याग कर देहाती जीवन को अपनाया जाए। मैंने एक वर्ष पूर्व अपने पति से सम्बन्धों को ख़त्म कर लिया था और अब बिल्कुल आज़ाद जीवन व्यतीत कर रही थी। अतः हम तीनों शहर से दूर घाटी में पीटर (Peter) नामक एक ऐसे व्यक्ति के पास चले गए जो ब्रहमचर्य का जीवन व्यतीत कर रहा था। यद्यपि वह डेढ़ सौ एकड़ के एक फ़ार्म का मालिक था, लेकिन वह लोगों से कटकर बिल्कुल अकेला जीवन व्यतीत करता था। तीन कुत्ते, एक घोड़ा और एक गाय उसके साथी और हमदर्द थे।

हमने पीटर के साथ रहकर बहुत कुछ सीखा। वहाँ जीवन असामान्य रूप से सादा था, न बिजली थी, न कोई और आधुनिक सुविधा। हम सुबह से

शाम तक काम में लगे रहते और जब भूख लगती तो सोयाबीन, जई के बीज और जंगली फलों से पेट की आग बुझा लेते। पीटर बहुत कम बोलता था, लेकिन यह प्रभाव डालने का प्रयास करता था कि विभिन्न विषयों पर उसके पास बहुत सारी जानकारी है। वह हर शाम बाइबल को पढ़ता और सुबह सवेरे ही उठ जाता। वह मसीह के दोबारा आगमन का बेसब्री से इन्तिज़ार कर रहा था। लेकिन उसका विश्वास था कि मसीह (अलैहि०) से मुलाक़ात का मौक़ा कम ही लोगों को मिलेगा। दुर्भाग्य से हम पीटर की सच्चाई ओर धर्मपरायणता से अधिक प्रभावित न हुए और एक महीने बाद कुछ हासिल किए बिना घरों को वापस आ गए।

किन्तु इस अवसर पर मैंने निश्चय कर लिया कि अपनी ग़लतियों का जायज़ा लेकर उन्हें दूर करने की ज़रूर कोशिश करनी चाहिए। मैंने ध्यान दिया तो मुझे लगा कि मेरी अधिकतर समस्याओं और नैतिक कमियों का बड़ा कारण यह है कि मैं सांसारिक और आध्यात्मिक दृष्टि से अपने आपको अकेला महसूस करती हूँ। कोई एक भी व्यक्ति नहीं जो इस भरी दुनिया में सच्चाई और निस्वार्थप्रियता का प्रदर्शन करे और कोई हस्ती नहीं जिससे अपना दुखड़ा बयान किया जा सके। मुझे इसका समाधान यह नज़र आया कि शहर के तेज़ रफ़्तार, उत्तेजनापूर्ण जीवन को त्यागकर एकान्तवास कर लिया जाए। अतः एक दिन मैं चुपके से टोरंटो से निकली और अपनी माँ के झोपड़े जैसे मकान में पहुँच गई, जो एक दूर–दराज़ देहाती इलाक़े में अलग–थलग था और आजकल वहाँ कोई भी नहीं रहता।

यहाँ आकर मैंने एक विशेष प्रकार की शान्ति महसूस की, जिसका अनुभव मैंने पहले कभी नहीं किया था। यहाँ का माहौल बहुत सादा और प्राकृतिक था और मुझे इससे बड़ी राहत मिली। मैं भोर ही में उठ जाती। प्रकृति की नेमतों और कृपाओं से आनन्द लेती और सादा नाश्ता करके विदेश की बनी हुई हाथ से चलनेवाली एक छोटी–सी मशीन पर कपड़ा बुनने लगती और घण्टों तक इसी में लगी रहती। लेकिन दुर्भाग्य से मेरी यह व्यस्तता ज़्यादा दिनों तक जारी न रह सकी। मुझे अचानक ख़बर मिली कि मिशीगन में मेरी माँ को कमर पर गंभीर चोट आई है, जिसकी वजह से वे अपाहिज पड़ी हैं और उन्हें मेरी मदद की बहुत ज़रूरत है।

अतः मैं मिशीगन (अमेरिका) अपनी माँ के घर चली गई। वहाँ छह

सप्ताह रुकी और खाना पकाने और घर की सफ़ाई के अतिरिक्त माता–पिता की देख–भाल भी करती रही। डॉक्टरों ने बताया कि माँ की रीढ़ की हड्डी का ऑपरेशन होगा, जिससे हम डरे भी। लेकिन ख़ुदा का शुक्र है कि इसकी नौबत न आई और वह इसके बिना ही स्वस्थ हो गईं।

अमेरिका का रहन–सहन ख़ुशगवार और सुन्दर था। लेकिन मैं चूँकि पिछले दस साल माता–पिता से दूर रही थी। इसलिए उनके घर में रहते हुए बड़ी बोर हुई और जैसे ही माँ चलने–फिरने के क़ाबिल हुईं, मैंने इजाज़त ली और वापस कनाडा आ गई। मैंने कुछ दिन टोरंटो में गुज़ारे। अपने बहुत–से दोस्तों से मिली। उन्हीं में से एक युवक ने पहली बार मुझे सूफ़ी–इज़्म से परिचित कराया और इससे सम्बन्धित मुझे कुछ किताबें भी दीं। मैं इस विचारधारा से बहुत ज़्यादा प्रभावित भी हुई। लेकिन इसके लिए एक मार्गदर्शक और गुरु की बहुत ज़रूरत होती है, जो दुर्भाग्य से उस समय नहीं मिला, न उपर्युक्त नौजवान इस सम्बन्ध में कोई सहायता कर सका। लगभग एक सप्ताह टोरंटों में रहकर दोबारा मैं अपनी माँ के झोपड़े में पहुँच गई।

यहाँ मैं बहुत सवेरे तीन–चार बजे के बीच जाग जाती। मुनाजात (स्तुति–गान) गाती और देर तक ध्यान की हालत में चिन्तन करती सूर्योदय के समय, दोपहर और तीसरे पहर के बाद मैं बाइबल को भी पढ़ती। शेष सारा समय मैं कपड़ा बुनने में लगाती। कुछ समय तक जीवन इसी डगर पर चलता रहा और धार्मिक मामलों में मेरी रुचि बढ़ती चली गई। मैं प्रत्येक गुरुवार को रोज़ा रखने लगी और एक बार तो मैंने प्रारम्भिक दौर के ईसाईयों के अनुकरण में कुछ खाए पिए बिना तीन दिन का लगातार रोज़ा रख लिया। मुझे बड़ी हैरत हुई कि यद्यपि मुझे इस काम से काफ़ी तकलीफ़ भी पहुँची, लेकिन यह काम ज़्यादा मुश्किल न था। इसके बाद मैंने और आगे बढ़कर उन सभी कला कृतियों को नष्ट कर दिया, जो मैंने विभिन्न अवसरों पर तैयार किए थे। यह दुखद कर्तव्य पूरा करने में मुझे काफ़ी घण्टे लग गए। लेकिन मैंने यह सब कुछ पूर्ण मानसिक शान्ति के साथ पूरा किया। वास्तव में मेरे सामने बाइबल की वह हिदायत थी कि जीवित चीज़ की तस्वीर न बनाई जाए। मैंने संकल्प कर लिया कि भविष्य में तस्वीर नहीं बनाऊँगी।

कलाकृत्तियों को तो मैंने तबाह कर दिया, लेकिन इसके बाद मुझपर

उदासी का सख़्त दोरा पड़ा, जो बड़ी देर तक जारी रहा। किन्तु मैंने स्वयं को संभाला। बाइबल पढ़ती रही और देर तक ध्यान में रही जिसका नतीजा यह हुआ कि मन का बोझ उतर गया और मन शान्त हो गया। यह अलग बात है कि ध्यान और बाइबल के पढ़ने से जो शान्ति मिलती थी, उसकी दशा क्षणिक होती थी। बाद में उदासी, डिप्रेशन फिर मुझे घेर लेती थी।

1973 ई० का क्रिस्मस मैंने माता-पिता के साथ इस प्रकार गुज़ारा कि सारे ध्यान धरे रह गए। मैंने ख़ूब शराब पी और जी भरके धूम्रपान किया और अय्याशी और भोग-विलासिता मेरे जीवन में दोबरा लौट आई और उसी लिहाज़ से परेशानी और उदासी बढ़ती चली गई।

जनवरी 1974 ई० में मेरे हाथ एक किताब लगी, जिसका शीर्षक था 'इंशेंस गॉस्पल ऑफ़ पीस'। इसमें मानसिक शान्ति प्राप्त करने के लिए गुर बायन किए गए थे और दस दिन का ऐसा कोर्स बनाया गया था जिसमें पहले तीन दिन, तीन रात खाने-पीने से पूरी तरह परहेज़ करना था। उसके बाद खुली हवा में लम्बी साँस लेना और नहाना भी शामिल था। अत: यह कोर्स पूरा करने के लिए मैं यू०एस०ए० के दक्षिणी इलाक़ों के सफ़र पर निकल खड़ी हुई, जहाँ मौसम कुछ गर्म था और यह कोर्स कुछ गर्म मौसम ही में पूरा होना था।

मैंने सफ़र के दौरान ही तीन दिन का रोज़ा रख लिया। छठे दिन मैं नार्थ केरोलीना पहुँच गई और प्रोग्राम के अनुसार सातवें दिन मुझे एक पहाड़ी पर चढ़ना पड़ा। लेकिन आठवें दिन मुझे रोज़ा तोड़ना पड़ा। उस दिन कमज़ोरी से मेरा बुरा हाल हो गया। पसीने छूट गए, पूरा शरीर ठण्डा पड़ गया और गुर्दों में दर्द होने लगा। मैंने हार मान ली और प्रोग्राम छोड़ दिया।

मैं बाइबल और अन्य किताबें टोरंटो में ही छोड़ आई थी। अन्त:करण की शान्ति के लिए मुझे अध्ययन की ज़रूरत महसूस हुई, तो मैं एक बुक स्टोर पर गई, वहाँ मैंने अद्‌भुत ढंग से ध्यानस्थ व्यक्ति का पोस्टर लगा हुआ देखा, जो विधिवत रूप से योगाभ्यास विशेषज्ञों द्वारा कराया जाता था। मैंने 45 डॉलर फ़ीस के अदा करके अपना नाम रजिस्टर्ड करा लिया। लेकिन अफ़सोस कि इस ध्यान का कोई विशेष लाभ मुझे नहीं मिला, बल्कि इससे मेरी भूख में और वृद्धि हो गई और वज़न बढ़ने लगा। मैं प्रशिक्षकों से भी बिल्कुल प्रभावित न हुई, किन्तु जैसे-तैसे मैंने कोर्स पूरा कर लिया। जो परिणाम की दृष्टि से बेकार

साबित हुआ। तीन सप्ताह इसमें लगाकर मैं टोरंटो वापस आ गई।

आख़िरकार अल्लाह तआला को मुझपर दया आ ही गई और रौशनी का दरवाज़ा मुझपर खुलने लगा। हुआ यूँ कि एक दिन मैं हेल्थ फूड स्टोर पर गई तो वहाँ सूफ़ीइज़्म के बारे में एक पोस्टर लगा हुआ देखा। मैं अपेक्षित मार्गदर्शक की तलाश से अभी तक मायूस न हुई थी। सोचा शायद यह लक्ष्य सूफ़ीइज़्म द्वारा प्राप्त हो जाए और यह मालूम करके मुझे काफ़ी ख़ुशी हुई कि टोरंटों में सूफ़ियों का एक मज़बूत ग्रुप है और वहाँ पाबंदी से प्रोग्राम होते हैं और लेक्चर दिए जाते हैं।

अतः 14 फ़रवरी 1974 ई० का दिन मेरे जीवन का महत्वपूर्ण और यादगार दिन है, जब मैं पहली बार सूफ़ीइज़्म पर एक लेक्चर में शामिल हुई। वहाँ मैंने जीवन में पहली बार क़ुरआन का पाठ सुना और इतना प्रभावित हुई कि सहसा रोने लगी। फिर मैंने लेक्चर सुना जो शुद्धता, तर्क और जानकारी का ख़ज़ाना था। मैं प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि से निहाल हो गई। ऐसा लगा कि एक लम्बे समय से मैं तूफ़ानी लहरों में थपेड़े खा रही थी और अब किनारे पर पहुँच गई हूँ। एक लम्बे समय से मुझे जिस मार्गदर्शक की तलाश थी वह इस वक्ता के रूप में मुझे मिल गया। वह गौरव, पवित्रता, प्रेम और सच्चाई के पुतले समान था और शुद्धता और सच्चाई की उमंग से उसका चेहरा खिल रहा था।

लेक्चर के बाद सवालों का दौर आया। विभिन्न लोगों ने इस्लाम और क़ुरआन के बारे में सवाल किए जिनके तर्कसंगत व सन्तोषजनक उत्तर दिए गए। अन्त में मैंने उनको बताया कि मैं एक लम्बे समय से किसी ऐसे सच्चे और पक्के मार्गदर्शक की तलाश में हूँ जो मुझे ज़िन्दगी गुज़ारने का सही रास्ता बता सके और मेरी अशान्तियों का उपचार हो सके।

वक्ता महोदय ने मुझे बृहस्पतिवार को अपने घर पर बुलाया, जहाँ सूफ़ी हज़रात की साप्ताहिक गोष्ठी होती थी। मैं वहाँ गई और इस्लाम के विषय में और अधिक जानकारियाँ मुझे मिलीं। क़ुरआन से भरपूर परिचय हुआ और इस्लाम की स्वाभाविक उपासना-विधि से अवगत हुई तो उम्र भर की प्यास बुझ गई। मैंने कलिमा तैय्यिबा पढ़ा। अल्लाह के एकमात्र उपास्य होने और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के ईशदूत (रसूल) होने को स्वीकार किया और अंधकार से निकल कर प्रकाश में आ गई।

□ □ □

69. मोना अब्दुल्लाह मेकलॉसकी

(Mona Abdullah Maclosky)

(जर्मनी)

श्रीमती मोना अब्दुल्लाह मेकलॉसकी का सम्बन्ध जर्मनी से है। उनका पैतृक ईसाई नाम अनतिया मारिया मेकलॉसकी था। उन्होंने 15 जनवरी 1976 ई० को इस्लाम क़बूल किया। आजकल वे बंगला देश में पश्चिमी जर्मनी के दूतावास में राजदूत के पद पर काम कर रही हैं।

क़ाहिरा की अल–अज़हर यूनीवर्सिटी के ऐक्टर शैख़ अब्दुल हलीम महमूद के हाथ पर इस्लाम क़बूल करने के बाद उन्होंने एक अरब मुसलमान हज़रमौत के निवासी अब्दुल्लाह उबैद से शादी कर ली। उन्हें मुसलमान होने पर गर्व है और उन्होंने पूरे तौर पर अपने आपको इस्लामी रहन–सहन में ढाल लिया है। उनका कहना है कि जब एक व्यक्ति कलिमा तैय्यिबा 'ला इलाहा इल्लल्लाह, मुहम्मदुर रसूलुल्लाह' पढ़ता है तो वह विशाल मुस्लिम समुदाय का सदस्य बन जाता है। फिर उसे अपने अज्ञानतापूर्ण काल के आचारण से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।

इस सवाल पर कि आपके इस्लाम क़बूल करने के कारण क्या हैं और इस्लामी शिक्षाओं के किन पहलुओं से प्रभावित होकर आप इस्लाम के क्षेत्र में दाख़िल हुईं ? उन्होंने कहा—

''वैसे तो इस्लाम के हर पहलू में इतना आकर्षण है कि दिल अपने आप ही उसकी ओर खिंचता चला गया, लेकिन मुझे सबसे अधिक प्रभावित इस्लाम के उन एहसानात ने किया है जो विशेषकर औरतों के साथ किए गए हैं। यूरोप में रहते हुए मैं अपनी आँखों से देखती थी कि यद्यपि औरत और मर्द की बराबरी का बड़ा प्रचार है और शिक्षा और संस्कृति और उदारता के ज़ोरदार दावे आम हैं, लेकिन व्यावहारिक रूप से औरत के साथ जो आचरण किया जाता है वह यूरोपीय समाज में एक विडम्बना से कम नहीं। माँ, बेटी, बहन या बीवी की हैसियत से समाज में उसका कोई स्थान नहीं। जवान औरत मर्द के

हाथों का केवल एक खिलौना है और जब वह अपनी सुन्दरता और आकर्षण खोकर अधेड़ हो जाती है तो जैसे हर प्रकार की तवज्जोह से वंचित हो जाती है और बाद के सारे जीवन में वह मानसिक रोगिणी ही रहती है। कुछ वर्ष पूर्व तक तो उसको जायदाद में हिस्सा भी नहीं मिलता था।

इसी प्रकार मैंने पढ़ा कि एक ज़माने में चीनी औरत को नफ़रत का प्रतीक समझा जाता था और उसे अशुभ समझकर घर के सदस्यों से भी छिपाने की कोशिश की जाती थी। भारत में भी उसके साथ इसी प्रकार का द्वेषपूर्ण व्यवहार किया जाता था और मनू की शिक्षा के मुताबिक़ उसे बुराई ही का दूसरा रूप कहा जाता था। उसे किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे और वह बाप, पति और अपने बच्चों की ग़ुलाम और नौकरानी से अधिक कोई हैसियत नहीं रखती थी। रोमियों की संस्कृति में भी औरत की हैसियत एक खिलौने या किसी जानवर से अधिक न थी, पति को पूरा अधिकार था कि किसी बात पर भी नाराज़ होकर वह अपनी बीवी को कड़ी से कड़ी सज़ा दे डालता, यहाँ तक कि उसकी हत्या कर डालता और इस मामले में उसपर कोई रोक नहीं थी।

अर्थात् इस्लाम के उदय से पूर्व पूरी दुनिया में औरत बहुत ही बुरी तरह उत्पीड़न और बेबसी की ज़िन्दगी गुज़ार रही थी और कोई उसका हमदर्द और रक्षक न था, लेकिन इस्लाम के सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) दुनिया में आए और मदीना में इस्लामी राज्य की स्थापना हुई और मानवता को क़ुरआन और सुन्नत के रूप में महान वरदान प्राप्त हुआ, तो अन्य पीड़ित वर्गों की तरह औरत भी अत्याचार और उत्पीड़न के अंधेरों से निकल आई, बल्कि उसे ही सबसे अधिक आदर और सम्मान का पात्र समझा गया। अतः इस्लाम के सन्देष्टा इस दृष्टि से औरतों के सबसे बड़े उपकारक हैं कि उन्होंने इस पीड़ित वर्ग के छीने गए अधिकारों को वापस दिलाया और उसे विशेष स्थान दिया गया। माँ, बीवी, बेटी और बहन का रिश्ता अत्यन्त आदरणीय बताया गया।

अतः इस्लाम दुनिया का पहला धर्म है जिसने औरत के सम्मान और आज़ादी का चार्टर प्रस्तुत किया और इस आज़ादी को विधिवत रूप से सुरक्षा प्रदान की। इस्लाम ने औरत को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विशेष छूट और

अधिकार प्रदान किए और माँ, बीवी, बहन और बेटी की हैसियत से उसको जो सम्मान दिया दुनिया के अन्य धर्मों और दूसरी संस्कृतियों में उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। अतः मदीना में इस्लामी राज्य की स्थापना के साथ ही अत्याचार का वह असीम सिलसिला ख़त्म कर दिया गया जो औरत के साथ जारी था। औरत के बारे में सभी अंधविश्वास झूठे और असत्य क़रार दिए गए। नहूसत के बजाये उसे बरकत और रहमत का प्रतीक कहा गया। उसे मानवता के स्तर पर मर्द के बराबर अधिकार दिए गए। माँ के क़दमों तले जन्नत क़रार दी गई। बेटियों के पालन-पोषण और शिक्षा-दीक्षा को जन्नत की ज़मानत क़रार दिया गया। उसे माता-पिता, भाइयों और बेटों की जायदाद में बाक़ायदा भागीदार बनाया गया। आदेश दिया गया कि मर्दों के साथ-साथ औरतों के लिए भी ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है और निकाह के मामले में भी उसे विशेष प्रकार की आज़ादी और सुरक्षा दी गई। मैं दावे के साथ कहती हूँ कि जो अधिकार और छूट औरत को इस्लाम ने प्रदान किए हैं उनकी मिसाल मौजूदा दुनिया की किसी समाज या धर्म में हरगिज़ नहीं है और औरत का जो आदर इस्लाम करता है उसका बहुत थोड़ा-सा भाग भी किसी दूसरी जगह नज़र नहीं आता।

अतः जब मैंने इस्लाम और अन्य धर्मों का इस सन्दर्भ से तुलनात्मक अध्ययन किया और यूरोप में अपनी आँखों के सामने औरत की मिट्टी पलीद होते देखी तो मैं इस्लाम की महानता, यथार्थप्रियता और न्याय पर मोहित हो गई और उसकी रहमत के दामन से जुड़ गई।

उनसे सवाल किया गया कि इस्लाम क़बूल करने के बाद आपने अपने अन्दर क्या तब्दीलियाँ महसूस कीं ?

उन्होंने बताया कि ऐसा लगा जैसे मुझे नया जन्म मिल गया हो। इस्लाम क़बूल करने के बाद मैं सच्ची ख़ुशी, सन्तुष्टि और शान्ति के अनुभव से परिचित हुई जिससे मैं पहले के जीवन में वंचित थी। इस्लाम के रूप में मुझे जैसे खोई हुई दौलत मिल गई। अतः मैं इससे पूर्ण आसक्ति के साथ जुड़ गई। अपने आचरण को इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार बदल डाला। लिबास को ठीक किया और अपने आपको पाँचों नमाज़ों का पाबन्द बना लिया। अल्लाह की कृपा से आज इस्लाम मुझे दुनिया की हर चीज़ से ज़्यादा प्रिय है।

इस सवाल का जवाब देते हुए कि उनका भविष्य का क्या प्रोग्राम है ? श्रीमती मोना अब्दुल्लाह ने बताया कि मेरी इच्छा है कि मैं पूरी उम्र बंगला देश में ही रहूँ। यह यद्यपि एक ग़रीब देश है और यूरोप जैसी सुविधाएँ यहाँ नहीं हैं। लेकिन सच है कि इस इस्लामी देश की सोसाइटी मुझे बहुत पसन्द आई है। यहाँ के माहौल में सादगी है ख़ुलूस है, गर्मजोशी और तपाक है और यह नेमतें जर्मनी में बिल्कुल लुप्त हैं और सबसे बढ़कर यहाँ के वातावरण में धर्मपरायणता का वर्चस्व है। इसलिए मैं इस नौकरी से सेवा मुक्त होने के बाद भी बंगला देश ही में रहने को वरीयता दूँगी।

□□□

70. मेडोना जॉनसन

(Madona Johnson)

(अमेरिका)

जब मैं पीछे पलट कर अपने अतीत पर नज़र डालती हूँ तो निस्सन्देह मेरे जीवन का निर्णायक क्रान्ति क्षण वह था जब मैंने अपनी बेटी को जन्म दिया था। उसके जन्म से पूर्व हालत यह थी कि एक-एक दिन गिन-गिन कर गुज़ार रही थी और एक-एक क्षण भारी था। मेरा सारा ध्यान और सारा समय इस सोच में बीतता कि कहीं कोई घटना न हो जाए। किसी अप्रिय परिस्थिति का सामना न करना पड़ जाए और पता नहीं इसका नतीजा क्या हो। बार-बार सोचती कि मेरे पेट में एक नया जीवन परवान चढ़ रहा है। पता नहीं मैं इसकी अपेक्षाओं को कैसे पूरा कर पाऊँगी ?

आख़िर वह क्षण आ पहुँचा जब ख़ुदा ने मुझे एक प्यारी सुन्दर बच्ची की माँ बना दिया। मेरा सारा प्रेम, स्नेह और ममता व आसक्ति उसके लिए केंद्रित हो गई। ऐसा लगा जैसे जीवन उद्देश्यपूर्ण हो गया हो। सुख और सुन्दरता ने मिलकर मेरी भावनाओं को अपने घेरे में ले लिया था।

लेकिन आह! वह मेरी बेहद प्यारी गुड़िया, मेरी जान से प्यारी बेटी, केवल पाँच माह की थी कि एक दिन अचानक बहुत-सी बीमारियों ने उसपर हमला कर दिया और वह देखते ही देखते दम तोड़ गई। मेरे जीवन में अंधेरा कर गई। मुझे जिस परेशानी, दिल और दिमाग़ी उलझन, तकलीफ़ और दुख की अनुभूति हुई, उसे शब्दों में बयान नहीं कर सकती। किन्तु दफ़नाने-कफ़नाने के दौरान मैं आश्चर्यजनक रूप से अपने रिश्तेदारों को तसल्ली देती रही कि मैं दिल की गहराइयों से यक़ीन रखती हूँ कि अगर ख़ुदा को भविष्य में मेरी कोई विशेष बेहतरी मंज़ूर न होती, तो वह मुझे इस परीक्षा से न गुज़ारता। मुझे हर हाल में नेकी और भलाई के रास्ते पर रहना चाहिए। यहाँ तक कि मुझे वह इनाम मिल जाए जो ख़ुदा मुझे देना चाहता है।

मैं बेटी की जुदाई से परेशान होती तो सगे-साथी मुझे यह कहकर

दिलासा देते, चिन्ता न करो। तुम एक दिन उससे अवश्य मिलोगी। जन्नत में उससे तुम्हारी मुलाक़ात ज़रूर होगी।

''लेकिन कौन जानता है कि मैं भी जन्नत में जाऊँगी, मैं सही मानो में ईसाईयत की शिक्षाओं पर नहीं चल रही हूँ। कितनी ही अपत्तियाँ हैं जो दिमाग़ में पैदा होती रहती हैं'', मैं जवाब देती।

अतः उसके बाद तो मैं पूरी गम्भीरता और सरगर्मी से एकमात्र सत्य धर्म, सच्चे मज़हब की तलाश में जुट गई, ताकि उसकी शिक्षाओं पर अमल करके मैं जन्नत में जा सकूँ और अपनी बेटी से मिल सकूँ। इसके लिए मैंने ईसाईयत के एक-एक सम्प्रदाय का ख़ूब अध्ययन किया। यद्यपि मैं ईसाईयत से संतुष्ट न थी, लेकिन फिर भी चर्च से बाहर निकलने का ख़्याल भी नहीं कर सकती थी। लेकिन अजीब बात थी कि मन को शान्ति नहीं मिलती थी। ईसाई धार्मिक सिद्धान्त के बारे में मन संतुष्ट नहीं होता था। त्रिवाद, प्रायश्चित, इशाये रब्बानी, पैदाइशी गुनाहगार होने की धारणा, अर्थात् प्रत्येक धार्मिक आस्था बुद्धि के विरुद्ध नज़र आती थी और सारी कोशिशों के बावजूद ख़ुदा की निकटता और सामीप्य प्राप्त नहीं हो रहा था।

थक-हार कर मैंने यह दौड़-धूप कुछ समय के लिए टाल दी और एक बार में नौकरी कर ली। वहाँ मेरा परिचय एक ऐसी लड़की से हुआ जो विभिन्न देशों से आयात-निर्यात का कारोबार भी करती थी। उसने मुझसे एक दिन कहा कि मैं उसके ख़र्च पर मलेशिया का एक चक्कर लगा आऊँ। वहाँ से मलेशियाई पहनावे ख़रीदूँ। वहाँ एक ऐसे व्यक्ति की व्यवस्था करूँ जो हमारे कारोबार की देखभाल कर सके। मैंने फ़ौरन उसकी पेशकश क़बूल कर ली और मलेशिया के लिए रवाना हो गई।

मैं जब क्वालालामपुर पहुँची तो वहाँ रमज़ान का महीना लगभग आधा गुज़र चुका था। मैंने इससे पूर्व इस्लाम के बारे में कुछ भी नहीं सुना था, न यह जानती थी कि मलेशिया एक इस्लामी देश है। अतः पहली नज़र में यह देखकर हैरान रह गई कि सख़्त गर्मी में क़रीब हर औरत ने सिर पर स्कार्फ़ बाँध रखा है।

मैंने यह भी अन्दाज़ा किया कि आते-जाते मर्द मुझसे आदर के साथ पेश

आते हैं। पता चला कि मलेशिया मुस्लिम बाहुल्य देश है और मुसलमानों का विश्वास कि वे केवल अल्लाह की प्रसन्नता और उसकी ख़ुशी के लिए दूसरों के साथ अच्छा व्यवहार करते हैं, तो इसका इनाम उन्हें हिसाब–किताब के दिन जन्नत की सूरत में मिलेगा।

अमेरिका में रहते हुए इस्लाम का जितना कुछ परिचय मुझे हुआ था, वह बड़ा ही नकारात्मक और ख़राब था। मैं जिस माहौल में पली–बढ़ी थी, उसमें कोई व्यक्ति भी इस्लाम के विषय में सकारात्मक विचार नहीं रखता था। पाठयक्रमों और मीडिया ने इस्लाम और मुसलमानों की छवि भयानक रूप से बिगाड़ रखी थी......मगर मलेशिया में मुसलमानों से सम्पर्क हुआ तो मैं सोचने पर मजबूर हो गई कि मुसलमान वैसे हरगिज़ नहीं हैं जैसे अमेरिका में समझे जाते हैं। मैं तो मुसलमानों को बड़ा ही ठीक–ठाक, शिष्ट और सज्जन के रूप में देख रही थी। वे औरतों का सम्मान करते थे और यहाँ औरतों की इस प्रकार मिट्टी पलीद नहीं हो रही थी जिस प्रकार अमेरिकी जीवन की परम्परा थी।

अतः मैंने इरादा कर लिया कि मैं मुसलमान के धर्म इस्लाम के विषय में सीधे जानकारी हासिल करूँगी। मुसलमानों से मुलाक़ात का मौक़ा मिलता था, तो मैं बहुत–से सवाल कर डालती। औरतें चेहरे और हाथों के अतिरिक्त पूरे शरीर को छिपाकर क्यों रखती हैं? मलेशिया में हर कोई ख़ुश क्यों है? और सारा दिन भूखे प्यासे रहने के बावजूद लोग सुखी और सन्तुष्ट क्यों हैं? लेकिन अफ़सोस लोग अंग्रेज़ी भाषा कम जानते थे। इसलिए मेरे सवालों का संतोषजनक उत्तर न मिल सका। अतः मैंने क़ुरआन का एक अंग्रेज़ी अनुवाद हासिल किया और उससे सीधे–सीधे रहनुमाई हासिल करने की कोशिश शुरू कर दी।

जहाँ तक मुझे याद पड़ता है मैं ईसाईयत के धार्मिक सिद्धान्त पर मानसिक रूप से कभी भी सामंजस्य स्थापित नहीं कर सकी थी और गिरजा जाने के बावजूद अपने आपको अकेला महसूस करती थी। लेकिन क़ुरआन का अध्ययन करते हुए मैं इस नतीजे पर पहुँची कि आश्चर्यजनक तौर पर ये ईश्वर और धर्म के बारे में वही विचार हैं जो मेरे दिल के अन्दर मौजूद थे। मैं इस विचार से बहुत ख़ुश हुई कि यह तो वही रास्ता है जो मेरी बेटी की ओर जाता है, जन्नत का रास्ता, शान्ति और संतुष्टि और राहत का रास्ता।

लेकिन जब मैंने विचार किया कि अगर मैंने इन धार्मिक विश्वासों को

व्यावहारिक रूप से अपना लिया तो सारे माहौल और समाज से कटकर रह जाऊँगी, तो बहुत परेशान हुई। मैं हर एक के सामने कैसे स्पष्ट करूँगी कि हज़रत मसीह ख़ुदा के बेटे नहीं हैं। त्रीश्वरवाद अर्थात् तीन ख़ुदाओं की धारणा मूर्खता और अज्ञानता के अलावा कुछ नहीं और मूर्ति-पूजा का किसी भी दृष्टि से कोई औचित्य नहीं।

एक बहुत बड़ी चुनौती थी जो क़ुरआन ने मेरे सामने लाकर रख दी। मुसलमान हो जाऊँ और जन्नत का रास्ता अपना लूँ या फिर अपने परिवार और रिश्तेदारों से डर कर सत्य का इनकार कर दूँ और हमेशा के लिए जहन्नम का ईंधन बन जाऊँ। क्या करूँ और क्या न करूँ? आशंका, डर और व्याकुलता की असाधारण दशा मुझ पर छा गई। फ़ैसला कदाचित आसान नहीं था। इस्लाम एक सामयिक, अल्पकालिक और आंशिक नहीं, यह ईसाईयत की तरह साप्ताहिक धर्म नहीं, एक सच्चे और निष्ठावान मुसलमान को तो अपने जीवन का एक-एक क्षण इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार बिताना होता है। इस प्रकार इस्लाम एक पूर्णकालिक धर्म है, जिसके नतीजे में निस्संदेह आध्यात्मिक और भौतिक लाभ भी हैं। लेकिन निरन्तर मेहनत और कोशिश जिसके साथ-साथ चलती है। फिर इस्लाम एक असीम और अथाह समुद्र की तरह है, जितनी भी जानकारी हासिल करें और अधिक खोज की इच्छा बढ़ती जाती है और किसी प्रकार प्यास नहीं बुझती।

यही विचार दिल और दिमाग़ को घेरे हुए थे। एक रात मैंने ख़ुदा से दुआ की कि ऐ ख़ुदा मेरा मार्गदर्शन कीजिए और साहस प्रदान कीजिए कि मैं आपके दीन (धर्म) को नियमतः अपना लूँ। सो गई और सुबह उठी तो दिल पूर्ण शान्ति और दृढ़ संकल्प से परिपूर्ण था कि मुझे इस्लाम क़बूल करना है और आज ही करना है। अतः मैं Perkim अर्थात् ''तन्ज़ीम बराए फ़लाहे मुसलमानाने-मलेशिया'' के दफ़्तर गई। कलिमा तैय्यिबा पढ़ा, ज़रूरी लिखा-पढ़ी की और मुसलमान हो गई और इसके साथ ही मन से सारे बोझ उतर गए। सारी कल्पनाएँ समाप्त हो गईं। यहाँ तक कि प्यारी बेटी की जुदाई का ग़म भी ख़त्म हो गया और दिल अल्लाह की मुहब्बत और उसके दीन की चाहत से भर गया।

पीछे मुड़कर देखती हूँ तो ऐसा लगता है जैसे दयावान और कृपालु

अल्लाह ने मेरे लिए यह सब कुछ एक प्रोग्राम के आधीन तय कर दिया था। अब अगर मैं इस पवित्र और सीधे रास्ते पर क़ायम रही तो अल्लाह ने चाहा मैं जन्नत में अपनी बेटी से मुलाक़ात कर लूँगी। जहाँ तक मेरी समझ में आया है, मुसलमान होने का मतलब यह नहीं कि चुनौतियाँ ख़त्म हो गई हैं। समस्याओं और चुनौतियों का सिलसिला तो बराबर जारी रहेगा, फ़र्क़ यह है कि इन समस्याओं और चुनौतियों का समाधान मौजूद है और वह यह है कि धार्मिक शिक्षाओं पर पूर्ण निष्ठा के साथ चला जाए और अल्लाह से गहरा और मज़बूत सम्बन्ध बनाकर रखा जाए।

सारी तारीफ़ें अल्लाह के लिए हैं जिसने मुझ पर हिदायत का रास्ता खोल दिया और मुझे अपनी कृपा से मुसलमान बना दिया।

□ □ □

71. श्रीमती मैरी ओलिवर

(Mrs. Mary Olever)

(इंग्लैण्ड)

मेरा सम्बन्ध इंग्लैण्ड के कैथोलिक परिवार से है। बचपन में मैंने ईसाई धार्मिक सिद्धान्तों को आँखें मूँदकर अपनाए रखा। लेकिन नौजवानी में सोच–विचार का समय आया तो ईसाईयत का कोई एक धार्मिक सिद्धान्त भी बुद्धि और सामान्य ज्ञान के अनुकूल नज़र नहीं आया और विचारों की सारी इमारत डगमगाती हुई नज़र आई। उदाहरण के रूप में शादी हुई, बच्चे हुए, तो सहसा विचार आया कि ये मासूम व निर्दोष बच्चे भी ईसाईयत की नज़र में पैदाइशी गुनाहगार हैं। बेचारे सारी उम्र गुनाहगार रहेंगे और इसी दुर्दशा में दुनिया से चले जाएँगे सिवाय इसके कि कोई पादरी इन्हें क्षमा और मुक्ति की डिग्री प्रदान कर दे। हालाँकि उस पादरी के स्वयं निर्दोष होने का मामला वार्ता की अपेक्षा करता है।

मेरे अन्तर्मन ने इस प्रकार के विश्वासों को स्वीकार करने से इनकार कर दिया, लेकिन एक पैदाइशी ईसाई की हैसियत से मैं मजबूर थी कि बुद्धि को ताक़ पर रखकर इन्हें सही मान लूँ। लेकिन कब तक? अन्ततः परेशान होकर और थक–हार कर मैंने अन्य धर्मों के अध्ययन करने का निर्णय कर लिया, ताकि इस मानसिक संघर्ष से मुक्ति प्राप्त कर सकूँ, जिसने मेरी शान्ति को भंग कर दिया था।

इस संदर्भ में सबसे पहले मैंने हिन्दूमत और बुद्धमत का अध्ययन किया, लेकिन यह देखकर बड़ी मायूसी हुई कि ये दोनों धर्म भी इन्सान के पैदाइशी गुनाहगार होने की अवधारणा रखते हैं। और उनकी धारणा के अनुसार इसी गुनाह से छुटकारा के लिए इनसान विभिन्न रूपों में बार–बार दुनिया में जन्म लेता है। आवागमन का सिद्धान्त इसी दृष्टिकोण की देन है। अतः ये दोनों धर्म न तो मेरे मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों और भ्रमों को दूर कर सके और न ही मेरे सवालों का कोई जवाब दे सके।

अन्ततः अल्लाह ने मेरा मार्गदर्शन किया, हालाँकि इस्लाम के बारे में आसपास का माहौल बहुत ही भेदभावपूर्ण था। लेकिन मैंने इसका अध्ययन करने का फ़ैसला कर लिया। क़ुरआन का अंग्रेज़ी अनुवाद ख़रीद लिया और इस्लाम के बारे में विभिन्न किताबें हासिल कर लीं और जब मैंने खुले दिल और निष्पक्षता के साथ इसका अध्ययन शुरू किया तो बेपनाह ख़ुशी के साथ–साथ मेरी हैरत बढ़ती चली गई कि इस धर्म की एक–एक शिक्षा बुद्धि और विवेक के पूरी तरह अनुकूल है और कोई बात भी सामान्य बुद्धि (Common Sense) के ख़िलाफ़ नहीं है। अतः शीघ्र ही मेरे सवालों का जवाब मिल गया और सभी सन्देह दूर हो गए और मैंने दिल की सन्तुष्टि और पूरे इत्मीनान के साथ इस्लाम क़बूल कर लिया।

सबसे पहले इस्लाम की शिक्षा ने मेरे अन्तर्मन को बड़ी शान्ति प्रदान की कि सारे इनसान पैदाइशी तौर पर मासूम और निर्दोष हैं और इन्सान न केवल अपनी कोशिश से गुनाहों से पाक हो सकता है, बल्कि उसे ज़मानत दी गई है कि गुनाहों से दामन बचाकर वह अल्लाह की प्रसन्नता और प्रतिदान का पात्र हो सकता है। इस्लाम के सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) ने फ़रमाया, ''हर बच्चा इस्लाम की फ़ितरत पर पैदा होता है। यह उसके माता–पिता और उसका माहौल है जो उसे ईसाई, यहूदी या मजूसी (अग्निपूजक) बना देते हैं।'' स्पष्ट है यही बात बुद्धि और सच्चाई के पूर्णतः अनुकूल है। और यह नज़रिया तो इन्सान और ख़ुदा पर लांछन की हैसियत रखता है कि वह पैदाइशी तौर पर गुनाहगार है।

अतः इस अवधारणा की तुलना जब मैंने विभिन्न मुसलमानों के जीवन से की तो यह बात मुझ पर स्पष्ट हो गई कि जो लोग निष्ठा और दिली लगाव के साथ इस्लामी शिक्षाओं पर ईमान लाते हैं वे अपने आपको हर प्रकार के गुनाहों से बचाकर रखते हैं और उनका जीवन भलाई, पवित्रता और पाकीज़गी का पुतला बन जाता है। मुसलमानों का यह आचरण मानव–समाज में एकता, संतुलन और आत्मगौरव का कारण बनता है और आत्मगौरव और न्याय का यह चलन आगे चलकर सारी सोसाइटी और आम जनता के लिए विकास और सामूहिक सुख–शान्ति का कारण बन जाता है। अतः यह सुखद जानकारी थी जिससे प्रभावित होकर मैंने इस्लाम का और अधिक ध्यानपूर्वक और गहन

अध्ययन किया और उसकी सादा और सरल शिक्षाएँ मेरे दिल में इस प्रकार घर कर गईं कि मैं इसे क़बूल किए बिना न रह सकी।

इस्लाम के अध्ययन के दौरान वह सुखद अनुभव हुआ जिससे मेरे दिल में इसके लिए सम्मान बढ़ गया कि हिन्दूमत और ईसाईयत के विपरीत इस्लाम में कुछ विशेष लोगों का ऐसा वर्ग नहीं है जिसके लिए इसकी शिक्षाओं कोई विशेष अंश सुरक्षित या विशिष्ट किया गया हो और वह जनसाधारण की पहुँच से दूर हो। दूसरे शब्दों में ईसाई पादरियों और हिन्दू पण्डितों की तरह इस्लाम में पुरोहितवाद, पापाइयत या विशेष धार्मिक वर्ग की कोई अवधारणा नहीं है। इस्लामी शिक्षाएँ हर व्यक्ति के लिए एक ही जैसा महत्व और हैसियत रखती हैं। और अपने स्वरूप की दृष्टि से इतनी सादा और सरल हैं कि हर व्यक्ति उन्हें आसानी से समझ सकता है और उन पर अमल कर सकता है। फिर इस्लाम, ईसाईयत और हिन्दूमत के बिल्कुल विपरीत अपने सभी अनुयायियों को सामान्य अनुमति देता है कि वे इस्लामी शिक्षाओं पर सोच–विचार करें और इस सन्दर्भ से बुद्धि और आत्मा को समान रूप से निरीक्षक बनाएँ। अतः गहन अध्ययन के बाद मेरा विचार यह बना कि इस्लाम अपनी शिक्षाओं की दृष्टि से बड़ा ही सरल और सीधा–सादा धर्म है और अपनी प्रवृत्ति की दृष्टि से मानव–प्रकृति के पूर्णतः अनुकूल है। इस्लाम की यही वह विशेषता है जो अपनी सच्चाई का सबसे बड़ा प्रमाण है और चूँकि इसे अपने सत्य होने पर पूर्ण विश्वास है और पूरा भरोसा भी, इसलिए इस्लाम हर व्यक्ति को खुली अनुमति, देता है कि वह इसके धार्मिक नियमों और शिक्षाओं का आलोचनात्मक रूप से अवलोकन करें। ईसाईयत और हिन्दूमत इस विश्वास से वंचित हैं और अपने अनुयायियों को बार–बार डाँट–डपट करते हुए नज़र आते हैं कि ख़बरदार धर्म के मामले में बुद्धि को हरगिज़ प्रयोग में न लाना और आँखें बन्द करके विभिन्न अवधारणाओं पर यक़ीन करना वरना गुमराह हो जाओगे।

फिर यह बात भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है कि इस्लाम सारी मानवता के लिए प्रेम और शान्ति की गारंटी देता है और उन लोगों के अधिकारों का हनन नहीं करता जो उसके विरोधी होते हैं। एक इस्लामी राज्य में इस्लाम विरोधी धर्मों के अनुयायियों के सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा की जाती है और इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार मुसलमान शासकों का

कर्तव्य है कि वे ग़ैर–मुस्लिम के मानवीय अधिकारों की सुरक्षा करें और उनके धार्मिक रीति–रिवाजों और विश्वासों की रक्षा करें। सच्चाई यह है कि इस्लाम जितना इन्सानों को सम्मान देता है और उनके आत्म–सम्मान का ध्यान रखता है, अन्य धर्मों में इसकी कोई मिसाल नहीं मिलती। अतः इस्लामी इतिहास में इस सन्दर्भ से उदारता और सौहार्द्ध के उदाहरण जितनी अधिकता से मिलते हैं, ईसाईयत का इतिहास इससे लगभग ख़ाली है। हालाँकि यह धर्म दया, उदारता और सहानुभूति का इस हद तक दावेदार है कि बाइबल के अनुसार अगर कोई तुम्हारे दाहिने गाल पर थप्पड़ मारता है तो बायाँ गाल भी उसके सामने कर दो ताकि वह अपना शौक़ पूरा कर ले। इस्लाम इस प्रकार का कोई अस्वाभाविक एवं अव्यावहारिक दावा नहीं करता। लेकिन गौरव और शिष्टा के साथ शान्ति, उदारता और क्षमाशीलता की अपेक्षाओं को यह धर्म जिस प्रकार व्यावहारिक रूप देता है उसका उदाहरण नहीं मिल सकता।

इस्लाम के बारे में जहाँ तक मेरे अध्ययन का सम्बंध है, मेरे नज़दीक इस धर्म की शिक्षाएँ दो भागों में बाँटी जा सकती हैं, पहला भाग धार्मिक सिद्धान्तों, नियमों और उपासना पर आधारित है, जबकि दूसरे का सम्बन्ध उन मामलों से है जो घरेलू और सामाजिक स्तर पर इन्सानों के बीच प्रचलित हैं। वे इस्लामी शिक्षाएँ जिनका सम्बन्ध धार्मिक सिद्धान्तों और विचारों से है उनमें कोई रहस्य या उलझाव नहीं है। इनमें बड़ी सादगी के साथ एकेश्वरवाद और इस्लामी सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के ईशदूतत्व पर ज़ोर दिया गया है, ताकि ये धार्मिक सिद्धान्त मज़बूत भी रहें और इनका क्रम भी बना रहे। इस उद्देश्य के लिए कुछ इबादतें ज़रूरी कर दी गई हैं, जो बड़ी ही सरल, प्रभावी और व्यावहारिक हैं।

एकेश्वरवाद का उपहार और महिमा यह है कि जो व्यक्ति सच्चे दिल से निस्वार्थभाव के साथ एकेश्वरवाद पर ईमान ले आता है, वह शेष सभी वास्तविक और अवास्तविक शक्तियों से निडर हो जाता है। उसकी बौद्धिक और रचनात्मक क्षमताओं को असामान्य रौशनी मिलती है और उसके मन की स्वतंत्रता और व्यवहार का ज्वार पूरे माहौल और मानवता के लिए असाधारण लाभ और कल्याण का साधन बन जाता है, जबकि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर ईमान लाने का उद्देश्य वास्तव में उस कृतज्ञता की अभिव्यक्ति है जो पूरी

मानवता पर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के असीम उपकारों के सम्बन्ध से प्रत्येक व्यक्ति पर अनिवार्य होता है और जिसके बिना मुसलमानों के अन्दर एकता और अनुरूपता के गुण पैदा हो ही नहीं सकते।

इस्लामी इबादतें (उपासनाएँ) बड़ी सरल हैं। इनको पूरा करने के लिए न विशेष प्रकार के साधनों की ज़रूरत है न किसी ख़ास स्थान की। पांच वक़्त की नमाज़ मस्जिद से बाहर भी किसी स्थान पर अदा की जा सकती है और इस कर्म से न केवल मन पर कंट्रोल तथा सिद्धान्तों और नियमों से इनसान लाभान्वित होता है बल्कि इन्सानों के आपसी सम्बन्धों में मज़बूती और एकता पैदा होती है।

जहाँ तक सभ्यता और सामाजिकता से सम्बन्धित इस्लामी शिक्षाओं का मामला है तो इस्लाम इन्सानों को शान्ति, ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है। इस्लामी सामाजिक व्यवस्था के अनुसार अमीर और ग़रीब यहाँ तक कि मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम के अधिकारों में बिल्कुल कोई अन्तर नहीं। इस्लाम सभी इन्सानों को एक नज़र से देखता है। उनमें समानता स्थापित करता है और एक विश्वव्यापी भ्रातृत्व के सदस्य की हैसियत से सबको एक समान महत्व देता है।

निष्कर्ष यह कि विभिन्न धर्मों के गहन अध्ययन के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँची कि केवल इस्लाम ही अपनों और परायों सबको प्रभावित करने की क्षमता रखता है। इसकी अनुपम, सरल शिक्षाएँ दिलों पर दस्तक देती हैं और अपने अन्दर वह मनमोहकता और आकर्षण रखती हैं कि कोई भी न्यायप्रिय ग़ैर मुस्लिम इन्हें क़बूल किए बिना नहीं रह सकता।

इस्लाम की यही वे ख़ूबियाँ थीं जिनसे प्रभावित होकर दस वर्ष पूर्व मैं मुसलमान हो गई और यह कहते हुए मैं बेहद ख़ुशी और इत्मीनान महसूस कर रही हूँ कि इन दस वर्षों में एक दिन के लिए भी मुझे अपने फ़ैसले पर पछतावा नहीं हुआ।

□□□

72. मैरी अली

(Mary Ali)

(अमेरिका)

श्रीमती मैरी अली का सम्बन्ध शिकागो (अमेरिका) से है। वे उच्च शिक्षा प्राप्त और सुयोग्य महिला हैं। उन्होंने आयवा (Iowa) यूनीवर्सिटी से रेडियेशन बॉयलोजी में एम०एस०सी० की डिग्री ली। वे लिखने और बोलने की योग्यता रखती हैं। उनमें प्रबंधन–क्षमता भी पूर्ण रूप से पाई जाती है। युवा वर्ग की मनोवृत्ति से वे पूरी तरह अवगत हैं, जिसके कारण इस वर्ग की समस्याओं से भी अच्छी तरह परिचित हैं। वे शिकागो में एक इस्लामी कॉलेज की रजिस्ट्रार हैं। शिकागो ही की एक इस्लामिक संस्था की अवैतनिक सहायक हैं और स्थानीय नौजवानों का वैचारिक और व्यावहारिक मार्गदर्शन करती हैं, शादी–शुदा हैं, और एक ख़ुशहाल परिवार है।

इन पंक्तियों के लेखक ने नवमुस्लिम मर्दों और औरतों के लिए जो सवालनामा तैयार कर रखा है, वह एक मित्र द्वारा सुश्री अली को भिजवाया गया, जिसके जवाब उन्होंने लिखकर भेजे। इस कृपा के लिए मैं उनका और अपने दोस्त प्रोफ़ेसर सैयद वक़ार अली कारी का दिल से शुक्रगुज़ार हूँ। सवाल निम्नलिखित हैं—

1. आपका असली नाम और इस्लामी नाम?

2. आप कब और कहाँ पैदा हुईं? अपने माता–पिता और परिवार के बारे में आवश्यक जानकारी दीजिए?

3. आपकी शिक्षा, अन्य योग्यताएँ और कार्यकलाप आदि?

4. आप सबसे पहले कब और कैसे इस्लाम से परिचित हुईं? क्या कोई किताब पढ़ी या किसी मुसलमान से मुलाक़ात हुई?

5. आपने कब अपना धर्म छोड़ा और क्यों?

6. कौन–से मुसलमान लेखक या विद्वान ने आपको प्रभावित किया?

7. इस्लाम क़बूल करने के बाद आपके दोस्तों और परिवार की क्या

प्रतिक्रिया थी ? आपने इसका कैसे सामना किया ?

8. इस्लाम क़बूल करने के बाद आपने अपने दैनिक जीवन में कैसी तब्दीलियाँ महसूस कीं ?

9. आप अपने पिछले धर्म और इस्लाम में क्या फ़र्क़ महसूस करती हैं ?

10. इस्लाम के वे कौन–से रौशन पहलू हैं जिन्होंने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया ?

11. आपके विचार में वर्तमान युग में इस्लाम के प्रचार–प्रसार का सही तरीक़ा क्या है ?

12. पैदाइशी मुसलमानों ने इस्लाम के बारे में जो व्यवहार अपना रखा है, उसपर आपका क्या विचार है ?

13. एशियाई मुसलमानों, विशेषकर पाकिस्तान और भारत के लिए आपका संदेश ?

सुश्री मैरी अली के जवाब

1. मैरा पैतृक नाम मैरी (Mary) था। मुसलमान होने के बाद भी मैंने यही नाम बाक़ी रखा है, जिस नाम का उल्लेख क़ुरआन में भी मौजूद हो, उससे अच्छा नाम और क्या हो सकता है ?

2. मैं 30 जनवरी 1939 को आयवा राज्य के एक छोटे–से क़स्बे में पैदा हुई। मेरे माता–पिता ईसाई हैं और अच्छे नैतिक मूल्यों के पक्षधर हैं। मेरी केवल एक बहन है, कोई भाई नहीं है।

3. इसका जवाब शुरू के परिचायक वाक्यों में आ चुका है।

4. मेरा इस्लाम से सबसे पहला परिचय उस समय हुआ जब मैं हाईस्कूल में थी। वहाँ मुझे इस्लाम के बारे में एक लेख लिखना पड़ा। इस सन्दर्भ से मुझे विभिन्न किताबों का अध्ययन करना पड़ा। फिर जब मैं स्नातक में थी तो इस्लाम से दूसरी बार आमना–सामना हुआ। एक मुसलमान लड़की से मुलाक़ात हुई जिसने मुझे इस्लाम के बारे में किताबें दीं।

5. मेरे मन में ईसाईयत के बारे में विभिन्न सवाल पैदा होते रहते थे, अफ़सोस मुझे उनका जवाब न धर्मगुरु देते थे और न बाइबल से सन्तुष्टि होती थी। इन सवालों के जवाब मुझे इस्लाम और क़ुरआन ने दिए और अंततः

इस्लाम से परिचय होने के चार वर्ष बाद मैंने इस्लाम क़बूल कर लिया। इस्लाम के जिस पहलू ने सबसे अधिक प्रभावित किया वह धार्मिक सिद्धान्तों और नियमों का बुद्धि के पूर्णतः अनुकूल होना और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से सम्बंधित मार्गदर्शन प्रदान करना है।

6. मुझे मुस्लिम लेखकों में सबसे अधिक सैयद क़ुतुब शहीद (रह०) ने प्रभावित किया।

7. जब मेरे माता-पिता और दोस्तों ने देखा कि इस्लाम क़बूल करने के बाद मैं बहुत ख़ुश और संतुष्ट हूँ और मेरे व्यवहार और आचरण में बहुत अच्छे और सुखद बदलाव आए हैं तो उन्होंने मेरे अमल को ख़ुशी से क़बूल कर लिया और मुझे प्रोत्साहित किया।

8. इस्लाम क़बूल करने के बाद जब मैंने व्यावहारिक रूप से इस्लामी शिक्षाओं पर चलना शुरू किया तो निम्न तब्दीलियाँ महसूस कीं—

• नमाज़ों के दौरान और बाद में धैर्य और शान्ति की एक विशेष प्रकार की मनोदशा।

• नमाज़ों के समय के हिसाब से मेरे जीवन में अनुशासन पैदा होता चला गया।

• इस्लामी जीवन-शैली को अपनाने के नतीजे में अत्यन्त शान्ति और संतोष की दौलत मिल गई।

9. वर्तमान युग में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए हमें तीन प्रकार के तरीक़े अपनाने चाहिएँ—

प्रथम : हर मुसलमान को चेतन रूप से एहसास करना चाहिए कि उसे अपने आचरण और चरित्र से सारी दुनिया को यह बताना है कि मुसलमान किसे कहते हैं। समाज में उसका व्यवहार कैसा होता है और विभिन्न मामलों में वह किस प्रकार का आचरण करता है।

द्वितीय : एक मुसलमान को ग़ैर-मुस्लिम तक बहुत अच्छे ढंग से इस्लाम का पैग़ाम ज़रूर पहुंचाना चाहिए।

तृतीय : हर मुसलमान को कोशिश करनी चाहिए कि वह प्रचार-प्रसार और इस्लाम के आमंत्रण देनेवाली संस्थाओं और संगठनों से जुड़े और आर्थिक तथा नैतिक दृष्टि से उनका सहयोग करें।

10. मेरे विचार में आज दुनिया भर में मुसलमान जो अपमान, तिरस्कार और असफलता का प्रतीक बने हुए हैं, उसका कारण यह है कि उन्होंने सच्चे मुसलमानों का चलन ख़त्म कर दिया है। यह विडम्बना इसलिए पैदा हुई कि मुसलमानों ने पवित्र क़ुरआन और पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) की सुन्नत को छोड़कर अपने-अपने फ़िक़ही मसलकों की पैरवी को ही इस्लाम समझ लिया और वह फ़िरक़ों और गिरोहों में बट कर रह गए और हालत यह है कि हनफ़ी शाफ़इयों के साथ झगड़ते हैं और शाफ़ई मालिकियों के साथ झगड़ रहे हैं। वे छोटे-छोटे मसलों पर अपनी योग्यताएं तबाह कर रहे हैं। क़ुरआन और सुन्नत से दूर होते जा रहे हैं और पूरी दुनिया में तमाशा बन गए हैं।

11. एशिया और ख़ासतौर से पाकिस्तान और भारत के मुसलमानों के लिए मेरा पैग़ाम यह है कि वे ख़ुद भी व्यावहारिक और सच्चे मुसलमान बनें और अमेरिका, यूरोप और दूसरे ग़ैर इस्लामी देशों के लिए रौशन मिसाल बनें, ताकि इन देशों में इस्लाम की रौशनी तेज़ी से फैल सके।

□ □ □

73. मैरी कैण्डी

(Mary Candy)

(अमेरिका)

मेरा सम्बन्ध अमेरिका से है। पेशे की दृष्टि से कुछ साल पहले तक मैं आर्टिस्ट थी और कला की दुनिया में मेरा एक नाम था। इसलिए लाखों में खेलती थी, लेकिन दुर्भाग्य से मैं वैचारिक दृष्टि से नास्तिक थी अर्थात् ख़ुदा को नहीं मानती थी और धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों को बेकार समझती थी। मेरे निकट जीवन का उद्देश्य केवल अय्याशी था और बस। कल्पना कीजिए कि मैंने एक के बाद एक चार शादियाँ कीं, लेकिन किसी भी पति के साथ मेरा निबाह न हो सका और एक समय वह आया कि मेरी शान्ति पूरी तरह भंग हो गई। भोग–विलास का कोई तरीक़ा मुझे सुख न देता और मायूसी और उदासी हर समय मेरे दिल व दिमाग़ पर छाई रहती।

भूख और नींद ख़त्म होकर रह गई। मैं घण्टों बिस्तर पर करवटें बदलती रहती, लेकिन सुकून भरी नींद मेरे जीवन से जैसे हमेशा के लिए दूर हो गई थी। तंग आकर मैंने नींद की दवाओं का सेवन आरम्भ कर दिया और जब ये भी बेकार साबित हुईं तो शराब और अन्य मादक वस्तुएँ मेरे जीवन का हमेशा के लिए एक हिस्सा बन गईं, लेकिन कोई उपाय और युक्ति कारगर न हुई। डिप्रेशन हर समय मुझको घेरे रहता और डर मेरे रग–रग को कुचलता रहता। अनुमान कीजिए मेरी मायूसी का यह हाल था कि कई बार मैंने आत्म–हत्या का प्रयास किया। लोगों से मिलना मिलाना ख़त्म हो गया। हमेशा चिड़चिड़ेपन और लोगों से नफ़रत के कारण कोई मुझसे मिलना पसन्द न करता और एक माँ के अलावा दुनिया में मेरा कोई हमदर्द न रहा। नतीजा यह हुआ कि आख़िरकार मुझे एक अस्पताल में दाख़िल होना पड़ा, जहाँ नशे के आदी का इलाज होता था।

यह वह दशा थी जब एक औरत रहमत का फ़रिश्ता बनकर मेरे जीवन में दाख़िल हुई। यह हमारी पड़ोसन थी जो मेरी माँ की गहरी दोस्त भी थी और

मिज़ाज और आदतों की दृष्टि से अनोखी ख़ूबियों की मालिक थी। वह बहुत ही गौरवशील और प्रेम करनेवाली औरत थी। वह मेरी माँ के साथ समय-समय पर अस्पताल में आती और काफ़ी समय मेरे पास बिताती। उसके व्यवहार में एक विशेष प्रकार का अपनत्व और स्नेह महसूस होता। वह मेरी हिम्मत बँधाती और जीने का साहस प्रदान करती। वह कहा करती कि "तुम्हारा सबसे बड़ा रोग यह है कि तुम ख़ुदा को नहीं मानतीं, हालाँकि इन्सान की अपनी ज़िन्दगी और संसार की एक-एक चीज़ उसके अस्तित्व की गवाही दे रही है।" उसने दलील दी "यह जो घड़ी तुमने कलाई में बाँध रखी है कौन कह सकता है कि यह ख़ुद से बन गई है और कोई इसका बनाने वाला नहीं है। ज़ाहिर है कि अगर कोई इस प्रकार की सोच रखता है तो वह निरा मूर्ख है। बुद्धि और विवेक से उसका कोई वास्ता नहीं, तो जब यह अकाट्य सत्य है कि एक मामूली-सी घड़ी ख़ुद से नहीं बनी, यह ऐनक और यह जूता केवल अचानक अस्तित्व में नहीं आया तो फिर यह ख़्याल करना कि हमारी यह आँखें ये हाथ, ये पैर बिना किसी स्रष्टा के बन गए हैं कितनी मूर्खतापूर्ण और निराधार सोच है।"

वह महिला स्नेह और प्रेम से मेरा हाथ पकड़कर मेरी आँखों में झाँकती और दिलसोज़ी से कहती, "विश्वास करो कि इस संसार का, इस विशाल रहस्यपूर्ण संसार का एक रचयिता और मालिक है। उसी ने हमें पैदा किया है और उसी ने इन्सानों को आश्चर्यजनक शारीरिक व्यवस्था और बौद्धिक और व्यावहारिक योग्यताएँ प्रदान की हैं। वह ज़िन्दा, पाइन्दा और हय्यू और क़य्यूम है। हमारी एक-एक हरकत उसकी नज़रों के सामने हैं और हमारे जीवन का एक-एक क्षण उसके कम्पयूटरों में सुरक्षित हो रहा है।"

"लेकिन अगर वह मौजूद है तो फिर दिखाई क्यों नहीं देता है और हमारी बुद्धि उसको अपने दायरे में क्यों नहीं लेती?" मेरी इस आपत्ति पर वह महिला मुस्कुराई और कहने लगी कि "मेरी प्यारी बेटी, मानवीय दृष्टि और बुद्धि की क्षमता बड़ी सीमित है। ज़रूरी नहीं कि ये हर चीज़ तक पहुँच सके। ज़रा देखो, इसी दुनिया में हमारे आस-पास ऐसी बहुत-सी चीज़ें मौजूद हैं जो अपना वजूद रखती हैं लेकिन दिखाई नहीं देतीं। बिजली और हवा इसकी ठोस मिसालें हैं। एटम (अणु) को बड़े-से-बड़े सूक्ष्मदर्शी यंत्र भी नहीं देख सके,

लेकिन कौन है जो इसके अस्तित्व से इनकार करता है ? इसी प्रकार इस संसार में अनिवार्यत: एक सर्वोच्च सत्ता मौजूद है, जो सारे Systems को चला रही है। लेकिन हमारी कमज़ोर, सीमित दृष्टि उसको नहीं देख सकती। रही बुद्धि तो वह भी सीमित क्षमता रखती है और दैनिक जीवन में धोखा खाना और मामूली मामलों को न समझ सकना इसकी सामान्य प्रवृत्ति है। फिर ये दोनों कमज़ोर और सीमित मानवीय क्षमताएँ, स्पष्ट है, एक असीम और अनश्वर सत्ता तक किस प्रकार पहुँच सकती हैं ? इसका बोध और विश्वास तो दो ही प्रकार से हो सकता है। एक साधन तो स्वयं मनुष्य का अपना अस्तित्व और जगत में मौजूद अनगिनत एवं अनन्त निशानियाँ हैं। यदि मनुष्य इस पर सोच-विचार करे तो अवश्य ही संसार के स्रष्टा को माननेवाला बन जाएगा और दूसरा साधन नबियों की शिक्षा है। अगर ठण्डे दिल और दिमाग़ से गम्भीरता पूर्वक धार्मिक शिक्षाओं का अध्ययन किया जाएगा और उनपर सोच-विचार किया जाएगा तो भी ख़ुदा को आसानी से समझा जा सकता है।''

उस कृपालु और दयालु महिला की बातचीत और स्नेहपूर्ण रवैये ने भ्रम के बहुत-से काँटे दिल से निकाल दिए और मुझे एक लम्बे समय के बाद ऐसा लगा जैसे थपेड़े मारती मौजों के बीच किसी डूबते हुए व्यक्ति को अचानक एक मज़बूत तख़्ते का सहारा मिल जाए। मायूसी के अन्धेरे छँटते हुए नज़र आए और उस रात पहली बार मैंने ख़ुदा के सामने झुकने का सौभाग्य प्राप्त किया और मैंने रो-रोकर दुआएँ कीं—

''मेरे ख़ुदा, मेरे महान ख़ुदा, मेरे दयालु ख़ुदा! तू बड़ा दयावान और कृपाशील है। तू अपनी सृष्टि से प्रेम करता है। मैं एक कमज़ोर और नादान औरत हूँ और तबाही के दहाने पर खड़ी हूँ और अब वे लोग भी परेशान हैं जो मुझसे हमदर्दी का सम्बन्ध रखते हैं। मुझ पर दया कर और मुझे निराशा के अंधेरों से निकाल दे।''

मैंने यह दुआ बार-बार माँगी और रो-रोकर माँगी। नतीजा यह हुआ कि दिल का ग़ुबार धुल गया और निराशा के अंधेरों में उम्मीदों के जुगनू टिमटिमाने लगे और आश्चर्यजनक बात यह है कि सोच-विचार की दुनिया में एक नए जीवन का उदय होते हुए देखने लगी। एक संकल्प, पवित्र संकल्प मेरे मन-मस्तिष्क में जागृत होने लगा और शीघ्र ही मेरा स्वास्थ्य ठीक होने लगा और

अधिक समय न बीता था कि मैं पूर्णत: स्वस्थ होकर अपने घर आ गई। नशे की लानत से मुझे पूरे तौर पर छुटकारा मिल गया था और यह केवल एक ख़ुदा पर विश्वास और यक़ीन की वजह से संभव हो सका था।

स्वस्थ होने के बाद मैं एक दिन अपनी उस एहसान करनेवाली (उपकारिका) के घर गई, जिसने मुझे नास्तिकता और अविश्वास के अथाह अंधेरों से निकालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मैं जब उसके घर पहुँची तो यह देखकर हैरान रह गई कि वह कुछ ऐसे ढंग से इबादत कर रही थी जिसको मैंने कभी नहीं देखा था। जब उनकी इबादत पूरी हो गई तो मैंने उसकी इबादत के तरीक़े के बारे में उनसे पूछा तो उसने बताया कि वास्तव में उसने इस्लाम क़बूल कर लिया है। फिर उसने मुझे इस्लाम की मूल शिक्षाओं से परिचित कराया और इस्लाम के बारे में कुछ किताबें दीं, जिनमें क़ुरआन का अंग्रेज़ी अनुवाद भी था।

क़ुरआन के अध्ययन ने मुझे यक़ीन और ईमान के रौशन रास्ते पर ला खड़ा किया। मैं उस किताब से बहुत प्रभावित हुई। ख़ुदा का एक होना, उसकी महानता और वैभव, उसकी दयालुता और महिमा हृदय में अंकित होती चली गई। मैंने देखा कि क़ुरआन बार–बार बुद्धि को अपील करता है और मनुष्य के अस्तित्व में और संसार में फैली हुई विभिन्न चीज़ों और निशानियों की ओर ध्यान केंद्रित करके चिंतन–मनन का निमंत्रण देता है, जबकि इसके विपरीत बाइबल की शिक्षा यह है कि अक़ीदे और ईमान का बुद्धि से कोई सम्बन्ध नहीं। अत: क़ुरआन से मेरा सम्बन्ध पल–प्रतिपल मज़बूत होता गया। उपर्युक्त महिला ने इस्लाम के बारे में जो किताबें दी थीं, उनके अध्ययन से इस धर्म की शिक्षाएँ और अधिक निखर कर सामने आईं और जब मैंने इस्लाम के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) के जीवन का अध्ययन किया तो हैरत और ख़ुशी से कुछ न पूछिए कि मेरी क्या कैफ़ियत हुई? और ज़्यादा समय नहीं गुज़रा था कि एक दिन मैंने कलिमा तैय्यिबा पढ़कर उस नेक औरत के हाथ पर इस्लाम क़बूल कर लिया।

अब मैं प्राय: प्रतिदिन उस महान महिला के घर जाती हूँ और वह मुझे इस्लामी जीवन के किसी नए पहलू से परिचित कराती है। मैं उस ममतामयी, विवेकशील और बुद्धिमान महिला के रवैय्ये से जान गई हूँ कि इस्लाम प्रेम और

निस्स्वार्थता का धर्म है। और जो इसे एक प्रोग्राम के अनुसार सोच–समझकर अपनाता है और इसकी शिक्षाओं पर अमल करता है वह प्रेम, स्नेह और निस्स्वार्थ व्यवहार का पुतला बन जाता है। आज मैं भी अपनी उपकार करनेवाली महान औरत की तरह धार्मिक शिक्षाओं पर अमल करती हूँ और बेहद ख़ुश और सन्तुष्ट जीवन व्यतीत कर रही हूँ।

कुछ ही समय पूर्व मैंने अपनी आप बीती को किताबी रूप दे दिया, जिसके बाद सैकड़ों पत्र आए जिनमें लोगों ने किताब की प्रशंसा की थी कि तुम्हारे जीवन ने हमें जीने का नया हौसला दिया है और ख़ुदा पर हमारा ईमान मज़बूत हुआ है।

□ □ □

74. मेविस बी जोली

(Mavis B. Jolley)

(इंग्लैण्ड)

प्रस्तुत लेख उम्मे–असअद ने लिखा और उन्होंने ही इसका उर्दू अनुवाद किया। यह लेख मासिक 'मीसाक़' लाहौर के अंक जुलाई 1995 में प्रकाशित हुआ था।

नीचे बयान की गई आप बीती एक ऐसी साहसी महिला की कहानी है जिसका पालन–पोषण गिरजाघर के धार्मिक माहौल में हुआ, लेकिन जीवन का उद्देश्य उसके लिए एक छिपा हुआ रहस्य ही रहा जिसको जानने के लिए उसने कई दिशाओं में यात्रा की, लेकिन मंज़िल तो दूर की बात है, रास्ते का निशान मिलना भी कठिन हो गया। किन्तु सत्य की खोज की यह यात्रा उसने जारी रखी। फिर अल्लाह का हुक्म हुआ और हिदायत के प्रकाश की किरणें घोर अंधकार को चीरती हुई हव्वा की बेटी के दिल तक पहुँचने लगीं।

> ''अल्लाह ईमानवालों का मददगार है, वह उन्हें अंधेरों से निकालकर प्रकाश की ओर ले जाता है।'' (क़ुरआन, 2 : 257)

निस्सन्देह यह अल्लाह ही है जिसको चाहता है गुमराही के अंधेरों से निकालकर उसके अन्दर की दुनिया को हिदायत की रौशनी से रौशन कर देता है। लेकिन हम जो विरासती मुसलमान हैं, इस कैफ़ियत से बिलकुल ही अवगत नहीं हैं। इसका कारण यह है कि क़ुरआन हमारे यहाँ बेटियों के दहेज का एक हिस्सा बनकर रह गया है। या फिर किसी ताक़ या अलमारी की ज़ीनत बना रहता है। हालाँकि यह वह महानतम ग्रंथ है जो हृदय और दृष्टिकोण को बदल देता है। काश कि हम भी क़ुरआन की शिक्षा और उसकी सच्चाइयों को समझ पाते और उन्हें अपने दिल में उतार लेते, तो पालनहार की ज़मीन पर कहीं बिगाड़ और उपद्रव नहीं होता, इसलिए कि जब सच्चे दिल के साथ सिर एक अकेले ख़ुदा के सामने झुक जाए तो इन्सान उस लड़ी में पिरो दिया जाता है जो बन्दे को बन्दे से जोड़कर जगत से जोड़ देती है।

■ ■ ■ ■ ■

दूसरे बच्चों की तरह मेरी पैदाइश भी जिस माहौल में हुई उसपर ईसाईयत की गहरी छाप थी। माता-पिता मुझे एंगलिकन चर्च में ले गए जहाँ मुझे बप्तिस्मा दिया गया। जब मेरी उम्र स्कूल जाने की हुई तो मुझे गिरजे में स्थित स्कूल में दाख़िल कर दिया गया। यहाँ मुझे ईसा (अलैहि०) की वह कहानी बार-बार याद कराई गई जो इंजील में लिखी है। ईसु की कहानी ने मुझे बहुत प्रभावित किया और मेरा अधिकतर समय गिरजा ही में बीतने लगा। जहाँ धुंधलके में जलती हुई शमाएँ (दीपक) सलीब पर लटकते हुए ईसा का शरीर, और कुंवारी मरयम की तराशी हुई मूर्तियाँ अजीब रहस्यपूर्ण माहौल पैदा किए रखतीं। फिर राहिबों (ईसाई धर्म गुरुओं, संसार त्यागियों) के लम्बे-लम्बे लिबास, जिन्हें वे अपनी कमर के चारों और रस्सियों से बाँधे हुए होते, ननों के स्कार्फ़ से ढके हुए सिर और हज़रत दाऊद (अलैहि०) की कविताओं को पढ़े जाने के साथ का दृश्य, संगीत और दुआ का अन्दाज़ यह सब कुछ बहुत रहस्यपूर्ण लगता। जहाँ तक मुझे याद है कि उन दिनों मेरे दिल और दिमाग़ पर धर्म पूरी तरह छाया हुआ था। धीरे-धीरे समय गुज़रता गया और इस दौरान बाइबल से भी मेरा परिचय बढ़ता चला गया।

ऐसा शैक्षिक माहौल, जहाँ हर चीज़ ईसाईयत के रंग में रंगी हुई थी, वास्तव में काफ़ी सख़्त क़िस्म का था। लेकिन पढ़ाई के दौरान मुझे यह अवसर ज़रूर मिला कि मैं देखूँ कि मैंने जो कुछ पढ़ा है और जिस पर मेरा विश्वास है क्या व्यावहारिक संसार में भी ऐसा ही होता है। सत्य की खोज ने मुझे धीरे-धीरे उस रास्ते पर पहुँचा दिया, जहाँ मुझे पूरा यक़ीन हो गया कि मेरे आस पास जो भी है वह धार्मिक सही मगर संतुष्टि देने वाला नहीं है। बहुत-से व्यावहारिक विरोधाभास ने मुझे चकराकर रख दिया। अतः जब मैं शिक्षा पूरी कर चुकी, उस समय तक मेरा ईसाईयत पर से विश्वास बिलकुल उठ चुका था, बल्कि यूँ कहना चाहिए कि एक ईसाई शिक्षण संस्थान से शिक्षा पूरी करके निकलने के समय मैं एक अच्छी ईसाई ख़ातून होने की बजाय पक्की नास्तिक बन गई।

लेकिन नास्तिकता का यह दौर एक अल्पकालिक दौर था। कुछ समय के बाद मुझे एहसास हुआ कि मेरी आत्मा को शान्ति और संतुष्टि धार्मिक शिक्षाओं ही से मिल सकती है, लेकिन कम से कम ईसाईयत मुझे वह शान्ति और हार्दिक संतुष्टि नहीं दे सकती, जिसकी मुझे तलाश है। अतः मैंने दुनिया के अन्य धर्मों का अध्ययन शुरू कर दिया। इसका आरम्भ मैंने बुद्धमत से किया और बड़े ही शौक़

के साथ 'कपिल वस्तु' में प्रस्तुत आठ नियमों का अध्ययन शुरू किया ताकि जीवन के कठिन रास्ते को हार्दिक शान्ति के साथ पार किया जा सके। लेकिन जल्द ही मुझे यह एहसास हो गया कि बुद्ध के आठ नियमों के उद्देश्य देखने में तो आकर्षक हैं, लेकिन जीवन यात्रा के लिए जिस मार्गदर्शन और पाथेय की ज़रूरत होती है बुद्धमत उससे बिलकुल ख़ाली है।

जहाँ तक हिन्दू मत का मामला है ईसाईयत के तीन ख़ुदाओं के मुक़ाबले में यहाँ मुझे सैकड़ों ख़ुदाओं से वास्ता पड़ा। इनमें बड़े देवता भी थे और छोटे भी, सीमित अधिकारवाले ख़ुदा भी थे और पापात्मा भी, पूजा–पाठ में अज्ञानता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि इन्सानी अंगों की पूजा की भी तालीम दी गई थी। इस धर्म का साहित्य निराधार क़िस्सों और कहानियों पर आधारित है और ज़ाहिर है कि सर्पवेद (साँपों की कहानियाँ) पिशाचवेद (चुड़ैलों की कहानियाँ) और असुरवेद (शैतानों की कहानियाँ) ऐसी किताबें हैं जिन्हें समय बिताने के लिए तो पढ़ा जा सकता है, लेकिन ईमान और आस्था के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

फिर मैंने यहूदियत के बारे में भी अध्ययन किया। यद्यपि बाइबल के ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) से लगाव होने के कारण मैं यहूदियत से कुछ परिचित थी, किन्तु व्यापक अध्ययन, विशेषकर 'तल्मूद' की शिक्षाओं से अवगत होने के बाद मुझे मालूम हुआ कि यहूदियत वास्तव में भेदभाव, नफ़रत और नस्लपरस्ती की धारणा पर आधारित एक ऐसा धर्म है, जो मनुष्य के नागरिक और सामाजिक जीवन के विकास के लिए बहुत बड़ा ख़तरा है।

इन धर्मों के अध्ययन के बाद मुझे ऐसा महसूस होने लगा जैसे मैं एक अंधेरी रात में घने जंगलों के बीच खो गई हूँ और रास्ते के निशान कहीं नज़र नहीं आते। यह चर्च की शिक्षाओं का असर था कि मेरे अवचेतन में इस्लाम के ख़िलाफ़ नफ़रत के कारण भेदभाव इस प्रकार बैठा था कि सत्य की खोज के दौरान मुझे यह ख़्याल ही नहीं आया कि इस्लामी शिक्षाओं के बारे में भी जानने की कोशिश की जाए।

जब मैं इस जानलेवा परेशानी से गुज़र रही थी तो मेरी एक सहेली ने मुझे राय दी कि तुम आध्यात्मवाद की ओर क्यों नहीं जातीं। वह मुझे शहर से बाहर समुद्र तट पर या फिर किसी ऐसी जगह ले जाती जहाँ केवल हवा का शोर और चिड़ियों की चहचहाहट होती। उसने मुझे साँस को क़ाबू में करने के कुछ

अभ्यास बताए, लेकिन मेरा दिल जल्द ही उन सभी प्रयोगों से उक्ता गया। सत्य धर्म की खोज अब भी मेरा मिशन था।

इसी दौरान एक स्थानीय समाचारपत्र में ईसा के ख़ुदा होने के बारे में एक लेख प्रकाशित हुआ। मैंने बाइबल के हवाले से एक प्रतिक्रियात्मक निबन्ध लिखा, जिसमें 'ओल्ड टेस्टामेंट' (Old Testament) और 'न्यू टेस्टामेंट' (New Testament) के अनगिनत उद्धरणों से ईसा के ख़ुदा होने की अवधारणा की अत्यन्त कटु आलोचना की गई थी। मेरे लेख के प्रकाशन के बाद मुझे बहुत-से पत्र मिलने लगे, जिनमें इस विषय पर बड़े विस्तार से बहस की जाती। इन्हीं पत्रों में मुझे एक मुसलमान का पत्र मिला, जिसमें उसने लिखा कि आपने हज़रत ईसा के ख़ुदा होने को रद्द करके इस्लाम के एक मूलभूत इस्लामी सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया है और आपके मुसलमान होने में केवल इतना सा समय बाक़ी रह गया है जितना कि एक कलिमा पढ़ने में लगता है। उस पत्र ने तो जैसे मेरी दुनिया ही बदल डाली और मैंने विभिन्न लोगों के साथ इस्लाम के बारे में बातचीत और जानकारी हासिल करना आरम्भ कर दी। हर बातचीत के बाद मेरे अवचेतन में इस्लाम के विरुद्ध बैठा हुआ पूर्वाग्रह और पक्षपात दम तोड़ देता और अन्ततः मैंने स्वीकार कर लिया कि अरब रेगिस्तान के एक व्यक्ति ने जो आसमानी शिक्षाएँ पेश की हैं और जिन सिद्धान्तों और नियमों से परिचय कराया है, हमारी बीसवीं सदी की अत्यन्त विकसित सरकारें भी इन नियमों का विकल्प प्रस्तुत नहीं कर सकतीं। मेरे लिए यह बात आश्चर्यजनक थी कि हमारी सरकारों ने बहुत प्रयासों के बाद जो बेहतरीन क़ानून बनाए हैं वे इस्लाम ने चौदह सौ वर्ष पूर्व ही परिचित करा दिए थे। इस्लाम के अध्ययन के दौरान मैं ब्रिटेन में रहनेवाले मुसलमानों के अलावा उन लड़कियों से भी मिलती रही जिन्होंने ईसाईयत को त्यागकर इस्लाम क़बूल कर लिया था, लेकिन हृदय की वह शान्ति जिसकी मैं कल्पना करती थी, अब भी मुझसे कोसों दूर थी। ये लड़कियाँ हर प्रकार से मेरी परेशानियाँ दूर करने में मदद करतीं। मैंने इस्लाम के बारे में कई किताबों का अध्ययन जारी रखा। उनमें 'दीने-इस्लाम', 'मुहम्मद और ईसा' और 'ईसाईयत का माख़ज़ (स्रोत)' जैसी किताबें शामिल थीं। आख़िरी किताब पढ़ने के बाद मैं आश्चर्यजनक सत्य से अवगत हुई कि प्राचीन ईश्वरीय धर्मों के अधिकतर धार्मिक सिद्धान्त और रीति-रिवाज आज भी केवल नाम के कुछ बदलाव के बाद ईसाईयत में प्रचलित हैं।

किताबों के अलावा मैंने क़ुरआन का अध्ययन भी आरम्भ कर दिया। आरम्भ में तो ऐसा था जैसे किसी किताब के कुछ अध्याय केवल समझने के लिए दोहराए जाएँ। मुझे वास्तव में यक़ीन ही नहीं था कि इस किताब से कुछ हासिल भी कर रही हूँ या नहीं। लेकिन क़ुरआन, जैसा कि मैंने पाया, सिर्फ़ उन्हीं की रहनुमाई करता है जो वाक़ई कुछ हासिल करना चाहते हैं और यह सब कुछ बहुत ही धीरे–धीरे होता है। क़ुरआन सबसे पहले हमारी आत्मा के साथ सम्पर्क स्थापित करता है और जब दिल की कैफ़ियत बदलना शुरू होती है तो आत्मा भी धीरे–धीरे गन्दगी से पाक होती चली जाती है। आख़िर में ऐसा समय भी आ आता है जब शरीर और आत्मा एक जान दो काया होकर एक निर्मल बहते हुए पानी का रूप धारण कर लेते हैं। अब बड़ा अच्छा एहसास होना शुरू हो जाता है, ये कैफ़ियतें वास्तव में ऐसी होती हैं, जिन्हें हम महसूस तो कर सकते हैं, बयान नहीं कर सकते। हमारे शब्दों में वह क्षमता ही नहीं कि दिल के पाक होने के इस पाकीज़ा अमल को बयान किया जा सके।

बहरहाल, क़ुरआन का अध्ययन मेरी आदत बन गई। ऑफ़िस की व्यस्तताओं और ज़रूरी कामों से फ़ुरसत के बाद सोने से पहले हर रात मैं क़ुरआन ज़रूर पढ़ती, न जाने कितनी ही रातें इस तरह गुज़र गईं कि अगर मैं क़ुरआन को रख देना चाहती तो भी ऐसा न कर सकती। ज्यों–ज्यों क़ुरआनी शौक़ मुझ पर छाता गया, उसकी शिक्षाएँ मेरी समझ में आती गईं। मुझे बड़ी हैरानी हुई कि इतनी पूर्ण और ठोस मार्गदर्शन से अलंकृत यह किताब एक अनपढ़ व्यक्ति द्वारा किस प्रकार पेश की गई होगी। ख़ुद मुसलमानों ने कभी यह दावा नहीं किया कि मुहम्मद (सल्ल०) किसी आकाशीय सृष्टि से सम्बन्ध रखते थे या कोई अलौकिक मनुष्य थे। क़ुरआनी अध्ययन ने मुझे यह बताया कि जितने भी संदेष्टा आए जिनमें हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) भी शामिल हैं, सब के सब मनुष्य ही थे, लेकिन सामान्य मनुष्य से वह केवल इस प्रकार भिन्न थे कि एक तो वे मासूम (निर्दोष) थे और दूसरे यह कि उन पर अल्लाह की ओर से वह्य उतरती थी। मुझे यह भी जानकारी हुई कि नबी (सल्ल०) पर आनेवाली वह्य कोई नई बात न थी। बाइबल के ओल्ड टेस्टामेंट (Old Testament) के कई सन्दर्भ ऐसे हैं जिनसे पता चलता है कि बनी इसराईल के सभी महान दूतों पर वह्य आया करती थी, यहाँ तक कि ख़ुद हज़रत ईसा (अलैहि०) से संबद्ध इंजीलों के वाक्यों से सिद्ध होता है कि वह

अपनी इच्छा से नहीं बल्कि अल्लाह की ओर से आए हुए आदेशों के अनुपालन में धर्म प्रचार करते थे। इसके बावजूद यह बात मेरे लिए एक पहेली बनी रही कि इस विकसित दौर में एक भी ऐसा व्यक्ति पैदा नहीं हुआ, जिसने इन्सानों की रहनुमाई के लिए कोई किताब लिखी हो और यह दावा किया हो कि उसकी यह किताब भी ईश्वरीय शिक्षाओं का परिणाम है। इस सवाल के जवाब के लिए मैंने क़ुरआन से सम्पर्क किया तो मुझे मालूम हुआ कि हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह की ओर से भेजे गए दूतों (रसूलों) में से अन्तिम दूत हैं, और यह बात है भी हक़ीक़त कि नए पैग़म्बर की ज़रूरत उस समय पड़ती है जब उससे पहले के पैग़म्बर की शिक्षाएँ और उसपर उतरनेवाली आसमानी शिक्षाओं को बदल दिया गया हो।

लेकिन क़ुरआन जैसा कि इसके रचयिता अल्लाह ने ख़ुद दावा किया है कि, ''हम ही ने इसको उतारा है और हम ही इसकी सुरक्षा करेंगे।'' (क़ुरआन 15 : 9) पिछली चौदह सदियों से अपने मूल रूप में मौजूद है और इसमें किसी एक अक्षर या मात्रा में भी परिवर्तन नहीं किया जा सका है। स्पष्ट है कि जब ये ईश्वरीय शिक्षाएँ अपने मूल रूप में बिना किसी परिवर्तन या विकृति के मौजूद हैं तो किसी नए नबी या नई किताब की ज़रूरत ही क्यों पड़ सकती है। इन सब बातों के अतिरिक्त एक और बात जो मेरे अवलोकन में आई वह यह थी कि क़ुरआन ने उन लोगों को जिन्हें इस किताब पर ज़रा सा भी शक है बड़े अच्छे ढंग से अपनी ओर आकृष्ट किया है। क़ुरआन ने कहा है कि वे लोग जो इस किताब के आसमानी होने में ज़रा-सा भी संदेह रखते हैं (उनसे) कहो, ''यदि तुम सच्चे हो, तो इस जैसी एक सूरा ले आओ और अल्लाह से हटकर उसे बुला लो जिसपर तुम्हारा बस चले।'' (क़ुरआन, 10 : 38) तब मेरा विचार था कि आज के आधुनिक दौर में जबकि शब्दों की तलाश के लिए अच्छे-से-अच्छा शब्दकोश मौजूद है, हम मुहम्मद (सल्ल०) के ज़माने के मुक़ाबले में क़ुरआनी साहित्य से अच्छा साहित्य लिख सकते हैं और फिर एक चैलेंज के तौर पर मैंने यह काम शुरू किया। लेकिन जब भी क़लम और काग़ज़ लेकर बैठती शब्द मेरा साथ छोड़ जाते और दिमाग़ पर जैसे अंधेरा सा छा जाता। फिर मैं यह बात समझ गई कि ऐसा साहित्य लिखना जिसमें मानव की स्थाई समस्याओं का समाधान मौजूद हो कम से कम मेरे लिए तो असम्भव है। मेरे दोस्त और रिश्तेदार जब मुझसे मिलने आते तो मेरे कमरे में इस्लामी

किताबें देखकर आश्चर्य प्रकट करते। चूँकि चर्च के भेदभाव पूर्ण रवैय्ये ने उन्हें इस्लाम धर्म का सख़्त दुश्मन बना रखा था। अतः अधिकतर अवसरों पर बहस के दौरान इस्लाम पर बहुत ही तुच्छ प्रकार के हमले करते, जैसे बहुपत्नित्व को ही ले लीजिए। उन्होंने मुझसे इस बात को मनवा लेने में काफ़ी हद तक कामयाबी हासिल कर ली कि इन्सानी समाज में जो पहली तरक़्क़ी नज़र आती है वह पश्चिम के एकपत्नीत्व के दृष्टिकोण की ऋणी है। जबकि इस्लाम एक अज्ञान काल की समाजी ख़राबी बहुपत्नीत्व को अब भी संभाले फिर रहा है।

इस बात का ज़िक्र जब मैंने अपनी मुसलमान सहेली से किया तो उसने अख़बारों की कतरनों और औरतों की पत्रिकाओं से निकाले हुए कुछ लेख मेरे सामने रखते हुए कहा कि आप इनको देखिए और बताइए कि पश्चिम को एकपत्नीत्व पर जितना गर्व है और इसे जितना सभ्य होने का प्रतीक समझा जाता है उसकी हक़ीक़त में क्या स्थिति है और ब्रिटिश समाज एकपत्नीत्व के सिद्धान्त पर किस हद तक अमल कर रहा है? व्यभिचार के कारण हमारे समाज के नैतिक मूल्यों का जिस तेज़ी से पतन हो रहा है और नाजायज़ बच्चों की बढ़ती हुई तादाद ने परिवार की इकाई को जिस तरह तबाह कर डाला है, इसका एहसास अभी तक हमारे शासकों को नहीं हो सका। हमारी नई पीढ़ी माता-पिता की नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा-दीक्षा के बिना निराशा का शिकार हैं, और वह अपनी समस्याओं का समाधान नशे और प्रतिशोध भावना को तुष्ट करने के लिए अपराध को पनाहगाह (शरणस्थली) समझती है। बुज़ुर्गों का आदर और सम्मान तो हमारे समाज में एक पुरानी कहानी बन चुका है। इसी प्रकार की अन्य ख़राबियां और कमियां हैं जो हमारे समाज को घुन की तरह चाट चुकी हैं। इन संगीन बुराइयों, ख़ास तौर पर व्यभिचार को रोकने और औरतों की इज़्ज़त-आबरू की सुरक्षा के लिए वास्तव में हमारे पास 'बहुपत्नित्व' के अतिरिक्त कोई समाधान है ही नहीं और मैं ख़ुद भी यह देख सकती थी कि विशेषकर द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति पर जबकि ब्रिटिश समाज में मर्दों के मारे जाने के बाद औरतों की एक बहुत बड़ी तादाद अकेले रहने पर मजबूर हो गई थी, तो उन्हें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। समाज की अर्थव्यवस्था को सहारा देने और सबसे बढ़कर अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ब्रिटिश औरतों ने बड़ी तेज़ी से वे पेशे अपनाए जहाँ काम करके न केवल उनका नारीत्व ख़त्म हो गया, बल्कि सारा दिन

अकेले रहने वाले बच्चे भी नैतिक पतन का शिकार हो गए। सर्वाधिक दयनीय स्थिति वह थी जब औरतों की अच्छी–ख़ासी तादाद ने भूख मिटाने के लिए वेश्यावृत्ति का धंधा शुरू कर दिया। क्या ख़ुदा ने इन औरतों को ऐसा ही जीवन बिताने के लिए ज़िन्दा छोड़ रखा था? यह वह सवाल था जो मेरी तरह क़रीब हर औरत के दिमाग़ में ज़रूर कुलबुलाता होगा, मुझे याद है कि एक रेडियो प्रोग्राम में जिसका शीर्षक 'यस सर' था, एक कुँवारी अंग्रेज़ औरत ने कहा था कि मर्दों को बहुपत्नित्व का क़ानूनी अधिकार होना चाहिए। वह औरत तो यहाँ तक कह गईं कि सम्मानित जीवन व्यतीत करने के लिए उसे किसी शादी–शुदा मर्द की बीवी की क़ानूनी साझेदारी में रहना ख़ुशी से क़बूल है। इस्लाम के बहुपत्नित्व के बारे में ईसाईयत ने जो ज़हर घोल रखा है उसकी हक़ीक़त अब मुझपर खुली है। इस्लाम ने बहुपत्नित्व को ज़रूरी नहीं ठहराया है कि हर मर्द ज़रूर ही एक से अधिक शादियाँ करे। लेकिन एक सर्वांगपूर्ण धर्म में हर परिस्थिति और हर समय की समस्याओं से सम्बन्धित जो ज़रूरी मौक़े होने चाहिएँ (जैसे कि हमारे यूरोपीय समाज में पेश आनेवाली समस्याएँ हैं) वे इस्लाम धर्म में मौजूद हैं और ऐसा धर्म ही पूरी मानवता का धर्म बन सकने के योग्य होता है।

बहरहाल, इस प्रकार मैं धीरे–धीरे इस्लामी शिक्षाओं को क़बूल करती गई और फिर एक दिन मैंने अपने तमाम दोस्तों और रिश्तेदारों के सामने अपने मुसलमान होने का एलान कर दिया। इस्लाम को क़बूल करने के बाद मेरे हृदय और मेरी आत्मा को वह शान्ति व सन्तुष्टि प्राप्त हो गई, जिसकी तलाश में मैं उम्रभर भटकती रही। यह शान्ति और संतुष्टि इसलिए भी थी कि मैंने केवल भावुक होकर इस्लाम क़बूल नहीं किया था, बल्कि इस्लाम से परिचित होने के दो साल बाद तक मेरे अन्दर सच्चाइयों को स्वीकार करने के लिए देखने–समझने की जंग जारी रही और प्रत्येक प्रश्न के संतोषजनक उत्तर के बाद ऐसा सम्भव हुआ कि अंधकार में भटकते राही को अपनी असली मंज़िल का निशान मिल गया।

□□□

75. वर्जीना हाजरा मीर

(Virgina Hajara Mir)

(अमेरिका)

मैंने सात वर्ष तक एक प्रशिक्षित प्रचारिका की हैसियत से ईसाइयत का प्रचार किया। लेकिन सच बात यह है कि इस धर्म का प्रचार मैं आँखें बन्द करके करती थी, वरना न तो दिल सन्तुष्ट था न दिमाग़। ईसाईयत के किसी एक अक़ीदे पर भी मन–मस्तिष्क संतुष्ट नहीं था, लेकिन वातावरण के ज़ुल्म और पेशेगत विवशता ने जैसे मज़बूत ज़ंजीरों में जकड़ रखा था, जिनको तोड़ना मेरे बस की बात न थी।

अन्ततः मैं मन के हाथों मजबूर हो गई और एक दिन इन सारी पाबन्दियों को तोड़कर मैं अमेरिका से भाग खड़ी हुई और यूरोप की सैर को जा निकली, फिरते–फिराते जर्मनी पहुँच गई, जहाँ सौभाग्य से मेरा परिचय एक पाकिस्तानी नौजवान से हो गया। यह नौजवान आम लोगों से बिलकुल अलग था। गंभीर व्यक्तित्व वाला, शिष्ट और उसूल का पक्का था। मुझे उसके आचरण और व्यवहार ने बहुत प्रभावित किया। सबसे बढ़कर यह कि वह सच्चरित्रता का मालिक था और सामान्य प्रचलन और परम्परा के अनुसार वह औरतों को खिलौना नहीं समझता था। उनका आदर करता था। इस प्रकार मैंने उसके व्यक्तित्व के माध्यम से उसके धर्म के विषय में जानने की कोशिश की और यह जानकर मुझे बेहद ख़ुशी हुई कि उसका धर्म बुद्धि और प्रकृति के पूर्णतः अनुकूल है। उसमें ईसाईयत की भाँति अंधविश्वास नहीं, शिर्क नहीं, मूर्ति–पूजा नहीं— सभी धार्मिक सिद्धान्त साफ़–सुथरे हैं और मानव–मन को सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। चूँकि मैं एक लम्बे समय से अन्दर से परेशान थी, इसलिए ख़ुशी से मुसलमान हो गई और हम दोनों ने शादी कर ली। दयालु और कृपालु अल्लाह ने मुझ पर दोहरी कृपा की। अपना पसन्दीदा धर्म प्रदान किया और एक शरीफ़ और नेक व्यक्ति को मेरा जीवन साथी बना दिया। सारी तारीफ़ें जगत के पालनहार के लिए हैं।

शादी के बाद हम दोनों पाकिस्तान आ गए और यहाँ मैंने एक छोटे–से गाँव माहजी में डेढ़ साल गुज़ारा और इस्लाम और पाकिस्तानी मुसलमानों की और भी बहुत–सी अच्छाइयाँ मेरे सामने आईं। यह मेरे जीवन का अनोखा अनुभव था। मैं अब तक अमेरिका के बड़े–बड़े शहरों में रही थी, जहाँ दुनिया भर की सुविधाएँ थीं, लेकिन अब एशिया के एक ऐसे छोट–से गाँव में रह रही थी जहाँ सादगी अपनी चरम सीमा तक पहुँची हुई थी।

ख़ुदा का शुक्र है उसने मुझे अपनी कृपा से हक़ीक़त पसन्दी (सत्यप्रियता) प्रदान की थी। अतः इस गाँव में रहते हुए मैं कुछ भी परेशान न हुई, बल्कि यहाँ मैं सुख और शान्ति के एक नए एहसास से परिचित हुई। कहाँ तो अमेरिका और यूरोप में ख़ानदानी ज़िन्दगी तबाह और बरबाद हो चुकी है और कहाँ पाकिस्तान का सामाजिक जीवन कि जहाँ घर के सभी सदस्य आपस में मिलकर हँसी–ख़ुशी शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। अमेरिका में पति–पत्नी को भी एक साथ बैठकर खाना खाने का अवसर बहुत कम मिलता है, जबकि पाकिस्तान के इस गाँव में घर के सभी सदस्य एक ही जगह खाना खाते थे। बाप को एक विशेष स्थान और सम्मान प्राप्त था। माँ का सभी लोग जी–जान से आदर करते थे और मेरी नन्दें मुझ पर जान छिड़कती थीं।

सच्चाई यह है कि वह गाँव एक जन्नत से कम न था, किसी घर में ख़ुशी होती तो सब सच्चे दिल और ख़ुशी से इसमें शामिल होते और कहीं निधन हो जाता तो सारा गाँव उस ग़म को महसूस करता और सोगवार ख़ानदान कई दिन तक घर में खाना न पकाता और आसपास के लोग इनकी देख–रेख करते। गाँव में बड़ों का विशेष आदर किया जाता और घर के भी सदस्य माँ और बाप को विशेष महत्व देते। नौजवान सदाचारी थे और बच्चियाँ शर्म और हया का नमूना थीं। यह सब कुछ यूरोप और अमेरिका के सामाजिक जीवन से बिल्कुल मेल नहीं खाता था, जहाँ बेटी सतरह वर्ष की होती तो उसे घर से बाहर निकलने, ख़ुद कमाने और अपने जीवन का रास्ता ख़ुद चुनने पर मजबूर किया जाता। सच्चाई यह है कि मर्द और औरत के संदर्भ से अमेरिका और यूरोप की ज़िन्दगी जानवरों से कुछ भी अलग नहीं। वहाँ बहुत–से परिवार हैं, जहाँ माता–पिता के दस–दस बारह–बारह बेटे हैं, लेकिन बुढ़ापे और बीमारी में कोई ख़ैरियत भी नहीं पूछता। जानवरों की भाँति माँ–बाप को भूल–भालकर

बेपरवाह हो जाते हैं।

इस गाँव में मैंने देखा कि कोई नौजवान लड़की घर से अकेली नहीं निकलती थी और उचित अवसर पर लड़कियों की शादियाँ कर दी जाती थीं। मानो शैतान को राह पाने का मौक़ा ही नहीं मिलता था। इस तरह मेरे निकट मुसलमान होना और इस्लाम से व्यावहारिक रूप से जुड़े रहना दुनिया की सबसे बड़ी नेमत है। काश, यह नेमत सारी दुनिया को मिल जाए और धरती सचमुच स्वर्ग बन जाए। मुझे विश्वास है कि अल्लाह ने दुनिया में अपनी सच्ची सत्ता स्थापित करने और मानव-जाति की स्थाई सफ़लता के लिए इस्लाम का चयन कर लिया है और वह समय आकर रहेगा जब इस्लाम सम्पूर्ण संसार का धर्म होगा और अत्याचार और अज्ञानता के अंधेरे छट जाएँगे।

अन्त में यह भी बता दूँ कि मेरी दो बच्चियाँ हैं जिनका पालन-पोषण मैं शुद्ध इस्लामी तरीक़े से कर रही हूँ और मुझे आशा है कि अल्लाह की कृपा से वे पाकीज़ा माहौल में पल-बढ़कर अल्लाह के धर्म के विकास और प्रचार और गरिमा का माध्यम बन जाएंगी।

□□□

76. वॉनी रिडले

(Yuonne Ridley)

(इंग्लैण्ड)

वॉनी रिडले वह ब्रिटिश महिला हैं, जो उस समय अख़बारों की सुर्ख़ी बन गईं, जब 28 सितम्बर 2001 ई० को गुप्त रूप से अफ़ग़ानिस्तान में दाख़िल होते समय तालिबान ने उनको गिरफ़्तार कर लिया और उसके दस दिन बाद उनको रिहा कर दिया गया। लेकिन क़ैद के इन दिनों ने न केवल उनके जीवन की काया पलट दी बल्कि दुनिया और उसकी समस्याओं के बारे में उनकी पूरी सोच को भी बदल दिया। रिहाई पाने के बाद उन्होंने अपने प्रोटेस्टेंट धर्म को छोड़कर इस्लाम को क़बूल कर लिया।

अफ़ग़ानिस्तान की जेलों में उन्हें कई बार दावत दी गई कि वह इस्लाम क़बूल कर लें। उन्होंने यह वादा किया कि रिहा होते ही क़ुरआन ज़रूर पढ़ेंगी। वॉनी रिडले को कोई नुक़सान पहुँचाए बग़ैर रिहा कर दिया गया और अब यह उनकी बारी थी कि वे अपने वादे को पूरा करें। रिहाई के बाद छात्रों के एक ग्रुप से बात करते हुए उन्होंने कहा, ''चूँकि मुझे क़ैद में रखनेवालों ने मेरे साथ हमदर्दी और आदर का व्यवहार किया है, इसलिए इसके बदले में मैंने अपने वादे का सम्मान करते हुए उनके धर्म का अध्ययन आरम्भ कर दिया। इस प्रकार शुरू होनेवाली आध्यात्मिक यात्रा की पूर्णता 30 जून, 2003 ई० की सुबह ग्यारह बजे इस्लाम क़बूल करके हुई।''

एक अवसर पर क़ैद के दौरान पेश आनेवाली एक घटना को बयान करते हुए वॉनी रिडले ने कहा, ''एक समय ऐसा भी आया जब काबुल की जेल में क़ैद के दौरान मेरी सहन शक्ति इस सीमा तक जवाब दे गई कि मैंने अपने क़ैद करनेवालों के मुँह पर थूका और उनको गालियाँ दीं। मुझे इसके बदले में उनसे बदतरीन जवाब की उम्मीद थी। लेकिन उन लोगों ने मेरे उत्तेजित करनेवाले रवैय्ये के बावजूद मुझे बताया कि मैं उनकी बहन और मेहमान हूँ।''

इराक़ में क़ैदियों पर अमेरिकी और ब्रिटिश फ़ौजियों के बयान न करने योग्य अत्याचारों के परिदृश्य में वॉनी रिडले की दास्तान को बड़ा महत्व

मिला। इसमें दो विभिन्न संस्कृतियों की सच्ची तस्वीर आइने की तरह साफ़ नज़र आती है। एक वह जो आज़ादी, मानव अधिकार और औरतों के स्थान और मक़ाम की पूरी दुनिया की ठेकेदार बनी हुई है, लेकिन क़ैदियों के साथ उसका व्यवहार असभ्य जंगली लोगों को भी लज्जित कर देता है और दूसरी वह जिसपर आतंकवाद, अधिकार न देने और महिलाओं को पिछड़ा रखने का आरोप लगाया जाता है, लेकिन इसका व्यवहार एक आधुनिक शिक्षा प्राप्त महिला के दिल को जीत लेता है। आज तालिबान का नाम गाली बना दिया गया है। लेकिन इस्लाम की शिक्षाओं पर अमल करने में वह आकर्षण बल्कि जादू है जो सिर चढ़कर बोलता है।

वॉनी रिडले 2001 ई० के बाद दो किताबें लिख चुकी हैं और उनके कहने के अनुसार, ''इस घटना ने मेरी पत्रकारिता के कार्यक्षेत्र को रेडियो और टी०वी० तक बढ़ा दिया है।'' उनकी एक किताब 'इन दी हैंड्स ऑफ़ तालिबान' (In the hands of Taliban) तालिबान के साथ उनके अनुभवों पर आधारित है, जबकि दूसरी किताब 'टिकट टू पैराडाइज़' (Ticket to Paradise) एक नॉवेल की तरह है।

सऊदी अरब के हज मंत्रालय की ख़ूबसूरत अरबी–अंग्रेज़ी पत्रिका 'अल हज्ज वल उमरह' जून 2004 ई० में उनका निम्नलिखित ईमेल इंटरव्यू प्रकाशित हुआ था। यह इंटरव्यू उमर समान ने लिखा था और नूर असलम ख़ान ने इसे उर्दू रूप दिया और यह मासिक पत्रिका 'तर्जुमानुल क़ुरआन' लाहौर के अंक जून 2004 ई में प्रकाशित हुआ। तीनों के शुक्रिये के साथ यहाँ हिन्दी में पेश है—

सवाल : इस्लाम क़बूल करने से पहले आप इस धर्म के बारे में कितना जानती थीं?

जवाब : मैं इस्लाम के बारे में बहुत कम जानती थी और जो कुछ जानती थी वह बिगड़ी हुई व गुमराह करनेवाली जानकारी के अतिरिक्त कुछ न था।

सवाल : आप कहती हैं कि 11 सितम्बर की घटना इस्लाम के लिए घातक होने के साथ–साथ एक सुखद घटना की हैसियत भी रखती है। इसका क्या अर्थ है?

जवाब : 11 सितम्बर की घटना की इस्लाम के लिए बदतरीन शक्ल तो

यह है कि मुसलमानों के हवाले से नफ़रत और ग़लतफ़हमी में वृद्धि हुई, जिसका कोई औचित्य नहीं। मुझे तो इस बात से भी बड़ी नफ़रत है कि इस घटना से फ़ायदा उठाकर इसे मुसलमानों को रगेदने के लिए एक लाठी के रूप में इस्तेमाल किया जा रहा है। किन्तु इसके नतीजे में एक आश्चर्यजनक बात यह हुई है कि मुझ जैसे कम जाननेवाले लोगों ने इस्लाम के बारे में अधिक से अधिक जानने के लिए क़ुरआन और अन्य इस्लामी लिट्रेचर का अध्ययन शुरू कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि अब इस्लाम दुनिया में तेज़ी से फैलने वाला धर्म बन चुका है। ख़ुद ब्रिटेन में 11 सितम्बर से अब तक लगभग 14 हज़ार व्यक्ति इस्लाम की ओर आ चुके हैं और बहुत-से मुसलमान अपने को नए सिरे से ताज़ा करने के लिए सक्रिय हो गए हैं।

सवाल : इस्लाम में महिलाओं के अधिकारों के बारे में आपकी व्यक्तिगत राय क्या है ?

जवाब : क़ुरआन इस बात को बहुत स्पष्ट रूप से बयान करता है कि व्यक्ति की अहमियत, शिक्षा और धर्म के सम्बन्ध में मर्द और औरत बराबर हैं, और यह कि बच्चों की पैदाइश और उनके पालन-पोषण के संदर्भ से भी हमें सराहा गया है। मेरे विचार में तो यह हमें मानवता की चोटि तक पहुँचा देता है।

सवाल : आप 2001 ई० में पहली फ़ुर्सत में अफ़ग़ानिस्तान क्यों गई थीं ?

जवाब : मैं वास्तव में उन लोगों से बात करना चाहती थी जिन्हें अमेरिका और ब्रिटेन की ओर से जंग करने के फ़ैसले से सीधे प्रभावित होना था। मैं उनके एहसासात के बारे में जानना चाहती थी कि वे 11 सितम्बर के संदर्भ में क्या कहते हैं और तालिबान की हुकूमत के अधीन रहकर वे किस प्रकार जीवन यापन कर रहे हैं।

सवाल : आपने जब इस्लाम क़बूल करने का इरादा किया तो उस समय आपके ख़ानदान और ख़ास तौर से बेटी डेसी की प्रतिक्रिया क्या थी ?

जवाब : इस संदर्भ में मेरे परिवार की मिली-जुली प्रतिक्रियाएँ थीं। मेरी माँ ने फिर से चर्च जाना शुरू कर दिया, जबकि मेरी बेटी डेसी मेरी सबसे बड़ी सहायक बन गई।

सवाल : आप क्या समझती हैं कि समाज आपको किस नज़र से देख रहा है ? एक बहादुर औरत या एक ऐसी औरत जिसने अपने धर्म से बेवफ़ाई की ?

जवाब : मुझे ईसाई कट्टरपंथियों की ओर से क़त्ल की धमकियाँ मिल चुकी हैं कि मैंने अपने धर्म से ग़द्दारी की है, लेकिन मेरे मुसलमान भाई जो पहले दिन से ही मेरे मददगार चले आ रहे हैं, इसका जवाब देकर उसका असर ख़त्म कर देते हैं।

सवाल : आप अपनी बेटी को भी अफ़ग़ानिस्तान लेकर गईं। आपने ऐसा फ़ैसला क्यों किया और ख़ुद उसके विचार क्या हैं ?

जवाब : मैं 2002 ई० के बहार के मौसम (वसन्त ऋतु) में अपनी बेटी को अफ़ग़ानिस्तान इसलिए लेकर गई थी, ताकि वह इस बात को अपनी आँखों से देख सके कि अफ़ग़ान इन्सानों की वे नस्ल हैं जिनके दिल हमदर्दी की ख़ूबसूरत भावनाओं से भरे हैं। यह एक ऐसा अच्छा सुन्दर अनुभव है जो हमेशा उसके दिल में ताज़ा रहेगा और यह निस्सन्देह डिज़नीलैण्ड देखने के अनुभव पर प्रभावी रहेगा।

सवाल : आपने हाल ही में अफ़ग़ानिस्तान का दौरा किया, वहाँ जाकर आपने क्या देखा ?

जवाब : मैं रिहाई के बाद कई बार अफ़ग़ानिस्तान आ चुकी हूँ, जो कुछ मुझे नज़र आया वह यह है कि पूरा देश एक ऐसा खण्डहर बन चुका है जिस पर हुकूमत करनेवाले व्यक्ति को काबुल का मेयर कहा जाता है, क्योंकि हामिद करज़ई काबुल से बाहर शेष देश पर कोई कंट्रोल नहीं रखते। अमेरिकी फ़ौजियों ने अफ़ग़ानी जनता के दिल व दिमाग़ जीतने के लिए कुछ नहीं किया। उनका व्यवहार अफ़ग़ानी जनता के साथ अनादर का है और यही कारण है कि अब तक किसी ने भी उनका स्वागत नहीं किया।

अफ़ग़ानिस्तान में अमेरिकी फ़ोजी शांति तो स्थापित न कर सके, उल्टे उन्होंने दुनिया भर के मुसलमान मिलिटेन्टस को अपनी जान का दुश्मन बना लिया।

अफ़ग़ानिस्तान के अन्दर औरतों को लगातार मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है। इन हालात में पेशेवर औरतें कैसे तैयार हों, अमेरिका क़ौमों को

आज़ादी दिलानेवाला नहीं बल्कि साम्राज्यवादी, अत्याचारी, और ज़ोर-ज़बरदस्ती करनेवाला देश है। सुबूत की ज़रूरत हो तो अफ़ग़ानिस्तान जाकर अपनी आँखों से देख लें।

सवाल : इस्लाम क़बूल करने के बाद आपके अन्दर क्या बदलाव आया?

जवाब : मेरा यह साहस पहले से और अधिक मज़बूत हो गया है कि जिधर भी जाऊँ इस्लाम को फैलाऊँ। धर्म बदलवाना मेरा काम नहीं। मैं इस आश्चर्यचकित कर देनेवाले धर्म के द्वारा लोगों की अज्ञानता और नफ़रत की आग बुझाना चाहती हूँ।

सवाल : इस्लाम की किस विशेषता ने आपको सबसे अधिक प्रभावित किया?

जवाब : यह औरतों को प्रोत्साहित करता है। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) ने औरतों के साथ सद्व्यवहार का जो उच्चतम आदर्श स्थापित किया है वास्तव में उससे वे औरतों का सबसे बढ़कर आदर करनेवाले और उनकी सलाहियतों और ख़ूबियों को प्रोत्साहित करने वाले बन गए।

सवाल : ब्रिटेन में मुस्लिम समाज के साथ आपका वास्ता पड़ता रहता है, आप उनको कैसा पाती हैं?

जवाब : मैंने ज़्यादा समय मुसलमानों के साथ बिताया है, क्योंकि अब तो मैं ख़ुद भी मुसलमान हूँ और यह एक स्वाभाविक बात है कि हम एक-दूसरे की ओर खिंचे चले जाते हैं। 11 सितम्बर के बाद मुसलमान मुसीबत में हैं। अब इस बात की पहले से ज़्यादा ज़रूरत है कि हम एक-दूसरे को सीने से लगाकर आपस में मददगार बन जाएँ।

सवाल : आप तालिबान के काबुल की जेल को ग्वांटानामाबे एक्सरे कैम्प से किस प्रकार तुलना करती हैं?

जवाब : मैं लोगों को बताती रहती हूँ कि मैं इस हवाले से बहुत भाग्यवान हूँ कि मुझे अमेरिका की बजाय धरती के सबसे ज़्यादा जंगली लोगों की क़ैद में रहने का मौक़ा मिला। मुझे लगातार छह दिनों तक एक एयर कंडीशन कमरे में रखा गया जिसकी कुँजी तक मुझे दे दी गई। मेरे साथ हमदर्दी और आदर का व्यवहार किया गया। मुझे शारीरिक या मानसिक रूप से डराने, किसी प्रकार की यातना देने या हमला करने की कोई कोशिश नहीं

हुई। मगर कुछ पूछताछ ज़रूर हुई। वे मुझे बराबर यह बताते रहे कि वे मुझे ख़ुश रखना चाहते हैं और यह कि मैं उनकी बहन और मेहमान हूँ।

सवाल : जेल में रहते हुए आपके एहसासात और अन्देशे क्या थे?

जवाब : उनकी सब मेहरबानियों के बावजूद मैं सोचती रही कि इस समय तो अच्छा व्यवहार कर रहे हैं, लेकिन किसी भी समय कुछ बुरे लोग आकर मुझे यातना देना शुरू कर देंगे। मैं हर दिन यह सोचती थी कि आज मरनेवाली हूँ, लेकिन यह सब केवल मेरी कल्पनाएँ सिद्ध हुईं इसके बावजूद कि मेरा व्यवहार काफ़ी हास्यप्रद था, उन्होंने मेरे साथ हमदर्दी और मेहरबानी का व्यवहार ही जारी रखा।

सवाल : क्या आपको आशा थी कि आप ज़िन्दा सलामत बाहर निकल आएँगी?

जवाब : नहीं, बिलकुल नहीं। मुझे यक़ीन था कि मैं मारी जाऊँगी। ख़ास कर 17 अक्टूबर 2001 को, जब मैं काबुल की जेल में थी और अमेरिका ने बम बरसाने शुरू कर दिए थे। एक क्षण तो ऐसा भी आया कि मैंने समझा कि अब अगर तालिबान मुझे क़त्ल नहीं करेंगे तो अमेरिका या ब्रिटेन का कोई बम काम तमाम कर देगा।

सवाल : तालिबान को मीडिया में आतंकवादी और दहशतगर्द के रूप में पेश किया जाता है और एक आप हैं कि जिसने उनसे रिहाई पाने के बाद उनके धर्म को गले से लगा लिया। यहाँ एक टकराव पाया जाता है। आप इसके बारे में क्या महसूस करती हैं?

जवाब : मैं अब भी औरतों के अधिकारों की बड़ी ध्वजावाहक हूँ। अगर तालिबान ने मुझे इस्लाम क़बूल करने पर तैयार कर लिया तो यह उनकी अपनी एक कामयाबी थी। मैं तालिबान की कोई बहुत सराहना नहीं करती हूँ, लेकिन टोनी ब्लेयर और जॉर्ज बुश ने उनकी सब ख़ूबियों के बावजूद उन्हें एक बहुत बड़ी बुराई के रूप में पेश किया।

सवाल : क्या आप अब इस्लाम और मुसलमानों के बारे में फैलाए गए झूठ और सच्चाई में फ़र्क़ कर सकती हैं?

जवाब : यह तो बहुत आसान बात है, इस्लाम एक सर्वांगपूर्ण और सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था है, जबकि इस पर अमल करनेवाले ऐसे नहीं।

सवाल : क्या आप मुसलमानों के हवाले से मीडिया का व्यवहार न्याय

पर आधारित पाती हैं ?

जवाब : मुसलमानों के हवाले से पश्चिमी मीडिया का रवैय्या न्यायपूर्ण नहीं है। इसकी बुनियादी वजह ग़लतफ़हमी पर आधारित एक पक्की सोच, बिगड़ी हुई जानकारी और अज्ञानता के साथ–साथ राजनीतिक लक्षयों की प्राप्ति के लिए इस्लाम को बदनाम करने की एक सोची–समझी कोशिश भी है।

सवाल : क्या इस्लाम लाने से पूर्व इस संदर्भ से आपका व्यवहार न्यायपूर्ण था ?

जवाब : मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी इस विषय में कुछ लिखा हो।

सवाल : आज पश्चिम आतंकवाद की जो परिभाषा कर रहा है, इस बारे में आपका क्या विचार है ?

जवाब : जी हाँ, जिस प्रकार कि जॉर्ज बुश ने कहा था कि अगर तुम उसके साथ नहीं तो दहशतगर्दों (आतंदवादियों) के साथी हो, व्यक्तिगत रूप से मेरा यह विचार है कि अब इस शब्द के प्रयोग पर पाबंदी लगानी चाहिए। इसलिए कि अब यह झूठ और निरर्थक सिद्ध हो चुका है। मारग्रेट थेचर (ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधान मंत्री) ने एक बार नेलसन मण्डेला को भी आतंकवादी कहा था। लेकिन आज उसकी हैसियत एक महान नेता की है।

सवाल : आप आतंकवाद की परिभाषा किस प्रकार करती हैं ?

जवाब: आतंकवादी वह है जो निर्दोष लोगों को बमों से उड़ाता है और आम आबादी को डरा देता है। मैंने यह सब कुछ अफ़ग़ानिस्तान, इराक़ और फ़िलिस्तीन में होते देखा है और इसी को राज्य की दहशतगर्दी कहते हैं, जैसा कि मैंने हाल ही में कहा है कि मैंने लाकरबी के मलबे से बच्चों और औरतों की लाशों को उस समय भी निकालते हुए देखा है जब स्कॉटलैण्ड के एक सीमावर्ती गाँव के ऊपर पान अमेरिकन 103 का जम्बूजेट विमान फट गया था। मैंने जनीन (फ़िलिस्तीन) के मलबे से बच्चों और औरतों की लाशों को निकालते हुए देखा है और यही सब कुछ उत्तरी अफ़ग़ानिस्तान और इराक़ में भी देख रही हूँ।

मुझे ये सब लाशें एक जैसी लगती हैं। आप इन्सानी ज़िन्दगी की कोई क़ीमत नहीं लगा सकते, हालाँकि अमेरिकी यही करते हैं। एक अमेरिकी की

ज़िन्दगी की क़ीमत तो लाखों डॉलर में लगाई जाती है, जबकि एक अरब मुसलमान की ज़िन्दगी उसकी तुलना में कोई क़ीमत नहीं रखती।

सवाल : आपके विचार में आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध किस दिशा में जा रहा है?

जवाब : आतंकवाद के विरुद्ध लड़ा जानेवाला यह युद्ध न ख़त्म होने वाला युद्ध बन चुका है, क्योंकि अब इसको एरियल शेरोन और विलादी मीर पूतिन जैसे लोगों ने फ़िलिस्तीनी और चेचन लोगों को कुचलने के लिए क़ैदी बना लिया है। यह एक ऐसा युद्ध है जिसकी दिशा अब अमेरिका की ओर मुड़ रही है और यह ख़ुद जॉर्ज बुश के लिए डरावना सपना बन जाएगा। मैं सोचती हूँ कि इसका अन्त भी इसके आरम्भ के ही जैसा होगा। 11 सितम्बर की भाँति एक बहुत बड़ी तबाही।

सवाल : इस नाज़ुक परिस्थिति में मुसलमानों की रणनीति क्या होनी चाहिए?

जवाब : इनको गर्दन उठाकर चलना चाहिए और इस बात पर गर्व महसूस करना चाहिए कि वे कौन हैं? उन रवैय्यों को बिल्कुल सहन न किया जाय जो इस्लाम के ख़िलाफ़ हैं।

सवाल : सी०आई०ए० आपको क़त्ल करना चाहती थी आपने कोशिश की कि इस पूरे मामले की छानबीन हो, क्या आप अब तक इस बारे में कोई ठोस सबूत लाने में कामयाब हो सकी हैं? क्या इस ओर से डर ख़त्म हो चुका है?

जवाब : सी०आई०ए० ने मेरे वकील को मेरे बारे में बनी हुई फ़ाइल को देने से इनकार कर दिया। मैंने व्यक्तिगत रूप से इस मामले को नज़रअंदाज़ करके आगे बढ़ने का फ़ैसला किया। चूँकि मैं इनके ड्रामे में रंग भरनेवाली वांछित पात्र थी, इसलिए अमेरिकी यही चाहते थे कि युद्ध के विरोध में उठनेवाले पूरे आन्दोलन से ध्यान हटाने के लिए मध्यवर्ग की एक शरीफ़, गोरी, अत्याचार-पीड़ित, एक व्यक्तिगत लड़ाई का आरम्भ करे। मैं किसी से नहीं डरती। मुझे अल्लाह के अलावा किसी का डर नहीं।

77. हुदा डोज

(Huda Doje)

(अमेरिका)

मेरा नाम हुदा डोज है। मैं सानफ़्रांसिस्को, कैलीफ़ोर्निया में पैदा हुई और बे एरिया के पड़ोस के इलाक़े में पली–बढ़ी। मेरे क़स्बे सान अन्सलह की अधिकतर आबादी गोरे लोगों पर आधारित थी, जो उच्च मध्यवर्ग से सम्बन्ध रखते हैं और उनका धर्म ईसाईयत था। सानफ़्रांसिस्को के उत्तर में गोल्डेन गेट ब्रिज के आगे यह इलाक़ा बहुत ही सुन्दर पहाड़ियों से भरा है जो प्रशान्त महासागर तक फैलता चला गया है। हम पड़ौसी लड़के और लड़कियाँ क्लबों में फ़ुटबाल खेला करते थे। पहाड़ों में घुड़सवारी करते या पेड़ों पर चढ़ते थे। हमारा एक और काम खाड़ियों में मेंढक पकड़ना था।

मेरे पिता ईसाईयत के एक समुदाय (Presbyterian) से सम्बन्धित थे और मेरी माँ कैथोलिक थीं। वह हमें अक्सर गिरजाघर ले जाती थीं जब मैं नवीं ग्रेड में पहुँची तो गिरजा के मिनिस्टर की पत्नी के सण्डे स्कूल को चलाने में मदद देने लगी। हाईस्कूल में चर्च यूथ ग्रुप क़ायम किया, जिसमें मेरे दोस्तों के अलावा एक नौजवान मियाँ–बीवी और उनके बच्चे भी शामिल थे। हम बाइबल का अध्ययन करते, ख़ुदा के बारे में बात करते और जनसेवा के कामों के लिए चन्दा जमा करते।

हम सभी दोस्त अक्सर मिलकर बैठते और आध्यात्मिक विषयों पर बातचीत करते। हम ईसाईयत के अक़ीदों के बारे में अपने मन में पैदा होने वाले सवालों पर बहस करते। जैसे उन लोगों का हाल क्या होगा जो हज़रत ईसा के जन्म से पहले संसार में आए? वे जन्नत में जाएँगे या जहन्नम में?

आख़िर क्यों बहुत–से अच्छे लोग ईसाई न होने के कारण सीधे जहन्नम में जाएँगे?

बहुत–से ख़राब लोग जो मुजरिम हैं केवल ईसाई होने के कारण जन्नत में क्यों जाएँगे?

आख़िर अपनी मख़लूक़ (सृष्ट जीवों) से प्यार करनेवाले और बड़े दयालु ख़ुदा को हज़रत ईसा के ख़ून की क्यों ज़रूरत पेश आई कि लोगों के गुनाह माफ़ हो सकें ? आख़िर आदम के किए हुए गुनाह की ज़िम्मेदारी हम पर क्यों आती है ? आख़िर क्यों ख़ुदा की आयतों अर्थात् बाइबल और वैज्ञानिक यथार्थों के बीच टकराव है ? हज़रत ईसा ख़ुदा कैसे हो सकते हैं ? आख़िर कैसे एक ख़ुदा तीन विभिन्न व्यक्तियों के रूप में विभाजित हो गया ? आदि।

हम ईसाईयत के अक़ीदों के इन टकरावों, विरोधाभासों और सवालों पर भरपूर बहस करते। लेकिन हमें इन सवालों का कभी सन्तोषजनक उत्तर न मिल सका। चर्च कभी हमें सन्तुष्ट न कर सका। लेकिन उसको हमसे अपेक्षा थी कि हम विरोध किए बिना इसपर विश्वास करें।

उसी ज़माने में कैलीफ़ोर्निया में एक चर्च का समर कैम्प लगा। इससे पूर्व मैं एक ऐसे ही कैम्प में उस समय गई थी जब केवल दस साल की थी। उसके बाद हर साल समर कैम्प में शामिल होती रही। यह ऐसी जगह थी जहाँ बिना किसी भ्रम के जगत के स्रष्टा के साथ सम्बन्ध महसूस होता था। इन कैम्पों में शामिल होने से अल्लाह की हस्ती पर यक़ीन और ईमान पैदा होता। इन कैम्पों में हम अपना काफ़ी समय खेल-कूद और मनोरंजन में बिताते थे। लेकिन रोज़ हमें इबादत, बाइबल के अध्ययन और आध्यात्मिक धार्मिक गीतों में शामिल होना पड़ता था। सबसे महत्वपूर्ण काम ''एकान्त'' था, जिसमें हर व्यक्ति को बिल्कुल अकेला कहीं बैठना होता था। मैं एक चरागाह में या खाड़ी के सामने एक पुल पर बैठती और प्राकृतिक दृश्यों का अवलोकन करते हुए संसार के रचयिता और बनानेवाली हस्ती के बारे में चिन्तन-मनन करती। यह काम मुझे बहुत शान्ति पहुँचाता। मैं अल्लाह की कारीगरी और सृष्टि को देखकर उसकी प्रशंसा करती।

कैम्प के समाप्त होने पर जब मैं अपने घर लौटती तो ये सभी एहसासात और भावनाएँ हर समय मेरे साथ रहतीं। मैं घर से बाहर अकेले समय बिताने को प्राथमिकता देती जहाँ मुझे ख़ुदा के बारे में अपने जीवन और ख़ुदा की कायनात में ख़ुद अपने मक़ाम के बारे में सोचने का मौक़ा मिलता। हज़रत ईसा (अलैहि०) ने प्रचारक और शिक्षक के रूप में जो रोल अदा किया मुझे उसके प्रति बड़ी श्रद्धा पैदा हो गई और अल्लाह के इस प्यारे पैग़म्बर से यह प्रेम और

सम्बन्ध चर्च से आस्थाओं की आपस में टकरानेवाली बातों पर छा गया।

जब मेरी उम्र चौदह साल की हुई तो मैंने एक आइस्क्रीम स्टोर में नौकरी कर ली। जब मुझे पहला वेतन मिला तो मैंने अमेरिका से बाहर बच्चों की देख–भाल और सहायता के एक प्रोग्राम को 25 डॉलर भेजे। हाईस्कूल में चार साल पढ़ाई के दौरान मैं एक मिस्री लड़के, शरीफ़ की माली मदद करती रही।

मैं उसे हर माह अपने वेतन का एक चेक भेज देती। वह जवाब में मुझे ख़त लिखा करता। उसके पत्र हमेशा अरबी भाषा में होते थे और वह मुझे एक बड़ी उम्र का आदमी समझता था। उसको मालूम नहीं था कि मैं उससे केवल पाँच वर्ष बड़ी एक लड़की हूँ। उसकी उम्र केवल नौ वर्ष थी। उसका बाप मर चुका था। उसकी माँ बीमार थी और काम करने के क़ाबिल नहीं थी। उसके दो छोटे भाई और एक बहन मेरी उम्र की थी। ये पहले मुसलमान थे, जिनसे मेरा अपनी ज़िन्दगी में वास्ता पड़ा।

जब मैंने लोइस एण्ड कलार्क कॉलेज में फ्रांसीसी और स्पेनी भाषा में मेजर डिग्री प्राप्त करने के लिए प्रवेश लिया तो उस समय मेरी इच्छा भावी जीवन में विदेशियों को अंग्रेज़ी भाषा सिखाने या प्रवासियों के विकास के लिए सेवा करने की थी। मैं यहाँ भी स्थानीय चर्च की सरगर्मियों में भाग लेना चाहती थी। लेकिन यहाँ के चर्च में गाने–बजाने के अलावा कुछ और नहीं होता था। इस माहौल से जल्द ही मेरा दिल ऊब गया। क्योंकि यह माहौल इन्सान को ख़ुदा की इबादत से दूर ले जाता था। इसलिए मैंने अकेले समय बिताना शुरू कर दिया। मैं घण्टों अकेले बैठकर जगत पर और जगत के रचयिता पर सोच–विचार करती रहती। जिससे मुझे बेहद शान्ति मिलती। इस बीच मेरी मुलाक़ात कई विदेशी छात्रों से हुई। मेरे ग्रुप में एक जापानी मर्द और एक औरत, एक इतालवी मर्द, एक फ़िलिस्तीनी मर्द शामिल थे।

हम अधिकतर अपनी–अपनी ख़ानदानी ज़िन्दगियों के बारे में बातचीत किया करते। फ़िलिस्तीनी मर्द का नाम फ़ारिस था, उसने अपने धर्म, धार्मिक विश्वासों, अपने जीवन और अपने परिवार के बारे में विस्तार से बताया। यह मुलाक़ात मेरे दिल व दिमाग़ के लिए एक झटका साबित हुई। इससे पूर्व मैं फ़ातिमा और सीओन नामी दो मुसलमान औरतों से मिल चुकी थी। मुझे उनके अक़ीदे और जीवन–शैली विदेशी मालूम हो रहे थे, उनका कल्चर मेरे अपने

कल्चर के विपरीत और अलग था। मैंने इन सांस्कृतिक दूरियों के आधार पर उनके धर्म के बारे में जानने की कोशिश नहीं की। लेकिन फ़ारिस से मुलाक़ात में इस्लाम के बारे में मुझे जितनी जानकारी प्राप्त हुई, मेरी इस्लाम में रुचि बढ़ती चली गई। इस दौरान मैंने धार्मिक अध्ययन के एक विभाग में प्रवेश के लिए ख़ुद को रजिस्टर्ड करा लिया।

मेरी पहली क्लास इस्लाम के परिचय पर थी। कक्षा में वह सभी सवाल बहस में आए जो ईसाईयत के बारे में पहले भी उभर चुके थे। इस दौरान इस्लाम के बारे में मुझे सीखने का मौक़ा मिला और मेरे तमाम सवालों के जवाब इस्लाम में मिल गए अर्थात् हमें मालूम हुआ कि हज़रत आदम (अलैहि०) को किसी गुनाह की सज़ा नहीं दी गई है। हज़रत आदम (अलैहि०) ने ख़ुदा से क्षमा और मुक्ति की दुआ की, जो दयावान और कृपाशील अल्लाह ने क़बूल कर ली। अल्लाह को लोगों के गुनाहों की माफ़ी के लिए ख़ून की किसी क़ुरबानी की ज़रूरत नहीं थी। हम शुद्ध नीयत के साथ अपने बुरे कर्मों से तौबा करके और अपने कर्म को ठीक करके अल्लाह की बख़्शिश और माफ़ी हासिल कर सकते हैं। हज़रत ईसा ख़ुदा नहीं थे, बल्कि अल्लाह के पैग़म्बर थे। जो दूसरे नबियों की भाँति अल्लाह का पैग़ाम लेकर दुनिया में आए थे। अल्लाह एक है, उसका कोई साझी नहीं। हमें केवल उसी की इबादत और उपासना करनी चाहिए और उसी के बताए हुए तरीक़ों के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहिए। इस प्रकार मैंने इस्लाम की शिक्षाओं को बहुत ही मुनासिब, व्यावहारिक और अपने दिल और दिमाग़ को प्रभावित करनेवाला पाया। ये बिल्कुल स्वाभाविक बातें थीं। कुछ भी उलझाव नहीं था, कोई टकराव नहीं था। मैं सत्य की खोज में थी और अन्ततः सत्य मिल गया।

इस गर्मी के मौसम में मैं अपने घर वापस लौट आई, लेकिन इस्लाम का अध्ययन जारी रहा। मेरे तमाम पुराने दोस्त मेरी तरह सच्चाई की तलाश में थे। उनमें से कुछ अन्य पूर्वी धर्मों विशेषकर बुद्धमत की ओर मुड़ गए थे। उन्हें यह जानकर ख़ुशी हुई कि मैं किसी हद तक एक सम्पूर्ण अक़ीदे की खोज में सफल हो चुकी हूँ। अब उन्होंने विभिन्न सवाल किए, जैसे मैं जो एक आज़ाद लिबरल गोरी कैलीफ़ोरनियन औरत हूँ, इस्लाम में मेरा स्थान क्या होगा? मैंने अपना अध्ययन और अपनी इबादत जारी रखी। मैंने इस्लामी केन्द्र की तलाश

जारी रखी, लेकिन क़रीबी इस्लामी केन्द्र सानफ्रांसिस्को में था, जहाँ मेरे लिए जाना आसान नहीं था।

गर्मियों की छुट्टियों के बाद मैं वापस लौटकर लूइस एण्ड क्लार्क कॉलेज चली गई। वहाँ सबसे पहला काम मैंने यह किया कि दक्षिण पश्चिमी पोर्टलैण्ड में एक मस्जिद तलाश की। मैंने मस्जिद के लोगों से कहा कि वह मेरी मुलाक़ात किसी ऐसी अमेरिकी मुसलमान औरत से करा दें जो मेरे सवालों का जवाब दे सके। उन्होंने मुझे बहुत–सी मुसलमान औरतों के पते और फ़ोन नम्बर दे दिए। मैं एक मुसलमान औरत से मिलने उसके घर गई। कुछ देर बातचीत के बाद उसे अन्दाज़ा हुआ कि मैं पहले ही इस्लाम पर यक़ीन रखती हूँ। मैंने उससे कहा कि मुझे एक अच्छी मुसलमान बनने के लिए रहनुमाई की ज़रूरत है। उसने मुझे एक अक़ीक़े के प्रोग्राम में दावत दी। उस रात वह इस दावत में मुझे अपने साथ ले गई। वहाँ मेरी अन्य मुसलमान औरतों से मुलाक़ात हुई और मैंने ख़ुद को उनके बीच बहुत ख़ुश और सन्तुष्ट महसूस किया। वहीं मैंने उन औरतों के हाथ पर कलिमा पढ़कर इस्लाम क़बूल करने का एलान कर दिया। उनमें बहुत–सी औरतें अमेरिकी थीं, जो इस्लाम क़बूल कर चुकी थीं। उन्होंने मुझे नमाज़ पढ़ना सिखाया। उस रात मुझे ऐसा महसूस हुआ कि जैसे मैं एक बिल्कुल नई अलग ज़िन्दगी की शुरूआत कर रही हूँ।

मैं कैम्पस ही में रह रही थी और मुसलमानों की बिरादरी से कटी हुई थी। मस्जिद तक जाने के लिए मुझे दो बसें बदलनी पड़ती थीं, जिसमें बहुत अधिक समय लग जाता था। मैं कई बार मस्जिद गई। लेकिन हर बार मेरी मुलाक़ात मस्जिद में केवल मर्दों के साथ हुई, जिससे मैं परेशान हो गई। बाद में मुझे बताया गया कि औरतें यहाँ केवल शनिवार की शाम को आती हैं। इससे मुझे बहुत निराशा हुई। किन्तु मैं अपने ईमान पर क़ायम रही और अकेले रहकर जानकारी हासिल करने की कोशिश करती रही। मेरे इस्लाम क़बूल करने के छह महीने बाद रमज़ान का महीना आया। मैं उस समय तक चेहरे पर स्काफ़ बाँध लिया करती थी और पूरा पर्दा नहीं करती थी। वैसे भी मेरे लिए इस माहौल में पूरे हिजाब में रहना कोई आसान काम नहीं था। मैंने इस्लामी आदेशों के अनुसार पूरे शरीर को छिपाए रखनेवाला लिबास पहनना शुरू कर दिया था और स्कर्ट मेरे लिबास से निकल गया था। किन्तु मेरे जीवन में असली

बदलाव रमज़ान मुबारक ने पैदा किया। रोज़े ने मेरे अन्दर ईमान और यक़ीन की ऐसी ताक़त पैदा की कि मैं पहली बार पूरे पर्दे के साथ अपनी क्लास में गई। रमज़ान मुबारक ने मुझे अपने मुसलमान होने पर गर्व करना सिखा दिया, अब मैं हर एक के सवालों का जवाब देने के लिए तैयार थी। मैं अपना रोज़ा अकेले खोला करती थी, क्योंकि वहाँ कोई मेरा साथ देनेवाला नहीं था।

मेरे माँ–बाप और भाई–बहनों को मेरे इस्लाम क़बूल करने पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि वे मेरी सत्य मार्ग को पाने की पूरी कोशिश से अवगत थे। उन्होंने कोई आपत्ति किए बिना ख़ामोशी से मेरे फ़ैसले को क़बूल कर लिया, किन्तु वे मेरे ईमान में शामिल होने पर तैयार नहीं हुए। उनका विचार था कि मैं रमज़ान से और आधुनिक दुनिया से कटकर रह जाऊँगी। लेकिन मैंने आनेवाले समय में उनके इस विचार को ग़लत साबित कर दिया। मैंने फ़िलिस्तीनी मुसलमान फ़ारिस से शादी कर ली। शादी के बाद मैं और फ़ारिस कारवेल्स और वेगन चले गए जहाँ मुसलमान बहुत बड़ी संख्या में रहते हैं। मैंने ग्रेजुएशन कर लिया है। मैंने पूरी तरह हिजाब में रहते हुए कई नौकरियाँ बड़ी सफलता के साथ की हैं, मेरे पति फ़ारिस ने इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में डिग्री हासिल कर ली है। मैं इस गर्मी के मौसम में फ़ारिस के माँ–बाप से पहली बार मिली। अब मैं अरबी भाषा सीख रही हूँ। मेरे परिवार वालों ने मुझे मेरे हाल पर छोड़ दिया है, किन्तु उन्हें इत्मीनान है कि मैं न केवल ख़ुश और सन्तुष्ट हूँ, बल्कि एक आधुनिक पश्चिमी औरत की भाँति सभी सामाजिक और आर्थिक ज़िम्मेदारियाँ भी सफलतापूर्वक पूरी कर रही हूँ। मैं अल्लाह का शुक्र अदा करती हूँ कि उसने मेरी रहनुमाई की और हक़ और सलामती की तलाश में मुझे कामयाबी दी। मुझे अब ऐसा महसूस होता है कि जैसे मेरा जीवन जो टुकड़ों–टुकड़ों में बिखरा हुआ था एक सुव्यवस्थित रूप ग्रहण कर चुका है और यही तरीक़ा इस्लाम के सलामती का रास्ता है।

(साभार मासिक बेदार डायजेस्ट, जनवरी 1999 ई०)

□□□

78. हुदा ख़त्ताब

(इंग्लैण्ड)

प्रस्तुत लेख अब्बास अख़्तर आवान साहब ने तैयार किया और साप्ताहिक 'एशिया' लाहौर के अंक 23 जून, 1995 ई० में प्रकाशित हुआ।

▪ ▪ ▪ ▪

''जब मैं ईसाई थी और स्कूल में पढ़ती थी, तब भी मेरा विचार था कि एक लड़की को शादी से पहले बॉयफ्रेंड्स से बच कर रहना चाहिए। यही कारण था कि मैं चर्च के यूथ क्लब की सदस्या होने के बावजूद केवल लड़कियों ही से दोस्ती रखती थी। इसके बाद जब मैंने इस्लाम क़बूल किया, तो मुझे यह जानकर बड़ी ख़ुशी हुई कि इस्लाम अवैध यौन-सम्बन्ध को सख़्ती से रोकता है, लेकिन जो चीज़ मुझे इस्लाम की ओर खींच कर लाई थी वह पर्दा था। मुसलमान औरतों का यह तरीक़ा और लिबास अजनबी मर्दों की नज़रें औरतों की ओर से हटा देता है।''

ये विचार ब्रिटेन की मशहूर नवमुस्लिम लेखिका हुदा ख़त्ताब के हैं। इनका ईसाई नाम समानथा था। इनके पिता न्युकिलयर प्लांट के सुपरवाइज़र थे। नन्हीं समानथा अधिक समय तक बाप का प्रेम न पा सकीं और बचपन ही में इससे वंचित हो गईं। इसके बाद उनकी शिक्षा बलैकपोल में हुई। वे अपनी शिक्षा के अन्तिम चरणों में यूनीवर्सिटी में थीं कि अल्लाह ने उनके लिए हिदायत की राह खोल दी और वे मुसलमान हो गईं। इसके बाद शाम (सीरिया) से सम्बन्ध रखनेवाले एक युवक नासिर से इनकी शादी हो गई। अब वे पार्ट टाइम जॉब भी करती हैं और ब्रिटेन समाज में इस्लाम के प्रचार-प्रसार के लिए लेखन-कार्य भी करती हैं।

एक मुलाक़ात में हुदा ख़त्ताब ने बताया, ''मेरा सम्बन्ध एक ऐसे परिवार से था, जो यद्यपि अधिक धार्मिक तो न था, किन्तु फिर भी मैं और मेरा भाई रविवार को चर्च जाया करते थे। हमारे घर के तौर-तरीक़े वैसे ही थे जैसे प्रतिष्ठित अंग्रेज़ घरानों के होते हैं। जब मैं बारह वर्ष की थी तो मेरे जीवन में एक बहुत बड़ी घटना घटी। यह घटना मेरे माता-पिता की आपस में तलाक़

और अलगाव थी। इससे मुझे बड़ा दुख हुआ। इसके बाद भी यद्यपि अपनी कक्षा में हमेशा प्रथम रही, लेकिन अब मेरा जीवन ख़ुशियों से दूर था। मेरे दोस्तों का दायरा भी बहुत सीमित था, हालाँकि अंग्रेज़ी सोसाइटी में दोस्तों के दायरे का बड़ा होना भी एक फ़ैशन है। मैं पार्टियों में जाने से कतराती थी। शराब, सिग्रेट और नशे से तो मुझे ज़रा-भी लगाव न था। यूथ क्लब में मेरी दोस्त केवल लड़कियाँ थीं। मैं शर्मीली नहीं थी। मगर मैं बचपन ही से लड़कों की दोस्ती की समर्थक न रही। यही दूरी आगामी जीवन में मुझे सीधी राह दिखाने का आधार बन गई।''

अपने इस्लाम क़बूल करने का वृत्तान्त सुनाते हुए हुदा ख़त्ताब ने कहा, ''जब मैंने लन्दन में स्कूल ऑफ़ ओरिएंटल एंड एशियन स्टडीज़ (School of Oriental and Asian studies) में प्रवेश ले लिया ताकि अरबी पढ़ूं, तो इस्लाम और अरबी के बारे में मेरी जानकारी बिलकुल शून्य थी। लेकिन जब मैंने पढ़ना शुरू किया और इस मैदान में ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई, इस्लाम के बारे में मेरा शौक़ आगे बढ़ता गया। इसी बीच मैंने अध्यापक के ज़रिए कुछ मुसलमानों से सम्पर्क किया, तो मुझे मुसलमानों के पारिवारिक जीवन ने बहुत प्रभावित किया। मैंने महसूस किया कि एक मुसलमान परिवार के लोग चाहे दुनिया के किसी भी क्षेत्र में हों, वे आपस में निकट सम्बन्ध रखते हैं। पश्चिमी संस्कृति इस विशेष गुण से वंचित हो चुकी हे। मुसलमानों की इस परम्परा ने मेरे लगाव को और बढ़ा दिया। यह बात मुझे और भी अधिक इसलिए महसूस हुई कि मेरे माँ-बाप अलग हो चुके थे। अवैध यौन-सम्बन्ध को रोकने के लिए इस्लाम ने जो आदेश दिए हैं, वे भी मेरे लिए अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हुए। लेकिन जिस चीज़ ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया वह मुस्लिम औरतों की पर्दे की रिवायत थी। मैं छात्र और छात्राओं की आपसी छेड़-छाड़ देख चुकी थी। इसलिए पर्दे का लाभ मुझे और अधिक महसूस हुआ। सच्ची बात यह है कि पश्चिमी संस्कृति औरतों को इस बात पर उभारती है कि वे बन-सँवर कर निकलें और अपने शरीर और सुन्दरता का प्रदर्शन करती फिरें। इसी कारण औरतों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे मर्दों को अपनी ओर आकर्षित करती हैं। मर्द अपनी बुरी आदत के बावजूद इस आरोप से साफ़ बच जाते हैं।

पर्दे के सम्बन्ध में इस्लामी दृष्टिकोण के अध्ययन ने पहली बार यह हक़ीक़त मेरे सामने स्पष्ट की कि अजनबी मर्दों में औरतों को अपने शरीर और सुन्दरता का प्रदर्शन करना शरीअत की दृष्टि से हराम (वर्जित) है, जिसका नतीजा उन्हें दुनिया में ही भुगतना पड़ता है और जिसकी सज़ा उन्हें आख़िरत में भी मिलेगी।

जब मैं यूनीवर्सिटी के पहले वर्ष में पहुँची तो इस्लाम के विषय में मेरा अध्ययन इतना बढ़ चुका था और धर्म की हैसियत से इस पर इतना विश्वास हासिल कर चुकी थी कि मैंने इस्लाम क़बूल करने का फ़ैसला कर लिया। इसी दौरान मैं लन्दन के रीजेंट पार्क में पूर्व प्रसिद्ध पास सिंगर केट स्टीवेंज़ (यूसुफ़ इस्लाम) से मेरी मुलाक़ात हुई। इस मुलाक़ात ने इस्लाम की ओर मेरी पेशक़दमी को और बढ़ा दिया। इसके कुछ ही समय बाद एक समारोह में मैंने अपने इस्लाम क़बूल करने का एलान कर दिया। इस समारोह में जहाँ बहुत–सी औरतें मौजूद थीं उनमें मेरी एक अमेरिकी नवमुस्लिम सहेली भी मौजूद थी। इस घटना ने मेरे जीवन में बेचैनी ख़त्म करके अथाह शान्ति पैदा कर दी। कुछ दिनों बाद मुस्लिम औरतों के हॉस्टल में चली गई, जहाँ मैंने विस्तार से सीखा कि मुसलमान औरत को किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए। यहीं मैंने अपना नाम निसा से हुदा ख़त्ताब में परिवर्तित कर लिया। परन्तु मेरा परिवार अभी तक मुझे पिछले नाम से ही पुकारता है।

हुदा ख़त्ताब अपने इस्लाम क़बूल करने की प्रतिक्रिया के बारे में बताती हैं, ''मेरे परिवार को मेरे इस क़दम से बहुत दुख हुआ। पिता जी ने तो यहाँ तक कह दिया, 'इस्लाम तुम्हें हमसे दूर कर देगा।' इसके बावजूद उन्हें और परिवार के दूसरे सदस्यों को उम्मीद थी कि मेरा इस्लाम का दौर क्षणिक सिद्ध होगा और मैं ईसाईयत की ओर वापस लौट आऊँगी, मगर न ऐसा होना था न हुआ। मैंने अच्छी तरह जाँच–परख कर गंभीर और गहन अध्ययन के बाद इस्लाम क़बूल किया था। मैं इससे मुँह कैसे मोड़ सकती थी? अब धीरे–धीरे मेरे परिवार के सदस्य मेरे इस्लामी व्यवहार और चरित्र से समझौता कर रहे हैं। मेरी सहेलियों की प्रतिक्रिया भी कुछ ऐसी ही है। उन्हें बड़ा आश्चर्य था कि मैंने धर्म को बदलने जैसा बहुत बड़ा क़दम उठा लिया है।''

अपने इस्लाम को क़बूल करने के बाद के चरणों को बयान करते हुए हुदा आगे कहती हैं, ''इस्लामी आदेशों के पालन और उनपर अमल करने में मुझे कभी कठिनाई पेश नहीं आई, पाँच वक़्त की नमाज़ पढ़ना मेरे लिए कभी मसला नहीं रहा। पर्दा अपनाने में थोड़ी-बहहुत दिक़्क़त ज़रूर हुई। किन्तु फिर भी छह महीनों में मैं इसकी आदी हो चुकी थी। इसी बीच मैंने लिबास भी ऐसा बना लिया, जैसा इस्लाम का तक़ाज़ा है।''

हुदा ख़त्ताब की शादी यूनीवर्सिटी की पढ़ाई के दौरान ही हो गई थी। वे बताती हैं ''मेरी इच्छा थी कि मेरी शादी इस्लाम के तरीक़े पर हो और पति ऐसा पक्का मुसलमान हो जो आगामी जीवन में पति के साथ-साथ दोस्त भी साबित हो। इस सम्बन्ध में मैंने अपनी एक सहेली को भरोसे में लिया और उससे इस सम्बंध में सहायता करने को कहा। मेरी इस सहेली ने मेरी मुलाक़ात सीरियाई मुसलमान नासिर से करवाई। वे पेशे की दृष्टि से सिविल इंजीनियर हैं। हिजाब में होने के बावजूद मैं इस मुलाक़ात में काफ़ी नर्वस थी। इसी मुलाक़ात में मैंने महसूस कर लिया कि नासिर में वे सभी ख़ूबियाँ मौजूद हैं जिनकी मुझे तलाश थी। कुछ दिनों बाद ही हमारी मँगनी और छह माह बाद शादी हो गई। शादी से पहले मैंने नासिर से दोबारा मुलाक़ात न की। पश्चिम में इसे बिल्कुल बुरा नहीं समझा जाता, बल्कि वहाँ औरत शादी से पहले भी पति से यौन-सम्बन्ध रखती है। नासिर ने मुझे शादी से पहले बग़ैर हिजाब के नहीं देखा था। इसी कारण दिल में एक शंका मौजूद थी कि पता नहीं नासिर मुझे पसन्द करेंगे या नहीं। अल्लाह का शुक्र है शादी के बाद दोनों एक-दूसरे की पसन्द ठहरे और आपस में दोस्त बन गए।''

''मैंने अपने पति को इस्लाम के तक़ाज़े के मुताबिक़ पहले दिन से अपने से ऊँचा स्थान दिया है। पश्चिमी संस्कृति इस आचरण को नकारती है और मर्द और औरत के लिए एक समान मानदंड की ध्वजावाहक है, हालाँकि मर्द और औरत में प्राकृतिक फ़र्क़ मौजूद है। मर्दों के अपने तक़ाज़े हैं और औरतों के अपने तक़ाज़े हैं। यही कारण है कि इसलाम ने मर्दों और औरतों के लिए आदेशों और क़ानून में भी फ़र्क़ रखा है, औरतों ने जब से मर्दों के बराबर स्थान की तलाश की है उन्होंने अपने लिए समस्याएँ पैदा कर ली हैं। वे जीवन की

सुविधाओं से वंचित हो गई हैं।''

हुदा ख़त्ताब अपनी बात पूरी करते हुए कहती हैं कि पश्चिमी संस्कृति का यह धोखा, फ़रेब और ग़लत मानदंड आख़िरकार टूटेंगे। ब्रिटेन, अमेरिका, जर्मनी, फ्रांस और अन्य देशों में जिस रफ़्तार से इस्लामी पेशक़दमी जारी है वह बड़ा उत्साहपूर्ण है। केवल ब्रिटेन में पिछले कुछ वर्षों में 20 हज़ार लोग इस्लाम क़बूल कर चुके हैं। इन नवमुस्लिमों में औरतों की संख्या अधिक है। केवल ग्लास्को शहर में हर महीने एक महिला मुसलमान होती है। मुझे विश्वास है कि एक दिन आएगा जब ब्रिटेन की अधिकांश जनसंख्या इस्लाम के दामन में शरण ले चुकी होगी, 'इंशाअल्लाह' (अगर अल्लाह ने चाहा।)

□ □ □

79. श्रीमती हीथर ओ० बेनन

(Heather O. Bannon)

(अमेरिका)

श्रीमती हीथर ओ० बेनन ने मई 1989 ई० में गोंज़ागा (Gonzaga) यूनीवर्सिटी से जनसंम्पर्क और पत्रकारिता (Public Relations and Journalism) में स्नातक की डिग्री हासिल की। वे वाशिंगटन के एक स्थान स्पोकेन (Spokane) में अपने माता–पिता के साथ रहती हैं और इस्लामिक सेंटर वाशिंगटन के न्यूज़ लेटर (News Letter) की सम्पादक हैं। इस्लाम क़बूल करने के बाद श्रीमती जी से प्रस्तुत इंटरव्यू एन०एस० ख़ान ने लिया था और 'दी मैसेज इंटरनेशनल' (The message International) के फ़रवरी, 1990 ई० के अंक में प्रकाशित हुआ था। मेरे प्यारे दोस्त प्रोफ़ेसर वक़ार अली कारी साहिब ने यह इंटरव्यू मुझे उपलब्ध कराया। उनके शुक्रिये के साथ इसका अनुवाद पेश कर रहा हूँ।

■ ■ ■ ■

''आपने इस प्रकार का अनोखा लिबास क्यों पहन रखा है ? क्या आप नन (Nun) बनने जा रही हैं ?''

''यह तो बताओ तुम्हारा सम्बन्ध किस धर्म से है ? ऐसा लगता है जैसे तुम मुहम्मद की पूजा करती हो और इसीलिए तुमने यह हास्यप्रद वस्त्र पहन रखे हैं।''

ये और इस प्रकार के सवाल और आपत्तियाँ हैं जो मुझे प्रतिदिन बार–बार सुनने पड़ते हैं। सुबह तैयार होकर, पर्देवाला लिबास पहनकर और सिर पर स्कार्फ़ बाँधकर बाहर निकलती हूँ, तो मैं मानसिक रूप से तैयार रहती हूँ कि कोई न कोई परिचित या अजनबी मर्द या औरत मुझे रोकेंगे और इस प्रकार की टिप्पणी कर बैठेंगे, किन्तु फिर भी यह ख़्याल ज़रूर आता है कि क्या मैं अपने नए धर्म इस्लाम के बारे में उनकी आपत्तियों और प्रश्नों का उत्तर दे सकूँगी ? एक मुसलमान की हैसियत से अमेरिका में रहते हुए यह बात आसन नहीं है। लेकिन मैंने इसे एक चैलेंज समझकर क़बूल कर लिया है।

मेरा सम्बन्ध एक फ़ौजी घराने से है। मेरे पिता जी अमेरिकी नौसेना में अधिकारी थे और इस हैसियत से उन्हें जापान और स्कॉटलैण्ड में भी रहना पड़ा। घर के अन्य सदस्य भी उनके साथ ही होते थे। इस प्रकार मुझे विशेष लाभ यह मिला कि विभिन्न क़ौमों और उनकी संस्कृति को समझने का मौक़ा मिला और दृष्टिकोण में व्यापकता आई।

हमारा परिवार पिछले बारह साल से स्पोकेन वाशिंगटन में रहता है। यहीं मैंने हाईस्कूल और कॉलेज की शिक्षा हासिल की। यद्यपि मुझे मेथोडिस्ट (Methodist) पंथ में बप्तिस्मा दिया गया था, लेकिन जूनियर हाईस्कूल की शिक्षा के दौरान मेरी माँ मुझे नासिरी चर्च(Nazarine) में ले जाती रहीं। इस दौर में मैंने चर्च और स्कूल की बहुत सी सरगर्मियों अर्थात् संगीत, ड्रामा और खेलों में भाग लिया। इस व्यस्तता का फ़ायदा यह हुआ कि सामान्य लड़कियों की भाँति मैं शराब पीने और अन्य मादक वस्तुओं के सेवन से बची रही।

यह निश्चित रूप से मेरा सौभाग्य है कि मैं छोटी उम्र से ही ख़ुदा पर विश्वास रखती थी, बल्कि मुझे ख़ुदा से मुहब्बत थी और मेरा ईमान था कि वह भी हमसे मुहब्बत रखता है। लेकिन मानसिक रूप से मैं इस मुश्किल में फँसी थी कि ईसाईयत के हवाले से मुझे उसकी इबादत का तरीक़ा दिल को नहीं भाता था। प्यास का एहसास परेशान किए देता था। ख़ासकर इस ख़्याल से मन खिन्न होने लगता था कि—

हज़रत मसीह ख़ुद ख़ुदा हैं। भला एक इन्सान ख़ुदा कैसे हो सकता है? और अगर वे ख़ुदा थे तो उन्हें फाँसी क्यों दी गई थी?

आस्थाओं का यही टकराव था जिसके नतीजे में ईसाईयत से नाता तोड़ लिया और जब स्पोकेन की गोंज़ागा यूनीवर्सिटी में दाख़िल हुई तो मैंने चर्च जाना छोड़ दिया, किन्तु फिर भी मैं यूनीवर्सिटी की धार्मिक कक्षाओं में हाज़िरी की पाबन्द थी कि यह एक रोमन कैथोलिक शैक्षिक संस्था है। इन क्लासों में बाइबल के अलावा मानवीय धार्मिक अनुभवों, सम्बन्धों और अन्तर्राष्ट्रीय धर्मों पर भाषण होते थे। इन भाषणों के नतीजे में मेरा यह विचार मज़बूत होता चला गया कि ईसाईयत में बड़ी गम्भीर प्रकार की बहुत-सी ख़ामियाँ और कमज़ोरियाँ हैं। अतः 1986 ई० की वसन्त ऋतु तक जब मैंने इस यूनीवर्सिटी की शिक्षा

पूरी कर ली, मैं ईसाईयत के धार्मिक सिद्धान्तों से बिल्कुल विमुख हो चुकी थी। मुझे इस पर अफ़सोस भी था कि मैं एक ईसाई ही की हैसियत से ख़ुदा से जुड़ी रहना चाहती थी और यह मुझे एहसास था कि धर्म को छोड़कर मैं न अच्छी इन्सान बन सकती थी न ख़ुदा की इबादत कर सकती थी, लेकिन आख़िर क्या करती, ईसाईयत के धार्मिक सिद्धान्तों में इतने झोल थे कि इससे सम्बन्ध बनाए रखना मूर्खता होती।

अब मैंने अत्यन्त निर्मल और सच्चे हृदय से ख़ुदा से दुआ की कि वह मेरा मार्गदर्शन करे। तब उसी साल की गर्मियों में मेरा एक मुसलमान से परिचय हुआ। उसने मुझे अपने धर्म के बारे में जानकारी दी, जो मेरे दिल में उतरती चली गई। बुद्धि और विवेक ने इसका अनुमोदन किया और मैं उसके धर्म इस्लाम से इतनी प्रभावित हुई कि अक्टूबर 1986 ई० में मैंने उस मुसलमान नौजवान से शादी कर ली।

शादी के बाद मैंने गम्भीरता से इस्लाम का अध्ययन शुरू किया, जहाँ ज़रूरत पड़ती मैं अपने पति से सवाल करती और सन्तुष्ट होकर आगे बढ़ती। इस प्रकार नौ महीने तक मैंने दिल लगाकर इस्लाम के बारे में विभिन्न किताबों का अध्ययन किया। मैं यद्यपि ईसाईयत से विमुख थी। फिर भी ज़ाहिर है धर्म कोई आइसक्रीम फ़्लेवर तो नहीं है जिसको तुरन्त पसन्द कर लिया जाए। मैं अपनी पूर्ण मानसिक शान्ति और सन्तुष्टि चाहती थी कि इसका सम्बन्ध मेरे भविष्य से था और मुझे अपने चरित्र और व्यवहार में बहुत–से बदलाव लाने थे। अतः जब तहक़ीक़ और खोज का चरण पूरा हो गया तो मैंने इस्लाम क़बूल कर लिया। इस पर मैं अल्लाह की शुक्र गुज़ार हूँ।

इस्लाम को समझने के लिए मैंने सबसे अधिक क़ुरआन पाक का सहारा लिया। फिर कुछ किताबें और पम्फ़लेट भी नज़र से गुज़रे। इस सम्बन्ध में जमाल बैज़ावी की किताब 'मुहम्मद इन दी बाइबिल' (Mohammad in the Bible) ने मुझे बहुत प्रभावित किया। मैं स्थानीय इस्लामिक सेंटर भी जाती रही और वहाँ मैंने विभिन्न मुसलमान औरतों से सम्पर्क स्थापित किया, जिन्होंने मुझे इस्लाम के बारे में काफ़ी जानकारियाँ दीं और मेरे सवालों के जवाब दिए। मुझे पता चला कि इस्लाम में एक ख़ुदा की इबादत होती है। किसी मामले में

कोई उसका साझी नहीं और केवल इसी तरीक़े से उसकी इबादत हो सकती है जो ख़ुद उसने वह्य के ज़रिए इन्सानों को सिखाया है। मुझे पता चला कि मानव–जाति के मार्गदर्शन के लिए अनगिनत पैग़म्बर आए हैं, जिनमें हज़रत मूसा और हज़रत ईसा (अलैहि०) भी शामिल हैं, और सबका धर्म इस्लाम था और सब नबियों के आख़िर में हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पधारे। उनपर इस्लाम को पूरा कर दिया गया और उनके बाद कोई नबी नहीं आएगा। क़ुरआन ख़ुदा की आख़िरी किताब है। तौरात और इंजील भी ख़ुदा की ओर से उतरीं, लेकिन हज़रत मूसा और हज़रत ईसा के बाद इनमें बहुत सारा फेर–बदल कर दिया गया। अतः क़ुरआन उतरने के बाद अब इनकी हैसियत और महत्व ख़त्म हो गया है। मानो अब इनकी ज़रूरत ही नहीं रही।

मुझे इस्लाम की समाजिक और क़ानूनी व्यवस्था ने भी बहुत प्रभावित किया और क़ुरआन की चमत्कारिक वर्णन–शैली और उसकी शिक्षाओं ने मुझे सम्मोहित कर लिया। क़ुरआन पढ़ते हुए मैं सहसा सोचने लगती कि यह किताब चौदह सौ साल पहले उतरी थी और इसकी कोई एक बात इस साइंसी दौर में भी ग़लत साबित नहीं की जा सकती। फिर इस बात में क्या शक रह जाता है कि वह ख़ुदा का ही कलाम (वाणी) है।

विशेषकर क़ुरआन में जन्नत और दोज़ख़ के वर्णन ने मुझे बहुत प्रभावित किया। यह शैली सामान्य प्रचलित नीतिकथाओं और दृष्टान्तगाथाओं से बहुत ही भिन्न थी। मेरे दिल ने गवाही दी कि ये सब दृश्य शत–प्रतिशत यथार्थपरक और वास्तविक हैं और मानवीय कर्मों के संदर्भ में क़ियामत के बाद ऐसा ही होना चाहिए। इस चरण में मेरे पास इस्लाम क़बूल करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं रह गया था।

मैंने अन्दाज़ा किया कि इस्लाम का अनुभव ईसाईयत के अनुभव से बहुत ही अलग है। एक ईसाई की हैसियत से अपने धर्म के बारे में मेरा मन शंकाओं और भ्रमों से भरा रहता था और मैं इस एहसास में अकेली नहीं थी। जहाँ तक मैं जानती हूँ अधिकतर ईसाईयों का हाल यही है। वे सब तरह–तरह के सवालों और शंकाओं में ग्रस्त हैं। लेकिन कोई ईसाई धर्मगुरु उनके जवाब देने और उन्हें सन्तुष्ट करने की क्षमता नहीं रखता। इसके ख़िलाफ़ मैंने देखा कि सारे मुसलमान इस्लाम की सच्चाई पर पूरा यक़ीन रखते हैं, बल्कि वे मुसलमान

भी जो बेअमल हैं और इस्लामी तौर–तरीक़े की पाबन्दी नहीं करते, उन्हें अपने धर्म की सच्चाई पर कोई सन्देह नहीं है। इस तुलनात्मक अध्ययन ने मेरे इस एहसास को मज़बूत किया कि इस्लाम ख़ुदा का सच्चा दीन (धर्म) है। अब मैं जबकि अल्लाह की कृपा से मुसलमान हूँ। मैं यह सोचकर बड़ी शान्ति महसूस करती हूँ कि अपने नए धर्म के बारे में मेरे दिमाग़ के किसी कोने में कोई शंका या भ्रम नहीं है और मुझे इस एहसास से बहुत ख़ुशी होती है कि अल्लाह ने मेरे अन्दर धर्म के प्रति पूर्ण विश्वास जगा दिया है और मैं जानती हूँ कि अपने स्रष्टा और स्वामी की इबादत (बन्दगी) का क्या तरीक़ा है।

शहादत का कलिमा पढ़ने के क़रीब एक साल के बाद मैंने इस्लामी लिबास अपनाया और सिर पर स्कार्फ़ लपेटना शुरू कर दिया। वास्तव में यह समय वस्त्र के मामले में गहरी दुविधा और मानसिक संघर्ष में बीता। लोग इस माहौल में उँगलियाँ उठाएँगे, तंग करेंगे और बहुत संभव है कि नौकरी से हाथ धोने पड़ें, लेकिन जब क़ुरआन को बार–बार पढ़ा और इसपर ग़ौर किया तो पता चला कि ख़ुदा ने मुसलमान औरतों के लिए लिबास का एक विशेष नियम निर्धारित किया है और यह भी अन्दाज़ा हुआ कि मुसलमान की हैसियत से हमें यह आज़ादी नहीं है कि कुछ आदेशों का पालन करें और कुछ को छोड़ दें। अत: मैंने अल्लाह का नाम लेकर स्कर्ट को सदा के लिए त्याग दिया और बालों पर स्कार्फ़ बाँध लिया।

मैंने 1988 ई० के गर्मी के मौसम में इस्लामी लिबास पहन्ना शुरू किया। उन दिनों में धूप के चश्मे और बालों से सम्बंधित वस्तुएँ बनानेवाली एक फ़र्म Reviera Corporation में व्यापारिक प्रतिनिधि की हैसियत से नौकर थी और मेरी ड्यूटी में अन्य कामों के अलावा कम्पनी और विभिन्न स्टोर्स के बीच सम्पर्क स्थापित करना और शहर के अन्दर उत्पादन का प्रदर्शन करना भी था। चूँकि कम्पनी के सुपरवाइज़र और दूसरे अफ़सरों को मुझसे कभी कोई शिकायत पैदा नहीं हुई थी। इसलिए जब मैंने पर्देवाला लिबास अपनाया तो किसी ने भी बुरा न माना और मेरी नौकरी पर इसका कोई नकारात्मक प्रभाव न पड़ा।

1989 ई० के 'समर सेमिस्टर' जबकि मैं 'गोंज़ागा बुलेटिन' (University News Letter) की सम्पादक थी, मैंने इस्लामी लिबास में नौकरी के लिए इंटरव्यू दिया और मेरा यह लिबास नौकरी को हासिल करने में कोई रुकावट न बना।

अगर मैं इस्लामी लिबास न अपनाती तो मुसलमानों के दायरे से बाहर शायद ही किसी ग़ैर मुस्लिम को मेरे इस्लाम पर आपत्ति होती। लेकिन पर्देदार लिबास पहनकर और सकार्फ़ ओढ़कर बाहर निकलती हूँ तो नकारात्मक रवैय्या अपनानेवालों के अलावा कितने ही लोग मेरे इस्लाम धर्म के बारे में सवाल करते हैं और इस प्रकार मुझे मौक़ा मिल जाता है कि मैं उन तक सत्य धर्म का परिचय पहुँचा दूँ। इस परिस्थिति से सच्ची बात है मैं बहुत ही ख़ुश होती हूँ।

अत: जब लोग पूछते हैं कि मैंने यह लिबास क्यों पहन रखा है तो जवाब में उनहें बताती हूँ कि मुसलमान हूँ और मेरे धर्म इस्लाम ने अपने अनुयायियों को, चाहे वे मर्द हों या औरत, लिबास के मामले में भी कुछ विशेष नियमों का पाबन्द किया है और इस लिबास का महत्व यह है कि इसमें सादगी और सम्मान है। इसमें घमंड का कोई पहलू नहीं है। यह विशेष रूप से औरतों को सामाजिक बुराइयों से सुरक्षित रखता है और अनैतिक कर्मों से बचाता है, जो इन्सानों को बहरहाल, ख़ुदा से दूर ले जाते हैं।

इसके जवाब में कभी–कभी लोग उन मुसलमानों के बारे में आपत्ति कर देते हैं और इस प्रतिकूल रवैय्ये का कारण पूछते हैं कि जो मुसलमान होते हुए भी इस्लामी लिबास नहीं पहनते। मैं यह जवाब देती हूँ कि यह वास्तव में धार्मिक शिक्षा की कमी के कारण होता है या वे नस्ली तौर पर मुसलमान घरानों से तो सम्बन्ध रखते हैं, लेकिन इस्लाम उनके दिलों में नहीं उतरा। ऐसे लोग बड़े बदनसीब होते हैं।

मेरी बातों से कुछ लोग तो समझ जाते हैं कि अक़ीदों और जीवन–शैली में निस्सन्देह गहरा सम्बन्ध होता है, लेकिन कुछ लोग इस दृष्टिकोण को क़बूल नहीं करते। वे कहते हैं कि लिबास का यह अन्दाज़ बिल्कुल विदेशी है। इसका अमेरिकी समाज से कोई सम्बन्ध नहीं। भला धर्म का लिबास से क्या सम्बन्ध ?

मैं फिर स्पष्ट करती हूँ कि इस्लाम का सम्बन्ध किसी ख़ास इलाक़े या देश से नहीं है। यह एक अन्तर्राष्ट्रीय धर्म है और इस्लामी धार्मिक सिद्धान्तों पर यूरोप, अमेरिका, यहाँ तक कि रूस और चीन सहित दुनिया भर में अमल होता है और अमेरिकी मुसलमान की हैसियत से मेरा भी कर्तव्य है कि मैं अपने

धार्मिक सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप दूँ।

मुझे यक़ीन है कि अमेरिका में अधिकांश पक्के मुसलमान औरतों को इसी प्रकार की परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। वास्तव में जिस समाज में औरत अपनी–सी कोशिश करती हो कि वह अपने माहौल में अधिक से अधिक आकर्षक और सुन्दर दिखाई दे, वहाँ कुछ मुसलमान औरतों का दिल इन कड़वे अनुभवों से खट्टा हो जाता है। लेकिन मैं तो परेशान नहीं होती, बल्कि उनसे सकारात्मक ढंग से लाभ उठा रही हूँ। अपने सत्य धर्म का सन्देश दूसरे लोगों तक पहुँचाती हूँ। अपने धर्म के बारे में लोगों की ग़लतफ़हमियाँ दूर करती हूँ और मेरा अनुमान है कि मेरी कोशिश के नतीजे में बहुत–से लोग यह जान जाएँगे कि इस्लाम केवल एशियाई लोगों का धर्म नहीं, बल्कि गोरे लोग भी इसे अपना सकते हैं और भविष्य में वे जब भी किसी दूसरे मुसलमान से मिलेंगे उनके दिमाग़ इस्लाम के बारे में साफ़ हो जाएँगे।

मैं मानती हूँ कि मैं अपने हर मिलनेवाले को मुसलमान नहीं बना सकती। लेकिन कम से कम मैं उनकी ओर प्रेम और स्नेह की एक खिड़की तो खोल सकती हूँ, उनके दिल पर दस्तक तो दे सकती हूँ, और यह दस्तक देना इसलिए ज़रूरी है कि अमेरिका के अधिकतर लोग इस्लाम के बारे में कुछ भी नहीं जानते। उन्हें इतनी भी जानकारी नहीं कि मुसलमान ख़ुदा ही की इबादत करते हैं, अकेले ख़ुदा की, जिसका कोई साझी नहीं। इनमें अनगिनत ऐसे लोग भी हैं जो इस्लाम के बारे में सुने–सुनाए आरोपों को सीने से लगाए बैठे हैं और उन्होंने कभी जाँच–परख करने की कोशिश नहीं की कि ये आरोप बिल्कुल और पूर्णतः निराधार हैं। मैं चाहती हूँ कि एक–एक व्यक्ति के पास जाऊँ और इन आरोपों का खण्डन करूँ विशेष रूप से उन्हें बताऊँ कि हमारा इबादत करने का तरीक़ा कितना साफ़–सुथरा और प्रभावकारी है।

मैं एक कमज़ोर औरत हूँ। स्पष्ट है कि दुनिया भर में तो क्रान्ति ला नहीं सकती, लेकिन अपनी क्षमता के अनुसार इतना तो कर सकती हूँ कि जहाँ भी अवसर मिले हक़ की शमा रौशन कर दूँ। क्या ख़बर यही शमा अमेरिका में रौशनी का मीनार बन जाए।

आख़िर में मैं अपना एक यादगार अनुभव सुनाती जाऊँ। पहले ही दिन जबकि मैंने इस्लामी लिबास पहना, तो शहर के अन्दर अपनी ड्यूटी पर थी कि

एक महिला ने मुझसे कहा, ''क्या मैं आप से एक निजी सवाल कर सकती हूँ?''

''क्यों नहीं, फ़रमाइए। मुझे आपसे बात करके ख़ुशी होगी।'' मैंने जवाब दिया, ''क्या आप मुसलमान हैं?'' उसने पूछा।

मैंने 'हाँ' में जवाब दिया, तो उस महिला ने बताया कि वह पहले से इस्लाम के बारे में कुछ जानकारी रखती है। कुछ और जानकारी हासिल करना चाहती है। मैंने अपनी जानकारी के मुताबिक़ उसके सभी सवालों के जवाब दिए। लगता था कि वह काफ़ी सन्तुष्ट हो गई है।

हमने एक-दूसरे का फ़ोन नम्बर ले लिया। सम्पर्क बना रहा। मुहब्बत का रिश्ता बढ़ता चला गया। वह मेरी बहुत गहरी सहेली बन गई और एक दिन वह भी मुसलमान हो गई। अल्लाह का शुक्र है, मैंने कोशिश करके उसकी शादी एक मुसलमान से करा दी और आज वह पक्की और बाअमल मुसलमान की हैसियत से सुखद जीवन व्यतीत कर रही है।

८०. यासमीन

(फ्रांस)

ईमान को बढ़ाने और ताज़ा करनेवाला प्रस्तुत लेख और इंटरव्यू श्रीमती आमिरा एहसान भूतपूर्व एम०एन०ए० (इस्लामाबाद) ने लिखा। यह मासिक 'बतूल' (जनवरी, 1991 ई० रावलपिंडी) में प्रकाशित हुआ। बहन आमिरा एहसान और 'बतूल' के शुक्रिये के साथ अपनी किताब के पाठकों को भेंट कर रहा हूँ।

▪ ▪ ▪ ▪

पश्चिम के अशान्त व्याकुलतापूर्ण जीवन के भंवर से निकलकर इस्लाम की शीतल छाया में शरण लेनेवालों की संख्या में, अल्लाह का शुक्र है, दिन-प्रतिदिन बढ़ौतरी हो रही है। महिलाएँ विशेष रूप से इस्लाम में औरत के सुरक्षित, शान्तिपूर्ण और सम्मानित स्थान को गर्व और आश्चर्य की निगाह से देखती हैं। शायद यही कारण है कि एक धर्म निर्पेक्ष व्यवस्था और तथाकथित स्वतंत्रता के हाथों सताई गई औरत जहाँ सुरक्षा की ज़मानत पा लेती है, वहीं शान्ति और सम्मान की चाह में सत्य धर्म की शीतल छाया तले पनाह लेने में कोई संकोच नहीं करती है। वे सीमाएँ और पाबन्दियाँ जो आधुनिकता प्रेमी मुसलमान औरत के गले की फाँस बन जाती हैं, उन्हें वह अप्रत्याशित उदार और महान दान समझकर क़बूल करती है और उन्हें अपने ऊपर लागू करने में कोई संकोच महसूस नहीं करती। फ्रांस से आनेवाली अपनी नवमुस्लिम बहन यासमीन को देखकर दो यहूदी नवमुस्लिम बहनें मेरी निगाहों में घूम गईं, जिन्होंने इस्लाम क़बूल करते ही पर्दे के सभी नियमों को अपने ऊपर लागू कर लिया था और शादी के रिश्ते में बन्धते ही नौकरियों को त्यागकर घर की ज़िम्मेदारियों को संभाल लिया। वह सुकून और इत्मीनान जो उनके चेहरे से झलक रहा था आज भी मुझे याद है। घर की सुरक्षा उन्हें कितनी प्यारी थी इसका बखान करते वे न थकती थीं। यासमीन ने उन दोनों बहनों की याद ताज़ा कर दी।

यासमीन से इस्लामाबाद में मुलाक़ात हुई। जहाँ वह अपने पति के साथ ठहरी हुई थी। मुलाक़ात तो अपनत्व और भाईचारे के नाते थी, किन्तु यह इच्छा पैदा हो गई कि इस बातचीत में पाठकों की शिरकत भी इंटरव्यू के रूप में हो जाए। नवमुस्लिम बहनें हमेशा हवा के ताज़ा झोंके की भाँति ईमान की रूह को ताज़गी प्रदान करने का साधन बनती हैं। इस्लाम धर्म की सत्यता पर यक़ीन और पक्का हो जाता है। बिन माँगे, बिन तरसे की पाई हुई हिदायत पर शुक्रिये का एहसास कुछ और गहरा हो जाता है, ज़िम्मेदारी का एहसास बढ़ने लगता है। सर्द जज़्बात में गर्मी आती है सुस्त क़दम तेज़ गति से बढ़ने लगते हैं।

यासमीन को मैंने रश्क भरी निगाह से देखा। उसकी समझदारी वाली उम्र इस जवानी में भी केवल दो वर्ष है। उसकी पिछली ज़िन्दगी के अंधेरे को ईमान ने रौशन कर दिया। हिसाब–किताब को आसानतर बना दिया। मुझे अपने दामन की स्याही और गहरी होती दिखाई दी। अपने कंधों पर तीन दहाइयों के हिसाब का बोझ मुझे तोड़े डाल रहा था। शायद यही वजह थी कि यासमीन का चेहरा नवजात बच्चे की तरह मासूम दिखाई दे रहा था। ख़्यालों का ताना–बाना तोड़ते हुए मुझे सच्चाइयों की दुनिया में लौटना पड़ा।

• यासमीन, इस्लाम क़बूल करने का कारण क्या था? इससे पहले आपका जीवन कैसा था? मैंने सवाल किया।

यासमीन ने जवाब दिया : दो साल पहले तक मेरा जीवन इसी मनहूस फ्रांसीसी साँचे में ढला हुआ था। मैं नौकरी कर रही थी। माँ–बाप से अलग अकेले रहती थी। महीने में एक बार माँ–बाप से मिलने चली जाती थी। लेकिन मेरा जीवन बहुत अशान्त था। मेरी आत्मा प्यासी थी। प्रेम की प्यासी तनहाई की मारी हुई, चाहने और चाहे जाने की इच्छा मुझे व्याकुल रखती थीं। लेकिन कोई सगा–सम्बन्धी भी तो ऐसा न था जो मेरी इस प्यास को बुझा देता। मेरी सहेलियाँ तो थीं, लेकिन स्वार्थी और ख़ुदपसन्द, दूर–दूर ख़ुलूस और मुहब्बत का नाम और निशान तक न था और मैं तनहाई के वीराने में हैरान और परेशान मारी–मारी फिरती रही। जब कोई रास्ता सुझाई न देता तो निराशा और ग़ुस्से की आग में जल भुनकर ख़ाक हो जाती। मेरा स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा होता चला जा रहा था। उदासी मुझे घेरे रहती। ऐसी ही एक रात मैं रोती हुई

सड़कों पर निकल गई। आँसुओं की धुंध में मैंने एक ग़रीब आदमी को देखा जो कूड़े के डब्बों में से खाना तलाश कर रहा था। उसकी बेचारगी पर मेरा दिल भर आया। पर्स में से उसे पैसे निकाल कर दिए और मेरे दिल की गहराइयों से आवाज़ आई, ''ऐ ख़ुदा अगर तू है तो मेरी मदद कर। मुझे रास्ता दिखा। मेरी तनहाई का इलाज बनजा कि मेरी हिम्मत जवाब दे गई है।'' न जाने यह दुआ मैंने अनजाने में कैसे कर डाली। इससे पहले मुझे यक़ीन भी न था कि ख़ुदा है या नहीं। (अल्लाह मुझे माफ़ करे) कभी-कभार सोचती अवश्य थी कि संसार में कितनी सुन्दरता है, कितनी व्यवस्था है, लेकिन इससे आगे कभी ग़ौर ही न किया था। किन्तु उस दिन यह दुआ माँगकर मैं शान्त-सी हो गई और वापस घर लौट आई।

इसी बीच उत्तरी फ्रांस के शहर लिल्ली में, जहाँ मैं रहती थी, मुसलमानों का एक तब्लीग़ी इज्तिमा था। जिस दुकान पर मैं काम करती थी वहीं ट्यूनिस का एक मुसलमान भी काम करता था। उनसे मिलने एक फ्रांसीसी मुसलमान आया तो उसने विशेषकर मुझे उससे परिचित कराया। वह जानता था कि मैं फ्रेंच मुसलमान को देखकर हैरान रह जाउँगी, क्योंकि मैं यही समझती थी कि इस्लाम तो अरबवासियों के लिए आया है। हमारा इससे क्या सम्बन्ध। बहरहाल मैं इस फ्रांसीसी मुसलमान से मिली। इससे पहले मैंने कभी इस्लाम के बारे में अधिक सुना या ग़ौर न किया था। लोग बातें भी करते तो मैं महत्व नहीं देती थी।

इस मुलाक़ात के कुछ ही दिनों के बाद फ्रांसीसी मुसलमान ने मुझे अपने घर आने की दावत दी जहाँ उसकी फ्रांसीसी बीवी भी मुसलमान थी। मैंने उससे मुलाक़ात को केवल कोई गपशप लड़ाने का बहाना समझा और पहले ही कह दिया कि मुझे मुसलमान होने को न कहना। मेरा ऐसा कोई इरादा नहीं है। बहरहाल, मैं उनके घर गई बातें होती रहीं, ट्यूनिस मुसलमान के साथ काम करते हुए मुझे भी 'अल्लाह के करम से', 'अस्सलामु अलैकुम' कहने की आदत हो चुकी थी। फ्रेंच मुसलमान ख़ातून ने बात चीत के दौरान जब यह शब्द सुने तो मुझसे कहने लगी कि तुम इतनी रवानी के साथ इन शब्दों का इस्तेमाल करती हो। मुसलमान होने के बारे में क्यों नहीं सोचतीं? इस्लाम क्यों

नहीं क़बूल कर लेतीं? मैंने कहा कि यह तो मैं भी नहीं जानती। वह कुछ ही क्षणों में मुझे अन्दर उठाकर ले गई। मुझे नहाने को कहा। सिर पर ओढ़ने को स्कार्फ़ दिया। मैं नहाने के बाद स्कार्फ़ ओढ़कर सबके सामने गई और कलिमा पढ़कर इस्लाम क़बूल कर लिया। मैं शान्ति की तलाश में थी, चाहत की प्यासी थी।

यासमीन ने बात यहाँ तक की, हमारे मुँह खुले के खुले रह गए। सुबहानल्लाह आश्चर्यजनक रूप से ख़ुदा ने उसकी इतनी जल्दी दुआ क़बूल कर ली। क्षण भर भी देर न हुई। सवाल और जवाब भी न हुए। कुछ पूछा भी नहीं, कुछ सोचा भी नहीं और मुसलमान हो गई। मैं और बातचीत में शामिल बहनें ख़ुद ही सवाल बन गई थीं। यासमीन कहने लगीं, सच तो यह है कि मैं नहीं बता सकती कि मैंने इस्लाम क्यों क़बूल किया। एक दम मैं सिर्फ़ गन्दी सोचों से छुटकारा चाहती थी। अशान्त जीवन से बच निकलने की रात तलाश कर रही थी। मेरे सामने जीवन का कोई उद्देश्य न था। लक्ष्यहीनता मुझे मारे डालती थी। मैं एक औरत हूँ घर और घर की शान्ति चाहनेवाली, लेकिन सामाजिक मूल्य हमें सामाजिक जीवन में नौकरियों में ख़ूब से ख़ूबतर होने की शिक्षा देते हैं। वहाँ घर और बच्चों की, पति की देख-भाल और चाहत का ख़्याल रूढ़िवादिता है। प्रकृति पर पहरे बिठा दिए गए हैं। औरत एक अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करने को मजबूर है और शायद यही उसकी बेचैनी, व्याकुलता और असंतोष की जड़ है। जहाँ और जब मैंने इस्लाम क़बूल किया वहीं मुझे तरीक़ा बता दिया गया और मैंने तुरन्त नमाज़ शुरू कर दी। डॉ० हमीदुल्लाह द्वारा किया गया क़ुरआन का फ़्रांसीसी अनुवाद और कुछ किताबें लेकर मैंने अध्ययन आरम्भ कर दिया।

इसी दौरान ट्यूनिस के दोस्त (अस्तग़फ़िरुल्लाह— इस्लाम से पहले की हर बात पर यासमीन बड़े प्यारे ढंग से नज़र झुकाकर अस्तग़फ़िरुल्लाह अर्थात् अल्लाह माफ़ करे, कहती थी) ने मुझे ट्यूनिस के एक गाँव में अपनी भाभी के घर में जाकर रहने की दावत दी जिसको मैंने क़बूल कर लिया। वहाँ मैं पाँच महीने ठहरी और इस प्रकार मैंने इस्लामी किताबों की अपेक्षा व्यावहारिक रूप से देखकर सीखा। मैंने इस सादा से देहात में प्राकृति को बहुत क़रीब से देखा।

वहाँ का शान्तिपूर्ण जीवन मुझे अल्लाह के क़रीब लाने में बहुत सहायक साबित हुआ। वहाँ दूर से जाकर पानी लाना पड़ता था। वहाँ बिजली भी नहीं थी। पाँच माह के बाद मैं फ्रांस वापस लौटी। यहाँ एक फ्रांसीसी बहन 'ईमान' ने मुझे इस राह पर आगे बढ़ने में मदद दी। कभी-कभार सीखने के इन आरंभिक चरणों में परेशान भी हो जाती थी, तो वह मुझे दिलासा देती और रास्ता दिखाती। इस जगह मैं एक वर्ष तक रही।

यासमीन, अब तक आपके माँ-बाप का ज़िक्र (वर्णन) नहीं आया। आपके मुसलमान होने पर उनकी क्या प्रतिक्रिया थी ? मैंने पूछा।

वास्तव में डेढ़ वर्ष के बाद अब मुझे निजी कारणों से जाकर अपने माँ-बाप के साथ रहना पड़ा जो इस क़स्बे से अस्सी किलोमीटर की दूरी पर रहते थे। पहले पहल जब उन्हें मेरे मुसलमान होने की जानकारी मिली, तो उन्होंने शुद्ध पश्चिमी अंदाज़ में यही कहा कि तुम बच्ची नहीं हो। इक्कीस वर्ष की हो। अपने जीवन की आप मालिक हो जिस प्रकार चाहो रहो। किन्तु जब उनके पास रहती तो पिता जी को मेरे हिजाब पर एतिराज़ होता था। वह इस लिबास में मुझे अपने साथ बाहर ले जाना नापसन्द करते थे। मेरी माँ का रवैय्या हमेशा की तरह अब भी मेरे साथ नरम था और उनकी यही कोशिश रहती थी कि वे पिताजी से मेरे सम्बन्धों पर आँच न आने दें। मेरी नमाज़, रोज़े और इबादत के दूसरे तरीक़ों पर उन्हें कोई आपत्ति न थी। परन्तु वह इस्लाम पर बात करने को पसन्द न करते थे, न ही ख़ुदा की चर्चा सुनना गवारा करते थे। यद्यपि मेरी माँ नाम की ईसाई थीं, लेकिन उनकी सोच उलझी हुई थी और पिताजी न जाने वह ख़ुदा पर यक़ीन रखते भी थे या नहीं। मैं पाँच महीने तक यहाँ ठहरी, आगे रमज़ान आ रहा था और मैं नहीं चाहती थी कि यह पवित्र महीना इस अजनबी माहौल में गुज़ारूँ अतः मैंने विभिन्न इस्लामी संगठनों को पत्र लिखे। क़रीब 15 की संख्या में कि मैं एक ऐसी नौकरी की तलाश में हूँ जो कि मुझे आर्थिक चिन्ता से निकालने के साथ-साथ मेरे इस्लामी व्यक्तित्व पर प्रभावी न हो। ऐसा ही एक पत्र मैंने एक मुसलमान बहन को लिखा जो उन्होंने पेरिस के ह्यूमन साइंस इंस्टीट्यूट (Human Science Institute) के डाइरेक्टर को दे दिया। यह साहब ऐसे लोगों की तलाश में थे जो अंग्रेज़ी किताबों का फ्रांसीसी भाषा

में अनुवाद कर सकें। उन्होंने मुझे फ़ोन पर पेरिस आकर काम करने का निमंत्रण दिया। मेरे काम को संतोषजनक ठहराते हुए मुझे यह ज़िम्मेदारी सौंप दी। रमज़ान गुज़ारने के लिए इसी दफ़्तर के एक यमनी परिवार के साथ मेरे रहने की व्यवस्था कर दी गई। दो माह बाद अक्टूबर 1987 ई० में मैंने इंस्टीट्यूट के डाइरेक्टर से शादी कर ली। डॉक्टर हमीदुल्लाह ने निकाह पढ़वाया, जिसको मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ।

• मेरा अगला सवाल था : यासमीन, इस्लाम का कोई ऐसा अंग जिसपर अमल करने में आपको कठिनाई महसूस हुई ? पर्दा, नमाज़, रोज़ा सभी कुछ तो आपके लिए नया था ?

यासमीन ने कहा : इस्लाम प्राकृतिक धर्म है तो फिर मुश्किल कैसी ? जब मैंने इस्लाम क़बूल किया तो मुझे बताया गया कि तुम्हें दिन में पाँच बार नमाज़ पढ़नी है तो मैंने तुरन्त ही शुरू कर दी। मुझे बताया गया इस्लाम में औरत को अल्लाह ने पर्दे का आदेश दिया है। मैंने क़बूल कर लिया कि जब अल्लाह का आदेश है तो संकोच कैसा ? और फिर यह भी तो है कि जब सच्चे दिल से इन्सान अल्लाह की ओर क़दम बढ़ाता है तो अल्लाह बढ़कर उसे थाम लेता है। उसकी सहायता करता है।

यहाँ यासमीन ने उस हदीस का भी हवाला दिया जो अल्लाह की ओर क़दम उठानेवाले व्यक्ति के साथ अल्लाह की मदद को बयान करती है। यासमीन ने "हमने सुना और क़बूल किया" की पहली सदी के मुसलमानों की याद ताज़ा कर दी, जहाँ आज्ञापालन में कोई शर्त न थी और कोई संकोच भी नहीं था।

• अच्छा बहन, यह तो बताएँ कि इस्लाम के किस पहलू ने सबसे पहले सर्वाधिक प्रभावित किया ? मैंने जानना चाहा।

इस्लाम में सामाजिक जीवन की सुन्दरता ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया। व्यक्ति का व्यक्ति से सम्बन्ध, इस्लामी बन्धुत्व का रिश्ता, जो मुझे आपसे जोड़ देता है, यही मेरे जीवन की प्यास थी, जिसे मैंने इस्लाम में पाया। एक-दूसरे के लिए दर्द, इख़्लास और मुहब्बत के जज़्बात जिनकी दृष्टि से हमारा समाज बंजर है और फिर मैंने जीवन के एक लक्ष्य को भी पाया, जिसने

मेरे जीवन के शून्य को भर दिया। यहाँ बात केवल क्षेत्रों, बाज़ारों और रंग और सुगन्ध के चारों ओर नहीं घूमती, बल्कि सकारात्मक, स्वस्थ रवैय्यों को परवान चढ़ाने का साधन बनती है।

और मैं चुप-सी हो गई, यह सोचकर कि शुक्र है यासमीन ने तहरीकी दायरे से बाहर की आम मुसलमान औरत को रंग और ख़ुश्बू में डूबकर जीवन व्यतीत करते हुए नहीं देखा।

• एक आज़ाद समाज से बिल्कुल अलग इस्लामी जीवन-व्यवस्था को आपने कैसा पाया ? मैंने पूछा,

शर्म और हया की ख़ूबी, मर्द और औरत की सुरक्षा करनेवाला है, यही दृष्टिकोण जब व्यवहार में आता है तो समाज को पाक-साफ़ रखने का साधन बनता है। इस प्रकार मर्द और औरत के आज़ादी से मिलने-जुलने और इससे फूट निकलने वाली बुराइयों के दरवाज़े बन्द हो जाते हैं। अब मुझे एहसास होता है कि केवल औरतों की महफ़िल में बैठने का मज़ा ही कुछ और है। मैं अपने आपको औरतों के बीच इतना हलका-फुलका महसूस करती हूँ, कोई बनावट नहीं, कोई दिखावा नहीं, जो मिली-जुली महफ़िलों की विशेषता होती है।

• यासमीन, आप अपने पति की दूसरी बीवी हैं। इस सम्बन्ध में आपके एहसास, उसकी सोच और अनुभव क्या कहता है ? पश्चिम में तो इस्लाम की एक से अधिक शादियों की इजाज़त ही पर तीखी आलोचना होती है ?

पाकिस्तान आने पर मैं पति की पहली बीवी से मिली। हमारा आपस का सम्बन्ध बड़ा अच्छा रहा। बच्चे भी मेरे साथ ख़ुश हैं। पहले उनकी एक माँ थी, अब दो हैं। वह कुछ-कुछ अंग्रेज़ी बोल सकती हैं। अतः अनुवाद मेरे, (अस्तग़फ़िरुल्लाह) हमारे पति महोदय करते रहे और इसी प्रकार हमारी ख़ूब दोस्ती हो गई। रहा यह सवाल कि पश्चिम के लोगों की इस बारे में आलोचना; तो मेरा मन तो यह कहता है कि इसकी अनुमति तो अल्लाह ने दी है। उसी स्रष्टा ने सीमाएँ निर्धारित कर दी हैं। क्या हलाल है और क्या हराम। मुहम्मद (सल्ल०) हमारे लिए पूर्ण आदर्श हैं। आप (सल्ल०) ने एक से अधिक शादियाँ कीं और आज यह दरवाज़ा हमारे लिए भी खुला है। फ्रांस में भी और पूरी पश्चिमी संस्कृति में मर्द औरत को केवल एक खिलौने के तौर पर आनन्द

प्राप्ति के लिए प्रयोग करता है। ज़िम्मेदारी से आज़ाद रहते हुए परिणामस्वरूप वहाँ की औरत अकेली है, कोई उसकी ज़िम्मेदारी उठानेवाला नहीं। नाजायज़ बच्चों की अधिकता है। वह कैसे ख़ुश रह सकती है। दो ही सूरतें मुमकिन हैं या तो यह कि मर्द की एक बीवी और कई रखैलें हों और या वह अधिक से अधिक चार बीवियाँ रखते हुए हर एक की ज़िम्मेदारी निभाए। हराम से बचते हुए अल्लाह की ख़ुशी को भी हासिल कर ले।

मेरे ख़्याल में यह सवाल मुश्किल तो नहीं है। उद्देश्य तो अल्लाह के आज्ञापालन की राह अपनाना और उसकी ज़िम्मेदारियों को निभाना है। मरयम जमीला इस सम्बन्ध में बेहतरीन मिसाल हैं। फ़िलहाल तो मैं ईर्ष्या की कोई भावना अपनी दूसरी बहन के लिए महसूस नहीं करती, यद्यपि यह हो भी सकता है जैसा कि आप (सल्ल०) की बीवियों में भी कभी-कभार उभर आया। किन्तु इसे कंट्रोल कर लेना चाहिए। मेरे विचार में तो अधिक लोगों का एक साथ रहना बहुत ही अच्छा है कि जहाँ आप एक-दूसरे से मुहब्बत करें, सहयोग करें केवल अल्लाह के लिए।

• पाकिस्तान के बारे में आपके विचार क्या हैं ? मैंने सवाल किया।

(ठण्डी साँस भरते हुए) हाँ, सबसे अधिक दुख और हैरत इस बात पर हुई कि एक मुसलमान देश में औरतें पर्दे के बग़ैर खुले आम घूमती हैं। फ्रांस में तो हमें पर्दे में दिक़्क़त पेश आती है, लेकिन पाकिस्तान में तो कोई वजह नहीं है कि इस्लाम पर अमल न किया जाए। काश कि ये औरतें पश्चिमी संस्कृति की वास्तविकता से अवगत हो जाएँ। फिर यह कभी उसके अनुसरण की इच्छा अपने दिल में न लाएँ। बेपर्दगी वास्तव में औरत को मर्यादाहीन बना देती है और इस प्रकार और अचेतन रूप में समाज में पथभ्रष्टता का कारण बनती हैं। इस्लाम ने औरत को असीम महानता प्रदान की है। पर्दा औरत के दर्जे को बढ़ाता है। जबकि पश्चिमी संस्कृति औरत की पहचान बीवी, बेटी और माँ की हैसियत से बेहद गिरा देती है।

इस पहलू से हटकर बात करें तो पाकिस्तान एक ख़ूबसूरत देश है और मुझे बहुत पसन्द आया है।

• क्या आप इस्लाम में औरत के स्थान पर सन्तुष्ट हैं ? मेरा आख़िरी

सवाल था।

मेरा ख़्याल है कि इस सम्बन्ध में मैं यही कहूँगी कि इस्लाम में औरत एक हीरे की भाँति है, जबकि पश्चिम में केवल एक पत्थर जो इधर से उधर लुढ़का दिया जाता है। मुसलमान औरत भाग्यशाली है। उस पर मुश्किल समय भी आए तो वह अकेली नहीं कि उसका सम्बन्ध अल्लाह से जुड़ा हुआ है। जब तक मैं मुसलमान नहीं हुई थी, मेरे एहसासों और भावनाओं के बाहर निकलने की राह न थी। मैं अकेली थी। अब मेरा अल्लाह मेरे साथ है।

• पाकिस्तानी बहनों के लिए कोई सन्देश?

ख़ुदा के लिए पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध पर मत जाइए। दूर के ढोल सुहाने हैं। एक क़दम अल्लाह की तरफ़ उठाइए, अल्लाह बढ़कर आपको थाम लेगा। यूरोप में पूर्ण स्वतंत्रता वहाँ की औरत के लिए अज़ाब (अभिशाप) बन गई है। इस स्वतंत्रता पर अल्लाह की दासता को प्राथमिकता दीजिए।